CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय-सूची

"धर्मदूत"

का

"अखिल विश्व बौद्ध संस्कृति अंक"

हम बुद्धाब्द २५०० (सन् १९५६) के शुभावसर पर "धर्मदूत" का एक सुन्दर और विशाल अंक प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं जिसमें विश्व के सभी देशों के बौद्धों का हर एक पहलुओं से परिचय रहेगा। ऐसे अवसर पर क्या आपने हमारे इस महान् कार्य में थोड़ी भी सहायता करने का संकल्प किया है? यदि किया है तो शीघ्र अपनी सहायता हमें प्रदान करें। इस कार्य के लिए कम से कम एक लाख रुपये की आवश्यकता है। यदि आप अपने नित्य के व्ययों में से एक एक पैसा भी रख छोड़ें तो भी आप एक बहुत बड़ी सहायता कर सकेंगे। हम यह शीघ्र देखना चाहते हैं कि आप किस उत्साह से हमारी सहायता कर रहे हैं। थोड़ी या बहुत जो भी रकम सहर्ष स्वीकार की जायेगी।

निवेदक :—

व्यवस्थापक "धर्मदूत"

अपने पाठकों से—

'धर्मदूत' अनेक कठिनाइयों और अर्थाभाव का मुकाबिला करता हुआ एक लम्बे समय से हिन्दी भाषा-भाषी बौद्ध-धर्म-प्रेमियों की धार्मिक सेवा करता आ रहा है। इसके अत्यधिक प्रचार और सुदृढ़ बनाने के लिए हमारे उदार पाठकों का हमें सदा से सहयोग प्राप्त रहा है। हम 'धर्मदूत' को शीघ्र ही एक नये पैमाने से अधिक पृष्ठों के साथ निकालना चाहते हैं। क्या पाठक हमारी सहायता करने को प्रस्तुत हैं और वह चाहते हैं कि ऐसा हो? यदि चाहते हैं तो मेरा साग्रह निवेदन है कि कम से कम एक-एक भी नये ग्राहक बनाने का कष्ट करें।

निवेदक :—

व्यवस्थापक "धर्मदूत"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ । महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोकपर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिए विचरण करो। भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १५ | सारनाथ, अक्तूबर | बु० सं० २४९४ / ई० सं० १९५० | अङ्क ७

बुद्ध-वचनामृत

तीन अकुशल-मूलोंका त्याग

१. ऐसा मैंने सुना, भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ ! एक बातको त्यागो। मैं तुम्हारे अनागामी होनेके लिए जामिन होता हूँ। किस एक बातको ? भिक्षुओ ! 'लोभ'-एक (इस) बातको त्यागो। मैं तुम्हारे अनागामी होनेके लिए जामिन होता हूँ।" भगवान्ने यह बात कही। वहाँ यह इस प्रकार कहा जाता है—

"जिस लोभसे लोभी होकर प्राणी दुर्गतिको प्राप्त होते हैं, उस लोभको विपश्यी (योगी) लोग भली प्रकार जानकर त्याग देते हैं। वे उसे त्यागकर फिर कभी भी इस लोकको नहीं आते हैं। यह भी बात भगवान्ने कही-ऐसा मैंने सुना।

२. ऐसा मैंने सुना, भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ ! एक बातको त्यागो। मैं तुम्हारे अनागामी होनेके लिए जामिन होता हूँ। किस एक बातको ? भिक्षुओ ! 'द्वेष'—एक इस बातको त्यागो। मैं तुम्हारे अनागामी होनेके लिए जामिन होता हूँ।" भगवान्ने यह बात कही। वहाँ यह इस प्रकार कहा जाता है—

"जिस द्वेषसे बुरे मनवाले होकर प्राणी दुर्गतिको प्राप्त होते हैं, उस द्वेषको विपश्यी लोग भली प्रकार जानकर त्याग देते हैं। वे उसे त्यागकर फिर कभी भी इस लोकको नहीं आते हैं।" यह भी बात भगवान्ने कही—ऐसा मैंने सुना।

३. ऐसा मैंने सुना, भगवान्ने यह कहा—"भिक्षुओ ! एक बातको त्यागो। मैं तुम्हारे अनागामी होनेके लिए जामिन होता हूँ। किस एक बातको ? भिक्षुओ ! 'मोह'—एक इस बातको त्यागो। मैं तुम्हारे अनागामी होनेके लिए जामिन होता हूँ।" भगवान्ने यह बात कही। वहाँ यह इस प्रकार कहा जाता है—

"जिस मोहसे मूढ़ होकर प्राणी दुर्गतिको प्राप्त होते हैं, उस मोहको विपश्यी लोग भली प्रकार जानकर त्याग देते हैं। वे उसे त्यागकर फिर कभी इस लोकको नहीं आते हैं।" यह भी बात भगवान्ने कही—ऐसा मैंने सुना। (—इति वुत्तक १,१,१—३)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मंगोलिया में बौद्ध धर्म

महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन

मंगोलों के पूर्वज हूणों के प्रहार के कारण शकों को अपनी मातृभूमि शकद्वीप के पूर्वी भाग (गोबी से वोल्गा तक) को खाली करके दक्खिन की तरफ भागना पड़ा। १७० ईसापूर्व के आस पास जब शकों का निष्क्रमण आरम्भ हुआ, तभी से इली और चू नदियों की उपत्यकाएँ हूणों की चर भूमि बन गईं, और तभी से तरिम उपत्यका के साथ भी उनका घनिष्ट सम्बन्ध हुआ, किन्तु रक्त सम्बन्ध उतना घनिष्ट नहीं हुआ, जितना कि इस्लामिक काल में उनके वंशज तुर्कों के साथ हुआ, और जिसके कारण तुखार और शक जातियाँ अपनी भाषा और स्वरूप को खो बैठीं। तरिम उपत्यका के निवासियों से संस्कृति के साथ बौद्ध धर्म का सन्देश हूणों में ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में ही पहुँच चुका था। हूणों के बाद अपारों और तुर्कों में और भी बौद्ध धर्म का प्रचार था, इस समय तरिम उपत्यका में ही नहीं, चीन सम्राट के दरबार में भी बौद्ध धर्म का बहुत आदर था। तुर्कों में बहुत से खानों के नाम संस्कृत में मिलते हैं। जिससे जान पड़ता है, कि वह तिब्बत या चीन वालों की भाँति हर एक नाम का अनुवाद नहीं करते थे। तुर्कों के बाद उनके भाई बंधु उइगुर भी बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए, यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं कि इन उत्तरी घुमंतुओं में बौद्ध धर्म छोड़ दूसरा धर्म प्रचलित नहीं था। उनमें मानी का भी धर्म मौजूद था, जिसे एक बार उइगुरों ने राजधर्म घोषित किया था, नेस्तोरीय और जर्तुश्ती भी उनमें मौजूद थे, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि बौद्ध धर्म उनमें अधिक प्रचलित था।

चिंगीज खान ने उइगुरों को जीतकर उनकी लिपि अपनाई, उनसे बच्चों को शिक्षा दिलाई, फिर कैसे हो सकता था कि चिंगीज के पोते बौद्ध धर्म से परिचित न होते। आज के मंगोली विद्वानों में एक परम्परा है, जिसके अनुसार तिब्बती लामाओं और तिब्बती साहित्य के सम्पर्क में आने से पहले ही मंगोलों का बौद्ध धर्म से कुछ-कुछ परिचय हो चुका था।

चिंगीज द्वारा स्थापित एवं अनुवर्द्धित मंगोल साम्राज्य चीन साम्राज्य तक ही सीमित नहीं था, अल्ताई और कजाकस्तान पर चिंगीज के एक पुत्र की सन्तान शासन कर रही थी। चिंगीज का पौत्र बातू खान पश्चिमी कजाकस्तान से पोलैंड और पूर्वी यूरोप के कितने ही मार्गों तक पर शासन कर रहा था। उभय मध्य एशिया और इली उपत्यका पर चिंगीज के पुत्र जगताई (चगताई) का वंश शासक था, और चिंगीज का पोता हुलाकू तथा उसके वंशज सिंध से सीरिया और काकेशस तक राज्य कर रहे थे। ये चिंगीज वंशी खान पीछे केन्द्रबद्ध न रहकर स्वतन्त्र हो गए, किन्तु तो भी वे अपने पैतृक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध को बनाये रखना चाहते थे।

१२६० ई० के आस पास कुबले के बौद्ध हो जाने पर तो चिंगीज घराने के सभी खानों में बौद्ध पूजा प्रतिष्ठा फैशन-सा बन गई थी, तो भी चीन और मंगोलिया को छोड़ एक-एक करके सभी खानों को इस्लाम कबूल करना पड़ा, किन्तु उन्होंने ऐसा तब किया, जब राजवंश एकदम निर्बल हो गया और अपनी मुस्लिम प्रजा एवं सामन्तों की सहानुभूति से ही उनकी आयु कुछ और बढ़ती दीख पड़ी।

कल्मक मंगोल जाति का एक कबीला है। इसने १७ वीं और १८ वीं शताब्दी में अलताई से कास्पियन सागर तक एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया था और एक समय मालूम होने लगा था कि उभय मध्य एशिया उनके हाथ में चला जाना चाहता है। लेकिन १८ वीं सदी के मध्य में पहुँचते-पहुँचते तोपों और बारूद वाले हथियारों की शक्ति ही प्रबल नहीं हो गई, बल्कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अब उनके बनाने के लिए बड़े कारखानों की आवश्यकता थी। ये चीजें मंगोल तंबुओं में नहीं बना सकते थे। जब पलासी के युद्ध [१७५७ ई०] के समय नये हथियारों से सुसज्जित चीनी सेना पहुँची, तो कलमकों को परास्त होना पड़ा और उभय मध्य एशिया के मुसलमानों ने सन्तोष की सांस ली। इन्हीं कलमकों की सन्तान वोल्गा के दोनों तटों पर जाकर बस गई थी। जिनमें बायें तट के कलमक १८ वीं शताब्दी में ही दारुण विपत्ति और मौत का शिकार होते स्वदेश लौट गये, किन्तु दाहिने तट के कलमक १९४१ ई० तक वहीं अपना स्वायत्त प्रजातन्त्र बनाये पड़े रहे और जब हिटलर की सेनाएँ वहाँ पहुँची, तो वह भी कास्पियन के पश्चिमी तट की इस भूमि को छोड़ स्वदेश लौट गये। ल्हासा के महाविहारों में सोवियत क्रान्ति के पहले तक हर साल पचासों की संख्या में कलमक तरुण पढ़ने के लिए जाया करते थे। कलमकों को ही ओइरोत और जुङ्गर भी कहते हैं।

पाँचवें दलाई लामा को सारा तिब्बत जीतकर देने वाली सेना और उसका सेनापति गुश्रीखान [होशद्]-कलमक मंगोल था।

आज प्रायः सारे मङ्गोल बौद्ध हैं, जिनमें बइकाल तटवर्ती बुरियत तथा बाहरी मङ्गोलिया के खलरवा शिक्षा-दीक्षा में बहुत आगे बढ़े हुए हैं।

मङ्गोलों में धर्म प्रचार करने में तिब्बत के बौद्ध धर्माचार्यों को बहुत कठिनाई नहीं हुई, जो भी प्रतिद्वंदिता थी, वह कुबलेखान के दरबार ही में खत्म हो गई। कुबले ने फग्स-पा को कुबो-सी [राजगुरु] की उपाधि से सम्मानित किया था और उसे मध्य तिब्बत खम और अम्दो के प्रदेश गुरु दक्षिणा में दिये थे। फग्स-पा १२ साल तक चीन में रहा। उसने मङ्गोल भाषा लिखने के लिए एक लिपि भी तैयार की।

भगवान् बुद्ध की शिक्षा की विशेषतायें

—प्रो० लालजीराम शुक्ल

भगवान् बुद्ध संसार के सबसे बड़े क्रान्तिकारी थे। जिस समय भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ उस समय भारत वर्ष में ऊँच-नीच का भाव फैला हुआ था। धर्म का अर्थ जाति-पाँति की रूढ़ियों को मानना और यज्ञ होम करना मात्र रह गया था। समाज में कुछ लोग अवश्य ऐसे थे जो धर्म के रहस्य को समझते थे, पर जनसाधारण वर्तमान् समय के समान पंडा, पुजारी, पुरोहितों के अनुशासन में चलता था। स्वतंत्र चिन्तन का सर्वथा अभाव पाया जाता था। जो वेद कहे वही सत्य है और वेद विरुद्ध सभी बातें त्याज्य हैं—यह विचार समाज में फैला हुआ था। फिर वेदों पर आधारित स्मृतियाँ समाज-व्यवस्था का संचालन करती थीं। इनकी अवहेलना करना समाज से बहिष्कृत होना और मौत को बुलाना था।

भगवान् बुद्धने उक्त सभी प्रकार की रूढ़िवादिता तथा सामाजिक शृंखलाओं को तोड़ा। उन्होंने मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचाना। प्रत्येक मनुष्य में सोचने की शक्ति है। प्रत्येक मनुष्य अपना आत्मोत्कर्ष कर सकता है, अतएव प्रत्येक मनुष्य को वे सुविधायें समाज द्वारा दी जानी चाहिये जिससे वह अपने आप को ऊँचे से ऊँचा व्यक्ति बना सके। जो समाज मनुष्य को ये सुविधायें प्रदान नहीं करता, वह समाज अन्यायी है। ऐसा समाज प्रगतिशील कदापि नहीं हो सकता। भारतवर्ष की अछूत प्रथा पुरानी प्रथा है। हम अपने ही भाइयों से पशु जैसा व्यवहार करते हैं। वे सभी प्रकार की हमारी सेवा करते हैं, पर उसके बदले में हम उन्हें छूना तक नहीं चाहते। भारतवर्ष के सभी सुधारकों ने इस प्रथा का विरोध किया। महात्मा गाँधी की कृपा से अछूतों की स्थिति थोड़ी सुधर गई है। पर अभी भी उच्च जाति के लोगों की मनोवृत्ति नहीं बदली। आज भी अछूतों पर अनेक अत्याचार होते हैं। मेरे ही गाँव के अछूतों पर वहाँ के जमींदार महोदय अनेक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकार के अत्याचार करते हैं। भगवान् बुद्ध ने इस अत्याचार का पहले पहल विरोध किया और अछूतों को समानता का स्थान दिया।

एक बार जब आयुष्मान् आनन्द भ्रमण कर रहे थे। एक गाँव के समीप आये। दोपहर का समय था। उन्हें जोर की प्यास लगी हुई थी। उन्होंने कुँए पर स्त्रियों की भीड़ देखी। वे पानी खींच रही थीं। उनके पास मिट्टी के घड़े थे। आयुष्मान् आनन्द ने उनमें से एक स्त्री से पानी माँगा। यह गाँव चमार-टोला था और उस कुँए पर पानी भरने वाली सभी स्त्रियाँ चमारिन थीं। उस स्त्री ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"मैं आपको पानी पिलाने योग्य नहीं हूँ। मैं नीच जाति की स्त्री हूँ।" उस स्त्री से स्थविर ने कहा—"मुझे तो तेरे घड़े का पानी चाहिये, मुझे तेरी जाति नहीं चाहिये। तेरा पानी मेरी प्यास उसी तरह बुझावेगा, जिस प्रकार ब्राह्मणी के घड़े का पानी।" इन बचनों को सुबकर उस चमारिन ने आयुष्मान् आनन्द को जल पिलाया। स्थविर उसे आशीर्वाद देकर आगे चल दिये। स्थविर का इस प्रकार का आचरण भगवान् बुद्ध के शिक्षा का परिणाम था।

इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने अपने आचरण से सामाजिक उथल-पुथल कर दी। मनुष्य मात्र की सिद्धान्तः समान मानने वाले, जाति-पाँति को व्यर्थ मानने वाले तो बहुत से व्यक्ति होते हैं, पर समाज की प्रचलित रूढ़ियों के प्रतिकूल आचरण करने की हिम्मत किसी बिरले ही व्यक्ति में होती है। फिर भारतीय समाज इस प्रकार के व्यक्ति को जो दण्ड देता है, वह किसी से छिपा नहीं है। वरन केवल उस व्यक्ति को ही समाज से निकाल देता है, वरन उसकी संतान को भी समाज का वहिष्कार सहना पड़ता है। जाति-पाँति की रीति के प्रतिकूल खाना पीना करने वाला अथवा विवाह सम्बन्ध करने वाला व्यक्ति सब समय के लिये जाति से निकाल दिया जाता है। जो व्यक्ति एक बार मुसलमान हो गया, हिन्दू समाज फिर कभी भी ऐसे व्यक्ति को समाज में नहीं लेता। भगवान् बुद्ध ने इस प्रकार की अन्याय पूर्ण और आत्म-विनाशी प्रथा का अन्त करने की चेष्टा की। भगवान् बुद्ध का धर्म संसार में इसलिये ही फैला कि जाति पाँति का बन्धन उसमें नहीं था। जहाँ हिन्दू धर्म एक जातीय धर्म है, वहाँ बौद्ध धर्म सार्वभौम धर्म है। यदि हिन्दू धर्म केवल दार्शनिक विचार होता, तो संसार के अनेक लोग इस धर्म के मानने वाले होते। उपनिषद् के दर्शन की संसार के अनेक विदेशी विद्वानों ने प्रशंसा की। पर कोई भी अभारतीय हिन्दू नहीं कहा जा सकता। इसके प्रतिकूल संसार के प्रायः सभी सभ्य देशों में बौद्ध धर्म पाया जाता है। इसका प्रमुख कारण इस धर्म का हिन्दू समाज की प्रथाओं से स्वतंत्र होना था।

भगवान् बुद्ध ने जितना स्वतंत्र चिन्तन पर जोर दिया, उतना किसी भी धर्म प्रवर्तक ने नहीं दिया। सभी धर्म के प्रवर्तक अपने आपको ईश्वर का भेजा दूत, एकलौता बेटा आदि कहते हैं और अपने वचनों को बिना सोचे विचारे मानने के ऊपर जोर देते हैं। सभी सिद्धियों का आधार विश्वास माना जाता है। तर्क, संशय आदि को विनाश माना गया है। भगवान् बुद्ध ने कहा कि मैं जो धर्म कहता हूँ वह प्रयोगात्मक है, वह कनफूँका धर्म नहीं है। मैं इसे कान में फूँकता नहीं। मैं तो इसे खुले हाथ देता हूँ। जिसको यह भला लगे, वह इसे लेवे। इसकी खूब परख करले, तब इसे माने अन्यथा नहीं। भगवान् बुद्ध का कथन है कि किसी बात को इसलिये मत मानो कि उसे कोई बड़ा महात्मा कहता है अथवा वह किसी बड़े धर्म-ग्रन्थ में लिखी है या उसे बहुत से लोग मानते हैं, वरन् उसे इसलिये मानो कि वह तुम्हारे अनुभव में ठीक उतरती है। अपने विवेक के प्रतिकूल किसी बात को मत मानो। इस प्रकार की बात वही कर सकता है, जिसे अपनी बात की मौलिकता में पूरा विश्वास हो। छिपकर चोरी की धोखेबाजी की बातें कही जाती हैं। मनुष्य मात्र के कल्याण की बातें तो सभी को खुले आम कही जाती हैं। पुराने समय में प्रथा थी कि शूद्र को वेद के मंत्र नहीं सुनने दिये जाते थे, यदि वह मंत्रों को छिपकर सुनले, तो उसे उसके लिये दण्ड दिया जाता था गायत्री का मंत्र शिष्य को कान में चुपके से कहा जाता था। इन सभी बातों से उल्टी बात भगवान् बुद्ध ने की। भगवान् बुद्ध ने आप्त वचन को प्रामाण्य न मान कर अपने अनुव को ही प्रामाण्य माना। इस प्रकार उन्होंने संसार के प्रचलित धर्मों के ठीक प्रतिकूल काम किया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भगवान् बुद्ध की शिक्षा वैज्ञानिक है। उनकी विचार की प्रक्रिया वैज्ञानिक है। विज्ञान जिस प्रकार किसी भी सत्य को बिना उसका प्रयोग किये नहीं मानता, इसी प्रकार भगवान् बुद्ध ने कहा कि मेरी कही किसी भी बात को मेरे प्रति श्रद्धा के कारण मत मानो। अन्ध-श्रद्धा की भगवान् बुद्ध ने निंदा की है। यह बात भगवान् बुद्ध के जीवन में घटित निम्नलिखित घटना से स्पष्ट होती है—

वक्कलि नामक भिक्षु सदा भगवान् के गौर वर्ण शरीर को देखा करते थे और सदा भगवान् के काय-दर्शन के लिए ही उत्सुक रहते थे। एक दिन भगवान् ने उनसे कहा—"वक्कलि! तू इस गन्दगी से भरे शरीर को क्या देखता है? इससे तेरा क्या लाभ होगा? अगर तू अपना कल्याण चाहता है तो मेरे बताये मार्ग पर चल, और उस मार्ग में श्रद्धा कर।"

भगवान् बुद्ध के प्रति श्रद्धा न दिखाना उसी प्रकार है, जिस प्रकार हम किसी भी दूसरे सत्य के अन्वेषक के प्रति श्रद्धा दिखाते हैं। भगवान् बुद्ध को देवता अथवा ईश्वर के दूत के रूप में नहीं पूजा जाता। यदि हम ऐसा करते हैं तो हम उसी भूल को करते हैं, जो दूसरे धर्म वाले करते हैं। हम अंध भक्ति को प्रोत्साहित करते हैं। इससे संसार में द्वेष-भेद, मान बढ़ाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। भगवान् बुद्ध में श्रद्धा उसी प्रकार की जाती है, जिस प्रकार भौतिक विज्ञान के प्रमुख अन्वेषक न्यूटन में की जाती है, अथवा पश्चिमी संसार के प्रमुख दार्शनिक कान्ट में की जाती है। ये लोग अपने बताये हुए सत्य के दिखाने से हमारे आदर के पात्र हैं पर इन्होंने जिस सत्य को दिखाया वह मनुष्य का उतना कल्याण नहीं करता, जितना भगवान् बुद्ध का बताया सत्य करता है। भौतिक विज्ञान की खोजों से मनुष्य का केवल भौतिक जीवन ही सुखी होता है। उसका आध्यात्मिक जीवन दुःखी का दुःखी रह जाता है और इसके दुःखी रह जाने के कारण मनुष्य अपना भौतिक जीवन भी फिर से दुःखी बना लेता है। आज संसार भौतिक विज्ञान की सभी खोजों पर दुःखी है। इसका कारण हमारी आध्यात्मिक जीवन के प्रति अवहेलना है। भगवान् बुद्ध की शिक्षा है कि जब तक मनुष्य का आध्यात्मिक जीवन ठीक नहीं होता, उसका भौतिक जीवन भी ठीक नहीं हो सकता। वह सब प्रकार की सुख की सामग्री होते हुए भी दुःखी का दुःखी ही रह जाता है।

भगवान् बुद्ध एक प्रकार से उसी प्रकार के क्रान्तिकारी थे, जिस प्रकार कार्लमार्क्स क्रान्तिकारी थे। दोनों समाज में समान का भाव लाना चाहते थे। पर दोनों का मार्ग भिन्न भिन्न था। कार्लमार्क्स धनियों का बलिदान करके समाज में समता स्थापित करना चाहते थे, और भगवान् बुद्ध धनियों की धन की पिपासा मिटाकर समाज में समानता का भाव लाना चाहते थे। धनियों की धन की पिपासा तभी मिट सकती है, जब उनमें वैराग्य-भाव की प्रबलता हो, जब वे समझ जायँ कि जिन लोगों के पीछे वे दौड़े जा रहे हैं वे नश्वर और गन्दे हैं। धनी और गरीब सभी को भगवान् बुद्ध ने यह शिक्षा दी। इसी शिक्षा के परिणाम स्वरूप अनाथ पिण्डक जैसे करोड़पति ने अपना सब धन त्याग दिया और अनेक राजकुमारों ने राज्य को त्याग कर भिक्षु—व्रत ग्रहण कर लिया। भगवान् बुद्ध ने अपनी शिक्षा से मनुष्यमात्र को संसार के पदार्थों के मूल्य आँकने के लिए उचित दृष्टि दी। इतना ही नहीं उन्होंने वास्तविक सुख और शान्ति का मार्ग बताया।

कार्लमार्क्स का बहुत कुछ कार्य ध्वंसात्मक था। जिस समाज व्यवस्था के आधार से थोड़े लोगों का हित हो और बहुत से लोगों की हानि, उसको नष्ट कर देना उसने अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था। पर इस प्रकार की समाज-व्यवस्था मनुष्य की विशेष प्रकार की मनोवृत्ति का परिणाम है। जब तक इस मनोवृत्ति का अन्त नहीं होगा, तब तक किसी न किसी रूप में संसार के थोड़े से बुद्धिमान लोग बहुसंख्यक लोगों का शोषण करते ही रहेंगे। केवल शोषण की रीति में अन्तर हो जावेगा। भगवान् बुद्ध ने वह मार्ग बताया जिस पर चलने से मनुष्य के शोषण की मनोवृत्ति का ही अन्त हो जाता है। जब तक मनुष्य के आन्तरिक मन में शान्ति नहीं आती, वह ऐसे ही समाज-व्यवस्था को बना लेगा, जिसमें अशान्ति का साम्राज्य रहेगा। मानव का समाज उसके मन की प्रतिमूर्ति होता है। जैसा मनुष्य का मन होता है वैसा ही उसका समाज होता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भगवान् बुद्ध ने संसार के दुःख का कारण अपने मन की प्रबल वासनायें बतायी हैं। इन वासनाओं से मुक्त होने का सुगम उपाय मध्यम-मार्ग का अनुसरण बताया गया है। यह मध्यम-मार्ग आर्य अष्टाङ्ग मार्ग है। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्क् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि—ये मध्यम-मार्ग के आठ अंग हैं। उन्हें शील, समाधि और प्रज्ञा इन तीन भागों में साधना की दृष्टि से देखा जाता है। सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त और सम्यक् आजीविका शील हैं। सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि समाधि के अंग हैं। शील की प्राप्ति होने पर मनुष्य के चित्त में एकाग्रता आती है अर्थात् उसे समाधि की क्षमता प्राप्त होती है और जब समाधि की योग्यता मनुष्य में आ जाती है, तो उसे सत्य का ज्ञान होता है। यह क्रम पूर्णतः मनोवैज्ञानिक है।

भगवान् बुद्ध ने जो शान्ति-प्राप्ति का मार्ग बताया है, वह किसी प्रकार के विश्वास पर आधारित नहीं है। धर्म के सम्बन्ध की जो बात भगवान् बुद्ध के समय में सत्य थीं, वही आज भी सत्य है। किसी प्रकार की अति मनुष्य के मन में सुख और शान्ति को न लाकर दुःखों को ही बढ़ाती है। भगवान् बुद्ध ने कहा है कि दो प्रकार की अतियों से मनुष्य को बचना चाहिये एक विलासिता की अति और दूसरी तपस्या की अति। विलासिता की अति के परिणाम स्वरूप मनुष्य को अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग होते हैं। विलासिता मनुष्य की इन्द्रियों को शिथिल कर देती है और फिर मनुष्य उन्हीं पदार्थों के रस का आस्वादन नहीं कर पाता, जिन्हें वह अपने भोग के लिये इकट्ठा करता है। फिर एक मनुष्य की विलासिता दूसरे के भूखे और नंगे रहने का कारण बन जाती है। सामाजिक क्रान्तियाँ विलासी मनुष्य की अभियांत्रिक भोग-वासनाओं का ही परिणाम हैं।

मानव जीवन का दूसरी अति शारीरिक क्लेश है। शरीर को उतना ही आराम देना उचित है जितना कि रचनात्मक कार्य करते रहने के लिये आवश्यक है। मनुष्य को उतना ही खाना चाहिये जिससे वह ठीक से चिन्तन कर सके और ठीक से शारीरिक कार्य कर सके। इसी प्रकार मनुष्य को अपने शरीर को उतना ही कष्ट देना चाहिये, जिससे वह अपने मस्तिष्क और शरीर से संसार के लिये उपयोगी कार्य कर सके। कष्ट देने के लिये शरीर को कष्ट देना मनुष्य के कोरे अभिमान को बढ़ाता है। इस प्रकार का अभिमान दुःख का कारण होता है। मनुष्य के दुःख का नाश ज्ञान की वृद्धि और योग्य कार्य करने से होता है न कि शारीरिक क्लेश सहने से। भगवान् बुद्ध के समय अनेक प्रकार के तपस्वी घूमते फिरते थे, कोई अर्द्धबाहू थे, तो कोई काँटों की सेज पर सोते थे कोई पँच-अँगीठी दोपहर की धूप में तपते तो कोई लम्बे लम्बे व्रत करते। इस प्रकार के किसी काम से मनुष्य को आन्तरिक शान्ति प्राप्त नहीं होती। स्वयं भगवान् बुद्ध ने छः वर्ष तक घोर तपस्या की और अपने शरीर को क्लेश सहाकर सुखा डाला। पर उन्हें ज्ञान-लाभ न हुआ और आन्तरिक शान्ति का उपाय नहीं दिखाई पड़ा। जब उन्होंने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया और उपवास करना छोड़कर सामान्य भोजन करना प्रारम्भ किया तो उन्हें सच्चा ज्ञान लाभ हुआ। अतएव भगवान् बुद्ध ने जो बात कही, वह आत्म-अनुभूति के आधार पर कही। उसकी सत्यता को आज भी हम देख सकते हैं।

भगवान् बुद्ध का आर्य-अष्टाङ्ग मार्ग कितना उपयोगी है—इसकी खोज करना संसार के महान् दार्शनिकों और मनोवैज्ञानिकों का कार्य है। लेखक ने अपने मानसिक चिकित्सा के प्रयोग में मैत्री-भावना और आनापान-सति की उपयोगिता को देखा है। मैत्री-भावना के अभ्यास से शत्रु मित्र में परिणत हो सकता है। अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोगों का इससे अन्त हो जाता है। अनेक प्रकार के रोग मनुष्य को कल्पित शत्रुओं के त्रास के कारण हो जाते हैं। यदि सभी लोगों के प्रति कोई मनुष्य मैत्री-भावना का अभ्यास करे, तो उसकी मानसिक व्यथाओं का शीघ्र ही अन्त हो जावे। लेखक को आज से बारह वर्ष पूर्व हिन्दू-मुसलमान दंगों का स्वप्न होते थे। जब उसने मुसलमानों के प्रति मैत्री-भावना का अभ्यास किया, तो इन दंगों के स्वप्नों का अन्त हो गया। पेरानोइया का रोग मैत्री-भावना के अभ्यास से चला जाता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इसी प्रकार आनापानसति (=प्राणायाम) का अभ्यास अनिद्रा के रोग का अन्त कर देता है। अनेक प्रकार की अकारण चिन्ता और भय का इसके अभ्यास से अन्त हो जाता है। हृदय का रोग, मस्तिष्क की पीड़ा आदि इसके अभ्यास से चली जाती हैं। इससे एक व्यक्ति का अकारण साँप काटने के भय का निवारण हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान् बुद्ध के मार्ग का एक अंग शारीरिक और मानसिक रोगों का निराकरण करना है। यदि हम भगवान् बुद्ध के समस्त धर्म को स्वीकार कर लें तो क्या आश्चर्य कि सम्पूर्ण भव-रोग ही नष्ट हो जावें।

भगवान् बुद्ध का बताया मार्ग जिस प्रकार अनुभव-सिद्ध है, इसी प्रकार वह सीधा भी है। इस मार्ग पर चलने के लिए किसी गुरु की सेवा और देवी-देवता की पूजा-अर्चना नहीं करनी पड़ती। भगवान् बुद्ध का कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना उद्धार अपने आप ही कर सकता है, कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का उद्धार नहीं कर सकता। न देवी, देवता और न गुरु मनुष्य को सांसारिक दुःखों से मुक्तकर सकते हैं, हर एक व्यक्ति अपने आप प्रयत्न करने से ही सांसारिक दुःखों से मुक्त हो सकता है। अपना दुःख और अपना सुख मनुष्य के अपने हाथ में है। जैसा मनुष्य करता है, उसी के अनुसार उसको फल मिलता है। भले कर्म का फल भला होता है और बुरे कर्म का फल बुरा। भले और बुरे कर्मों का फल कुछ काल के लिये भले ही न मिलें पर अन्त में उनका भला अथवा बुरा फल मिलता ही है। इससे कोई बच नहीं सकता। अतएव यदि कोई व्यक्ति अपना यथार्थ सुधार चाहता है, तो उसे इसके लिये आज से ही यत्न करना चाहिये। न किसी गुरु की कृपा, न देवी-देवता की कृपा पर उसको निर्भर करना चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलम्बी बनने का पाठ भगवान् बुद्ध ने मानव-समाज को सिखाया।

इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने संसार को समानता, सचाई, स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन की शिक्षा दी। उन्होंने स्थायी शान्ति प्राप्ति का मार्ग प्रदर्शन किया। ऊँच-नीच के भाव, पाखंड, परतन्त्रता और परमावलम्बन का अन्त करना उनकी शिक्षा का ध्येय था। बिना इनके मानव-समाज में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। अतएव वे एक महान् क्रान्तिकारी थे। उनका नाम युग-युग में रहेगा और क्रान्तिकारियों के अगुआ होने के कारण जगत के सभी क्रान्तिकारी उनके विचारों से सदा अपने कार्य में प्रोत्साहन पाते रहे हैं और पावेंगे। धन्य हैं वे तथागत जिन्होंने संसार का इतना कल्याण किया। उन अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को शत-शत प्रणाम् है।

भारत और भारत-चीन

श्री भरतसिंह उपाध्याय

भारत-चीन (हिन्द-चीन) जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, भारत और चीन की प्राचीन संस्कृतियों की संगम-भूमि है। यदि किसी देश की भूमि पर दो बलवती संस्कृतियाँ, शस्त्र हाथ में लेकर नहीं, बल्कि कर्म का दीपक हाथ में लेकर एक दूसरे से मिली हैं, तो भारत-चीन की भूमि पर ही। भारत-चीन की भौगोलिक स्थिति को ही प्रकृति ने इसके लिए अनुकूल बनाया है। उत्तर में चीन, पश्चिम में बर्मा और स्याम, दक्षिण में मलाया और हिन्देशिया, पूर्व में प्रशान्त महासागर और जापान, चारों ओर भारत-चीन महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक और आर्थिक सम्बन्धों से घिरा हुआ है। भारत के साथ तो भारत-चीन के सम्बन्ध उस युग से हैं, जब कि प्रियदर्शी अशोक की परम्परा पर, राज्य-प्रसार के स्थान पर मैत्री-प्रसार ही भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय नीति का स्थिर लक्ष्य बन चुका था और जब भारतीय संस्कृति अपने उस प्रसारधर्मी रूप को ग्रहण कर रही थी, जिसकी प्रथम सूचना हमें प्रियदर्शी अशोक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के ही त्रयोदश और द्वितीय शिलालेखों में मिलती है।

भारत के साथ भारत-चीन के सांस्कृतिक सम्बन्धों को समझने के लिए उसके आधुनिक रूप का कुछ परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा। वर्तमान भारत-चीन एक फ्रांसीसी उपनिवेश है - उसे फ्रांस का 'प्रशान्त महासागर-स्थित भारत' कहा गया है। एशिया के उपनिवेशों में कदाचित् सबसे अधिक अल्प-विकसित और पिछड़ा भारत-चीन ही है। इसका कारण फ्रांस द्वारा उसका शोषण ही है। भारत-चीन पाँच प्रादेशिक राज्यों में विभक्त है। इनके नाम हैं अन्नाम, टानकिन्, कोचीन-चीन, कम्बोडिया और लाओस। गत युद्ध के बाद अन्नाम, टानकिन् और कोचीन-चीन को मिला कर एक राज्य कर दिया गया है। इसका नाम है 'वीत-नाम'। भारत-चीन की ७२ प्रति-शत जनता वीत-नाम प्रदेश में ही रहती है। यहीं पर आजकल फ्रांस-पोषित बाओ-दाई सरकार और रूस द्वारा उत्साहित हो-ची मिन्ह का संघर्ष चल रहा है। भारत-चीन का क्षेत्रफल २, ८६, ००० वर्ग मील है। उत्तर और मध्य में पहाड़ है। वर्षा खूब होती है। कड़ी गर्मी पड़ती है। भारत-चीन की मुख्य उपज रबड़, चावल, रेशम, गन्ना, मिर्चा और तम्बाकू है। जस्ता और कलई आदि मूल्यवान् खनिज भी मिलते हैं। जंगलों में इमारती लकड़ी, बाँस और लाख आदि भारत-चीन की प्राकृतिक सम्पत्ति हैं। फिर भी उसका औद्योगिक विकास अभी प्रायः नहीं के बराबर हुआ है।

भारत-चीन की जन-संख्या, सन् १९३७ की जन-गणना के अनुसार, २, ३०, ३०, ००० है। इसमें से ३, २६, ००० चीनी हैं। अर्थात् कुल जन-संख्या के १.४२ प्रति-शत। चीनी लोग भारत-चीनियों से हिल-मिल गये हैं और उनमें पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध आदि भी होते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक, जब कि भारत-चीन फ्रांस के अधिकार में आया, वह चीन से ही शासित था। फ्रांसीसी शासकों को भी चीनियों को कुछ विशेष सुविधाएँ देने को बाध्य होना पड़ा है। यूरोपियनों की कुल संख्या भारत-चीन में ४२, ३२५ है, अर्थात् प्रत्येक ५४४ भारत-चीनियों के पीछे एक। भारत-चीन की जन संख्या-विषयक महत्त्वपूर्ण तथ्य नीचे लिखी प्रान्त-वार तालिका से स्पष्ट होंगे[1] :—

नाम प्रदेश	कुल जन-संख्या	चीनियों की संख्या	यूरोपियनों की संख्या
कोचीन-चीन	४६, १६, ०००	१, ७१, ०००	१६, ०८४
कम्बोडिया	३०, ४६, ०००	१, ०६, ०००	१८, १७१
टानकिन्	८७, ००, ०००	३५, ०००	४, ९८२
अन्नाम	५६, ५६, ०००	११,०००	२, ५३४
लाओस	१०, १२, ०००	३, ०००	५७४
कुलयोग	२, ३०, ३० ०००	३, २६, ०००	४२, ३४५

भारत-चीन में भारतीयों की संख्या कुल ६ हजार है। ये लोग प्रायः मद्रास और सिन्ध प्रान्तों के हैं। भारत-चीन में ये प्रायः कोचीन-चीन और कम्बोडिया में बसे हुए हैं। भारत-चीन की जन-संख्या के ७२ प्रति-शत लोग अन्नामी जाति के हैं। कम्बोडियन लोग कुल जन-संख्या के १२ प्रति-शत हैं। इनके अलावा मोइ, रव, मुआंग् आदि अनेक आदिवासी जातियों के लोग भारत-चीन में बसते हैं।

अन्नामी लोगों में, जो कुल जन-संख्या के ७२ प्रतिशत हैं, प्रधानतः दो धर्म प्रचलित हैं, कन्फ्यूशिन धर्म और महायान बौद्ध धर्म। अभी कुछ वर्ष हुए अन्नाम के ह्यू नामक नगर में महायान बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए एक सभा की स्थापना हुई थी, जिसकी शाखाएँ अन्नाम के प्रायः सभी भागों में फैली हुई हैं। इसी प्रकार की सभाएँ टानकिन् और कोचीन-चीन प्रदेशों में भी काम कर रही हैं। कम्बोडिया और लाओस में तो बौद्ध धर्म राज-धर्म ही है। सन् १९३१ में एक 'बौद्ध स्वाध्याय संस्था' की स्थापना इन देशों में हुई थी, जिसने बौद्ध धर्म सम्बन्धी अध्ययन के प्रसार में काफी काम किया है। कम्बोडिया और लाओस के निवासी सिंहल, बर्मा और स्याम के निवासियों की तरह स्थविरवाद बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं, जब कि अधिकांश अन्नामी लोग बौद्ध धर्म के महायानी रूप को मानते हैं। इस प्रकार बौद्ध धर्म के दोनों रूप भारत-चीन में प्रचलित हैं।

---

१. देखिए चार्ल्स वोसेक्वेन् : दि इकोनोमिक डिवेलप्मेंट ऑव फ्रेंच इन्डो चाइना, पृष्ठ २१–३४

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत-चीन का ऐतिहासिक विकास उसके दो मुख्य भागों में विभिन्न ढंगों से हुआ है। पहला भाग है पूर्वी किनारे पर अवस्थित अन्नाम प्रदेश और दूसरा भाग है देश का पच्छिमी भाग, जिसमें कम्बोडिया और लाओस सम्मिलित हैं। अन्नाम प्रदेश का इतिहास मुख्यतः वहाँ प्राप्त अभिलेखों तथा चीनी ऐतिहासिक लेखों से ज्ञात होता है। अन्नाम प्रदेश में भारतीय संस्कृति का प्रवेश कब हुआ, इसका ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता। अन्नाम के न्हतूरंग नामक नगर के पास 'भगवती' का एक मन्दिर मिला है। इस मन्दिर का निर्माण यद्यपि ईसा की आठवीं या नवीं शताब्दी से पूर्व का नहीं हो सकता, किन्तु वहाँ प्राप्त एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसी स्थान पर, द्वापर-युग के ५९११ वें वर्ष में, विचित्रसागर नामक राजा ने मुखलिङ्ग की स्थापना की थी। अभिलेख इस प्रकार है—"पंचसहस्र-नव-शतैकादशे-विगतकलिकालंक-द्वापरवर्षे श्रीविचित्रसागर-संस्थापितः श्रीमुखलिङ्ग-देवः।" इससे कम से कम यह ज्ञात होता है कि भारतीय सभ्यता का प्रवेश भारतीय चीन में एक अत्यन्त प्राचीन, अज्ञात काल में हुआ था, ऐसी मान्यता भारत-चीन में आठवीं-नवीं शताब्दी में प्रचलित थी। न्हतूरंग के समीप एक अन्य स्थान पर एक संस्कृत अभिलेख मिला है। इस अभिलेख में यद्यपि कोई तिथि नहीं दी गई है, किन्तु दूसरे लिखवाने वाले ने अपने को 'श्री मार राज' का वंशज कहा है। इतिहासकारों का मत है कि यह 'श्री मार राज' ही अन्नम का प्रथम भारतीय राजा था। इसका शासन-काल संभवतः ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी था। उस समय अन्नाम प्रदेश का नाम चम्पा था और यहाँ की निवासी जाति चम कहलाती थी। उन्नीसवीं शताब्दी तक इस देश का यही नाम रहा। ऊपर 'श्री मार राज' के वंशज राजा के जिस अभिलेख का वर्णन हुआ है उसमें उसने कहा है "प्रजानां प्रियहिते सर्वं विसृष्टं मया" अर्थात् "प्रजा की भलाई के लिए मैंने सब कुछ त्याग कर दिया है।" भारतीय किन भावनाओं को लेकर बाहर गये थे, इसका कुछ उदाहरण यह उपस्थित करता है।

चम्पा-राज्य का इतिहास बहुत विस्तृत है। चीनियों के साथ मैत्री और संघर्ष के बीच उसकी शताब्दियाँ गुजरती हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि चम्पा में पहले शैव धर्म का प्रचार था। राजा भद्रवर्मा (३८०—४१३ ई०) ने भद्रेश्वर स्वामी के नाम से शिव का प्रसिद्ध मन्दिर मिसौन में बनवाया था। अन्य अनेक शैव और वैष्णव मन्दिर चम्पा-राज्य में बनवाये गये। केवल नवीं शताब्दी में आकर हमें बौद्ध धर्म के दर्शन चम्पा में होते हैं। नवीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में सप्रन्त नामक भिक्षु ने दो विहारों और दो मन्दिरों का समर्पण क्रमशः जिन और शङ्कर के लिए किया है 'जिनशङ्करयोः'। इस समय से लेकर हम देखते हैं कि चम्पा में शैव धर्म और बौद्ध धर्म में पारस्परिक गहरा सम्बन्ध रहा और वे दोनों साथ-साथ फलते-फूलते रहे। भारत-चीन के अन्य अनेक भागों में भी यही हुआ। नवीं शताब्दी के ही राजा इन्द्रवर्मा द्वितीय ने एक विहार बनवाया, जिसमें उसने भगवान् लोकेश्वर (बुद्ध) और लिङ्ग भद्रेश्वर (शिव) की साथ-साथ स्तुति की है। भगवान् लोकेश्वर की जो बड़े आकार की मूर्तियाँ इस विहार के अन्दर मिली हैं, वे बोधिसत्व की न होकर बैठी हुई मुद्रा में भगवान् बुद्ध की हैं। अन्नाम के क्वंगनम् प्रान्त के डौंग्-डुओंग् नामक गाँव में उपर्युक्त विहार के खंडहर आज भी देखे जा सकते हैं। नवीं शताब्दी के बाद महायान बौद्ध धर्म का प्रभाव भारत-चीन में बढ़ने लगा। सन् ९०२ में स्थविर नागपुष्प नामक भिक्षु ने एक विहार बनवा कर उसमें भगवान् लोकनाथ की मूर्ति की स्थापना की। जो अभिलेख उक्त भिक्षु ने इस विहार में छोड़ा है, उसमें उन्होंने महायान-धर्म का देवता तत्त्व का इस प्रकार उल्लेख किया है:—

वज्रधातुरसौ पूर्वं श्रीशाक्यमुनिशासनात्।
शून्योऽपि वजधृद्धेतुः बुद्धानामालयोऽभवत्॥
पद्मधातुरतो लोकेश्वरहेतुर्जिनालयः।
अमिताभवचोयुक्त्या महाशून्यो बभूव ह॥
चक्रधातुरसौ शून्यातीतो वैरोचनाज्ञया।
वज्रसत्वस्य हेतुः स्यात् तृतीयोऽभूत् जिनालयः॥

महायान-धर्म का नाम से उल्लेख सबसे प्रथम बारहवीं शताब्दी के अन्त में एक राजा ने अपने अभिलेख में किया है। तेरहवीं शताब्दी के एक भग्न अभिलेख के आदि में लिखा हुआ मिला है 'ओम् नमो बुद्धाय'।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अन्नाम के उत्तरी भाग की गुफाओं में बुद्ध, लोकेश्वर और प्रज्ञापारमिता की अनेक प्रतिमाएँ मिली हैं। लोकेश्वर बुद्ध की पूजा के रूप में महायान और शैव धर्म साथ-साथ अन्नाम प्रदेश में चलते रहे। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में चम्पा की स्वतन्त्रता नष्ट हो गई। टानकिन् के अन्नामी लोगों ने उस पर अधिकार कर लिया और ताओ-धर्म और कनूफ्यूशिन धर्म से मिश्रित महायान बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। आज कल वहाँ यही स्थिति है। हाँ, चम जाति के अवशिष्ट कुछ लोग, जिनकी संख्या कुछ हजार है, इस्लाम धर्म को मानते हैं।

कम्बोडिया और लाओस में भारतीय संस्कृति के तत्व अन्नाम की अपेक्षा और अधिक अक्षुण्ण हैं। कम्बोडिया का प्राचीनतम हिन्दू राज्य फूनान था। 'फूनान' शब्द का अर्थ है भारत-चीनी भाषा में 'पर्वत के राजा'। फूनान-राज्य ईसा की प्रथम पाँच शताब्दियों में कम्बोडिया में रहा। चम्पा की तरह फूनान में शैव धर्म और बौद्ध-धर्म इन दो धर्मों की प्रधानता थी। फूनान के अनेक भिक्षु चीन में अनुवाद-कार्य करने गये थे। पाँचवीं-छठीं शताब्दी में इस प्रकार जानेवाले भिक्षुओं में स्थविर संघपाल और मन्द्रसेन के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। बौद्ध-धर्म के अनेक रूप फूनान-राज्य में विद्यमान थे। छठीं शताब्दी ईसवी में फूनान-राज्य का स्थान कम्बुज-राज्य ने ले लिया। कम्बोडिया का संस्कृत नाम कम्बुज ही है। फ्रांसीसी लोग आज भी इस प्रदेश को कम्बोज कहते हैं। कम्बुज-राज्य के काल में महायान बौद्ध-धर्म का प्रकर्ष रहा। लोकेश्वर बोधिसत्व की प्रतिमाएँ उस समय की बनी हुई अनेक भग्न धर्मशालाओं में आज भी देखी जा सकती हैं। यह ध्यान देने की बात है कि कम्बोडिया के महायान बौद्ध-धर्म पर तान्त्रिक प्रभाव कहीं उपलक्षित नहीं है। पन्द्रहवीं शताब्दी में जब कम्बोडिया के स्याम के साथ युद्ध हुए, स्थविरवाद बौद्ध-धर्म का प्रवेश वहाँ हुआ। तब से वहाँ अधिकांश जनता का यही धर्म चलता आ रहा है। यही कारण है कि पालि के अध्ययन को आज भी कम्बोडिया के विद्यालयों में प्रमुखता दी जाती है। कम्बुज राज्य-काल का वर्णन बिना अङ्कोर वत और अङ्कोर थोम का निर्देश किए पूरा नहीं माना जायगा। सूर्यवर्मा द्वितीय (१११३–११४५) ने अङ्कोर वत और जयवर्मा सप्तम (११८१–१२००) ने अङ्कोर थोम का निर्माण करवाया। रामायण, महाभारत और बुद्ध-जीवन से सम्बधित अनेक चित्रों को यहाँ मूर्तिबद्ध किया गया है। १२० फुट ऊँचे अङ्कोर वत के मन्दिर का अलिन्द लगभग आध मील लम्बा है। जो अपनी विशालता और भावमयता के लिए प्रसिद्ध है। बेयन का शिव-मन्दिर आज भी वास्तुविद्या विशारदों के लिए एक आश्चर्य की वस्तु है। वहाँ पर अङ्कित साधारण दैनिक जीवन के दृश्य भारतीय प्रतिमा का साक्ष्य दे रहे हैं। कम्बोडिया के घने जंगलों के बीच अवस्थित ये भग्नावशेष किस अकथ कहानी को कह रहे हैं, इसको सुनने के लिए आज व्यस्त मनुष्य के पास अवकाश कहाँ है ?

आधुनिक सभ्यता का सबसे बड़ा अभिशाप है राजनीति। राजनीति मनुष्य के लिए बनी, मनुष्य राजनीति के लिए नहीं बना, यह अभी अनुभव नहीं किया जाता। मनुष्य-जीवन की सारी समस्याएँ राजनीति से हल नहीं की जा सकतीं। इसे जब मनुष्य समझेगा, तब उसकी सम्यक् दृष्टि होगी। आज हमारे देश में कितने मनुष्य हैं जो बाओ-दाई और हो-ची मिन्ह के अलावा और भी कुछ भारत-चीन में देखते हैं ? राजनैतिक सिद्धांत और प्रणालियाँ आती हैं और चली जाती हैं। किन्तु मनुष्य तो फिर भी ज्यों का त्यों बना रहता है। भारत-चीन की प्रकृति और जलवायु के अनुसार वहाँ के निवासी जो की राजनैतिक प्रणाली अपनाएँगे, उसका हम स्वागत करेंगे। हमारा सम्बन्ध किसी प्रणाली से नहीं, बल्कि मनुष्य से है। भारत-चीन के जन को आज भारत से यही अपेक्षा रखनी चाहिए।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विश्वकवि और बौद्धधर्म

कुमारी शिप्रा वंद्योपाध्याय

[इस लेख की लेखिका पुरातत्व एवं इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान् श्री अद्रीशचन्द्र वंद्योपाध्यायजी की आयुष्मती पुत्री हैं। मातृभाषा बँगला होते हुए भी आप हिन्दी में विशेष रुचि रखती हैं। यह लेख आपके बौद्धधर्म में विशेष श्रद्धा एवं हिन्दी-प्रेम का द्योतक है—सम्पादक]

स्वर्गीय विश्व कवि रविन्द्रनाथ टैगोर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर श्री केशवचन्द्र सेन तथा भारत के प्रथम आई० सी० एस० श्री सत्येन्द्रनाथ टैगोर के साथ लंका द्वीपको देखने के लिये सन् १८६० ई० में गये। श्री केशवचन्द्र भगवान् बुद्ध के भक्त थे। उनकी त्रिरत्न में अचल श्रद्धा थी। उन्होंने ही श्री सत्येन्द्रनाथ को भी बौद्धधर्म की ओर आकर्षित किया। साथ ही बौद्धधर्म सम्बन्धी ग्रन्थ लिखने के लिए भी अनुप्रेरित किया; जिससे श्री सत्येन्द्रनाथ ने बौद्धधर्म सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ लिखे।

जब सन् १८७८-८० में श्री रविन्द्रनाथ लन्दन के विश्वविद्यालय में थे, तब वहाँ उनकी मैत्री कई एक सिंहली छात्रों से हुई। उसी मैत्री के सिलसिले में वे सिंहली छात्र उन्हें सिंहल आने के लिए निमंत्रित किये। उनके निमंत्रण को स्वीकार कर श्री रविन्द्रनाथ सिंहल गये।

जिस समय श्री रविन्द्र नाथ 'साधना' नामक मासिक पत्र का सम्पादन करते थे, उस समय उन्होंने महाबोधि सभा के संस्थापक स्वर्गीय धर्मपालजी से एक बौद्धधर्म सम्बन्धी लेख माँगा। इसी सिलसिले में इन दोनों व्यक्तियों में प्रगाढ़ मैत्री स्थापित हुई। सन् १९०० में जब भारत दुर्भिक्ष पीड़ित था, तब धर्मपालजी तथा विश्व कवि ने एक साथ पीड़ित जनता की सहायता की। धर्मपालजी के सम्पर्क में आने के कारण धीरे-धीरे वे बौद्धधर्म की ओर खिंचते गये। उनकी बौद्धधर्म और भगवान् बुद्ध में अचल आस्था होती गई। धर्मपालजी ने उन्हें भगवान् बुद्ध से सम्बन्धित एक कविता ग्रन्थ लिखने को कहा। विश्वकवि ने प्रेम से उत्साह और भक्ति से प्रेरित हो कर अपने शब्द-पुष्पों को भगवान् बुद्ध की पुण्य-स्मृति में पिरोना प्रारम्भ कर दिया। उनकी ओजस्विन लेखनी भगवान् बुद्ध के प्रीति-पथ पर अग्रसर होने लगी और वह क्रमशः उसी ओर बढ़ती गई। जो आज भी अपने स्मृति-पद-चिन्ह हम लोगों के लिए छोड़ गई है।

सन् १९०१ में श्री रविन्द्रनाथ ने ''शान्ति-निकेतन'' की स्थापना की। वे बौद्धधर्म से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने उसमें पालि भाषा के अध्यापनार्थ सर्व प्रथम प्रबन्ध किया। यही नहीं उन्होंने उसमें बौद्ध शील, चर्या, आदि के पालन के लिए कड़ी निगरानी रखी।

कलकत्ता-महाबोधि-सभा की स्थापना में बहुत से लोगों ने सहायता दी। सहायकों में सर आशुतोष मुखोपाध्याय और श्री रविन्द्रनाथ का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। विश्वकवि ने समय-समय पर बौद्धधर्म के विद्वान् भिक्षुओं को निमंत्रित कर शान्तिनिकेतन में भाषण भी कराये। एक महास्थविर का 'अभिधम्म' पर दिया गया दीक्षान्त भाषण आज भी बड़े गौरव के साथ स्मरण किया जाता है।

सन् १९२२ में श्री रविन्द्रनाथ फिर सिंहल गये। इस समय उनके साथ सर सी० एफ० एण्ड्रूज भी थे। वहाँ पहुँचने पर उन्हें अपने शिष्य डा० कालिदास नाग द्वारा गाल्ल शहर के महिन्द कालेज में अध्यक्ष पद के लिए निमन्त्रण मिला। पर वे उस निमन्त्रण को स्वीकार न कर सके। क्योंकि उन्हें गाल्ल शहर का पर्यवेक्षण करना था, कालेज में अध्यक्षता नहीं। उन्होंने महिन्द कालेज तथा अन्य कई स्थानों में भाषण दिया। मातर नगर के सुप्रसिद्ध 'महामन्तिन्द परिवेण' के नायक महा-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पाद श्री धम्मावास महास्थविर द्वारा उन्हें एक 'मान-पत्र' भी दिया गया। लंका के तत्कालीन गवर्नर सर एनटन बैट्रोन के सभापतित्व में कोलम्बो के वाई० एम० सी० ए० (तरुण-ईसाई-समिति) के हाल में भाषण देते हुए आपने अपनी फारेस्ट युनिवर्सिटी (वन-विश्वविद्यालय) का वर्णन करते हुए सिंहली छात्रों से कहा था कि वे अपनी प्राच्य-संस्कृति एवं गौरव को न भूलें। सिंहल के छात्र उनके भाषण से बहुत प्रभावित हुए थे और उनका हार्दिक स्वागत किये थे। विश्व कवि ने सिंहल से लौटकर शान्ति निकेतन में सिंहली संस्कृति की बड़ी ही प्रशंसा की।

सन् १९२४ ई० में श्री रविन्द्रनाथ चीन, बर्मा, जावा तथा स्याम का भ्रमण कर बौद्ध धर्म के बारे में प्रचुर ज्ञान संचित किया। इसी वर्ष उन्होंने अपनी अमर कृति "पुजारिनि" को बौद्ध धर्म के प्रति अपने अगाध प्रेम से आप्लावित कर अपने को बौद्ध धर्म प्रेमी का प्रतीक बनाया था। उसी वर्ष उनके छात्र-छात्राओं ने 'पुजारिनि' का सफल अभिनय भी किया था। 'पुजारिनि' की अपनी एक अलग विशिष्टता है। मैं जब कभी 'पुजारिनि' की गीतों को पढ़ती हूँ, तब मेरी अन्तरात्मा में उसकी लहरियाँ एक अजीब उद्वेलन तथा भगवान् बुद्ध के प्रति अनुराग की एक सुमधुर संगीत छोड़ जाती है। वस्तुतः 'पुजारिनि' उनके बौद्ध प्रेमी होने का अद्वितीय प्रमाण है।

सन् १९२७ में रविन्द्रनाथ यूरोप-भ्रमण स्थगित कर सिंहल गये। इस बार वे अपना समय डा० डब्ल्यू० ए० डी० सिल्वा के साथ कोलम्बो में बिताये, जो उनके बड़े मित्र थे। इसके बाद फिर सन् १९२९ ई० में वे कनाडा जाते हुए सिंहल में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय-शिक्षा-सम्मेलन में भाषण देने के लिए उपस्थित हुए। सन् १९३४ में जब वे सिंहल गये, तब डा० जी० डी० वी० जयतिलक ने उनका अपूर्व स्वागत किया। इस बार भी वहाँ के छात्र छात्राओं ने उनके प्रति काफी श्रद्धा एवं प्रेम प्रदर्शित किया तथा उनके 'विश्व भारती' के लिए चन्दा भी एकत्रित कर उन्हें भेंट दी। वहाँ की जनता भी इनसे कम प्रभावित न थी। इनके द्वारा अंकित अनेक चित्र सिंहल की प्रदर्शनी में रखे गये। यह उनकी अन्तिम सिंहल यात्रा थी। इसी समय विख्यात् केनेडियन नृत्य का प्रारम्भ हुआ था, जिसके वर्णन में विश्व-कवि ने अतीव सुन्दर कवितायें लिखीं। इस बार उन्होंने अनुराधपुर आदि लंका के पुरातन नगरों का भी परिभ्रमण किया। वस्तुतः वह रविन्द्रनाथ टैगोर ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने भारत के बंगाली समाज का दृढ़ और अटूट सम्बन्ध सिंहल के साथ जोड़ा तथा बौद्ध धर्म की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया।

बुद्ध-वन्दना

श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी

प्रत्येक बौद्ध अपने नित्य के कार्यों के समान ही बुद्ध-वन्दना करता है, त्रिशरण और पञ्चशील को ग्रहण करता है। त्रिशरण कहते हैं बुद्ध, धर्म और संघ को; जो मानव-मात्र के लिए तीन शरण-स्थान हैं। पञ्चशील पाँच सदाचारों या अच्छे आचरणों का नाम है। हम पहले तथागत को तीन बार "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स" (उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को नमस्कार है) कह कर वन्दना करते हैं। तत्पश्चात् तीन बार 'बुद्धं सरणं गच्छामि' (मैं बुद्ध की शरण जाता हूँ) 'धम्मं सरणं गच्छामि' (मैं धर्म की शरण जाता हूँ) 'संघं सरणं गच्छामि' (मैं संघ की शरण जाता हूँ) कहकर बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाते हैं। तीन बार शरण जाने की परम्परा बहुत पुरानी है। किसी भी व्यक्ति का हम तीन बार जय-जयकार करते हैं—यह हमारा चिर-अभ्यस्त कार्य है। इसी नियमानुसार हम त्रिरत्न की तीन बार शरण जाते हैं।

पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि बुद्ध-धर्म और संघ का क्या अर्थ है, क्योंकि अर्थयुक्त वन्दना ही फलदायी होती है और अर्थ बिना जाने कही गई निरर्थक।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इस संसार में जैसे रोगी मनुष्य के रोग को दूर करने के लिए एक अच्छे वैद्य की आवश्यकता होती है, वैसे ही इस दुःखित और पीड़ित संसार में दुःखित और पीड़ित मनुष्यों के दुःख-निवारण के लिए एक ज्ञानी पुरुष की आवश्यकता होती है। ऐसे सम्पूर्ण ज्ञानी पुरुष को ही हम बुद्ध कहते हैं। बुद्ध अर्थात् जाग्रत व्यक्ति या पुरुषोत्तम। बुद्ध ही संसार का कल्याण कर सकते हैं, साधारण लोग नहीं। बुद्ध स्वयं अविश्रान्त परिश्रम कर संसार को सुखी करते हैं और इसी कारण संसार का भी कर्तव्य है कि वह बुद्ध का आदर करे। इसलिए हमारा पहला नमस्कार अपने शास्ता, मार्गोपदेष्टा, कल्याणकर्ता, सुखदायक भगवान् बुद्ध को है। परन्तु केवल बुद्ध की शरण जाने मात्र से काम नहीं चलेगा। हमारा नमस्कार सच्चा तभी हो सकता है जब हम भगवान् बुद्ध के वचन को अपने आचरण में लाने की भी प्रतिज्ञा करेंगे। अतः हमें धर्म को भी नमस्कार करना आवश्यक है। धर्म अर्थात् सत्य, न्याय, नीतिका मार्ग। धर्मानुसार आचरण करने से ही मनुष्य सुखी हो सकता है अन्यथा नहीं। अतः बुद्ध कहते हैं कि हे भिक्षुओ, मैं तुम्हें भवसागर तर जाने के लिये धर्म का उपदेश करता हूँ, इसी कारण हमारा दूसरा नमस्कार धर्म को है। अब तीसरा नमस्कार है संघ को। संघ अर्थात् साधु-संतों का संघ। आजकल संघ कहने पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का चित्र हमारे सामने उठ खड़ा होता है। परन्तु यह संघ हिंसक-प्रवृत्ति के लोगों का है। भगवान् बुद्ध का संघ अहिंसक लोगों का है। धर्म का साम्राज्य स्थापित करने के लिये बुद्ध ने एक साधु-संतों के संघ का निर्माण किया था, जिसे हम भिक्षुसंघ कहते हैं। जब साधु लोग बहुत कष्ट उठाकर संसार में सद्धर्म का प्रचार करते हैं, तब संसार का भी कर्तव्य होता है कि उनके सामने वह नतमस्तक हो। अतः हमारा तीसरा नमस्कार संघ को है।

प्रायः धर्म क्या है? अधर्म क्या है? यह समझना अज्ञ लोगों को कठिन होता है। इसलिये यहाँ धर्म के कुछ नियम भी दिये हैं जिसे पंचशील कहते हैं। १. मैं प्राणिहिंसा से विरत रहने की शिक्षा को ग्रहण करता हूँ, यह सदाचरण का पहला नियम है। २. मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा को ग्रहण करता हूँ, यह सदाचरण का दूसरा नियम है। ३. मैं व्यभिचार या परस्त्री-गमन से विरत रहने की शिक्षा को ग्रहण करता हूँ यह सदाचरण का तीसरा नियम है। ४. मैं झूठ से विरत रहने की शिक्षा को ग्रहण करता हूँ, यह सदाचरण का चौथा नियम है और ५. मैं शराब आदि मादक द्रव्यों के सेवन से विरत रहने की शिक्षा को ग्रहण करता हूँ, यह सदाचरण का पाँचवाँ नियम है। किसी मनुष्य को जब बौद्ध-धर्म की दीक्षा दी जाती है तब उसको त्रिशरण और पंचशील का महामंत्र ही दिया जाता है। दीक्षित मनुष्य हाथ जोड़कर भगवान् बुद्ध की मूर्ति के सामने बैठता है और भिक्षु उससे इस महामंत्र को कहलाते हैं।

बुद्ध–वन्दना की विशिष्टता क्या है? अब हम इस पर विचार करेंगे। पहली बात तो आपको यह दिखाई देगी कि इस वन्दना में किसी आकाशस्थ या हृदयस्थ ईश्वर को बिलकुल स्थान नहीं है। किसी अन्य व्यक्ति या शक्ति पर निर्भर न रह कर मनुष्य अपना उद्धार स्वयं ही कर सकता है। इसी सिद्धान्त पर इस वन्दना में जोर दिया गया। भगवान् बुद्ध अपनी अमर वाणी में कहते हैं:—

अत्ताहि अत्तनो नाथो कोहि नाथो परो सिया।
अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं॥

इसपर कुछ लोग कहेंगे कि अगर किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर न रहने का ही भगवान् बुद्ध का आदेश है, तो बुद्धं सरणं गच्छामि' भी क्यों कहें? बुद्ध का अर्थ सम्पूर्ण ज्ञानी पुरुष होता है यह हम पहले ही कह चुके हैं। बुद्ध ने आत्मबल पर निर्भर रह कर अपना उद्धार किया और लोगों को भी वे आत्मबल पर निर्भर रहने का उपदेश दिये। अतः बुद्ध हमारे लिये एक आदर्श पुरुष हैं। 'बुद्धं सरणं गच्छामि' का इतना ही अर्थ होता है। इसका अर्थ ऐसा नहीं होता कि बुद्ध हमारा उद्धार कर सकते हैं। बुद्ध तो केवल हमारे मार्गप्रदर्शक हैं। मार्ग तो हमें ही चलना है। मनुष्य को स्वावलम्बी बनाने के लिये इतनी सरल, स्पष्ट और प्रभावशाली वन्दना आपको शायदही मिलेगी। साधारण प्रार्थना में आकाशस्थ ईश्वर से याचना की जाती है कि 'हे प्रभु, तू मुझपर कृपा कर और मेरा उद्धार कर। इस विचारधारा में मनुष्य का उद्धार ईश्वर की कृपा पर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

निर्भर रहता है। इसपर कुछ लोग कहेंगे हम ऐसा आकाशस्थ ईश्वर नहीं मानते, हम तो ईश्वर को एक महान् शक्ति मानते हैं, जो सर्वव्यापी है और हमारे हृदय में भी है। इन लोगों से इस शक्ति का वर्णन करने के लिये कहने पर कहते हैं कि वह शक्ति निर्गुण है, निराकार है, अतः अवर्णनीय है। शब्द तो बहुत भव्य हैं, परन्तु उनसे बोध तो कुछ भी नहीं होता। इस सम्बन्ध में मुझे भगवान् बुद्ध के एक उदाहरण का स्मरण होता है। भगवान् बुद्ध कहते हैं कि एक मनुष्य है जो कहता है कि इस देश की सुन्दरतमस्त्री से मैं प्रेम करता हूँ। ऐसे मनुष्य से अगर हम पूछें कि जिस स्त्री से तू प्रेम करता है वह कैसी है? काली है या गोरी है? ऊँची है या छोटे कद की है? वह ब्राह्मणी है या क्षत्राणी है? इत्यादि। इसपर अगर वह मनुष्य कहे कि मैंने उसे देखा तो नहीं है, फिर भी इस देश में जो सबसे सुन्दर स्त्री है उससे मैं प्रेम करता हूँ। इस पर भगवान् बुद्ध पूछते हैं कि क्या उस ऐसे पुरुष का कथन प्रामाणिक है? कदापि नहीं। इस दृष्टांत का तात्पर्य यह है कि जैसे जिस स्त्री को मनुष्य ने देखा नहीं उसका प्रेम झूठा है, वैसे ही जिस ईश्वर को मनुष्य ने देखा नहीं उसकी प्रार्थना या भक्ति भी झूठी है। हो सकता है कि ईश्वर का अर्थ ये लोग मनुष्य के चित्त की उच्चतम अवस्था के अर्थ में करते हों, जिसे सच्चितानंद अवस्था, ब्राम्ही स्थिति या निर्वाण कहते हैं, परंतु यह तो एक पद है और ऐसे पद की प्रार्थना कैसे हो सकती है? इस पर मुझे भगवान् बुद्ध के एक दूसरे उदाहरण का स्मरण होता है। भगवान् कहते हैं कि मानो एक मनुष्य नदी के इस किनारे पर बैठा है और वह दूसरे किनारे पर जाना चाहता है। अगर वह मनुष्य इस पार बैठ कर दूसरे किनारे की प्रार्थना करे और कहे कि "हे दूसरे किनारे! मुझे तेरी तरफ आना है, तेरी तरफ आना है" तो ऐसी प्रार्थना से वह उसपार जा सकता है? कदापि नहीं। फिर वह पुरुष अगर अपने को एक खम्भे से बांध ले और दूसरे किनारे पर जाने की इच्छा करे, तो वह दूसरे किनारे पर जा सकता है? कदापि नहीं। या वह पुरुष इस किनारे पर सोता रहे और दूसरे किनारे पर चला जाना चाहे तो क्या वह जा सकता है? कदापि नहीं। उसे तो नाव में बैठ कर उस पार जाना होगा। इसका अर्थ यह है कि मुमुक्षको जागरूक रहकर काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मात्सर्य के वश से छूटना होगा और इनसे छूटने पर ही वह दूसरे किनारे पर जा सकेगा, अन्यथा नहीं। अन्य प्रार्थनाओं में दूसरे किनारे पर जाने की बात ईश्वर की कृपा पर निर्भर है। परंतु बुद्ध वन्दना में वह जाने वाले के ही हाथ में है। बौद्ध गृहस्थों के लिए नित्य परिपालनीय धर्म जो पञ्चशील हैं, उनमें पहला प्राणि-हिंसा से विरत रहना है। अर्थात् अहिंसा का महाव्रत लेना है। अहिंसा का अर्थ है संसार के प्राणी मात्र पर निस्सीम प्रेम करना। तथागत अपने अमर संदेश में कहते हैं कि जैसे माता अपने इकलौते बच्चे से प्रेम करती है, वैसे ही मनुष्य को प्राणीमात्र से प्रेम और दया करनी चाहिये। इसी कारण हम तथागत को करुणासागर कहते हैं। भगवान् बुद्ध कहते हैं :—

नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥

अर्थ :—'वैर से वैर कभी शांत नहीं होता, अवैर से ही वैर शान्त होता है, यह संसार का सनातन नियम है।' इससे यह सिद्ध होता है कि महापुरुष द्वेष का नाश प्रेम से करते हैं। बुद्ध ने संसार के समस्त प्राणियों के विषय में मैत्री-भावना प्रकट की है, वह शायद ही अन्य किसी ने की होगी। अतः बुद्ध हमारे लिये अहिंसा के प्रतीक हैं। धर्म के प्रतीक हैं और करुणाके प्रतीक हैं।

इस पर कुछ लोग कहेंगे कि हिंसामय संसार में बिना हिंसा हम एक क्षणभर भी नहीं रह सकेंगे। हिंसा तो अनिवार्य है। वह तो संसार का अटल नियम है। और आप हमें अहिंसा का रास्ता बताकर बेरास्ते क्यों ले जा रहे हैं। यह बात मैं मानता हूँ कि हिंसा ही संसार का नियम है, परन्तु वह जंगली और गुंडों का कानून है आर्य या श्रेष्ठ लोगों का नहीं—इतना ही मैं कहूँगा। यह बात सच है कि इस संसार में अनार्य या हिंसक प्रवृत्ति के लोग ही अधिक हैं और अहिंसक प्रवृत्ति के लोग बहुत कम, तो इस बात से हमारी जिम्मेदारी बढ़ जाती है। अगर हमें हिंसा का मुकाबला करना है, तो हमें स्वयं अहिंसक बनकर लोगों को अहिंसक बनने के लिये प्रेरणा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

देनी चाहिये। अगर हम भी हिंसा का मुकाबला हिंसा से ही करेंगे तो फिर हममें और हिंसक लोगों में क्या फर्क है? अतः प्रत्येक मनुष्य को ऐसी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि इस हिंसक संसार में मैं अहिंसक बनूँगा। यही सर्व-श्रेष्ठ धर्म है। यों तो संसार में घास ही अधिक बढ़ती है, परन्तु गुलाब का पेड़ लगाना पड़ता है। उसका लालन-पालन करना पड़ता है और तब हमें गुलाब का फूल मिलता है। परन्तु घास को बोना नहीं पड़ता वह तो बिना बोये ही बहुत अधिक निकलती है। वैसे ही मनुष्य स्वभावतः हिंसक होता है और इसी कारण संसार में अधिक लोग हिंसक ही होते हैं, परन्तु इस हिंसक प्रवृत्ति को लगाम लगाकर अहिंसक बनना ही तो मनुष्य मात्र का ध्येय है और यही ध्येय भगवान् बुद्ध ने हमारे सामने रखा, अतः वे हमारे शास्ता हैं। यही बुद्ध-वन्दना का सच्चा अर्थ है।

सारनाथ का संग्रहालय

श्री अद्रीशचन्द्र बंद्योपाध्याय एम० ए०

सारनाथ के संग्रहालय की अपनी एक अलग विशेषता है। इसका आदर्श पुरातन है जो अपने एकमात्र भारतीय कला की बाराणसी शैली लिये है। इसके जन्म के एक-दो ही वर्ष के अनन्तर इसमें इतनी अधिक वस्तुओं का बाहुल्य पाया गया, जितनी कि आजकल मिश्र के नरेशों की समाधियों से प्राप्त ऐश्वर्यमयी वस्तुओं के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी न मिला।

किसी भी कला की शैली के विश्लेषणात्मक निरूपण में उसकी प्राचीनता एवं प्राक्-श्रृङ्खला पद्धति प्रथम रूप में आती है और उसकी खोदाई के अवसर पर की गई क्रियात्मक अनुभूति द्वितीय रूप में। इस बाराणसी कला-शैली का इतिहास ईस्वी सन् के बहुत पहले से चला आ रहा है। फिर भी हम यह-ठीक नहीं बता सकते कि इस शैली का प्रादुर्भाव कब हुआ? क्योंकि गंगा सिन्धु के मैदान के इतिहास में एक बहुत बड़ा अध्याय अन्धकार में है। प्रायः लोग कहते हैं कि यवनों के विजय के पश्चात् हिन्दू तथा बौद्ध कला-पद्धति का विनाश हो गया। पर मेरी समझ में यह नहीं आता कि उन लोगों के कथन का क्या आधार है जब कि यवनों के पश्चात् भी बाराणसी कला-शैली चली ही आ रही है। वस्तुतः उन लोगों का कथन यथार्थ नहीं है। अलईपुर रेलवे-स्टेशन के प्रांगण में अवस्थित 'बत्तिस खम्भा' नामक समाधि, बुदाँयू मोहल्ला की मस्जिद, गाजीपुर नगर में अवस्थित यवन-शहीद की समाधि तथा महाराज सवाई मानसिंह द्वारा निर्मित विश्वनाथ का मन्दिर--जिसे आलमगिर बादशाह ने ज्ञानवापी का मस्जिद बनाया---इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

मौर्य-काल

सारनाथ के संग्रहालय की सबसे सुन्दर तथा अमूल्य वस्तु है चार सिंह-युक्त 'सिंहशीर्ष-स्तम्भ'। प्राचीन भारत की ऐसी सुन्दर एवं अपूर्व वस्तु की खोदाई आज तक कभी भी न हो पाई थी। खोदाई के अवसर पर इसके साथ-साथ इसी प्रकार के अन्य कई छोटे-छोटे स्तम्भ-खण्ड प्राप्त हुए थे, जिससे यह अनुमान किया जाता है कि इस प्रकार के अन्य कई स्तम्भ इस भूमि पर प्रतिष्ठित रहे होंगे। सन् १९१४-१५ में हम लोगों को सौ-सौ शिला-खण्ड इस आकार के मिले, जिनसे यह ज्ञात होता है कि यहाँ मौर्य-कालीन अनेक अमूल्य स्तम्भ तथा पशु-पक्षियों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित थीं। भारत के अन्य किसी भी खनन-स्थान में आजतक उत्तर-मौर्य-कालीन पुराकृति नहीं मिली है। परन्तु सारनाथ के प्राप्त मनुष्यों के कपाल तथा पशु-पक्षियों की मूर्तियाँ और स्तम्भ उक्त कालीन कला के प्रतीक हैं।

संग्रहालय की मूर्तियों में एक नृपति की मूर्ति बड़ी ही अच्छी है, जिसमें उस नृपति का योद्धा होना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रतीत हो रहा है। साथ ही साथ उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कलाकार ने उस नृपति की ढली हुई अवस्था को बड़ी चतुराई से अपनी कला द्वारा अभिव्यक्त किया है। उस मूर्ति की मुखाकृति से ही हम उसकी ढलती हुई अवस्था का अनुमान कर सकते हैं।

शुंग-काल

जिस प्रकार शुंग-युग के तोरण और वेष्ठनी भरहुत तथा बुद्धगया में मिले हैं, उसी प्रकार मृगदाव की सन् १९१४–१५ की खोदाई में भी कुछ वस्तुयें प्राप्त हुई हैं। जो आज भी मृगदाव के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इन पुराकृतियों की खोदी हुई लिपि से ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन उज्जैनी के नागरिक चन्दा एकत्रित कर इस प्रकार की वस्तुओं को बना संघ को दान दिया करते थे। बाराणसी-कला से ज्ञात होता है कि वह प्राकृतिक शैली का अनुसरण करती रही।

कुशान-काल

शुंग-वंश के पश्चात् भारत के इतिहास के उपकरण का ठीक ठीक पता नहीं चलता, जिससे मृगदाव में भी इस युग के पश्चात् की किसी भी वस्तु को निश्चित रूप में नहीं बतलाया जा सकता। ई० सन् ८१ के पश्चात् सारनाथ में एक अद्भुत घटना घटी। उसी वर्ष में त्रिपिटकाचार्य भिक्षु बल ने मथुरा के रक्त-वर्ण प्रस्तर की भगवान् बुद्ध की मूर्ति उनके चंक्रमण में स्थापित की। उसकी खोदी हुई लिपि से ऐसा जान पड़ता है कि सम्राट् कनिष्क विशाल कुशन साम्राज्य के अधिपति थे और खरपल्लण तथा बनस्पर क्रमशः इधर के अनुशासक थे। कुछ विद्वान् मुद्रा-निरीक्षण से ऐसा अनुमान करते हैं कि कुशन साम्राज्य बनारस तक विस्तृत नहीं था, पर यहाँ यह विचार करने की बात है कि यदि बनारस तक कुशन साम्राज्य नहीं था तो फिर अन्य राज्य-सीमा में आकर क्यों कोई अपने राजा का नाम प्रतिष्ठित करेगा? यदि इसे थोड़ी देर के लिए मान भी लें, तो अन्य राज्य-सीमा में उक्त राज्य के अनुशासकों के नाम क्यों आये? सारनाथ के बोधिसत्त्व के पादपीठ पर जो कुछ लिखित लेख मिले हैं उनसे यह स्वतः सिद्ध है कि कुशान-राज्य का विस्तार सारनाथ तक था।

गुप्त-काल

गुप्तकाल की सबसे पहली मूर्ति B (4) 3 है। इस काल से बाराणसी के कलाकारों ने एक नई शैली से बुद्ध-मूर्ति को बनाना प्रारम्भ किया। ये मूर्तियाँ विभिन्न मुद्राओं की हैं, जिनमें चीवर एकांश और उभयांश दोनों दर्शित हैं। वस्त्र बड़े ही झीने हैं, जिनके किनारे उभड़े हुए हैं। हथेली कोमल गद्दीदार ज्ञात होती है। हाथ की रेखायें स्पष्ट अंकित हैं। अन्य शैलियों से उल्लेखनीय विभिन्नता इस शैली में यह है कि इसके वस्त्रों में सिकुड़न का अभाव है। सारनाथ की मूर्तियों में वस्त्र शरीर के ऊपर बिना किसी सिकुड़न के पड़े हुए हैं। इस प्रकार की मूर्तियाँ बौद्ध-जगत् में अत्यधिक लोकप्रिय थीं और वे अजन्ता की गुफा नं० १९ में, नालन्दा में और बृहत्तर भारत के प्रदेशों में पायी जाती हैं। बोरो-बुदूर की बुद्ध-मूर्ति के वस्त्र और कला शैली का इन पर स्पष्टतः प्रभाव है। शालमणि में कुछ भग्न मूर्तियाँ मिली हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि यह प्रभाव स्याम तक फैला हुआ था। बुद्ध-चरित के चित्रण में काशी के कलाकारों की दो उल्लेखनीय देन है, एक ऊर्ध्व-पट तथा दूसरा एक-एक घटना का चित्रण। ऊर्ध्व-पटों को चित्रण के अनुसार दो भागों में विभक्त कर सकते हैं (१) चौकोर सादे फलकों में भगवान् के जीवन की चार मुख्य घटनाओं का चित्रण है, (२) दूसरे ढंग के ऊर्ध्वपटों में भी फलक चौकोर हैं, किन्तु फलकों में चार मुख्य घटनाओं के अतिरिक्त चार अन्य घटनाओं में भी अंकित हैं। उदाहरणार्थ जन्म के दृश्य में सात पग चलना और प्रथम स्नान अंकित है। इस प्रकार महाभिनिष्क्रमण के दृश्य में अश्व पर यात्रा, अनोमा तट पर केशोच्छेदन आदि अंकित हैं। यह वस्तुतः बाराणसी-शैली की अपनी देन है, जो मथुरा, गान्धार और पाटलिपुत्र की शैलियों में नहीं मिलती है।

महायान की अनुपम विभूति

बौद्ध-विद्वान् इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि तथागत के महापरिनिर्वाण के पश्चात् भिक्षु-संघ में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कालान्तर में भेद उत्पन्न हो गया, जिसने 'महायान' को जन्म दिया। कनिष्क के कश्मीर की चतुर्थ धर्म-सङ्गीति ने महायान की प्रबलता में सक्रिय योग दिया। यद्यपि ई० सन् पाँचवीं शताब्दी की कोई भी वस्तु हमें उपलब्ध नहीं हुई है, परन्तु गुप्त साम्राटों की उदारनीति से जब परिष्कृत-कला विकास मार्ग की ओर अग्रसर हुई तो नई-नई मूर्तियाँ तथा नये-नये संघाराम बने। ठीक उसी समय महायान की सबसे प्राचीन मूर्ति को विषय-पति (प्रादेशिक हाकिम) सुयात्र ने प्रतिष्ठित किया था। बोधिसत्त्व पद्मपाणि की मूर्ति जिसे नई दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में रखा गया है, वह असाधारण प्रतिमा अलौकिक सौंदर्य का एकमात्र उदाहरण है। इस मूर्ति की जितनी ही प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। उसमें जिस कला-सौंदर्य की अभिव्यक्ति हुई है, वह वस्तुतः श्रेष्ठ है। सौंदर्य एवं रूप की सरलता की दृष्टि से तो यह अपने ढंग की दुर्लभ देन है।

पूर्व मध्य-काल

ई० सन् ६०० से ९०० तक को हम पूर्व मध्यकाल के नाम से पुकारते हैं। इस बात की विशेषता महायान की मूर्तियों का बाहुल्य है। महायान ने अर्हत्व की भावना की अपेक्षा बोधिसत्त्व की भावना को प्रधानता दी। ज्यों ज्यों बोधिसत्त्व का सिद्धान्त स्थिर होता गया, त्यों त्यों न केवल काल्पनिक व्यक्ति, वरन् विभिन्न विचारों के प्रचारक एवं नेता भी बोधिसत्त्व समझे जाने लगे। इस श्रेणी में—विशेष कर नागार्जुन का नाम उल्लेखनीय है। बौद्धधर्म में इस परिवर्तन के साथ साथ उसमें दूसरी विशेषता संग्रह की आयी। फलतः पूर्व मध्यकाल से ही सारनाथ में ऐसी मूर्तियाँ मिलती हैं, जो तथागत के मानव-निरूपण की अपेक्षा बोधिसत्त्व, मंजुश्री, लोकेश्वर तारा आदि की हैं। इनके अतरिक्त मैत्रेय, वज्रपाणि सिद्धैकवीर और खड्सर्पण की मूर्तियाँ मिलती हैं। इस काल की वे मूर्तियाँ मन्दिर और विहारों की ताखों पर पायी जाती हैं। इन मूर्तियों में पूर्व जैसा कला-सौंदर्य पाया जाता है। हाँ, स्त्री और पुरुषों के स्वरूपों में कुछ भारीपन आ गया है। भृकुटि तारा की मूर्ति से इसके उक्त सत्य की पुष्टि होती है। ज्यों-ज्यों मध्ययुग का विकास होता गया है, स्वरूप के भारीपन के साथ लौकिक भावनाएँ अधिक परिलक्षित होती जान पड़ती हैं।

उत्तर मध्य काल

ई० सन् ९०० से १२०० को उत्तर-मध्य काल कहते हैं। इस काल में धर्म का एक नया स्वरूप प्रादुर्भूत होता है; जो मंत्रयान या वज्रयान के नाम से प्रसिद्ध है। दसवीं शताब्दी के बाद बौद्ध धर्म के इस सम्प्रदाय का सारनाथ में कदाचित अधिक प्रभाव होता जान पड़ता है, क्योंकि शाक्यमुनि की मूर्ति ही देखने में आती हैं, जब कि देवी देवताओं की सैकड़ों मूर्तियाँ मिलती हैं। कला की दृष्टि से इस काल में ह्रास होने लगा और कला के शास्त्रीय विवेचन ने उसे जड़ बना दिया। फिर भी कलाकारों को अपने भाव-प्रकाशन के लिये पर्याप्त अवकाश है। खड्-सर्पण की जो चार मूर्तियाँ हैं उनमें समानता नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि परम्पराओं और रीति रिवाजों को मानते हुए वे अपनी मौलिक कला कुशलता को भी व्यक्त करने में समर्थ थे, फलतः नारी की आकृति के अतिरंजित रूप के अंकन के होते हुए भी इस काल की कला नयनाभिराम है। इस काल की मूर्तियाँ एक प्रकार से जड़ जान पड़ती हैं। उनके पैर जमीन में गड़े जान पड़ते हैं और आभूषण शरीर से भिन्न वस्तु जान पड़ते हैं। इस काल की मूर्तियों में षड्क्षरी, लोकेश्वर, मरीचि, जम्भल और हारीत, खदिर, वाणीतारा, मंजुवर, सिततारा, सिंहनादतारा तथा हेतुक आदि उल्लेखनीय हैं।

सारनाथ के सम्बन्ध में एक और उल्लेखनीय बात यह है कि यहाँ के कलाकारों का ध्यान जातक कथाओं की ओर नहीं गया। केवल दो दृश्य जातक कथा के यहाँ प्राप्त हुये हैं। एक में तो क्षान्तिवादी जातक तथा दूसरे में व्याघ्री-जातक की कथा अंकित है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

लद्दाख और उसकी संस्कृति

—लामा अङ्गरूप लाहुली

[इस लेख के लेखक लाहुल-निवासी हैं। आपकी मातृभाषा तिब्बती है। आप दो वर्ष से सारनाथ में रहकर हिन्दी भाषा का अभ्यास कर रहे हैं। अग्रश्रावक-अस्थियों के साथ आप भी लद्दाख गये थे। आपने वहाँ जो कुछ देखा और अनुभव किया, उसका इस लेख में भली प्रकार वर्णन किया है — सम्पादक]

हिमालय के प्राकृतिक क्रीड़ा-स्थलों में से लद्दाख प्रान्त भी एक है, जिसकी सुन्दरता देखते ही बनती है। इसकी राजधानी लेह ११५५४ फुट ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ की रहन-सहन तिब्बती लोगों से बहुत मिलती-जुलती है। आज से लगभग हजार वर्ष पूर्व यहाँ भी तिब्बती भाषा बोली जाती थी, किन्तु आजकल यहाँ की भाषा में बहुत परिवर्तन हो गया है। यद्यपि दोनों भाषायें एक ही हैं, किन्तु दोनों देशवासी परस्पर वार्तालाप में अपनी-अपनी भाषाओं को माध्यमरूप में नहीं बोल सकते, एक को अपनी बोली को छोड़ कर दूसरे का आश्रय लेना ही पड़ता है। हाँ, लिपि दोनों की एक ही है।

लद्दाखवासी बड़े सरल-स्वभाव के हैं। स्त्री-पुरुष प्रत्येक के साथ प्रेम और मैत्री का व्यवहार करते हैं। विदेशी अतिथियों के साथ ये तुरन्त हिलमिल जाते हैं। वास्तव में प्रेम के समक्ष अभिमान की गुन्जाइश कहाँ? यों तो हिमालय की पवित्र जल-धार भारतमाता के चरण तक धो डालती है, किन्तु आश्चर्य है कि वह लद्दाख जैसे छोटे-से उद्यान को अपने गोद में रखते हुए भी अपने निर्मल एवं प्रशस्त सलिल से उसकी तृषा को भी नहीं बुझा सकता! लद्दाख की राजधानी लेह के सामने से ही सिन्धु नदी ४० फुट चौड़ी तथा ३० फुट गहरी सैंकड़ों कोसों दूर से बहती चली आती है, किन्तु उससे खेतों को कोई लाभ नहीं पहुँचाता। हाँ, वह खेतों को किसी प्रकार से हानि भी नहीं पहुँचा सकती। जिस प्रकार कि कुत्ते की पूँछ उसके मुँह पर बैठी मक्खी को नहीं उड़ा सकती, उसी प्रकार सिन्धु नदी अपने किनारे ऊँची ढालों पर स्थित खेतों का कुछ बिगाड़ नहीं सकती।

लद्दाखवासी अपने अतीत की जहालत को अभी तक नहीं त्यागे हैं। लद्दाख की स्त्रियाँ बकरी के चर्म को कभी अपनी पीठ से नहीं छोड़तीं। उनकी पीठ पर एक गज चौड़ा और डेढ़ गज लम्बा बकरी का चमड़ा बँधा रहता है। क्या भारतवासियों ने कभी यह भी सोचा है कि लद्दाख की स्त्रियाँ उस चमड़े के आगे बनारसी रेशमी साड़ियों का अपमान करती हैं? लद्दाखी संस्कृति के प्रति किसे श्रद्धा न ही आयेगी? बौद्ध-धर्म यहाँ के लोगों के नस-नस में घुसा हुआ है, जिसे कोई भी किसी प्रकार निकाल नहीं सकता।

लद्दाख का प्रधान भोजन सत्तू है, जो एक प्रकार के जौ से बनता है। यहाँ के सभी स्त्री-पुरुष हट्टे-कट्टे होते हैं, इससे प्रतीत होता है कि सत्तू में एक विशेष शक्ति है।

लद्दाख बिल्कुल सूखा प्रदेश है। लेह में २,३ ही इन्च वर्षा में पानी बरसता है। खेतों की सिंचाई बर्फ से निकले हुए स्रोतों से होती है। इन स्रोतों का पानी भी सदा एक-सा नहीं प्राप्त होता, क्योंकि जिस वर्ष अधिक बर्फ नहीं पड़ती है, उस वर्ष ये सूख जाते हैं। लद्दाख वासियों के लिए अधिक बर्फ का पड़ना बड़ा ही हितकर होता है। यहाँ के पर्वतों के शिखर सदा बर्फ से ढँके रहते हैं, जिनके मनमोहक दृश्य जुलाई-अगस्त के महीनों में भी देखने को मिलते हैं। चतुर्दिक ऊँचे-ऊँचे पर्वत लद्दाख को दुर्ग सा बना रखे हैं, जिन पर पेड़-पौधे या घास-फुस नहीं होते। केवल नंगे पर्वत एक दूसरे का मुँह ताकते खड़े रहते हैं।

लद्दाख के सारे कारबार स्त्रियाँ ही करती हैं। पुरुष

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हल चलाने और लकड़ी आदि लाने मात्र का ही काम करते हैं। आज से लगभग हजार वर्ष पूर्व लद्दाख में सेङ्गेमग्याल नामक राजा राज्य कर रहा था। वह बड़ा ही शूर-वीर था। उसके समय में लद्दाखी जनता बहुत सुखी थी। उसी समय से लद्दाख में नृत्य-गान की प्रथा चली। इस समय भी वह प्रथा प्रचलित है। लद्दाखी लोग खूब शराब पीते हैं और नृत्य-गान में मस्त रहते हैं। शराब (छङ्ग) पीने के ही कारण उनमें निर्धनता घर कर ली है। कारण यह है कि उनकी उपज का एक बहुत बड़ा अंश शराब बनाने में ही नष्ट हो जाता है। यहाँ जो व्यक्ति शराब नहीं पीता है वह अभागा समझा जाता है।

लद्दाख में बहु-पति विवाह की प्रथा प्रचलित है। विवाह २०-२२ वर्ष की अवस्था में होता है। विवाह में सारा व्यय वर-पक्ष का ही होता है। कन्या-पक्ष वाले केवल थोड़ा बहुत दहेज ही देते हैं। विवाह का उत्सव तीन दिन तक बड़ी धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। उसके बाद नव-दम्पति अपने सम्बन्धियों के यहाँ - मास दो मास तक भ्रमण करता है। इस भ्रमण में इसे बहुत धन प्राप्त होता है। स्त्री ही घर की सम्पत्ति की स्वामिनी होती है। उसके छोटे सभी भाई घर से निकल कर गुम्बों (विहारों) में चले जाते हैं और वहीं रहकर 'लामा' की दीक्षा ले लेते हैं। घर से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं रह जाता। उनके पढ़ने लिखने आदि का सारा प्रबन्ध और व्यय गुम्बा ही करता है।

लद्दाख में सब ६० गुम्बा हैं, जिनमें १५ गुम्बा बड़े प्रसिद्ध हैं। हरेक गुम्बे में नब्बे-नब्बे, सौ-सौ लामा रहते हैं। गुम्बों के साथ भूमि है, जिसकी उपज से गुम्बा-वासी लामा लोगों के भोजन आदि का कार्य सम्पादित होता है। लद्दाख के गुम्बा बड़े सुन्दर और सुसज्जित होते हैं। उनमें अनेक चित्र-पट, मूर्तियाँ और कला-कौशल की सामग्रियाँ संग्रहीत होती हैं, जिनका दर्शन करने के लिए दूर-दूर के लोग आते हैं। इन विहारों में रहने वाले भिक्षुओं में अवतारी लामा बड़े सम्मानित होते हैं। उन्हें 'कुशोग लामा' कहा जाता है। कुशोग लामा ल्हासा से प्राप्त 'हेड' पहनते हैं। उसे दूसरे लोग नहीं पहन सकते। वह 'हेड' उन्हें ल्हासा की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर प्राप्त होता है। आज-कल लद्दाख में छः कुशोग लामा हैं, जिनमें कुशोग बकुला लामा सबसे प्रधान हैं। कहा जाता है कि वे नव जन्म के अवतारी हैं।

लद्दाख की कुल जनसंख्या ४०,००० है और क्षेत्रफल ३०,००० वर्गमील। इसमें एक ही हाई स्कूल है, जो अभी हाल ही में खुला है। लगभग २० प्रारम्भिक स्कूल हैं, जिनमें तिब्बती भाषा के साथ उर्दू की अनिवार्य शिक्षा दी जाती है। कुशोग बकुला लामा के आदेशानुसार अब तरुण भिक्षु लोग छोटे-छोटे बालकों को पढ़ाना शुरू कर दिये हैं और गाँव-गाँव में पाठशालायें स्थापित हो गई हैं, जिनमें धर्मगुरु उदार एवं निर्मल-चरित्र लामा लोग शिक्षण-कार्य बड़े ही प्रेम से करते हैं। इन सभी पाठशालाओं में तीस-तीस, चालीस-चालीस बालक शिक्षा पा रहे हैं। उन शिक्षण-कार्य करने वाले लामा लोगों को राज्य की ओर से किसी प्रकार की सहायता नहीं दी जाती है।

जब मैं पवित्र धातुओं के साथ लेह से हिमिस गुम्बा की ओर जा रहा था, तो मुझे मार्ग में एक अस्सी वर्ष का वृद्ध व्यक्ति मिला, जो एक छोटे से झोले में चाय, घी आदि लिए हुए था। उसके हाथ में एक छड़ी थी। पीठ पर छोटी सी एक गठरी भी थी। उसके हाथ-पैर काँप रहे थे। उस लम्बे मैदान में न पानी था और न छायादार वृक्ष ही। बेचारा धूप और प्यास से विह्वल हो रहा था। सहसा मेरी दृष्टि उसपर पड़ी। वह थोड़ी दूर आगे जाकर एक चट्टान के नीचे बैठ गया। मैं भी विश्राम करने के विचार से उसके पास जाकर बैठ गया। वह अत्यधिक प्यास के कारण बोल भी नहीं सकता था। जब मैंने उससे बातें करनी शुरू की तो वह पहले पानी का ही जिक्र छेड़ा। पानी तो पास था नहीं, कि मैं लाकर उसे पिलाता, मेरे पास दो-चार लेमनचूस थे। मैंने प्रेम से उसे दिये। लेमनचूस को पाकर बूढ़े को मानो जान आ गई। वह उसे चूसते हुए कहा—"धन्य हैं आप, अब मैं इनके सहारे लेह पहुँच जाऊँगा।" मैंने पूछा—

"आपको सन्तान नहीं है ?"

"मेरे दो पुत्र हैं। एक गृहस्थ है और दूसरा भिक्षु होकर एक गुम्बा में रहता है।"

"क्या गृहस्थ-पुत्र आपकी सेवा नहीं करता ?"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"नहीं ! हमारे लद्दाख का यही नियम है कि जब पुत्र का विवाह हो जाता है और वह पिता की सम्पति को सम्हालने के योग्य समझा जाता है, तब माँ-बाप उससे अलग हो जाते हैं और खेतों की उपज का एक निर्धारित भाग उन्हें मिला करता है।"

"क्या तब पुत्र-बधू माता-पिता से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं रखते ?"

"सम्बन्ध रखते हैं, परन्तु मेरा पुत्र बधू की कठ-पुतली है। वह जो चाहती है, करता है। मेरी क्यों सुने ?"

"क्या सभी माँ-बापों की यही दशा होती है ?"

"नहीं। अलग रहते हुए भी पुत्र माँ-बाप की देखभाल करता है। माता-पिता का अलग रहना तो इस देश की प्रथा ही है। यदि जो माँ-बाप अपने विवाहित पुत्र को अपनी सम्पत्ति नहीं सौंपते हैं तो उन्हें चारों ओर से दिन रात अपमानित होना पड़ता है। मैं तो अपने पुत्र की चाल-चलन के ही कारण तीन वर्ष तक उसे धन-सम्पत्ति नहीं सौंपना चाहा, किन्तु पुत्र की उत्सुकता तथा लोगों की गालियों ने मुझे ऐसा करने के लिए बाध्य कर दिया। अब हम स्त्री-पुरुष भर पेट खाना भी नहीं पाते हैं।"

वृद्ध के साथ बातचीत करने से मुझे लद्दाख की इस भयानक प्रथा का भी ज्ञान हुआ, जिसके द्वारा वृद्ध माँ-बाप कष्ट भोगते हैं और उन्हीं की कमाई हुई धन सम्पत्ति से पुत्र गुलछर्रे उड़ाते हैं। यद्यपि ऐसे कुपुत्र थोड़े ही होते हैं, फिर भी यह प्रथा कहाँ तक ठीक है ?

लद्दाख के प्रत्येक गाँव में खङ्गछेन (बड़ा मकान) और खङ्गछुँग (छोटा मकान) होते हैं, जो एक ही घर में होते हुए भी दो बन गये होते हैं। गाँव में सरकारी कर्मचारियों को छोड़कर दो-चार सदस्य गोवा (प्रधान), जिलेदार इत्यादि गाँव की ओर से भी नियुक्त होते हैं। गाँव की समस्यायें इन्हीं के द्वारा हल होती हैं। ये वेतन-भोगी नहीं होते। निस्वार्थ सेवा करना इनका कर्त्तव्य होता है।

लद्दाख में हुए पाकिस्तानी आक्रमणों द्वारा वहाँ के बौद्धों को काफी क्षति पहुँची थी। लेह से आठ मील दूर स्थित तारू नामक गाँव तक आक्रमणकारी आ चुके थे, परन्तु भारतीय सेना ने उन्हें आगे बढ़ने नहीं दिया। उन दिनों यद्यपि लद्दाख के बौद्धों में मुसलमानों के प्रति बदला लेने की भावना जाग्रत हो गई थी, किन्तु आज तो लद्दाख के लगभग ३८,००० बौद्ध अपने थोड़े से मुसलमान भाइयों को प्रेम और मैत्री के बन्धन में बाँध लिए हैं। यही कारण है कि वहाँ के कई मुसलमान परिवार अब बौद्ध हो गये हैं। लद्दाख में ईसाई, बौद्ध, हिन्दू और मुसलमान सब हिलमिल कर रहते हैं, जाति-पाँति आदि की उनमें विषमता नहीं है। सब एक साथ खाते-पीते; नाचते-गाते और अपने कार्य करते हैं। बौद्धों के सभी उत्सवों में बाजा बजाने का काम तो मुसलमान ही करते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

भारत बौद्ध धर्म की ओर

सम्प्रति विश्व के कोने-कोने से बौद्ध धर्म के नव जागरण के समाचार प्राप्त हो रहे हैं। पाश्चात्य देशोंमें बड़े वेग से बौद्ध धर्म का प्रचार होता दीख रहा है। इधर बर्मा, स्याम और लंका में एक नव प्रेरणा-सी जाग्रत सी गई है। गत मई मास में लंका में जो अखिल विश्व बौद्ध सम्मेलन हुआ था, वह केवल सम्मेलन मात्र ही नहीं रहा, उसके कार्य अब हमें दिखाई दे रहे हैं। विगत दो महीनों में लंका में रहने वाले भारतीय हिन्दुओं में से लगभग सवा हजार ने सामूहिक रूप से बौद्ध धर्म को ग्रहण कर लिया है। क्या यह बौद्ध धर्म के नव जागरण और उज्ज्वल भविष्य का द्योतक नहीं है? लंका के सभी बौद्धों ने उनका हृदय से स्वागत किया है, उनके लिए जुलूस निकाला है, उत्सव मनाया है और वे जिस प्रकार अपने पूर्व के समाज में अपमानित, अनादरित और हेय समझे जाते थे, उन सभी भावनाओं को काफूर कर डाला है और उन्हें अपना भाई-बहिन अङ्गीकार कर गले मिलाया है। यही कारण है कि लंकावासी अधिकांश हिन्दू बौद्ध धर्म को अपनाने का दृढ़ निश्चय कर लिये हैं। इस समाचार से क्या भारतवासियों को तनिक भी प्रेरणा प्राप्त हुई है? आज हमारा भारत जातीयता, विषमता और उच्छृंखलता का अड्डा बना हुआ है। जाति, सम्प्रदाय और मिथ्या आडम्बरों के नाम पर हमारे बहुत-से भाई हेय नीच और अस्पृश्य समझे जा रहे हैं। परस्पर-सद्व्यवहार, मैत्री एवं मानवता ने कटुता, विषमता एवं दुर्जनता का रूप धारण कर लिया है। इन सब बुराइयों को दूर करने के लिए भारत वासियों के लिए बौद्ध-धर्म के अतिरिक्त अन्य कोई भी साधन नहीं है। इस दुस्साध्य रोग से मुक्ति के लिए बौद्ध-धर्म ही रामवाण महौषधि है। क्या आपने कभी सोचा है कि हमारा यह अधःपतन क्यों हुआ है? हम क्यों सदियों से जर्जर हो गये हैं? हमारी सामाजिक शक्ति क्षीण हो गई है? इन सभी प्रश्नों का एक मात्र समुचित उत्तर है कि हम अपने परम कल्याणकारी तथागत को भूल गये हैं, मैत्री, समता, सुख एवं अहिंसा की अमर-शिक्षाओं को त्याग दिये हैं और अपना लिए हैं ऐसे महाभयानक हथियार को जिसकी धार ही भोथरी है! क्या हमारे पतन का एकमात्र कारण हमारी सामाजिक त्रुटियाँ नहीं हैं? क्या हमारी घोर-जातीयता नहीं है? अब हमारे सचेत होने का समय आ गया। प्रातः का भूला यदि सन्ध्या को घर आ जाय, तो कल्याण ही समझना चाहिए।

हमारे उक्त कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि भारत अब भी सुसुप्तावस्था में ही है। भारत में भी इस समय सांस्कृतिक-चेतना का नव-जागरण हो चला है। हमने बौद्धधर्म के "धर्म चक्र" को अपनाया है, बौद्धधर्म के आदर्शों से प्रेरणा लेने का प्रयत्न किया है। अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों की पूजा और स्वागत-समारोह कर अपने राष्ट्र का गौरव बढ़ाया है और बौद्ध-सम्राट् अशोक की शासन व्यवस्था की बहुत कुछ कल्पना की है। हमारे दक्षिण भारतवासी ही जो लंका में रहते हैं—सामूहिक रूप से बौद्धधर्म को अपनाये हैं। यह सब हमारे देश के बौद्धधर्म की ओर अग्रसर होने के प्रमाण हैं। आज हमें बुद्धाब्द २५०० के समानान्तर विश्व में बौद्धधर्म के पुनः प्रसार एवं भारत में बौद्ध-साम्राज्य-व्यवस्था की भविष्य-वाणियाँ सत्य-सी प्रतीत हो रही हैं। हमारे पुराणों में वर्णित "मौनी" राज्य, सिंहली ग्रन्थों में कथित "दियसेन" की कथा और अमेरिकन भविष्यवक्ता श्री चेरो द्वारा लिखित "बौद्ध भारत" के होने की बातें हमें अपनी प्रामाणिकता के प्राथमिक लक्षणों को देखने के लिए आकर्षित कर रही हैं।

सूचना

"धर्मदूत" का अगला अंक मूलगन्धकुटी विहार के वार्षिकोत्सव के अवसर पर विशेषांक के रूप में प्रकाशित होगा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बौद्ध-जगत्

पुनः एक हजार से अधिक हिन्दुओं ने बौद्धधर्म अपनाया

गत २४ सितम्बर को लंका के एक हजार से भी अधिक हिन्दुओं ने अखिल विश्व भ्रातृ-मण्डल के अध्यक्ष श्री जी० पी० मललसेकर की अध्यक्षता में ऐतिहासिक पवित्र स्थान कल्याणी में बौद्धधर्म में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा-ग्रहण का सारा आयोजन "तामिल धर्मदूत सभा" की ओर से हुआ था। उस दिन अपराह्न में साढ़े तीन बजे सब लोग कल्याणी-महाविहार में एकत्र हुए थे। ये सभी तामिल हिन्दू सहर्ष त्रिशरण और पञ्चशील के साथ बौद्धधर्म को ग्रहण किये।

"तामिल धर्मदूत सभा" द्वारा "बौद्ध ऐदहिल" नामक ग्रन्थ को तामिल भाषा में छपा कर निःशुल्क वितरण के लिये सोहसा महाशय ने भार ग्रहण किया। उन्होंने अन्यान्य बौद्ध ग्रन्थों को भी तामिल-भाषा में छपाकर मुफ्त वितरण करने का वचन दिया।

सभा की हीरक जयन्ती—गत २० जुलाई को कलकत्ता के धर्मराजिक विहार में डा० कालिदास नाग की अध्यक्षता में महाबोधि-सभा की हीरक जयन्ती मनाने के लिए एक विशेष बैठक हुई। बैठक में निश्चय हुआ कि सभा का ६० वाँ वर्षिकोत्सव हीरक-जयन्ती के रूप में अगले वर्ष जाड़े में मनाया जाय और उसका विस्तृत कार्य-क्रम बनाया जाय।

कलकत्ता में धर्मचक्र-महोत्सव—गत आषाढ़ी पूर्णिमा को कलकत्ता के धर्मराजिक विहार में डा० सत्कारी मुकुर्जी की अध्यक्षता में मनाया गया।

धर्मपाल-जन्मोत्सव—गत १७ सितम्बर रविवार को सारनाथ में स्वर्गीय अनागारिक धर्मपाल जी का जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम के साथ बनाया गया। प्रातः काल मन्दिर में पूजा की गई। दोपहर में सारनाथ और काशी स्थित सभी भिक्षु लोगों को भोजन-दान दिया गया। अपराह्न में चार बजे काशी विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष डॉ० पं० राजबली पाण्डेय की अध्यक्षता में एक महती सभा हुई। बुद्ध-वन्दना के साथ सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ।

सर्व प्रथम भिक्षु धर्मरक्षित ने अनागारिक धर्मपाल जी के महत्त्वपूर्ण जीवन पर प्रकाश डाला। उन्होंने बौद्ध धर्म के इतिहास का दिग्दर्शन कराते हुए धर्मपाल जी की महान् सेवाओंको बतलाया। उन्होंने कहा कि वह एक ऐसा समय था जब कि भारतवासी अपने परम विशिष्ट धर्म को भूल गये थे, उसी समय तीन महान् व्यक्तियों की उत्पत्ति एक साथ तीन स्थानों में हुई। उत्तर भारत में भदन्त महावीर महास्थविरपाद का जन्म हुआ, बंगाल में कृपाशरण महास्थविर का और लंका में अनागारिक धर्मपाल जी का। इन तीनों महान् व्यक्तियों ने एक साथ भारत में बौद्ध धर्म के उत्थान का कार्य किया। आज हम उनमें से एक ऐसे महापुरुष का जन्म-दिवस मना रहे हैं जो भारतीय ही नहीं, प्रत्युत समस्त विश्व के बौद्धों के लिए कौतुक-पुरुष थे। उनकी जलाई हुई ज्योति आज धीरे-धीरे और भी प्रभास्वर होती जा रही है। आज भारत में बौद्ध धर्म की जो नव-चेतना जाग्रत दीख रही है, उसके मूल में अनागारिक धर्मपाल का महान् प्रयत्न सन्निहित है।

तत्पश्चात् श्री अद्रीशचन्द्र वंद्योपाध्याय का भाषण हुआ। उन्होंने धर्मपाल जी के प्रारम्भिक कष्टों और कठिनाइयों का वर्णन करते हुए कहा कि हम ऐसे महापुरुष के जीवन से जो कि एक सच्चा कर्म-योगी था, किसी भी कार्य के सम्पादन के लिये सच्ची प्रेरणा पा सकते हैं। उन्होंने कहा कि उनकी बनाई हुई इमारतें गिर जायेंगी, भवन कभी भी चिरस्थायी नहीं होते, परन्तु उन्होंने जो सांस्कृतिक सेवा की है, उसकी अमिट छाप सदा भरतीय जीवन एवं इतिहास पर बनी ही रहेगी।

इसके बाद स्थानीय प्राइमरी स्कूल तथा महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल के छात्रों की व्याख्यान प्रतियोगिता हुई। उनमें प्राइमरी स्कूल से एक और हायर सेकण्डरी स्कूल से तीन छात्र विजयी हुए, जिन्हें प्रतिवर्ष की भाँति "धर्मपाल-व्याख्यान प्रतियोगिता-पुरस्कार" दिया जायेगा। महाबोधि हायरसेकण्डरी स्कूल की एक छात्र ने भी ओजस्वी भाषण दिया, जिसे एक विशेष पुरस्कार देने का निश्चय हुआ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

व्याख्यान प्रतियोगिता के बाद नागपुर बुद्ध-सोसाइटी के प्रधानमंत्री श्री अनन्तराचन्द्रजी कुळकर्णी का भाषण हुआ। आपने सबकी दृष्टि भारत में प्रचलित जाति-व्यवस्था और छूआछूत के विनाशकारी कार्यों की ओर आकृष्ट किया। आपने अपने प्रभावशाली भाषण के सिल-सिले में कहा कि हम भारतीय केवल भगवान् बुद्ध और बौद्ध धर्म की प्रशंसा मात्र करने से अपना कल्याण नहीं कर सकते। हमें तो तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म को शीघ्र अपनाना चाहिए। जब तक हम उस धर्म को अपनाये रहे, तबतक हम सुखी रहे, किन्तु उसे भुलाते ही हम स्वयं को भूल गये। भगवान् बुद्ध को स्वीकार करना अपनी स्वतंत्रता अपनानी है। हम पूर्णस्वतंत्रता का अनु-भव उसी समय करेंगे, जब हमारा जीवन बौद्धधर्म के सदाचरणों से ओतप्रोत रहेगा।

अन्त में सभापति का भाषण हुआ। सभापति ने अपने भाषण के सिलसिले में कहा—"संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं आश्रमिक, श्रमिक और श्रमण। आश्रमिक जन घरबार में रहकर अपने लिए भोग-सम्पत्ति का संचय करते हैं, वे कभी-कभी जन-कल्याण का भी कार्य करते हैं, किन्तु उनका अधिकांश जीवन भोग-विलासिता में ही व्यतीत होता है। श्रमिक अपने परिश्रम से पूँजी-पतियों द्वारा जो कुछ पाते हैं, उसी से जीवन-यापन करते हैं, उन्हें श्रम के सम्मुख दूसरा कोई कार्य नहीं होता। वे मलिन, उदास जीवन-व्यतीत करते हैं। उन्हें बहुत कष्ट का सामना करना पड़ता है, आज समस्त विश्व में इस वर्ग ने एक महान् हलचल मचा रखी है। श्रमण इन दोनों में निर्लिप्त रहकर अपनी तथा संसार की भलाई में लग जाता है और इसी वर्ग द्वारा जग-कल्याण सम्भव होता है। अनागरिक धर्मपालजी इसी वर्ग के घरबार त्यागे श्रमण थे। उन्होंने लंका के ही साथ हम भारतवासियों का महान् उपकार किया है। जबतक हम भारतवासी अपने इतिहास को देखते रहेंगे, धर्मपालजी हमारे सम्मुख सदा रहेंगे। वे उसी प्रबुद्ध प्रवाह के एक तैराकी थे, जो समस्त एशियायी राष्ट्रों में एक साथ जाग्रत हुए। इनका हमारे स्वतंत्र भारत में बड़ा महत्व है। हम आज इन्हीं की प्रेरणा से कल्याण-पथ पर अग्रसर होने का प्रयत्न कर रहे हैं और जबतक हममें यह प्रेरणा बनी रहेगी, हमारा कल्याण सम्भव रहेगा।"

सभापति के भाषण के पश्चात् भिक्षु संघरत्न जी ने उप-स्थित सभी लोगों को महाबोधि सभा की ओर से धन्यवाद दिया। सभा भिक्षु लोगों के आशीर्वाद-प्रदान के साथ साढ़े पाँच बजे समाप्त हुई।

रात्रि में प्रदीप-पूजा और परित्राण पाठ हुआ।

हमारे आगामी उत्सव—२५ अक्तूबर बुधवार १९५० को वर्षावास की समाप्ति पर "पवारणोत्सव" मनाया जायेगा और २३ नवम्बर गुरुवार १९५० को मूल-गन्धकुटी विहार सारनाथ का वार्षिकोत्सव।

लंका में बर्मी बौद्ध विहार का निर्माण—बर्मा के उस यशस्वी दाता ने २५,०००) लंका में सुवर्णमाली चैत्य के पास बुद्ध मन्दिर बनवाने के लिए प्रदान किया है, जिसने सुवर्णमाली चैत्य के शिखर पर स्थापनार्थ "शिखर-मणि" प्रदान किया था।

लंका के तामिल बौद्धों को विभिन्न देशों के सन्देश—गतमास में लंका के जो सवा दो सौ तामिल हिन्दू एक साथ बौद्धधर्म को ग्रहण किये। उन्हें विभिन्न बौद्ध देशों में प्रसन्नता के सन्देश मिले हैं, जिनमें बर्मा, भारत, स्याम और इंगलैण्ड के नाम उल्लेखनीय हैं। उस अवसर पर भारत के विधि-मंत्री डा० भीमराव अम्बेडकर ने उन्हें निम्नलिखित सन्देश भेजा है:—

"मैं यह पढ़कर बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ कि मेरे भारतीय परिगणित जाति के जो लोग लंका में रहते हैं, वे बौद्धधर्म को ग्रहण करने का पूर्ण निश्चय कर लिये हैं। मुझे ऐसी आशा न थी कि मेरे परामर्श का फल इतना शीघ्र फलित होगा। मैं आप लोगों को इस दीक्षा-ग्रहण के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। आपने यह एक बहुत बड़े बुद्धिमानी का काम किया है। आपने दीक्षा ग्रहण द्वारा एक बहुत बड़ी समस्या को हल किया है, जो आपके भविष्य के लिये बड़ा ही कल्याणकर है। बौद्धधर्म आपकी रक्षा करेगा और वह आपके लिये सर्वथा योग्य होगा। वह आपका सबसे मूल्यवान वस्तु है।"

अखिल विश्वबौद्धभातृ-मण्डल के सभापति डा० जी० पी० मललसेकर ने भी उन्हें निम्नलिखित सन्देश भेजा है:—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"भारत भगवान् बुद्ध का जन्म और ज्ञान-प्राप्ति का स्थान है। भगवान् की शिक्षा को ग्रहण करके आपने अपने देश का सम्मान किया है। बौद्ध धर्म आपके लिये विदेशी धर्म नहीं है। भारत के भाग्य का श्रेष्ठतम युग अशोक का समय था, जो स्वयं बौद्ध था। सम्प्रति आपने जो स्वयं बौद्धधर्म को ग्रहण किया है, उस जन-समुदाय की सदस्यता ग्रहण की है, जो पचास करोड़ से भी अधिक हैं, जो सम्पूर्ण मानव-जाति के चौथे भाग के बराबर हैं। प्रायः संसार के सभी प्रदेशों में बौद्ध हैं केवल लंका में ही पचास लाख बौद्ध हैं, जो भाई और बहिन के समान बिना किसी भेदभाव के आपका हार्दिक स्वागत करते हैं।

बौद्धधर्म ही एक ऐसा धर्म है जो ऐसी उच्च-शिक्षा देता है, जो इस संसार के सर्वसाधारण के लिए समुचित है। त्रिरत्न के अनुभाव से आप सुखी हों। आप इस धर्म को बड़ी तेजी के साथ फैलायें, जिसे कि सारा विश्व सुनकर आनन्द का अनुभव करे।"

नई दिल्ली में धर्मपाल-जन्मोत्सव—गत १७ सितम्बर को नई दिल्ली के बुद्धविहार में महाबोधि-सभा तथा भारतीय बौद्ध समिति की ओर से बड़ी धूमधाम के साथ धर्मपाल जन्मोत्सव मनाया गया। सभा के अध्यक्ष डा० बूलचन्द एम० ए०, पी० एच० डी० थे। सभा में पाँच विद्वानों ने अनेक पहलुओं से अनागारिक धर्मपालजी के जीवन पर प्रकाश डाला व्याख्यान दाताओं के नाम हैं। भदन्त पं० ए० धम्माधार, डा० फेलिक्सवलयी, श्री ए० बी० बरुआ, श्री० आर० एन राय, और मनोनीत अध्यक्ष—सभा का कार्यक्रम भारतीय बौद्ध समिति के उपमंत्री श्री कुमार बरुआ के धन्यवाद प्रदान के साथ समाप्त हुआ।

मूलगन्ध कुटी विहार का वार्षिकोत्सव—इस वर्ष सुप्रसिद्ध मूलगन्धकुटी विहार सारनाथ का वार्षिकोत्सव कार्तिक पूर्णिमा २३ नवम्बर गुरुवार को मनाया जायेगा। उत्सव के लिए अभी से तैयारियाँ हो रही हैं। आशा है काफी संख्या में बर्मा, लंका, स्याम, चीन, तिब्बत, नेपाल आदि बाह्य देशों से बौद्ध आयेंगे। यह उत्सव बौद्ध धर्म का एक अन्तर्राष्ट्रीय मेला है, जिसमें सम्मिलित होने के लिए सब लोग उत्सुक रहते हैं और सम्मिलित होकर प्रसन्नता अनुभव करते हैं।

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

श्री वीरेन्द्रकुमार के कलामय कृतित्व का अनुपम प्रतीकः—

मुक्तिदूत ४॥)

※ उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है.........मर्मज्ञों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है.........

उर्दू काव्य के महान् मर्मज्ञ श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय की दीर्घ कालव्यापी साधनाः—

शेर-ओ-शायरी ८)

※ संग्रह की पंक्ति-पंक्ति से संकलयिता की अन्तर्दृष्टि और गम्भीर अध्ययन का परिचय मिलता है। हिन्दी में यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है।

विदग्ध और विलक्षण साहित्यकार श्री द्विवेदी की जीवन-झाँकीः—

पथचिह्न २)

※ मनोरम भाषा, मर्मस्पर्शी शैली......

लेखक ने पंक्ति-पंक्ति पर अपना हृदय उधेड़ दिया है।

प्रबुद्ध विद्वान् और ओजस्वी ग्रंथकार डा० जगदीशचन्द्र जैन की प्रासादिक कृतिः—

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ ३)

※ जनपरम्परा के मनोरंजक उपाख्यान......
शैली सरल और सुबोध......

जैन शासन ४।)

※ जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन करनेवाली सुन्दर कलाकृति।

कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न २)

※ कुन्दकुन्द स्वामी के पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार इन तीन महान् आध्यात्मिक ग्रन्थों का हिन्दी में विषय परिचय।

अन्य पुस्तकों के लिए बड़ा सूचीपत्र मँगाइये।

पताः—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस ४

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हिन्दी में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें :—

—:❀:—

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
दीघनिकाय—महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन	६)	बुद्धार्चन—प्रेमसिंह चौहान	।)
मज्झिम निकाय— ,,	८)	महापरिनिर्वाण सुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
विनयपिटक— ,,	८)	सिगालोवाद सुत्त— ,,	।)
धम्मपद—अवध किशोर नारायण	१॥)	तथागत के अग्रश्रावक—पं० विश्वनाथ शास्त्री	॥।)
बुद्धवचन—भदन्त आनन्द कौसल्यायन	॥)	अमिताभ—गोविन्दवल्लभ पन्त	४॥)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल	।−)	बुद्धदेव—शरत कुमार राय	१॥।)
बोधिद्रुम (कविता)—सुमन वात्स्यायन	।=)	बुद्धचरित (अश्वघोष कृत)—सूर्यनारायण चौधरी	४)
भिक्षु के पत्र—भदन्त आनन्द कौसल्यायन	१॥)	सौन्दरनन्द काव्य— ,,	३)
महावंश— ,,	४)	शाक्यमुनि—गंगाप्रसाद	॥।≡)
जातक भाग १, २ और ३ ,,	७॥), ७॥), १०)	बुद्ध-हृदय—सत्यभक्त	॥)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	५॥)	भगवान् बुद्ध ने कहा था—सुमन वात्स्यायन	।=)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स	१॥)	हर्षचरित (दो भाग) सूर्यनारायण चौधरी	३)
बौद्ध-शिशुबोध—भिक्षु धर्मरक्षित	।)	बौद्ध-दर्शन—बलदेव उपाध्याय	६)
तेलकटाह गाथा— ,,	।)	बौद्धचर्य्या-पद्धति—भदन्त बोधानन्द	१॥)
कुशीनगर का इतिहास— ,,	२॥)	सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	१)
सारनाथ-दिग्दर्शन— ,,	।)	खुद्दकपाठ— ,,	।)
पालि-पाठ-माला—भिक्षु धर्मरक्षित	१)	पञ्चशील और बुद्ध-वन्दना—	=)
जाति भेद और बुद्ध— ,,	॥)	बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१॥)
ब्राह्मणधम्मिय सुत्त— ,,	=)	ब्रह्मजाल सुत्त—(मतों का जंजाल)	=)
बुद्धकीर्त्तन—प्रेमसिंह चौहान	१॥)	अम्बट्ठ सुत्त—(वर्ण-व्यवस्था का खण्डन)	=)
बुद्धवाणी—वियोगी हरि	॥।=)	अशोक के धर्मलेख—जनार्दन भट्ट	३॥)
यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त	१॥=)	बुद्ध चित्रावली—	७॥)
अशोक—भगवती प्रसाद पांथरी	४)	बुद्ध और उनके अनुचर—आनन्द कौसल्यायन	१॥।)
थेरी गाथायें—भरतसिंह उपाध्याय	१॥)	बुद्ध और बौद्ध साधक—भरतसिंह उपाध्याय	१॥)

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मूलगन्धकुटी विहार

का

१९ वाँ वार्षिकोत्सव

आगामी २३ और २४ नवम्बर को मूलगन्धकुटी विहार का १९ वाँ वार्षिकोत्सव अति समारोह के साथ मनाया जायेगा। देश-विदेश से अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति इस उत्सव में प्रति वर्ष सम्मिलित होते हैं। आप भी अवश्य पधार कर इससे लाभ उठाने के लिए अब निश्चय कर लीजिये। कार्य-क्रम का पूरा विवरण समाचार-पत्रों द्वारा सूचित किया जायेगा।

विशेष जानकारी के लिए निम्नलिखित पते पर पूछ-ताछ करें :—

मंत्री,
महाबोधि सभा,
सारनाथ, बनारस।

भूकम्प तथा बाढ़ से पीड़ित

आसाम-वासियों की सहायता कीजिये

शिलाङ्ग बौद्ध समिति के प्रधान मंत्री भिक्षु जिनरत्न जी का पत्र आया है, जिसमें आसाम के भूकम्प और बाढ़ पीड़ित लोगों की कारुणिक कहानी अंकित है। वहाँ की पीड़ित जनता के सहायतार्थ एक समिति का निर्माण किया गया है, जिसके अध्यक्ष श्री डी० सी० दास आई० सी० एस० हैं।

हम अपने पाठकों से सानुरोध निवेदन करते हैं कि वे इन पीड़ित भाइयों के प्रति अपनी उदारता दिखला कर उनकी सहानुभूति के पात्र बनें। सहायता निम्नलिखित पते से भेजिये—

भिक्षु जिनरत्न
प्रधान मंत्री,
शिलाङ्ग बुद्धिस्ट एसोशियेशन,
शिलाङ्ग (आसाम)

प्रकाशक—धर्मलोक, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
मुद्रक—ओम प्रकाश कपूर, ज्ञान मण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय-सूची

"धर्मदूत"

का

"अखिल विश्व बौद्ध संस्कृति अंक"

हम बुद्धाब्द २५०० (सन् १९५६) के शुभावसर पर "धर्मदूत" का एक सुन्दर और विशाल अंक प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं जिसमें विश्व के सभी देशों के बौद्धों का परिचय रहेगा। सब देशों के बौद्धों की कला, पुरातत्व, इतिहास, भेद, आचरण, वंश परम्परा, दार्शनिक-गवेषणा, प्राचीन और अर्वाचीन सभी प्रकार की अवस्था के वर्णन के साथ बौद्ध धर्म के पालि और संस्कृत के अतिरिक्त सर्वदेशीय बौद्धों की भाषाओं के ग्रन्थों का भी परिचय रहेगा।

स्थविरवाद के साथ सभी निकायों के धार्मिक सम्बन्ध तथा दार्शनिक विशेषताओं की गवेषणात्मक व्याख्या रहेगी। यह अंक हरेक बौद्ध देश के जातीय एवं धार्मिक चित्रों, रीति-रिवाजों एवं विभिन्न अन्वेषणात्मक बातों से परिपूर्ण रहेगा।

हमारे ग्रन्थों में बुद्धाब्द २५०० का बड़ा महत्व वर्णित है। यही वह समय है जब से पुन बौद्ध धर्म का बिगुल संसार में बड़े वेग से बजेगा और फिर एक बार सारा जगत बौद्ध धर्म की शरण आयेगा। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस अवसर पर अपना एक सुन्दर कार्यक्रम बनायें। उक्त कार्य के लिये हमें कम से कम एक लाख रुपये की आवश्यकता है। हम इस भव्य एवं पुनीत आयोजन की सफलता के लिये देशी तथा विदेशी (विशेष कर हिन्दी भाषा-भाषी) धार्मिक, संस्कृति-प्रेमी एवं दानी व्यक्तियों से निवेदन करते हैं कि वे मुक्तहस्त से हमारी सहायता करें।

दाताओं का नाम 'धर्मदूत' में सदा प्रकाशित होता रहेगा। थोड़ी या बहुत जो भी रकम सहर्ष स्वीकार की जायेगी।

निवेदक –

व्यवस्थापक – "धर्मदूत"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय पिटक)

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोकपर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिए विचरण करो। भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १५ } सारनाथ, सितम्बर बु० सं० २४९४ / ई० सं० १९५० { अङ्क ६

बुद्ध-वचनामृत

पुण्य की महिमा

"अभागे लोग जिस धन के संग्रह के लिए बहुत उत्सुक होते हैं, उसे शिल्पी हों चाहे अशिल्पी हों, भाग्यवान् ही उपभोग में लाते हैं। सर्वत्र दूसरे प्राणियों को छोड़कर पुण्यवान् प्राणी को ही भोग प्राप्त होते हैं, जहाँ से भोग नहीं प्राप्त होते वहाँ से भी।

यह पुण्य सब देवताओं तथा मनुष्यों की सभी कामनायें पूरी करनेवाला खजाना है। इससे जिस जिसकी इच्छा करते हैं, वह सभी मिलता है। सुवर्ण, सुस्वर, सुन्दर आकार, सुन्दर रूप, आधिपत्य और परिवार-इससे सभी कुछ मिलता है। प्रदेश-राज्य, ऐश्वर्य, चक्रवर्ती सुख और दिव्य लोकों में देवराज्य भी-इससे सभी कुछ मिलता है। मानुषिक सम्पत्ति, दिव्यलोक का आनन्द और निर्वाण-सम्पत्ति—इससे सभी कुछ मिलता है। मित्र-सम्पत्ति को प्राप्त कर उसका ठीक उपयोग करनेवाले को विद्या, विमुक्ति, वशीभाव—इससे सभी कुछ मिलता है। पटिसम्भिदा-ज्ञान, विमोक्ष और जो श्रावक-पारमिता है, प्रत्येक-बोधि और बुद्ध-भूमि भी—इससे सभी कुछ मिलता है।

यह जो पुण्य-सम्पत्ति है, यह ऐसी ही महान् प्रभाववाली है। इसीलिए धीर पण्डित-जन पुण्य-कर्तृत्व की प्रशंसा करते हैं।

पुण्य परलोक में प्राणियों के आधार होते हैं, इसलिए पुण्य कर्मों को करना उनका कर्तव्य है।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इन्द्रिय-संयम

श्रीअनन्त

हर एक व्यक्ति के लिए इन्द्रियों का संयम करना परम आवश्यक है। इन्द्रियों के संयम से ही अनेक विशिष्ट गुण मनुष्य में आते हैं और वह महान् से महान् कार्यों को सरलता पूर्वक कर सकता है। पाप-कर्मों से बचने के लिए तो इन्द्रियों का संयम अत्यन्त अपेक्ष्य है। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और काय इन पाँचों इन्द्रियों के संयम से ही लोभ आदि पापधर्मों से बचा जा सकता है। भगवान् बुद्ध ने इन्द्रियों के संयम पर बड़ा जोर दिया है, उन्होंने प्रत्येक इन्द्रिय को अलग-अलग करके समझाया है और उनमें संयम करने का उपदेश दिया है। चक्षु-इन्द्रिय के प्रति उनके ये शब्द कितने मार्मिक हैं—"उत्तम है भिक्षुओ! गर्म, जलती, लपटती, धधकती लोहे की छड़ से चक्षु-इन्द्रियों को दाग लेना किन्तु आँख से दिखाई देने वाले रूपों में बनावट के अनुसार लक्षण ग्रहण करना अच्छा नहीं है।" तथागत के इन उपदेशों का उनके शिष्यों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है और वे इन्द्रिय-संयम के प्रति सदा चौकसी किये हैं।

जिसने इन्द्रियों में संयम नहीं किया है, वह सद्गुणों से कोसों दूर है। इन्द्रियों के संयम से ही पाप-कर्मों के आधारभूत संसर्गों में पड़कर भी व्यक्ति निर्मल रह सकता है। वह अपने न पछाड़ा जाकर, पापकर्मों को ही पछाड़ देता है, किन्तु जिसने इन्द्रिय-संयम का अभ्यास नहीं किया है, वह आलम्बनों के सम्मुख आते ही अपने को नहीं सम्हाल सकता है। ऐसी अनेक कथायें धर्म-ग्रन्थों में मिलती हैं—

(१) वङ्गीस स्थविर अभी हालके ही प्रव्रजित हुए थे। उन्होंने भिक्षाटन करते हुए एक स्त्री को देखा, जिसे देखकर उनके चित्त में राग उत्पन्न हो गया। उन्होंने आनन्द स्थविर से कहा—

"मैं काम-राग से जल रहा हूँ, मेरा चित्त भी जल रहा है, हे आनन्द! अनुकम्पा कर इसे शान्त करने का उपाय कहें।"

आनन्द स्थविर ने उनकी इस बात को सुनकर कहा—"विपरीत ख्याल होने से तेरा चित्त जल रहा है, इसलिए राग से युक्त शुभ-निमित्त को त्यागो। अशुभ-निमित्त से एकाग्र और सुसमाहित चित्त की भावना करो। संस्कारों को अनित्य और दुःख के तौर पर देखो, 'आत्मा' के तौर पर नहीं। महाराग को शान्त करो, मत उसमें बार-बार जलो।"

वङ्गीस स्थविर ने उनकी बात सुन राग को दूर कर शान्त पूर्वक भिक्षाटन किया।

(२) लंका के कुरण्डक महालेण में सात बुद्धों के अभिनिष्क्रमण के बड़े सुन्दर चित्र बने थे। बहुत से भिक्षु शयनासन को घूमते-देखते हुए चित्रों को देखकर—"भन्ते! मनोरम हैं चित्र।" कहे। स्थविर ने कहा—"अबुस! साठ वर्ष से भी अधिक इस लेण (गुफा) में रहते हुए हो गया, किन्तु इसमें चित्र हैं या नहीं भी नहीं जानता था। आज आप आयुष्मानों के कारण जाना।"

स्थविर ने इतने दिनों तक वहाँ रहते हुए आँख उठाकर लेण को पहले कभी नहीं देखा था। उस लेण के द्वार पर एक बहुत बड़ा नाग का पेड़ था। उसे भी स्थविर ने पहले कभी ऊपर नहीं देखा था। हरवर्ष जमीन पर केशर गिरी देखकर उसके फूलने को जानते थे।

कावेन् तिष्य (ई० पूर्व १०१ से पूर्व) राजा ने स्थविर की गुण-सम्पत्ति को सुनकर, बन्दना करने की इच्छा से तीन बार सन्देश भेज, स्थविर के नहीं आने पर उस गाँव में छोटे बच्चों वाली स्त्रियों के स्तनों को बँधवा कर मुहर लगवा दी "तब तक बच्चे दूध न पीने पावें, जब तक कि स्थविर नहीं आते।"

स्थविर बच्चों पर कृपा करके महाग्राम गये। राजा ने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सुनकर "जाओ भणे! स्थविर को साथ लिवा लाओ, शीलों को ग्रहण करूँगा।" कहा।

अन्तःपुर में लिवा लाकर प्रणाम् करके भोजन करवाया और "भन्ते! आज फुरसत नहीं है, कल शीलों को ग्रहण करूँगा।" कह स्थविर का पात्र ले थोड़ी दूर पीछे-पीछे जा रानी के साथ प्रणाम् कर लौट आया। स्थविर राजा प्रणाम् करता या रानी, "महाराज! सुखी हो।" कहा करते थे। इस प्रकार सात दिन गुज़र गये।

भिक्षुओं ने पूछा—"भन्ते! क्या आप राजा के प्रणाम् करने पर भी, रानी के प्रणाम् करने पर भी—'महाराज! सुखी हो' इतना ही कहते हैं?" स्थविर ने कहा—"आवुसो! यह राजा है, यह रानी है–मैं ऐसा नहीं विचार करता।"

सप्ताह के बीतने पर "स्थविर का यहाँ रहना दुःखकर है" कह राजा द्वारा छुट्टी पाने पर वे कुरण्डक महालेण में जाकर रात में चंक्रमण करना प्रारम्भ किये। नाग के पेड़ पर रहनेवाला देवता मशाल लेकर खड़ा हुआ। तब उनका कर्म-स्थान अत्यन्त परिशुद्ध रूप से प्रगट हुआ। स्थविर ने "क्या आज मेरा कर्मस्थान अत्यन्त प्रकाशित हो रहा है?" सोच, खुश हो, लगभग मझले पहर के समय में सारे पर्वत को गुँजाते हुए अर्हत्व पा लिया।

(३) महामित्र स्थविर की माँ को जहरबाद निकला। उसकी लड़की भी भिक्षुणियों में प्रव्रजित हो गई थी। उसने उसे कहा—'जाओ आर्ये! अपने भाई के पास जा, मेरी बीमारी को बतलाकर दवा लाओ।" वह जाकर कही। स्थविर ने कहा—"मैं जड़ी-बूटी वगैरह दवाइयों को इकट्ठा करके दवा पकाना नहीं जानता, किन्तु तुझे दवा बतलाऊँगा—मैं जब से प्रव्रजित हुआ, तब से लोभ-चित्त से मैंने कभी भी इन्द्रियों को खोलकर विषभाग (रागोत्पादक) रूपों को नहीं देखा। इस सत्य-वचन से मेरी माँ निरोग हो जाय। जाओ, इसे कहकर उपासिका के शरीर को मलो।" उसने जाकर इस बात को कह, वैसा किया। उपासिका का जहरबाद उसी क्षण फेन के पिण्ड के समान फूटकर लुप्त हो गया। उसने उठकर 'यदि सम्यक् सम्बुद्ध जीवित होते, तो क्यों नहीं मेरे पुत्र के समान भिक्षु के सिर को अपने जाल-सदृश हाथ से सहलाते?' आनन्द के वचन कहा। इसलिए शान्ति को चाहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि रूप, शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श में इन्द्रिय-संयम करे।

"जंगल में बन्दर के समान, वन में चंचल-मृग के समान, मूर्ख के समान त्रस्त-हृदय और चंचल-नेत्रवाला न होवे। आँखों को नीची कर, चार हाथ दूर तक देखनेवाला बने। जंगली चंचल बन्दर के समान चित्त के वश में न जाये।"

"आँख का संयम ठीक है, ठीक है कान का संयम। नाक का संयम ठीक है और ठीक है जीभ का संयम। काय का संयम ठीक है, ठीक है वचन का संयम। मन का संयम ठीक है और ठीक है सब इन्द्रियों का संयम। सब इन्द्रियों के संयम से युक्त भिक्षु सारे दुःखों से छूट जाता है।

चीन में बौद्ध-धर्म

श्री वात्स्यायन

बौद्ध-धर्म २४६-२०७ ई० पूर्वमें चीन पहुँच चुका था। उदाहरण के लिये प्राचीन चीनी ग्रंथ लेह-त्सु में लिखा है कन्फ्यूसिअस ने पश्चिम के एक संत की चर्चा सुनी है "'जिसने बिना शासन के व्यवस्था स्थापित किया और बिना प्रचार के लोगों को सच्चा आचरण सिखाया है। वह इतना महान् और भव्य था कि शब्दों द्वारा उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती।" यह "पश्चिमी-देश" निश्चय ही भारत था और वह 'सन्त' तो बुद्ध थे ही। एक दूसरी चीनी पुस्तक में लिखा है कि चीन प्रान्त में चेंग राजा के चौथे वर्ष में पश्चिमी राज्य [भारत] के १८ भिक्षु बौद्ध ग्रंथ और

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बुद्ध की प्रतिमा लेकर वहाँ पहली बार आये। उन भिक्षुओं के नेता सिह ली-फांग थे। यह घटना २६८ ई०पूर्व की है।'

बौद्ध-धर्म के संगठित रूप से चीन पहुँचने की तिथि चाहे जो हो, पर चीनी साहित्य और जनश्रुति के अनुसार वह बुद्ध के जीवनकाल में यदि नहीं तो उनके परिनिर्वाण के कुछ ही बाद वह चीन पहुँच गया था। संभव है कि उसे उस समय सम्राट् का संरक्षण नहीं मिला हो, पर जनता के हृदय में उसे अवश्य स्थान मिल गया था। यह की असंभव नहीं कि रूढ़िवादी इतिहासज्ञों ने जानबूझ कर सरकारी कागजात में इसका प्रवेश नहीं होने दिया हो। पर ऐतिहासिक अध्ययन में अव्यवस्थित-अव्यवस्थित जन-श्रुति तथा जन-साहित्य का कम महत्त्व नहीं होता। चीनी लोगों का विश्वास है कि बुद्ध द्वारा कथित "पूर्व में बौद्धों के देश" से उनका अभिप्राय चीन से ही था। बुद्ध के जीवनकाल में चीन और भारत का संबन्ध हो चुका था-- इसमें तो संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है।

ऐतिहासिक दृष्टि से चीन और भारत का सिलसिले-वार और बाजाब्ता संबंध हान राजवंश [ई. पू. २० से २२१ ई० सन्] से शुरू होता है। हान-फा-पेन चुआन नामक पुस्तक के अनुसार बौद्धधर्म के चीन प्रवेश की कथा बड़ी मजेदार है। सम्राट मिंग-ती [५८-७५ ई० सन्] ने एक बार यह स्वप्न देखा कि १६ फीट ऊँचा एक स्वर्ण-निर्मित मनुष्य उड़ते हुए उसके राजमहल पर आया है। सम्राट इसका कोई अर्थ नहीं समझ सका। उसने अपने दरबारियों से इस अजीब स्वप्न का अर्थ पूछा। उनमें से एक ने कहा वह स्वर्णनिर्मित मनुष्य बुद्ध कहे जाने वाले पश्चिम [भारत] के महात्मा थे। सम्राट मिंग-ती इस स्वप्न से इतना प्रभावित हुआ कि उसने सेनापति त्साई-यिन और दीवान वांग-त्सुआन के साथ एक जत्था देकर बौद्ध-धर्म-ग्रंथ और बौद्ध भिक्षुओं को लाने के लिये भारत भेजा। इस उल्लेख से यह भी स्पष्ट है कि हान राजवंश से पहले ही बौद्धधर्म किसी न किसी रूप में चीन पहुँच चुका था। अगर ऐसा नहीं होता तो सम्राट-मिंग-ती को अपने मंत्रियों से बुद्ध के बारे में जानकारी कैसे मिल पाती? राजनैतिक दृष्टि से भी स्पष्ट है कि हान वंश के पहले से ही भारत और चीन का घनिष्ट संबंध था।

सम्राट मिंग-ती का राजदूत मंडल जब [६४ ई० सन् में] खोतान पहुँचा, तो वहाँ उसे दो बौद्ध भिक्षु चीन की ओर आते दिखाई पड़े। इनका नाम था काश्यप मातंग और धर्मरत्न [किसी-किसी ने इनका नाम गोभरण भी लिखा है] इनसे पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि ये दोनों बौद्धधर्म के प्रचार के लिये 'पूर्वी देश' (चीन) जा रहे हैं। यह जान सेनापति त्साई-चिन और उसके साथी बहुत प्रसन्न हुए और भारतीय धर्म प्रचारकों के साथ चीन वापस आ गये। सम्राट इन्हें पाकर बहुत खुश हुआ और लो-यंग में ही इनके लिये एक मठ बनवा दिया। प्रचारक मंडल ने भारतीय साहित्य और बुद्ध की मूर्तियाँ सफेद घोड़े पर लादकर चीन लाये थे, इसलिये उनके उस मठ का नाम की श्वेताश्व-मठ (पे. मा. स्सु) रखा गया। चीन का यह सबसे पहला मठ है और आज भी हुनान प्रान्त के लो-यंग शहर के बाहर अपूर्व सजधज के साथ क़ायम है।

बौद्ध धर्म को यद्यपि अब सम्राट का संरक्षण प्राप्त था, फिर भी कुछ लोगों ने इसे विदेशी-धर्म समझ कर तिर-स्कार करना शुरु किया। चीन में उन दिनों ताओवादी सम्प्रदाय का बड़ा जोर था। बौद्ध-धर्म का जनता और राज्य द्वारा स्वगत होते देख ताओवादी घबड़ा उठे और उन्होंने इसे विदेशी धर्म कह विरोध करना शुरू किया। उन्होंने अनेक ऐसी झूठी कहानियाँ गढ़ीं जिससे मालूम हो कि बुद्ध ताओत्सू से हीन थे। पर उत्साही बौद्ध कब पीछे रहने वाले थे! फिर तो कल्पना-प्रसूत और प्राचीनता की मुहर लगी, कितनी ही पुस्तकें तैयार हो गईं। इस साहित्य के अनुसार बौद्ध धर्म बहुत पहले ही चीन पहुँच चुका था। चीन में सैकड़ों-हजारों संस्कृत की पुस्तकें अनू-दित थीं, पर विरोध के कारण सम्राट शिह-हुआंग-ती की आज्ञा से सब पुस्तकें जला दी गईं। इन जनधारणाओं में सत्य का आधार तो रहता है, पर उससे किसी निष्कर्ष पर पहुँचना सरल नहीं होता।

ऐतिहासिक दृष्टि से चीन में हम सर्व-प्रथम भारतीय धर्म प्रचारक काश्यप-मातंग और धर्म-रत्न को ही मानेंगे। काश्यप-मातंग के बारे में हमें बहुत कम जानकारी मिलती है। भारत में काश्यप प्रायः किसी का नाम नहीं होता। यह तो गोत्र का नाम है, जो आज भी प्रचलित

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

है। विनय पिटक में भगवान् बुद्ध ने नाम के बजाय अपने से बड़े को गोत्र के नाम से ही सम्बोधन करने का आदेश दिया है। इसलिये 'काश्यप-मातंग' में काश्यप शब्द तो उनके गोत्र का ही द्योतक है। जो भी हो, जन-श्रुति के अनुसार इतना हमें मालूम होता है कि काश्यप मातंग मध्य-भारत के रहनेवाले थे। वे बौद्धधर्म के प्रकांड पंडित थे। कहा जाता है कि वे धर्म-प्रचार के लिये दक्षिण भारत गये और फिर अपने मित्र धर्मरत्न के साथ चीन। उनके साथी धर्म-रत्न भी मध्य भारत के ही रहनेवाले थे। और अपने पांडित्य के लिये काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। वास्तव में ये दोनों गृहत्यागी मित्र भारतीय संस्कृति के आकाश में सूर्य और चन्द्रमा के समान हैं।

काश्यप मातंग और धर्मरत्न ने किसी खास भारतीय ग्रंथ का चीनी में अनुवाद शायद नहीं किया। यद्यपि इन्हें अनेक ग्रंथों के अनुवाद का श्रेय प्राप्त है, पर आजकल सिर्फ एक ही पुस्तक प्राप्त है और उसे हम संग्रह या संकलन कहें तो ज्यादा अच्छा होगा। इस पुस्तक का नाम है 'बयालीस अध्यायका सूत्र'। वास्तव में यह संकलन तात्कालीन चीनी जनता के मनोनुकूल ही किया गया है। चीन में बौद्ध धर्म की प्रारंभिक अवस्था थी। इसलिये जनता को जल्द और असानी से समझ में आनेवाली वस्तु ही चाहिये थी। '४२ अध्याय का सूत्र' में निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डाला गया है। (१) बुद्ध का जन्म और बचपन, (२) उनके उपदेशों का सार, (३) बौद्ध सिद्धांतों का संक्षिप्त वर्णन, (४) भिक्षुओं के लिये पवित्र जीवन की आवश्यकता पर बुद्ध की बातचीत और (५) साधनामय जीवन बितानेवालों के लिये हिदायत [धूतांग आदि संबंधी शिक्षा] इस पुस्तक के बारे में लिखते हुए प्रो० तान-यून शान लिखते हैं--चीनी भाषा के प्राचीन ग्रंथोंके साथ इस पुस्तकका पूरा मेल है। अगर 'भगवान् बुद्ध ने कहा' शब्द निकाल दें तो पाठक उसे सिर्फ बौद्ध-धर्म की ही पुस्तक नहीं समझेगा। यह पुस्तक चीनी प्रकृति को ध्यानमें रखकर तैयार की गई है और यह उसके बिलकुल उपयुक्त है। दो हजार वर्ष गुजर चुके फिर भी चीनी जनता इस पुस्तक का परायण करती आ रही है।

भिक्षु काश्यप-मातंग और धर्म-रत्न के बाद धर्म-प्रचार के लिये चीन जाना तो भारतीय विद्वानों के लिये आम बात हो गई। स्थल और जल-दोनों ही रास्तों का उपयोग किया गया। हजारों संस्कृत ग्रन्थ घोड़ों पर लद कर चीन पहुँच गये। चीनी भाषा शायद संसार की कठिन भाषाओं में से एक है। पर इन भारतीय पंडितों ने चीनी भाषा पर अधिकार प्राप्त कर भारतीय साहित्य का चीनी अनुवाद तैयार किया। समस्त चीनी जनता को संस्कृत पढ़ना संभव नहीं था, इसलिये उन्हें उन्हीं की भाषा में धर्म का ज्ञान कराया गया। संभव है बुद्ध का यह वचन भी इसका कारण रहा हो—मेरे द्वारा उपदिष्टधर्म जनता के लिये है इसलिये जन-भाषा में ही ग्रहण करना चाहिये।

प्राक्-बौद्ध राजगृह

श्री अद्रीशचद्र वंद्योपाध्याय

राजगृह—जो पीछे बिगड़कर राजगिर हो गया, अति-प्राचीन है। सैकड़ों सदियों पूर्व वहाँ कितने राज्य बने तथा बिगड़े और बाद में भी अनेक साम्राज्यों का वहाँ उदय-अस्त हुआ, जिनके चिन्ह आज उपलब्ध नहीं। हम सम्प्रति उन्हें कितना अधिक पुनर्जीवित करने की कामना करते हैं। उनका इतिहास भारत के अन्धकार-युग से प्रारम्भ होता है। जब आदिम मनुष्यों ने पांच सुन्दर पर्वत शृंखलाओं से घिरी हुई उपत्यका को अपना निवास-स्थान बनाया और प्राच्य-रहस्यवाद ने उसे एक ऐसा पवित्र रंग प्रदान किया कि जो आज भी बार-बार विजित होने, लूट-मार तथा धर्म-परिवर्तन के पश्चात् भी वैसा ही सुनहला है। उस पर वृक्ष तथा पाषाण पूजक मानवों की, आर्यों के पूर्व आदिम निवासियों की, वैदिक-कालीन ब्राह्मणों की, बौद्धों की, जैनियों तथा आधुनिक हिन्दुओं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

की छाप पड़ी है। जैसे वहाँ के गर्म जल के स्रोत लोगों को स्वास्थ्य प्रदान करते हैं, वैसे ही राजगृह की विचार-धारा ने मनुष्य के दुःख में हाथ बँटाया। पश्चात्कालीन बातों ने उसके प्रारम्भ के धार्मिक-विचार कला-कौशल तथा वहाँ की संस्कृति को अन्धकार में डाल दिया।

हमारे इतिहास में उसके दर्जनों नाम मिलते हैं। मञ्जुश्री मूलकल्प[1] तथा जिन प्रभासूरि के तीर्थकला[2] के अनुसार इसका सबसे पुराना नाम कुशाग्रपुर है। यह नाम हुएनसांग[3] के समय तक चलता रहा। महाभारत[4] तथा सुत्तनिपात[5] के अनुसार यह नगर पाँच पहाड़ियों से घिरा हुआ था। इसके दूसरे नाम चनकपुर, ऋषभपुर वसुमती तथा बृहद्रथपुर थे। पालि और संस्कृत का राजगृह राजा मान्धाता का स्थान था। यहाँ बहुत से विजित राजा कैदी बनाकर रखे गये थे। प्राच्य भारत के इस प्राचीन राजधानी के धर्म का ज्ञान महाभारत से प्राप्त होता है, जिसमें मणिनाग तथा स्वस्तिक नाग का वर्णन है। जिससे यह ज्ञात होता है कि राजगृह के निवासियों में नाग-पूजा प्रचलित थी। नाग-पूजा अनार्य होती हुई भी पीछे पौराणिक-धर्म में सम्मिलित कर ली गई तथा मध्य-भारत और प्राच्य भारत में प्रचलित हो गई। प्रारम्भ में काष्ठ, पाषाण या हस्ति दन्त के बने नागों की पूजा की जाती थी। वर्षा-काल में सर्पों से बचने के लिए नाग-पूजा विशेषरूप से होती थी। धीरे-धीरे नाग-पूजा के साथ विविध कहानियाँ तथा किंवदन्तियाँ जुड़ गईं और उनको एक साकार रूप दे दिया गया। जो आज भी हिन्दुओं की मनसा तथा बौद्धों की जांगुली के रूप में वर्तमान् है। आज-कल के बस्ती जिले में नाग-जाति थी, जिसे कोसलनरेश ने मिटा दिया था।[6] रामग्राम का अभी तक निर्णय नहीं हो सका है, सम्भवतः बस्ती के भूयलाडीह का खँडहर उसी का नष्टावशेष है।[7] हुएनसांग ने लिखा है कि जब वह रामग्राम गया, तो उसे बताया गया कि जंगली हाथी तथा नाग उस भग्न स्तूप की पूजा करते थे, जिसमें भगवान् बुद्ध की पवित्र धातु रखी हुई थी। सारनाथ की खोदाई में भी चुनार के पत्थर का बना हुआ एक 'आलम्बन' मिला है, जिसपर रामग्राम के स्तूप की पूजा करनेवाले जंगली हाथी तथा नाग आदि दिखाये गये हैं। स्तूप के चारों ओर बने हुए नाग यह बतलाते हैं कि यह स्तूप रामग्राम के नागों से अधिष्ठित ही स्तूप है[8]। यह पाषाण खण्ड ई० पूर्व प्रथम शताब्दि का है। चूँकि इतने प्राचीन प्रस्तर-खण्ड पर अंकित यह कहानी प्राप्त हुई है, अतः इससे यह स्पष्ट है कि हुएनसांग की कहानी की अनुश्रुति बहुत ही प्राचीन है।

नाग-पूजा

नाग-पूजा आज भी दक्षिण भारत में प्रचलित है। पूर्वी पाकिस्तान, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा तथा बिहार में आज भी नाग-पूजा होती है। उत्तर प्रदेश में भी 'नाग-पंचमी' का उत्सव प्रतिवर्ष मनाया जाता है। सारनाथ की खोदाई में मनसा की एक मूर्ति मिली है, जो ई० सन् ६०० की होगी। महाभारत में लिखा है कि मणिनाग गिरिव्रज (राजगृह) के पास एक चोटी पर रहता था और मगध के लोग अनावृष्टि होने पर वर्षा के लिए उसकी पूजा करते थे।[9] प्राचीन नगर के ठीक मध्य में मनियर-मठ के खंडहरों में मिली हुई वस्तुओं से मणिनाग के मन्दिर का निश्चित करना सहज हो जाता है।

इस स्थान की पहली खोदाई बिहार शरीफ के हाकिम परगना (एस० डी० ओ०) श्री ब्राडले ने कराई थी। सन् १९०५–६ में डाक्टर थियोडोर ब्लास ने फिर खोदाई की और उसी वर्ष मार्शल ने सम्पूर्ण राजगृह-उपत्यका की सर्वे कराई। ब्लास को एक टीले के ऊपर भग्न जैन मन्दिर

१. कल्प ६३, २. वैभारगिर कल्प ५-४।
३. हुएनसांग, भाग २ पृष्ठ ४९। ४. सभापर्व २१,८।
५. सुत्तनिपात भाग २, ३८२।
६. जातक ४, १४४, धम्मपदठकथा १,३४।
७. रामग्राम को लिय जनपद की एक स्वतंत्र राजधानी थी, वहाँ के कोलियों ने अपने यहाँ भगवान् की अस्थि को निधान कर एक विशाल स्तूप बनवाया था। वह स्थान आज भी 'रामगाँव' ही कहा जाता है, जो गोरखपुर के पास रामगढ़ ताल के किनारे अवस्थित है—सम्पादक।
८. साहनीः सारनाथ म्यूजियम की सूची, पृष्ठ २००, प्लेट २३।
९. महाभारत २, १९, ९ इत्यादि।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मिला, उसको साफ करने के पश्चात् वहाँ नाग-पूजा के अवशेष मिले, जिससे प्रगट होता है कि १४९० तक वहाँ नाग-पूजा होती थी और नीचे खोदने पर वहाँ एक ऐसी बनावट का पता चला, जिसमें एक भीतर से खाली स्तूप था। इस खोखले स्तूप के चारों ओर इसके ऊपर ताखों में छोटी-छोटी मूर्तियाँ रखी थीं। उन मूर्तियों में भी गुप्त-कालीन कला की विशेषतायें पाई जाती हैं। उनकी शैली बाराणसी की मूर्ति-कला-शैली से मिलती-जुलती है। इनमें से किसी मूर्ति को भी बौद्ध मूर्ति नहीं कहा जा सकता। यह सभी हिन्दू मूर्तियाँ हैं जिसे हम लोग प्रायः भूल जाते हैं।

इस प्रकार प्रमाणित है कि गुप्त-काल तक राजगृह के मनियर-मठ के गोल खोखले स्तूप का सर्पपूजा से सम्बन्ध था। इस पूजा पर हिंदू, जैन तथा बौद्धों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। हिंदुओं और जैनों ने इस पूजा को बाद में अपना लिया। स्तूपों का निर्माण बुद्ध-काल से पूर्व भी होता था। महापरिनिर्वाण सूत्र से ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध के समय में ऐसे स्मारक चक्रवर्ती राजाओं के अस्थि-अवशेषों पर बनाये जाते थे। मथुरा के कंकाली-टीला से प्रगट होता है कि जैन भी स्तूप बनाया करते थे। शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में भी चौरे अर्थात् मिट्टी के टीले बनाये जाते थे। इन सब बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह खोखला स्तूप जो सुन्दर मूर्तियों द्वारा सुसज्जित है, न तो बौद्ध स्तूप है, न शिवलिंग है, प्रत्युत यह मणिनाग का मन्दिर है, जिसे लोगों ने बिगाड़ कर मनियर-मठ कर दिया। बाद की किंवदन्तियों ने इस खोखले स्तूप को एक कुएँ का रूप दे दिया, जिसमें किसी राजा का खजाना छिपा हुआ है तथा पानी बरसाने वाला राजा मणिनाग उस खजाने का रक्षक मणिकार के रूप में बदल गया। सोन-भण्डार गुहा को जिसमें जैनियों के तीर्थंकरों की मूर्तियाँ बनी हैं आज भी वहाँ के वृद्ध लोग कोष गृह कहते हैं।

सन् ३५-३६ की खोदाई में और भी मूल्यवान वस्तुएँ प्राप्त हुईं। उस गोल स्तूप के नीचे १२ फुट तक खोदाई हुई। इस खोदाई ने यह निश्चित कर दिया कि यह खोखला स्तूप गुप्तकाल में बना। यह स्तूप प्रचीन दो इमारतों के ऊपर बना है। सबसे निचला भाग ई० पूर्व प्रथम शताब्दि का समझा जाता है। ईंटों की बनावट से उस काल का ज्ञान होता है, किन्तु मेरे अध्ययन तथा श्री घोष के पाण्डेचेरी के पास रीकोमेण्डो के अन्वेषण ने यह प्रमाणित कर दिया है कि ईंटों की लम्बाई-चौड़ाई उनके पुरातन होने का निश्चयात्मक प्रमाण नहीं है। सन् ३५-३६ की खोदाई में मिट्टी के बने अनेक बर्तन प्राप्त हुए हैं। उनमें से अधिकतर टोंटीदार हैं। ये सब हाथ के बने हैं। फणाकार टोटियों तथा मृण्मयी अन्य वस्तुओं से उस स्थान एवं नागपूजा का सम्बन्ध प्रत्यक्ष हो जाता है। श्री चन्द्र का कथन ठीक ज्ञान पड़ता है कि "कई टोटियों वाले बर्तन बादल के प्रतीक हैं तथा राजगृह के लोग वर्षा के लिये इनसे प्रार्थना करते थे।"

यक्ष-पूजा

प्राचीनकाल में राजगृह के लोगों की संस्कृति में यक्ष-पूजा एक विशेष स्थान रखती थी। आर्यों के पूर्व के निवासियों के धर्म में यक्षपूजा भी थी, जिसे हिन्दू-धर्म ने नीचा स्थान देकर अपने धर्म में सम्मिलित कर लिया। स्वर्गीय डाक्टर कुमारस्वामी, स्व० श्री रामप्रसाद चन्द्र तथा वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसका अच्छा अध्ययन किया है। पटना की बृहद् मूर्ति—जो आज-कल कलकत्ता-म्यूजियम में है तथा बेसनगर, मथुरा और ग्वालियर की यक्ष-मूर्तियाँ इस बात की साक्षी हैं कि कभी पूर्वी भारत तथा ब्रह्मावर्त्त में यक्ष पूजा पूर्ण रूपेण प्रचलित थी। संयुत्त-निकाय में यह कथा आती है कि शिवक नामक यक्ष राजगृह में सीतवन का रक्षक था। उसके पास अद्भुत शक्तियाँ थीं। वहीं इन्दक यक्ष का भी नाम आता है, जो इन्द्रकूट पर्वत पर रहता था। गृद्धकूट पर्वत पर शक नामक यक्ष रहता था तथा बिपुल पर्वत पर एक अन्य यक्ष कुम्भीर या गम्भीर।

भारतीय इतिहास के विद्यार्थी सीतवन नाम से परिचित हैं, किन्तु उनका ध्यान इस बात पर कम गया है कि उस नाम का एक विशेष क्रिया से सम्बन्ध है। डॉ० विमला-चरण लाहा ने लिखा है कि सारत्थप्पकासिनी में उसे सुसानवन (श्मशानी जंगल) कहा गया है और इस वन में मृत्यु के उपरान्त शरीर को सड़ने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तथा मिट्टी में मिल जाने के लिए फेंक दिया जाता था। मृत-शरीर को जलाने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से है, किन्तु हड़प्पा में मिले दो कब्रिस्तानों से पता चलता है कि भारत के पाषाण-युग में भी मृत-शरीर को गाड़ने की प्रथा थी, पर राजगृह की इस प्रथा का पारसियों को छोड़कर, अन्यत्र कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। बौद्ध-धर्म के उत्थान के पूर्व के मगध की इस प्रथा पर पूर्ण ध्यान नहीं दिया गया है। सीतवन के स्थान का निश्चय श्री लाहा ने किया है। वैभार पर्वत के उत्तर वेणुवन के सामने यह रहा होगा। इसकी स्थिति आज-कल के गाँवों के पास जरासन्ध की बैठक के आगे होगी।

वृक्ष-पूजा

आज की भाँति पूर्वकाल में भी भारतीय जनता वृक्षों की पूजा करती थी। हड़प्पा की संस्कृति ने वृक्ष-पूजा को बड़ा ही प्राचीन बना दिया है। मगध में पीपल तथा न्यग्रोध के वृक्ष बड़े पवित्र समझे जाते थे। भगवान् बुद्ध ने गया के पास एक ऐसे वृक्ष के नीचे तपस्या की, जिसपर अधिष्ठित देवता से सुजाता ने मानता माँगी थी। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् तथागत अपने प्रथम प्रवचन देने के लिए मृगदाय गये थे, जहाँ मृगों को अभय-दान प्रदत्त था। राजगृह के 'गौतम-न्यग्रोध' का वर्णन मिलता है।

चैत्य-पूजा

चैत्यों का भी नाम बार-बार आता है। बाद में चैत्य शब्द का प्राचीन नाम विस्मृत हो गया। नालन्दा की खोदाई में विहारों के स्थानों को चैत्य-स्थान भी कहा गया है। चैत्य के अर्थ में कदाचित वृक्ष-पूजा भी निहित है। चैत्य एक बिना छत की इमारत या किसी वृक्ष के चारों ओर की वेष्टनी (रेलिंग) है। भरहुत, साँची तथा बुद्ध-गया में प्रायः ऐसे मन्दिरों को पत्थर पर खोदा हुआ पाते हैं। चैत्य-वृक्षों का नाम हमें कविताओं में मिलता है और हार्पकिन्स ने उन्हें पूजा-स्थान समझा है। पाषाण युग से ही एक ऐसी धारा भारतवर्ष में मिलती है कि वृक्ष-देवता भले और बुरे दोनों प्रकार के होते हैं। जातक-कथाओं में भी हम इनका वर्णन पाते हैं। हेमचन्द्रसूरि ने गुणशील चैत्य को 'चैत्य विद्योय शोभितम्' कहा है। इसी प्रकार का एक स्थान न्यग्रोधाराम था। पालि में 'आराम' शब्द का अर्थ है रहने का स्थान। इसीलिये वेणुवनाराम, अशोकाराम, घोषिताराम, जेतवनाराम आदि प्रायः सभी भिक्षु-विहारों के नामन्त में 'आराम' शब्द जुड़ा हुआ है।

सुजाता की खीर

प्रो० लालजीराम शुक्ल

जब भगवान् बुद्ध तपस्या करते करते क्षीणकाय हो गये थे, उस समय सुजाता उनके पास आई। वह भगवान् बुद्ध के लिये खीर बनाकर लाई थी। भगवान् बुद्ध ने उस खीर को खाया। तपस्या के समय उनके पाँच शिष्य हो गये थे। वे भी तपस्वी थे। भगवान् बुद्ध को खीर खाते देखकर वे आपस में कहने लगे कि भगवान् बुद्ध को अब बुद्धत्व प्राप्त नहीं होगा। पर हुआ उलटा ही। भगवान् बुद्ध को खीर खाने के पश्चात् ही वह ज्ञान प्राप्त हुआ जिससे वे संसार के दुखों से अपने आप छूट गये और दूसरों के उस दुखों को छुड़ाने में समर्थ हुये। ऐसा क्यों हुआ? जब मनुष्य असाधारण तपस्या करता है तो उसे उस तपस्या का अहंकार हो जाता है। अहंकार मन की असाधारण अवस्था है। अहंकार की अवस्था में मनुष्य अपने आपको महान् व्यक्ति मानने लगता है ऐसी अवस्था में उसकी कमजोरियाँ उसके समक्ष नहीं आतीं। उसके अचेतन मन में दबी वासनायें उसके मनमें छिपी पड़ी रहती हैं। इन वासनाओं की उपस्थिति रहते हुए एक ओर मनुष्य को सदा मानसिक अशान्ति रहती है और दूसरी ओर उसे ज्ञान लाभ नहीं होता, जिस शक्ति को सत्य की खोज में लगना चाहिये, वह अपनी भोग-वासनाओं को दबाने में ही लग जाती है। जब तक मनुष्य के भीतरी और बाहरी मन में एकत्व का भाव नहीं आता उसमें तबतक यह सामर्थ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नहीं होता कि वह किसी असाधारण पुरुषार्थ का काम कर सके। उसका मन सदा खिंचाव की अवस्था में ही बना रहता है। उसका चेतन मन उसे नीचे की ओर खींचते रहता है। इस प्रकार की खींचा-तानी में ही मनुष्य की सभी मानसिक शक्ति खर्च हो जाती है। फिर वह कोई बड़ा काम कैसे करे?

सुजाता की खीर खाने के पश्चात् भगवान् बुद्ध को मार-दर्शन हुआ, अर्थात् उन्हें अपनी दबी वासनाओं का ज्ञान हुआ। जिस मनुष्य को अपने महात्मा बन जाने का अहंकार रहता है, वह अपने आप में भोगेच्छाओं की उपस्थिति को स्वीकार नहीं करता। ये इच्छायें उसे ज्ञात नहीं होतीं। परन्तु वे उसके व्यक्तित्व के प्रतिकूल छिपे छिपे षडयंत्र करती रहती हैं। वे व्यक्ति के दृष्टिकोण को ही दूषित नहीं बना देतीं। जो व्यक्ति अहंकार की वृद्धि के कारण अपने छिपे दोषों को पहचान नहीं पाता, वह उन्हीं दोषों को दूसरे लोगों में देखने लगता है फिर वह इन लोगों के सुधार में लग जाता है। पर वह जितना ही इनकी सुधार करने की चेष्टा करता है, वे उतने ही बिगड़ते जाते हैं। पहले भोग-वासनाओं से सम्बन्धित दोष दूर के लोगों में दिखाई पड़ते हैं, पीछे वे कुछ नज़दीक के लोगों में भी दिखाई देने लगते हैं। अन्त में वे अपने बिलकुल समीपवर्त्ती लोगों में भी दिखाई देने लगते हैं। इस प्रकार वह दूसरों को सुधारते-सुधारते परेशान हो जाता है। वह आत्म भर्त्सना करते हुए अपने जीवन का अन्त कर देता है।

वास्तव में दूसरे लोगों के दोषों के प्रति दृष्टि का जाना और उनके सुधार में रुचि उत्पन्न होना, अपने आपके दोषों का और आत्म-सुधार की मनोवृत्ति का आरोपण मात्र है। दूसरे व्यक्ति के दोष हमें क्यों परेशान करते हैं? वे इसलिये ही परेशान करते हैं कि वे हम से सम्बन्धित हैं। यदि हम पहचान जायँ कि बाहर की कोई परिस्थिति मनुष्य को परेशान नहीं करती, उसका अपना स्वत्व ही उसे परेशान करता है तो हम अपनी अनेक मानसिक झंझटों से तथा दूसरों के साथ झगड़ों से मुक्त हो जायँ। दूसरों से झगड़ा करते समय वास्तव में मनुष्य अपने आप से ही झगड़ा करता है। यदि मनुष्य का अपना आन्तरिक स्वत्व उसका दुश्मन है तो वह ऐसे व्यक्ति से झगड़े में पड़ जाता है जो उसके लाख प्रयत्न करने पर भी उसकी बात को नहीं मानता और उसकी यशकीर्ति और सब प्रकार की सफलता को नष्ट करने पर तुल जाता है। मनुष्य की कुचली हुई वासनायें ही उसकी शत्रु होती हैं। अहंकार इन वासनाओं को पहचानने नहीं देता। पर प्रकृति तो मनुष्य का सुधार किसी न किसी प्रकार करती है। अतएव मनुष्य के अन्तिम सुधार के लिए वह उसे बाहरी परिस्थितियों में फँसा कर परेशान कर देती है। भीतरी प्रवृत्ति ही बाहरी परिस्थितियों के रूप में प्रकट हो जाती है। जो मनुष्य सच्ची आत्म-विजय प्राप्त कर चुका है, वही बाहरी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने में समर्थ होता है। जो अपने आपमें साम्य स्थापित कर चुका है, वह बाहरी परिस्थितियों से साम्य स्थापित करने में समर्थ होता है। जो अपने आपको नहीं जीत पाया, अर्थात् जो अपने आपसे साम्य स्थापित नहीं कर पाया, वह बाहरी प्रयास में कुछ दूर तक सफल होते हुए भी अन्त में असफल हो जाता है।

भारत के लोगों में आत्म-विजय प्राप्त करने की भारी अभिलाषा रहती है। पर आत्म-विजय क्या है? इसका ज्ञान हुए बिना आत्म-विजय कैसे प्राप्त हो सकती है? एक विजय प्रबल व्यक्ति की निर्बलता को दबाकर रखने में होती है। इस प्रकार शस्त्र-बल के द्वारा एक देश दूसरे देश पर राज्य करता रहता है। पर इस प्रकार का राज्य देर तक नहीं रहता। शस्त्र के बल से देश जीता जा सकता है, उसपर शस्त्रबल से राज्य नहीं किया जा सकता। इसके लिए देश के लोगों को अपने आप से मिलाया जाता है। कोई भी राज्य तब तक देर तक नहीं रहता, जबतक शासित लोग उसे नहीं चाहते। इसी प्रकार घोर तपस्या से भोग-वासनाओं को दबाकर कोई भी व्यक्ति मानसिक शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। ऐसी स्थिति में मन में दो भाग हो जाते हैं, और एक भाग दूसरे को वैर भाव से देखता है—मनुष्य का आदर्श—स्वत्व उसके भोगेच्छुक शत्रु आदर्श स्वत्व को। ऐसी अवस्था में कोई उपयोगी काम कैसे हो सकता है? उपयोगी काम करने के लिए न केवल मन की विभिन्न भागों में खिंचाव की अवस्था का अन्त होना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आवश्यक है, वरन् सबका सहयोग के साथ कार्य करना भी आवश्यक है।

आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से मनुष्य की कार्य-क्षमता उसकी निम्न कोटि की वासनाओं अथवा प्रवृत्तियों के उदात्तीकरण पर निर्भर करती है। शक्ति इन प्रवृत्तियों में ही है। विवेक के बल इस शक्ति का सदुपयोग कर सकता है। भगवान् बुद्ध ने जब सुजाता की खीर को स्वीकार किया तो उन्होंने तप के मार्ग को त्याग दिया। उन्होंने अपने पुराने तपस्या के अभिमान को छोड़ा। इससे उनके प्रशंसक उनके निंदक बन गये। पर इस प्रकार के अभिमान के त्याग से ही उन्हें मार का दर्शन हुआ अर्थात् अपनी अतृप्त छिपी वासनाओं का ज्ञान हुआ। इस ज्ञान के होने से वे उन वासनाओं की शक्ति का सदुपयोग अथवा उदात्तीकरण कर सके। जो मानसिक शक्ति उनके ज्ञान लाभ में बाधक हो रही थी वह पीछे संसार के कल्याण-हेतु पैंतालीस वर्ष तक अथकित कार्य करने में काममें आई। प्रत्येक व्यक्ति मार के प्रभाव में रहता है। जब तक वह मार की उपस्थिति को स्वीकार नहीं करता, वह उसका शत्रु होता है। जब वह उसकी उपस्थिति को स्वीकार कर लेता है, तो वही मार उसका मित्र बन जाता है और उसके कार्य को आगे बढ़ाता है। मार चेतना के अनजान में ही हानिकारक कार्य करता है। चेतन के प्रकाश में आने पर वह चेतना की शक्ति में ही परिणत हो जाता है। काम शक्ति का ज्ञान होने पर और उसका उदात्ती-करण होने पर वह ज्ञान में परिणत हो जाती है।

सुजाता की खीर मानवी प्रेम की प्रतीक है। भगवान् बुद्ध मानवी प्रेम से विरत हो गये थे। वे अपनी स्त्री और बच्चे को छोड़कर जंगल में तपस्या के लिये चले गये थे। इस प्रकार घर द्वार छोड़ने से लाभ नहीं हुआ। प्रेम के तिरस्कार से मानसिक खिंचाव बढ़ा। जब तक मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय में समरसता नहीं आती, मनुष्य शान्ति प्राप्त नहीं करता। भगवान् ने हृदय के भोगों की अवहेलना की। उन्हें उन्होंने बन्धन में डालनेवाला समझा। सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पाना ही उन्होंने अपने जीवन का ध्येय बनाया था। परन्तु हृदय के भोगों की अवहेलना करके मनुष्य शान्ति लाभ नहीं करता। सुजाता की खीर मानवी प्रेम की प्रतीक है और उसका स्वीकार करना मानवी प्रेम को स्वीकार करने का प्रतीक है। जो प्रेम पहले केवल भोगेच्छाओं की वृद्धि करता था, वही अब ज्ञान की वृद्धि का साधन बन गया। यह प्रेम का उदात्ती-करण है। मानवी प्रेम काम क्रीड़ाओं के रूप में प्रकाशित हो सकता है अथवा कहीं विश्व-कल्याण की भावनाओं के रूप में।

विश्वकल्याण की भावनायें उसी प्रेम का उदात्तीकरण है। जो गृहस्थ जीवन में स्त्री-प्रेम और बच्चों के प्रेम में प्रकाशित होता है। भगवान् बुद्ध ने जीवन भर मानव समाज की अनेक रूप से सेवा की। इस तरह उन्होंने अपने हृदय के भोगों को पूरा किया। उन्होंने भिक्षुओं को आदेश दिया कि सबकी भलाई करें। प्रौढ़ लोगों को पारलौकिक और नैतिक ज्ञान की शिक्षा दें और बालकों को सदाचारी एवं साक्षर बनावें। उन्हें शील का अभ्यास करावें। आज तक बौद्ध देश के भिक्षु इस काम को कर रहे हैं। इसलिये बौद्ध देश देर तक विदेशी शासन में नहीं रहते। वे समाज को सुसंगठित करके रखते और उसको अपने कर्तव्यों के प्रति सजग रखते हैं। बौद्ध देशों में जन-शिक्षा का कार्य इन्हीं के द्वारा होता है। बर्मा की प्रारम्भिक शिक्षा का भार प्रधानतः इन्हीं भिक्षुओं पर है।

सुजाता की खीर का भगवान् बुद्ध द्वारा ग्रहण यह बताता है कि संसार के बन्धनों से मुक्ति उससे भागकर नहीं होती, वरन् संसार के कल्याण के कार्य करके ही होती है। खीर का ग्रहण करना प्रेम के आदान-प्रदान को ग्रहण करना है। सुजाता की सेवा भगवान् बुद्ध ने स्वीकार की, फिर सुजाता की सेवा करना भी उनका धर्म हो जाता है जो जिसका खाता है उसे उसकी सेवा भी करनी पड़ती है। उन्होंने सुजाता को अपनी शिष्या बना लिया। पीछे उन्होंने अपनी स्त्री और पुत्र को भी अपना शिष्य बना लिया। उन्हें ज्ञान दिया। यह अपने कहाने वाले लोगों की उच्चकोटि की सेवा है। भगवान् बुद्ध का सारा संसार ही कुटुम्ब है। वे सभी को सुखी बनाने में लग गये। इस प्रकार का जीवन ही वास्तव में सफल जीवन कहलाता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यह ज्ञान और प्रेम के सामञ्जस्य का जीवन है। मस्तिष्क और हृदय की एकता का जीवन है। यही मध्यम मार्ग है और यही श्रेष्ठ है। संसार के सभी महान्‌पुरुषों ने, ज्ञानियों ने इसे ही सर्वोत्तम जीवन बताया है।

मूलगंध कुटी

श्री परमेश्वरी लाल गुप्त

सारनाथ एक अन्तराष्ट्रीय ख्यातिका स्थान है और काशी आनेवाला शायद ही देश-विदेश का कोई व्यक्ति हो जो एक बार सारनाथ न जाता हो। किन्तु सारनाथ जानेवाले लोगों में शायद ही कोई हो जिसका ध्यान मूलगन्ध-कुटीकी ओर गया हो।

मूलगन्ध-कुटी सारनाथ जानेवालों के लिए अपरिचित शब्द नहीं है। अनागरिक धर्मपालने वहाँ जिस बौद्ध मन्दिर को बनवाया और जो आज वहाँ की दार्शनिक वस्तु मानी जाती है उसका नाम 'मूल गन्ध कुटी विहार' है, किन्तु मेरा मतलब इस मूलगन्ध कुटी से नहीं है। मैं उस मूलगन्ध कुटी की बात कर रहा हूँ जहाँ भगवान् बुद्धगया में सम्बोधि प्राप्त करने के पश्चात्, सारनाथ आकर वर्षा काल में रहे थे।

मूलगन्ध कुटी का मूल स्वरूप

गंध कुटी

जब भगवान् बुद्ध सारनाथ आये थे उस समय यह जंगल था और मृगदाव के नाम से प्रसिद्ध था। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने यहाँ अपना धर्म-चक्र प्रवर्तन करने के पश्चात् यहाँ वर्षाकाल में निवास किया और वह निवास निश्चय ही उन्होंने किसी कुटी में किया था। जिस कुटी में उन्होंने निवास किया, उसका नाम बौद्ध साहित्य में 'गन्धकुटी' दिया गया है। भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उनका शरीर सुवासित था। उनके शरीर से सुगन्ध निकला करती थी। इस कारण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उनके निवास को गन्धकुटी कहा जाता था। इस प्रकार की गन्धकुटी श्रावस्ती के जेत-वन में भी थी। इस कारण दोनों कुटियों में अन्तर करने के लिए सारनाथ की कुटी को पहली कुटी होने के कारण 'मूलगन्ध कुटी' नाम दिया गया।

यह मूलगन्ध कुटी उस स्थान पर थी जहाँ आज सारनाथ जानेवाले दर्शकों को, पुरातत्व विभाग की कृपा से कुछ खंडहरों के अवशेष देखने को मिलते हैं। ये अवशेष गुप्तकालीन अथवा उससे पूर्व के मन्दिर और विहारों के हैं। उस मन्दिर का नाम मूलगन्ध कुटी था इस बात का पता उस खंडहर में मिले एक दीपस्तम्भ के लेख से लगता है। एक बौद्ध भिक्षु ने उस मन्दिर को दीपस्तम्भ दान में दिया था और उसने उस दान का जो उल्लेख उस पर किया है उसमें उसने मन्दिर का नाम दिया है।

काल के प्रभाव से यह मन्दिर आज ध्वस्त रूप में पड़ा है। इससे पूर्व भी इसकी दुर्दशा हो चुकी है। ग्यारहवीं शताब्दी में बंगाल के शासक महिपाल के भाई बसन्तपाल और स्थिरपाल काशी आये हुए थे। उनका एक शिलालेख यहाँ खुदाई के समय मिला जिसमें उन्होंने लिखा है कि काशी में शिव और दुर्गा के मन्दिर स्थापित करने के बाद उन्होंने गन्धकुटी, धर्म-चक्र और धर्मराजिका की मरम्मत करायी। बारहवीं शताब्दी में आमका नामक उपासिका ने भी इन स्थानों की मरम्मत करायी थी यह उसके अभिलेख से पता लगता है जिसका टूटा हुआ अंश प्राप्त हुआ है।

उसके बाद जयचन्द की पितामही, गोविन्दचन्द की पत्नी कुमार देवी के शिलालेख से पता लगता है कि उन्होंने अशोक द्वारा निर्मित धर्म-राजिका की मरम्मत कराकर धर्म-चक्र के निकट पुनः उपासना आरम्भ करायी जो बन्द हो गयी थी।

इसके बाद तो यहाँ तुर्की आक्रमण हुआ और सब कुछ धराशायी होकर मिट्टी में लुप्त हो गया और पुरातत्व प्रेमियों की कृपा से पिछले कुछ दशक पूर्व पुनः प्रकाश में आया है।

मन्दिरका स्वरूप

मूलगंध कुटी का गुप्तकालीन मन्दिर के स्वरूप का अनुमान खुदाई में मिले अवशेषों के आधार पर तैयार किये गये भूमान (ग्राउण्ड प्लान) तथा उस कालके लोग मिटार गाँवके अवशेष आदिको देखकर पर्सीब्राउन नामक विद्वान्ने किया है। हम उसके कल्पित मन्दिरका चित्र यहाँ दे रहे हैं जो निस्सन्देह वास्तविकताके लगभग अनुरूप ही समझा जा सकता है। इस चित्रसे अनुमान किया जा सकता है कि मन्दिर कितना भव्य रहा होगा। फाह्यान नामक चीनी यात्री सातवीं शताब्दीके आरम्भमें सारनाथ आया था। उसने लिखा है कि मूलगंध कुटीका मन्दिर दो सौ फुट ऊँचा था और उसमें बुद्ध भगवान्की मानव कद पीतल की मूर्ति थी। फाह्यानके कथनकी सत्यताका अनुमान खण्डहरोंके रूपमें अवशिष्ट दीवारोंकी मोटाईसे किया जा सकता है।

आज जहाँ धमेक स्तूप है वहां भगवान् बुद्ध ने धर्मचक्र प्रवर्तन किया था।* पहली बार अपने विचारों को पाँच व्यक्तियों के सम्मुख प्रकट किया था। इस स्थान पर अशोक ने जो स्तूप बनवाया था वह धर्मचक्र के नाम पर प्रसिद्ध हुआ और अब लोग उसी को धमेक कहते हैं†।

उससे लगा ही उत्तर की ओर मूलगन्ध कुटी का मन्दिर था। धमेक स्तूप के पास ही एक कुण्ड बना था जिसमें जल भरा रहता था ताकि यात्री हाथ पैर धोकर शुद्ध होकर मन्दिर में प्रवेश करें। इस कुण्ड से आगे मन्दिर का द्वार था। कुछ सीढ़ियां चढ़ने के बाद दर्शक मन्दिर के प्रवेश द्वार पर पहुँचता था और फिर सीढ़ियों से उतर कर मन्दिर के आंगन में जाता था। आंगन पार कर वह मन्दिर में पहुँचता था। मन्दिर का मुख

---

*भगवान् बुद्ध ने 'धम्मेक स्तूप' के स्थान पर धर्मचक्र प्रवर्तन नहीं किया था, प्रत्युत धर्मचक्र प्रवर्तन स्थान 'धर्मराजिक स्तूप' है। वह मूलगन्ध कुटी के पास है। वहीं पर बैठ कर तथागत ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को 'धम्मचक्क पवत्तन सुत्त' का उपदेश दिया था—सम्पादक।

†'धम्मेक' शब्द धमाक से कूदने से बना है, जो स्थानीय ग्रामीण जनता की कल्पना की देन है-सम्पादक।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सूर्यकी ओर था । उसके सामने मण्डप था जिसको पाकर दर्शक गर्भगृहतक पहुँचता था। मन्दिर के तीन ओर अर्धमंडप था । उत्तर ओर पश्चिम के अर्धमंडप में बुद्ध भगवान् की मूर्तियां थी और दक्षिण के मंडप के नीचे एक क्षत्रयुक्त स्तूप था जो अशोक कालीन बाड़ों से घिरा था। यह स्तूप सम्भवतः अशोक ने मूलगन्ध कुटी के स्थान पर बनवाया था इसके अवशेष आज भी अपने स्थान पर देखे जा सकते हैं।

मन्दिर के उत्तर की ओर सटा ही अशोक का सुप्रसिद्ध स्तम्भ था जिसका शीर्ष सारनाथ संग्रहाल में रखा हुआ है और आज हमारे गणतन्त्र का राजचिन्ह है। इस स्तम्भ पर अशोक का आदेश अंकित है जिसमें भिक्षु और भिक्षुणियों को संघ में फूट न डालने को कहा गया है।

स्तूप खोद कर जगतगंज बसा

मन्दिर के पश्चिमी भाग में धर्मराजिका स्तूप था जिसका अवशेष आज गोल चबूतरे के रूपमें बच रहा है। इस स्तूप को भी अशोक ने बनवाया था। यह स्तूप धमेक और चौखंडी स्तूप की भांति ही हमें बहुत कुछ अपने सम्पूर्ण रूप में देखने को मिल सकता था। किन्तु जगत सिंह ने उसकी ईंटों को उखड़वा डाला और लाकर जगतगंज को बसाया। इसी कारण लोग इस स्तूप को उस समय तक जगत सिंह स्तूप कहते रहे जब तक कुमार देवी के अभिलेख से उसका वास्तविक नाम धर्मराजिका नहीं मालूम हुआ। इस स्तूप के अन्दर एक पत्थर के बक्स के भीतर रत्न की मंजूषा में कुछ अस्थियाँ रखी हुईं जगत सिंह के आदमियों को मिली थीं। अस्थियों को तो उनके आदमियों ने गंगा में प्रवाह कर दिया। पत्थर के बक्स को उन्होंने वहीं छोड़ दिया जिसे बाद में कनिंघम महोदय ने खोदाई के समय प्राप्त किया और आज वह कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय में है। रत्नमंजूषा का पता नहीं लग सका कि क्या हुआ।

इस मन्दिर के उत्तर की ओर विहारों के अवशेष हैं जहां भिक्षु रहा करते थे।

खण्डहर के कोने पर खड़े होकर यदि हम इन तथ्यों को सामने रखकर कल्पना करें तो निस्सन्देह उसकी महत्ता हमारे सामने मूर्तिमान हो उठेगी।

(दैनिक "आज" से)

उनसे बहुत सीखना है

श्री सुमन वात्स्यायन

सदा से समाज में कुछ ऐसे लोग होते आये हैं जो समाज से पृथक् 'अपना' कुछ नहीं रखते। वे अपना अस्तित्व ही समाज में ऐसे मिला देते हैं कि उन्हें उससे पृथक् नहीं देखा जा सकता। भदन्त बोधानन्द जी महास्थविर ऐसे ही लोगों में से एक हैं। सन् १८७४ ई० में पुण्यधाम काशी में आपका जन्म हुआ था। जब छोटे थे, तभी आप के माता-पिता का देहान्त हो गया। आप बाल्यकाल से ही सत्य के अन्वेषक थे। इसीलिये साधुओं के साथ रहने का आपको काफी अवसर मिला। आपने अपने बारे में बहुत थोड़ा लिखा है। एक जगह आप लिखते हैं, "मैंने हिन्दू शास्त्रों और हिन्दू-संस्कृति का बड़ी गवेषणा के साथ अध्ययन किया, किन्तु मुझे शांति नहीं मिली। इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दू-धर्म में एक अति भीषण जन्मगत वर्ण-व्यवस्था है, जिसके कारण शूद्रों तथा अछूतों की अवस्था बड़ी दयनीय है। उन्हें धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और शिक्षा सम्बन्धी जीवन के उन्नति-विकास के सभी क्षेत्रों में नीचे गिराया गया है—उनके जन्म-सिद्ध मानवीय अधिकारों और उच्चाकांक्षाओं को बड़े कौशल और निर्दयता के साथ कुचला गया है। उच्च जातिके हिन्दू लोग वंशानुक्रम से हजारों वर्षों से जन्मगत वर्ण-व्यवस्था द्वारा उनके श्रम से उसे अनुचित लाभ उठा रहे हैं। इसे देखकर मेरा हृदय अत्यन्त दुखित और द्रवित हो गया।"

सन् १८९६ में दुर्भिक्ष पड़ा था। लंका के कुछ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बौद्ध-भिक्षु दुर्भिक्ष पीड़ितों की सेवा के लिये भारत आये थे। सौभाग्यवश पूज्य महास्थविर जी की उनसे भेंट हो गई। उन लंकावासी भिक्षुओं के सहवास से उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि भारत के लाखों साधु हमारे समाज की सेवा करने के बदले किस तरह समाज के भार बने हुये हैं। उनके विस्तृत अध्ययन ने उनके दिल में यह विचार दृढ़ कर दिया कि, "बौद्ध-धर्म भारत का मौलिक और सनातन धर्म है, एवं हिन्दुओं को सामाजिक विषमता व बुराइयों से मुक्त करके उन्हें एक सुसंगठित व समुन्नत राष्ट्र बना सकता है।" इसलिये उन्होंने आजन्म बौद्ध-धर्म के प्रचार का निश्चय किया।

१९१४ ई० में भदन्त कृपाशरण महास्थविर तथा गुणालंकार महास्थविर द्वारा हमारे महास्थविर ने विधिवत बौद्धभिक्षु की दीक्षा ली और तब से आज तक ये भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार करते चले आ रहे हैं।

१९३५–३६ की बात है। पूज्य आनन्द जी से मैं कुछ सवाल पूछ रहा था। प्रसंगवश उन्होंने महास्थविर बोधानन्द जी का नाम लिया। पहले पहल उसी समय मैंने महास्थविर का नाम सुना था। कुछ दिनों बाद मैंने उन्हें एक पत्र लिख कर मिलने की इच्छा प्रकट की। जवाब मिला कि वे मूलगंध कुटी विहार के वार्षिकोत्सव पर आने वाले हैं और उस समय उनसे बातचीत का काफी समय मिलेगा।

उत्सव के पाँच-चार रोज पहले ही महास्थविर सारनाथ पहुँच गये। नमस्कार करके पूछा, 'भन्ते सामान कहाँ ?' हँसते हुए उन्होंने उत्तर दिया, 'ये क्या पड़े हैं ?' सामान क्या था ! एक बड़ी बाल्टी जिसमें दैनिक व्यवहार की चीजें और पुराने ढंग के यात्रियों के दो-मुँहा एक थैली। मैंने तो सोचा था कि उनके पास चमड़े का सूटकेस पुस्तकों से भरा होगा और होल्डाल में मुलायम बिस्तर। पर इन चीजों का वहाँ पता नहीं था।

सारनाथ से चलते समय महास्थविर की गठरी-पोटरी का तौर-तरीका तो वही रहा, हाँ उसमें असाधारण वृद्धि अवश्य हो गई थी। कारण, उनका विहार है लखनऊ में जहाँ बौद्ध-यात्री बहुत कम पहुँच पाते हैं। इसलिये विहारोपयोगी चीजों का बड़ा अभाव रहता है। सारनाथ स्टेशन पर आकर तो हँसे बगैर मैं नहीं रह सका—क्योंकि उनके नये सामानों में लंका के बने चार झाड़ू भी थे। वास्तव में लंका के ये झाड़ू बहुत अच्छे होते हैं। झाड़ते समय झुकना नहीं पड़ता है। नारियल के बने इन झाड़ुओं में डेढ़-दो गज की छड़ी लगी रहती है जिससे खड़े-खड़े झाड़ू दे सकते हैं।

महास्थविर अत्यधिक सफाई पसंद व्यक्ति हैं। आंतरिक और बाह्य दोनों ही सफाई पर वे समान रूप से ध्यान देते हैं। एक बार उनके 'बुद्ध-विहार' में मैं ठहरा। जाते ही पखाना, पेशाब करने की जगह, स्नान घर आदि के साथ साथ उन्होंने यह भी बताया कि किस बर्तन से पानी उठाकर फिर किस बर्तन में रखना चाहिये, पाखाना के बाद पानी लेते समय कितना खिसकने से वह पानी किधर बह जायगा आदि—आदि। उस समय मुझे उनका यह सब बताना ज्यादा अच्छा नहीं लगा, क्योंकि मैं थोड़े ही समय के लिये तो वहाँ गया ही था, फिर ये सब बातें कोई इतनी गंभीरता से ध्यान देने की तो नहीं है।

पाखाने से निकल मैं हाथ धो रहा था। उधर महास्थविर पाखाने की ओर जा रहे थे। मैंने समझा वे पाखाना जा रहे हैं। मग तो है मेरे पास। मग में पानी लेकर मैं उन्हें देने चला। वहाँ देखता हूँ कि पानी लेते समय मैंने जो इधर-उधर पानी गिरा दिया है उसे वे हाथ से साफ कर रहे हैं। मैं बड़ा शर्मिन्दा हुआ और उनकी आँख बचाकर लौट आया। कुछ जापानियों के साथ रहने और जापानी रहन-सहन को जानने के बाद ही मुझे पाखाने और पेशाब-पाखाने की सफाई का महत्त्व समझ में आया। पूज्य बापू इसपर कितना जोर देते थे—शायद सबसे ज्यादा।

आज महास्थविर कहीं जाने-आने में सर्वथा असमर्थ हैं। जब तक शरीर में ताकत रही वे एक प्रकार से भिक्षा वृत्ति वाले ही रहे। लखनऊ में कुछ हिन्दू उनके बड़े भक्त हैं—मेरा ख्याल है उनमें सब ब्राह्मणेतर ही हैं। क्योंकि ब्राह्मण नामधारी से महास्थविर का निभना संभव नहीं है। हाँ, तो सप्ताह में सात दिन होते हैं और प्रत्येक दिन

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एक-एक उपासक के घर भोजन का बँधान था। निश्चित समय पर खड़ाऊँ पहने हुए महास्थविर उपासक के घर पहुँच जाते। भोजनोपरांत थोड़ी धार्मिक चर्चा होती और फिर विहार वापिस आ जाते। भगवान् बुद्ध जब किसी के घर भोजन के लिये जाते तो भोजनोपरांत धर्मोपदेश का कार्यक्रम अवश्य रहता। शायद यह भी उसी की एक कड़ी थी।

महास्थविर का शिक्षण किसी अंग्रेजी विश्वविद्यालय में नहीं हुआ है, इसलिये पैसे खर्च कर, बिना पढ़े-लिखे कोई डिग्री भी उनके पास नहीं है। उनके दीर्घ जीवन के लिये सारा विश्व ही एक विश्वविद्यालय है। आज जब वे पढ़ने-लिखने में भी सर्वथा असमर्थ हैं, उनकी ज्ञान-पिपासा ज्यों-की-त्यों बनी है। कुछ लोगों को पुस्तकों के संग्रह की प्रबल इच्छा रहती है, पर पढ़ने की नहीं। किन्तु महास्थविर में दोनों एक साथ हैं। अंग्रेजी वे विशेष नहीं जानते पर हिन्दी, बँगला, पालि, संस्कृत आदि के ग्रंथों को उन्होंने खूब पढ़ा है और मनन किया है। इन भाषाओं के अलावा अंग्रेजी पुस्तकों का भी उनके यहाँ अच्छा संग्रह है। हमारे पास जो पुस्तकें रहती हैं वे बहुत अल्पायु होती हैं, क्योंकि हम उनकी सुरक्षा का बिलकुल ख्याल नहीं करते। महास्थविर इसके विपरीत हैं। पुस्तकों का गहन अध्ययन और उन्हें प्राण के समान हिफाजत करना सीखना हो तो दस-पाँच दिन महास्थविर के यहाँ अवश्य रहना चाहिये। पुस्तकें ज्ञान के भंडार हैं। अतः उनकी सुरक्षा सर्वप्रथम होनी चाहिये। इसी भावना की कमी के कारण ही तो हजारों संस्कृत की पुस्तकें आज भारत में नष्ट हो चुकी हैं, पर ज्ञान-राशिको सुरक्षित रखने के महत्व को समझने वाले तिब्बती और चीनियों ने दो हजार वर्षों से उन्हें मूल और अनुवाद रूप में सुरक्षित रखा है।

महास्थविर का हृदय अत्यधिक कोमल है। पददलित और शोषित जनता के उद्धार के लिये वे अपनी शक्ति भर सदा प्रयत्नशील रहे हैं। 'हरिजन' उद्धार का काम उन्होंने सवर्णों की 'दया' के भरोसे नहीं छोड़ा। उनका विश्वास है कि तथाकथित उच्चवर्ण द्वारा कभी भी 'अछूत' कहे जाने वालों का कष्ट नहीं दूर हो सकता है। यह प्रयत्न बिल्ली द्वारा चूहे की सुरक्षा के समान है। अतः शूद्रों को खुद अपने हित-अहित को समझना चाहिये और सम्मिलित संगठन द्वारा सदियों की दासता से मुक्त होना चाहिये।

महास्थविर के विचार में सवर्णों और शूद्रोंकी विषमता केवल सामाजिक नहीं है और न इस आन्दोलन का अंत छूत छात तक ही सीमित है। इस भेद का आधार विशुद्ध आर्थिक है। यह विजयी द्वारा विजित को दासता के बन्धन में जकड़े रखना है। शूद्र को वे भारत के मूल निवासी मानते हैं और सवर्णों (आर्यों) को विदेशी। उनकी राय में, "इस देश के आदिम निवासी साँवले रंग के थे। उनके चेहरे गोल, आँखें कुछ बड़ी थीं। ये लोग आर्यों के देवताओं को नहीं मानते थे और न अग्नि में हवन करते थे। इनके सैकड़ों पत्थरों के नगर और किले थे। ये लोग बड़े धनवान् और बुद्धिमान् भी थे। किन्तु आर्यों की तरह इनमें संगठन-शक्ति और विजय की लिप्सा नहीं थी। आर्यों का इस देश के मूल निवासियों से वैसा ही संबंध है जैसा कि एक विजेता-जाति का एक विजित जाति के साथ होता है। इस देश के वर्तमान द्विजाति नामधारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य मूल में उन्हीं आर्यों (विदेशी विजेताओं) की संतान हैं और शेष शूद्र तथा अति शूद्र जाति के लगों के पूर्वज इस देश के मूल या आदिम निवासी हैं।"

महास्थविर बड़े ही अध्ययनशील और विचारक हैं। आपने हिन्दू धर्म-ग्रन्थों का बहुत गहराई से अध्ययन किया है। आपकी स्मरण शक्ति भी विचित्र है। इन पंक्तियों के लेखक को यदि उनसे कभी असमय में भी कुछ सुनने की इच्छा हुई है तो उसने दबे जबान से ब्राह्मणवाद के पक्ष में कुछ कह दिया है। फिर क्या कहना। मानों सूखी घास के ढेर में आग लग गई हो। वेद की ऋचा से लेकर तुलसीदासजी की चौपाई के सैकड़ों उदाहरण उनके मुख से सुन लीजिये।

आपने हिन्दीमें कई पुस्तकें लिखी हैं। (१) 'मूल भारतवासी और आर्य' नामकी पुस्तक आपके गवेषणापूर्ण अध्ययन का सुन्दर फल है। (२) 'भगवान् गौतम बुद्ध' नामकी पुस्तक में बुद्ध की जीवनी और उनके उपदेश का बहुत ही सरल और मार्मिक भाषा में वर्णन किया गया है। आपकी तीसरी रचना जिसके लिए भारतीय बौद्ध सभा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आपके ऋणी रहेंगे, है (३) 'बौद्ध-चर्या-पद्धति' इस पुस्तक में बौद्ध गृहस्थ के कृत्य का दिग्दर्शन कराया गया है। हिन्दी में अब तक ऐसी कोई पुस्तक नहीं थी। इसके अतिरिक्त आपने समय समय पर अनेक निबन्ध लिखा है। आपके निबन्ध सदा ठोस और सुलझे हुए होते हैं।

महास्थविर ने सन् १९२५ ई० में लखनऊ के रिसालदार बाग में एक "बुद्ध-विहार" का निर्माण कराया। इस विहार में एक "धर्मानुसन्धान पुस्तकालय" भी है जिसमें लगभग पाँच हजार पुस्तकें हैं। शारीरिक दुर्बलता के कारण खुद महास्थविर भी अब यहीं रहते हैं। आपके पदचिह्न पर चलनेवाले, परम सहृदय तरुण भिक्षु प्रज्ञानन्दजी भगवान् बुद्ध के आनन्द की तरह सदा सेवा में लगे रहते हैं।

महास्थविर बोधानन्द जी का जीवन, बुद्ध परम्परा की ही एक कड़ी है, जो भारतीय शाक्य पुत्र-पुत्रियों को सदा अनुप्राणित करता रहेगा। उनका चरित्र एक उच्चादर्श से प्रेरित है; इसलिए वहाँ असफलता है ही नहीं। हम उनसे बहुत सीख सकते हैं।

मैं पेट का दूत हूँ

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा के राज्य करते समय, बोधिसत्व उसका पुत्र हो, आयु प्राप्त होने पर तक्षशिला में शिल्प सीख, पिता के मरने पर राजा बना। वह भोजन के बारे में बहुत शुद्धाशुद्धका विचार करने वाला था। इसलिए उसका नाम भोजन सुद्धिक-राजा पड़ा। वह ऐसा भोजन करता था कि उसकी एक थाली का मूल्य एक लाख होता। खाते समय घर के अन्दर बैठ कर नहीं खाता था। अपने भोजन-विधान को देखने वाली जनता को पुण्य देने की इच्छा से वह राज द्वार पर रत्न मण्डप बनवा, भोजने के समय उसे आलंकृत करा, उठे हुए स्वर्णमय श्वेत छत्र के नीचे राज-सिंहासन पर बैठ, क्षत्रिय कन्याओं से घिर कर एक लाख की सोने की थाली में सात प्रकार का भोजन करता था।

एक अतिलोभी मनुष्य ने उसके भोजन-विधान को देख, उस भोजन के खाने की इच्छा को न रोक सकने पर सोचा—यह उपाय है। वह वस्त्रों को कस कर पहन, हाथ उठा कर-' भो! मैं दूत हूँ, दूत हूँ, "चिल्लाता हुआ राजा के पास पहुँचा।

उस समय उस जनपद में "दूत हूँ" कहनेवाले को कोई नहीं रोकता था। इसलिए जनता ने दो हिस्सों में विभक्त हो उसे रास्ता दे दिया। उसने जल्दी से आ, राजा की थाली से भात का एक कौर लेकर मुँह में डाल लिया। "इसका सिर काटूँगा" सोच तलवारधारी (अंग-रक्षक) ने तलवार उठायी। राजा ने मना किया—मत मारो। "मत डरो, भोजन करो" कह राजा हाथ धोकर बैठा। भोजन कर चुकने पर अपने पीने का पानी तथा पान देखकर पूछा—हे पुरुष तू "दूत हूँ" कहता है, तू किसका दूत है? "महाराज! मैं तृष्णा का दूत हूँ, पेट का दूत हूँ। तृष्णा ने मुझे आज्ञा दे, दूत बनाकर भेजा है—"तू जा"! यह कह उसने इस प्रकार कहा:—मैं उस पेट का दूत हूँ जिसके वशीभूत होकर (लोग) दूर, अपने शत्रु के यहाँ भी माँगने जाते हैं। हे राजन! मुझ पर क्रोध न करें मैं उस पेट का दूत हूँ जिसके वश में सभी लोग दिन-रात रहते हैं। हे राजन्! मुझ पर क्रोध न करें।"

राजा ने उसकी बात सुनकर सोचा—सचमुच प्राणी पेट के दूत हैं, तृष्णा के वशीभूत हो विचरते हैं। तृष्णा ही प्राणियों को चलाती है। इस व्यक्ति ने ठीक कहा है, सोच सन्तुष्ट हो राजा ने कहा:—

"हे ब्राह्मण! तुझे बैलों के साथ हजार लाख गौवें देता हूँ। दूत दूत को कैसे न दे? हम भी उसी तृष्णा के दूत हैं।"

इस प्रकार कह, 'इस पुरुष द्वारा मुझे अपूर्व बातरूपी धन मिला' सोच उसे धन दिया। (जातक से)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बौद्ध-जीवन

श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी

बौद्ध-जीवन का तात्पर्य विकसित-जीवन, आर्य-जीवन या श्रेष्ठ-जीवन है। जो लोग भगवान् बुद्ध पर श्रद्धा रखते हैं या भगवान् बुद्ध को अपना शास्ता मानते हैं, उन्हें बौद्ध कहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि बौद्ध लोग भगवान् गौतम बुद्ध के जीवन को आदर्श-जीवन मानते हैं। अतः गौतम बुद्ध का जीवन कैसा था और वह आदर्श क्यों हैं? इन प्रश्नों पर विचार करना स्वाभाविक है।

वास्तव में मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। मनुष्य मनन करता है और यही उसकी सच्ची व्याख्या है। इस दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों का पुञ्ज है। वाणी मनुष्य के विचार प्रगट करने का एक साधन है। मनुष्य के सच्चे विचार वही होते हैं, जो वाणी द्वारा उसके आचार में उतरते हैं। इसका यह अर्थ है कि मनुष्य के वचन और आचरण में मेल और सुसंबद्धता चाहिए। सन्त तुकाराम महाराज ने कहा है—

"बोले तैसा चाले त्याची वंदावी पाउलें"

अर्थात् जो मनुष्य अपने वचन के अनुसार चलता है, वह वन्दनीय है।

इस प्राक्कथन के साथ अब हम देखेंगे कि भगवान् गौतम बुद्ध का जीवन कैसा था? यह बात हमें स्पष्ट कर देनी है कि जैसे आकाश में उड़ते हुए पक्षी का मार्ग देखना कठिन है, वैसे ही भगवान् बुद्ध के जीवन का आंकलन करना कठिन है, तथापि हम उनके जीवन को जानने का प्रयत्न करेंगे।

भगवान् बुद्ध ने सिंहनाद कर कहा—"सुनी हुई बातों पर विश्वास मत करो। परम्परा पर विश्वास मत करो। बहुत लोग किसी बात को मानते हैं, अतः वह सत्य होगी ऐसा मत मानो। केवल तुम्हारे धर्म-ग्रन्थों में कोई बात लिखी है, अतः वह सत्य है—ऐसा मत मानो। केवल तुम्हारे धर्मगुरु तुमको कोई बात कहते हैं अतः वह सत्य होगी—ऐसा मत समझो। तुम अपनी स्वतंत्र बुद्धि से विचार करो और जो बात तुम्हारे सद्विवेक से बुद्धि को जँचती हो और वह केवल तुम्हारे लिए ही नहीं, किन्तु समस्त विश्व के लिए कल्याणकारी हो तो उसे ग्रहण करो और उसके लिए अपना प्राण तक अर्पण करने के लिए तैयार हो जाओ।"

आगे भगवान् बुद्ध कहते हैं—'केवल मेरे कहने मात्र से मेरी कही हुई बात को मत ग्रहण करो। उसे भी तुम अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसो।" तथागत कहते हैं—

"तापाच्छेदाच्च निकषात् सुवर्णमिव पंडितः।
परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं मद्वचो न तु गौरवात्॥"

इतनी उदार, भव्य और भय रहित वाणी आपको शायद ही कहीं मिलेगी। इस घोषणा से बुद्ध ने मनुष्य को परम्परा और ग्रन्थ-प्रामाण्य से मुक्त कर दिया। वे कहते हैं—"हे मनुष्य सब सुखों का आकर जो प्रकाश है वह तेरे ही हाथ में है, उसके लिए तुझे किसी दूसरे पर निर्भर रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान् बुद्ध केवल घोषणा कर चुप नहीं बैठे। उन्होंने सब राज्य-सुखों को ठुकराया और भिक्षा-मात्र हाथ में लेकर ४५ वर्ष तक अविश्राम अकिंचन और भय रहित वृत्ति से घूमा तथा संसार में धर्म का साम्राज्य स्थापित किया। यह बुद्धका त्याग अपूर्व है—ऐसा कौन नहीं मानेगा? बुद्ध ने अपनी विचार-धारा से मनुष्य को इस संसार में स्वयम्भू स्थान दिया। मनुष्य किसी दूसरे व्यक्ति या शक्ति के हाथ की कठपुतली न होकर वह स्वयं अपना स्वामी है—यह बुद्ध-शासन का सार है। "नर करणी करे तो नर का नारायण होत"—यही बुद्ध शिक्षा है। यही बुद्ध की संसार को अमर देन है। वास्तव में उस समय लोग रूढि, शुष्क तर्क और मिथ्या आडम्बर को ही धर्म मानते थे। ऐसी विचार धारा में सदाचार और आत्म-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

संयम को बिल्कुल स्थान नहीं है। अतः उस समय सदाचार का बाजार-भाव बहुत कम हो गया था। बुद्ध ने संसार में सदाचार को मूल्यवान् बनाया। महापुरुष अधर्म का नाश धर्म से करते हैं, असत्य का नाश सत्य से करते हैं, हिंसा का नाश अहिंसा से करते हैं। इसी नियम के अनुसार बुद्ध ने अधर्म का नाश 'धर्मचक्र' से किया, (यह चक्र प्रगति का बोध-चिन्ह है, इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य जब धर्म से चलता है, तब वह सुखी होता है अन्यथा नहीं) धर्म अर्थात् सत्य, न्याय, नीति का मार्ग। जैसे नदी पार जाने के लिए नाव होती है, वैसे ही मैं तुम्हें भवसागर को पार करने के लिए धर्म का उपदेश करता हूँ—यह बुद्ध वचन है। धर्म से चले बिना मनुष्य सुखी ही नहीं हो सकता—यह बुद्ध वचन का सार है। धर्मसे चलने वाला एक निर्धन मनुष्य अधर्म से चलने वाले अमीर से सुखी होता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। अर्थात् इस बात को हम मानते हैं कि सम्पति के अभाव से मनुष्य का जीवन दुखी होगा, परन्तु सम्पत्ति के प्रभाव से उसका जीवन सुखी होगा—ऐसा भी हम नहीं मान सकते। अतः ऐहिक सम्पत्ति मनुष्य के दुःख-निवारण का एक साधन है। वह स्वयं सुख का साधन नहीं है। उदाहरणार्थ शीत, वर्षा या धूप से बचने के लिए मनुष्य को मकान की आवश्यकता है। मकान का उपयोग इतना ही है। वह मनुष्य को स्वयं सुख का साधन नहीं हो सकता है। मनुष्य जब धर्म से चलता है, न्याय से चलता है, नीति से चलता है, तभी वह सुखी होता है अन्यथा नहीं। अतः भगवान् बुद्ध मनुष्य को धर्म से चलने की बारम्बार प्रेरणा करते हैं।

धर्म से चलना कोई आसान काम नहीं है। मनुष्य तलवार की धार पर से चल सकेगा, परन्तु वह धर्म से नहीं चल सकता। धर्म से चलना अर्थात् अपने पूर्व के संस्कार नष्ट कर मन शुद्ध करना। वास्तव में सम्पत्ति दो प्रकार की होती है। एक शारीरिक या जागतिक सम्पत्ति और दूसरी मानसिक सम्पत्ति। जागतिक सम्पत्ति अर्थात् धन, स्त्री, पुत्र इत्यादि। मानसिक सम्पत्ति अर्थात् मनुष्य के मन पर पड़े हुए पूर्व-संस्कार। यथार्थ में मानसिक सम्पत्ति एक महान् मानसिक रोग है। मैं हिन्दू हूँ, तू मुसलमान है, मैं ब्राह्मण हूँ, तू अब्राह्मण है, मैं वैदिक हूँ, तू अवैदिक है, मैं ईश्वर को मानने वाला हूँ, तू ईश्वर को नहीं मानने वाला है इत्यादि सब मानसिक सम्पत्ति के उदाहरण हैं। जागतिक सम्पत्ति जिस प्रकार मनुष्य के विकास में एक रुकावट होती है, वैसे ही मानसिक सम्पत्ति भी उसकी अवनति का एक कारण है। अतः मैं एक शुद्ध मानव हूँ—ऐसा जब तक मनुष्य आत्म-विश्वास से नहीं कहता, तब तक वह शुद्ध हुआ है—ऐसा हम नहीं कह सकते। इसी कारण बुद्ध-शासन में शुष्क तर्क को बिलकुल स्थान नहीं है। अतः इस संसार का निर्माता कोई है या नहीं—इस शुष्क तर्कवाद से भगवान् बुद्ध अलिप्त रहे। इस सम्बन्ध में बुद्ध का एक उदाहरण पर्याप्त है। वे कहते हैं—"ऐसा मानो कि एक मनुष्य विषैले वाण से विद्ध होकर मरणोन्मुख पड़ा है। ऐसी दशा में एक वैद्य उसकी ओर आता है और वाण निकालने का प्रयत्न करता है। परन्तु ऐसे वैद्य को अगर वह दुःखी मनुष्य कहे कि मैं तब तक वाण नहीं निकालने दूँगा, जब तक मैं नहीं जानता कि यह किसने मारा, क्यों मारा? ऐसा मनुष्य उस अपने दुःख के साथ ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा और उसका दुःख नहीं दूर हो सकेगा। अतः भगवान् बुद्ध कहते हैं कि वाण किसने मारा? यह प्रश्न निरर्थक और हानिकारक है। दुःख का कारण जानकर उसे ही नष्ट करने के लिए कटिबद्ध हो जाय—यही भगवान् बुद्ध का संसार को अमर सन्देश है। दुःख और दुःख से मुक्ति यही बुद्ध धर्म है। दुःख से मुक्ति अर्थात् परम सुख की प्राप्ति। अतः बुद्ध कहते हैं—"निब्बाणं परमं सुखं"

भगवान् बुद्ध की विचार धारा ही आज संसार को तार सकती है-यह निर्विवाद है। ईश्वर ने इस विश्व का निर्माण किया है और वही उसका नियंत्रण करता है—ऐसी विचार धारा से मनुष्य अपनी जिम्मेदारी दूसरे पर फेंक स्वयं निरंकुश हो चलने के लिए युक्त होता है। 'देव तारी देव मारी' ऐसी विचार धारा से मनुष्य अपना उद्धार ही नहीं कर सकता। अगर ईश्वर ही सब कुछ करता है तो हमें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। इससे मनुष्य निष्क्रिय बनता है और हमेशा के लिए वह ऐसे ईश्वर के हाथ की कठपुतली बन जाता है। फिर मोक्ष और शान्ति-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ये शब्द ही निरर्थक हो जाते हैं। मनुष्य मुक्त होता है—इसका अर्थ ही यह है कि मनुष्य किसी दूसरी अन्य शक्ति या व्यक्ति पर निर्भर न रह कर वह आत्मवशी बनता है। जो मनुष्य आत्मवशी है, वह दूसरे किसी पर कैसे निर्भर रह सकता है? अतः परवशता दुःख और आत्मवशता सुख है—यही बुद्ध-वचनामृत है। इसी कारण भगवान् बुद्ध ने चित्त-शुद्धि पर जोर दिया है। तथागत कहते हैं—

सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

अर्थ---पाप न करना, पुण्य का संचय करना और अपने चित्त को शुद्ध करना यही बुद्धों की शिक्षा है।

सन्त तुकाराम भी चित्त-शुद्धि पर जोर देते हैं। वे कहते हैं—

"सकलां चे पायां माझे दण्डवत।
आपुलाले चित्त शुद्ध करा॥"

चित्त-शुद्धि के लिए मनुष्य को सदाचार पर ही जोर देना चाहिए। अतः सदाचार बौद्ध-जीवन की नींव है। पञ्चशील में कहा गया है—

१. मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा को ग्रहण करता हूँ।

२. मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा को ग्रहण करता हूँ।

३. मैं व्यभिचार से विरत रहने की शिक्षा को ग्रहण करता हूँ।

४. मैं झूठ से विरत रहने की शिक्षा को ग्रहण करता हूँ।

५. मैं शराब आदि मादक-द्रव्यों के सेवन से विरत रहने की शिक्षा को ग्रहण करता हूँ।

पञ्चशील के अनुसार चलना या चलने का प्रामाणिक प्रयत्न करना ही सच्चा बौद्ध-जीवन है और इसी से हम केवल अपना ही नहीं, प्रत्युत समस्त विश्व का कल्याण कर सकते हैं—इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं।

बौद्धधर्म के प्रति

श्री श्यामसुन्दर घोष "अशांत"

विश्व बढ़ता आ रहा है आज तेरी ओर
हो चुका है ज्ञात उसको आज अपनी भूल
खोजता है व्यग्र हो सुख-शांति का वह कूल
और तेरे चरण छूने को मनुज के प्राण
आ रहे हैं ले हृदय में एक स्वच्छ हिलोर
विश्व बढ़ता आ रहा है आज तेरी ओर
आज हिंसा की तरफ से धरा आँखें मूँद
और पलकों में सजाये अश्रु की दो बूँद
आज लेकर के अमिट विश्वास फिर से देव!
है चली धरने अहिंसा की सुनहली डोर
विश्व बढ़ता आ रहा है आज तेरी ओर।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादक के नाम पत्र

भारत राष्ट्र 'बुद्ध सम्वत्' अपनाये

श्रीमान् सम्पादक जी,

हमारे स्वतंत्र भारत राष्ट्र ने अपने राष्ट्रध्वज के लिये भगवान् बुद्ध के धर्मचक्र को आज से लगभग तीन वर्ष पूर्व अपनाया था, जो अशोक-चक्र के नाम से विख्यात है। यह चिह्न हमारे देश में शान्ति और सुसम्पन्नता का द्योतक है, किन्तु भारत की साधारण जनता इसके महत्त्वपूर्ण परिचय में अनभिज्ञ है। वस्तुतः हमारा राष्ट्र-ध्वज हमारे देश का गौरव है। अतः यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने देश वासियों को इस धर्म-चक्र का अभिप्राय समझावें।

धर्म-चक्र को अपनाने के साथ हमारा यह भी एक निश्चयात्मक कर्त्तव्य है कि हम 'बुद्ध-सम्वत्' को अपना राष्ट्रीय सम्वत् माने। ईसा-सम्वत् हमारे विदेशी शासकों का चिह्न मात्र है, जिसे अपनाये रखना हमारे लिये शोभा नहीं। बुद्ध-सम्वत् भारत का अति प्राचीन एवं निज देशीय सम्वत् है। यह कोई नया विचार नहीं है और न तो यह आधुनिकता की देन है, प्रत्युत इसका प्रयोग भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के समय से ही होता चला आ रहा है। विश्व के सभी बौद्ध-राष्ट्र इसी सम्वत् का प्रयोग करते हैं। लंका, बर्मा, स्याम, कम्बोडिया, भूटान आदि सभी बौद्ध देशवासी अपने नित्य के कार्यों में भी इसी को व्यवहार में लाते हैं। भारत के लिये तो यह और भी गौरव की बात है, क्योंकि हम भारतवासी भी चिरकाल से बुद्धकाल (बुद्ध-सम्वत्) का स्मरण अपने नित्य के पूजापाठों तक में 'बौद्धावतारे' के मंत्रोच्चार से करते आ रहे हैं। इस मंत्रोच्चार का तात्पर्य ही है कि हम बुद्ध-युग में अपने जीवन के सारे कार्य सम्पादित कर रहे हैं। क्या यह सम्भव नहीं है तथा वह समय उपस्थित नहीं हुआ है कि इस सम्वत् का प्रयोग हम सभी भारतवासी करना प्रारम्भ कर दें? और राजकीय कार्यों में भी इसे मान्यता दी जाय? इस मान्यता से ही हम अपने राष्ट्र-ध्वज के सच्चे प्रेमी होंगे और तभी हम भारत देश की जनता को स्मरण दिला सकेंगे कि सम्प्रति हम बुद्धयुग में रह रहे हैं, जो वास्तव में भारत का अभिमान है।

बुद्ध-सम्वत् को अपनाने में सबसे बड़ी सुविधा यह होगी कि मास आदि सारी बातें वही रहेंगी, जिन्हें भारतवासी सदा से अपने व्यवहार में ला रहे हैं।

—अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी
मंत्री, बुद्ध-सोसाइटी, नागपुर।

"दक्खिनी हिन्द"

(मद्रास-सरकार की हिन्दुस्तानी मासिक पत्रिका)

★ उत्तर और दक्षिण को साथ चलकर ही समृद्ध एवं शक्तिशाली नवभारत का निर्माण करना है।

★ "दक्खिनी हिन्द" उत्तर और दक्षिण के बीच एक सांस्कृतिक सेतु है।

★ सालाना चंदा : सिर्फ चार रुपए। वी. पी. भेजने का नियम नहीं है। मनी-आर्डर से चंदा पेशगी भेजें।

चंदा भेजने का पता

डाइरेक्टर आफ़ इन्फ़रमेशन & पब्लिसिटी,
फ़ोर्ट सेन्ट जार्ज, मद्रास

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

लद्दाख में सांस्कृतिक चेतना का नव-संचार

लद्दाख एक बौद्ध प्रधान देश है। वहाँ की जन संख्या ४०,००० है, जिसमें ३८,००० बौद्ध ही हैं। शेष में कुछ ईसाई और मुसलमान हैं। लद्दाख में बौद्ध धर्म कब पहुँचा–यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। फिर भी इतना स्पष्ट है कि महाराज अशोक के समय में जब कश्मीर और काम्बोज में बौद्ध धर्म पहुँचा, तो सम्भव है वहाँ से लद्दाख में भी पहुँचा हो। भौगोलिक स्थिति के अनुसार लद्दाख तिब्बत का एक अंग है, वह बहुत दिनों तक तिब्बत के हाथ में रहा भी है, अतः इस पर तिब्बत की ओर से भी बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा होगा, किन्तु भारत से वहाँ बौद्ध धर्म के पहुँचने का पक्ष ही दृढ़ है। यदि अशोक के समय में लद्दाख में बौद्ध धर्म न पहुँचा हो तो कनिष्क के समय में वह बौद्ध धर्म से अछूता न था। कनिष्क ने पार्वत्य प्रदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचार का काफी प्रयत्न किया। चीन, मध्येशिया आदि प्रदेशों में बौद्ध धर्म की पहुँच उसी के समय में हुई। हिमालय के पाँच प्रदेश-चम्बा से लेकर नेपाल तक पूर्व से ही बौद्ध बन चुके थे, अतः लद्दाख भी उस समय तक बौद्ध धर्म को अवश्य ही ग्रहण कर लिया होगा।

सम्प्रति लद्दाख एक अत्यन्त श्रद्धालु बौद्ध देश है। वहाँ इस समय ६० गुम्बा (बौद्ध विहार) हैं, जिनमें १५ गुम्बा प्रधान और विशेष दर्शनीय सम्मत हैं। इन गुम्बों में नब्बे-नब्बे, सौ-सौ भिक्षु रहते हैं। आज से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व जब लद्दाख में सेङ्गेनग्याल नामक राजा का शासन था, तब उसने अपनी शक्ति बहुत अधिक बढ़ा ली थी। वह अपने शासन की सीमा को कश्मीर तक कर लिया था। उसका शासन बौद्धों के लिए हरेक प्रकार से सुखप्रद था, तब से लेकर आज तक उसके द्वारा शासित ढंग से ही लद्दाख का बौद्ध धर्म अपने सांस्कृतिक कार्यों को करते आ रहा है, फिर भी हम देखते हैं कि लद्दाख के बौद्ध इधर कुछ दशकों से ढीले पड़ गये थे। वस्तुतः सांस्कृतिक कार्यों में उनके ढीलापन के कारण ही वहाँ मुसलमान एवं ईसाइयों का प्रवेश हुआ है। यद्यपि बौद्धों में छूआ-छूत नहीं है और बौद्ध अन्य धर्मावम्बियों के साथ किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखते हैं, मुसलमान, ईसाई सबको अपना समझते हैं, तथापि लद्दाख के बौद्धों को अपने धार्मिक तथा जातीय अनुष्ठानों में कुछ सतर्कता की आवश्यकता प्रतीत होती है। हमें विदित है कि आज २५ वर्ष पूर्व से लद्दाख की राजधानी लेह में कई एक ईसाई मिशनरियाँ अपने धर्म के प्रचार में सतत प्रयत्नशील हैं। यद्यपि वे अपने इस दीर्घकालीन प्रयास में पर्याप्त सफलता नहीं प्राप्त की हैं, आज तक केवल तीस-चालीस व्यक्ति ही ईसाई धर्म को ग्रहण कर सके हैं, फिर भी बौद्धों को उनके इस प्रयत्न की विफलता की ओर भी ध्यान देना चाहिये।

हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि इस समय लद्दाख के बौद्ध भिक्षु (लामा) कुशोग बकुला की देख-रेख में सांस्कृतिक-अभ्युत्थान के लिये नाना प्रकार के प्रयत्न कर रहे हैं। शिक्षा का सारा कार्य भिक्षु अपने हाथों में ले लिये हैं और सर्वत्र बौद्ध-बालकों को निःशुल्क शिक्षा देने के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ हो गये हैं। तथागत और अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों के आगमन से उनमें सांस्कृतिक नव-चेतना का संचार हो गया है। लद्दाख के न केवल बौद्ध ही, प्रत्युत मुसलमान और ईसाई भी बौद्ध धर्म को अपनी महत्तम सांस्कृतिक निधि समझने लगे हैं। कितने ही मुसलमान परिवारों ने अस्थियों के इस शुभागमन काल में बौद्ध धर्म को अपनाया है और बहुत से मुसलमान परिवार बौद्ध धर्म को ग्रहण करने के लिये उत्सुक हैं। यदि लद्दाख के बौद्ध सतर्कता पूर्वक धार्मिक कार्यों को करते रहेंगे और धर्म प्रचार को भी अपने सांस्कृतिक कार्यों में स्थान देंगे, तो असम्भव नहीं कि निकट भविष्य में ही सारा लद्दाख-प्रदेश अन्य धर्मावलम्बियों से शून्य हो जायेगा तथा वहाँ के सभी अन्य मतावलम्बी बौद्ध धर्म के निर्मल एवं परिशुद्ध प्रभाव से प्रभावित होकर स्वतः उसमें घुलमिल जायेंगे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बौद्ध-जगत्

दो सौ से अधिक हिन्दू बौद्ध बने

बौद्ध विश्व-बन्धुत्व संघ ने संसार भर में बौद्ध धर्म का प्रचार करने का अपना परमपुनीत लक्ष्य बनाया है। इस संघ की प्रेरणा के अनुसार लंका, बर्मा, चीन, स्याम, यूरोप, अमेरिका आदि प्रायः उन सभी देशों में जहाँ कि बौद्ध हैं बड़े वेग से बौद्ध धर्म का प्रचार-कार्य किया जा रहा है। जिन देशों में बौद्ध नहीं हैं अथवा बौद्धों की शक्ति न्यून है, वहाँ भी बौद्ध धर्म के प्रचार कार्य करने के साधन उपलब्ध करने के प्रयत्न हो रहे हैं।

गत २७ अगस्त को उक्त संघ की ओर से लंका में २०० से भी अधिक तामिल हिन्दुओं ने बौद्ध धर्म को ग्रहण किया। बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने वाले लोगों में महिलाओं की संख्या अधिक थी। यह सामूहिक दीक्षा-ग्रहण कल्याणी विहार में सम्पन्न हुआ, जहाँ संघ के अध्यक्ष डा० जी० पी० मललसेकर तथा बर्मी पुलिस के भूतपूर्व इन्स्पेक्टर मेजर जनरल थाला औंग उपस्थित थे।

तथागत और अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ लद्दाख से वापस—भगवान् बुद्ध तथा सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की पवित्र अस्थियाँ केवल दो सप्ताहके कार्यक्रम के साथ गत २६ मई को विमान द्वारा दिल्ली से कश्मीर होते हुए लद्दाख की राजधानी लेह ले जाई गईं। लेह में चार कुशोग (=अवतारी) लामाओं के साथ एक हजार लामाओं तथा आठ हजार नर-नारियों ने बड़े ही समारोह के साथ उनका स्वागत किया। लेह का हवाई अड्डा लेह से चार मील दूर है, अतः विमान से पवित्र अस्थियाँ एक विशेष पालकी द्वारा समकर गुम्बा (विहार) में लाई गईं। सर्व प्रथम उन्हें कुशोग बकुला लामा ने ग्रहण किया। हवाई अड्डे से समकर गुम्बा तक का सारा मार्ग भीड़ और जुलूस से परिपूर्ण हो गया था। लद्दाखी बाजों एवं प्रार्थनाओं से सारा पार्वत्य प्रदेश गूँज रहा था। जुलूस १२ बजे वहाँ पहुँचा। भोजनोपरान्त एक बहुत बड़ी सभा हुई। सभा में महाबोधि सभा के महामंत्री श्री देवप्रिय वलिसिंह जी, कुशोग बकुला, आचार्य शासनश्री जी आदि के भाषण हुए। तत्पश्चात् पवित्र अस्थियों का दर्शन कराया गया।

२८ मई को पवित्र अस्थियाँ फीयांग गुम्बा को ले जाई गईं। यह गुम्बा बहुत बड़ा है। यहाँ भी दर्शनार्थ आई बौद्ध जनता की काफी भीड़ थी।

३० मई को अपराह्न में नहेसानत्रास नामक स्थान में विशाल उत्सव प्रारम्भ हुआ। उत्सव में सभा का भी आयोजन था। सभा मुख्य मंत्री श्री ख्वाजा साहब के सभापतित्व में हुई। वहाँ लद्दाखी नाच देखने योग्य था। बौद्धों ने अपने धार्मिक नाच द्वारा धातुओं की पूजा की।

१ जून से लेकर १८ अगस्त तक सम्पूर्ण लद्दाख में पवित्र अस्थियों की यात्रा हुई। इस बीच पवित्र अस्थियाँ हिमिस, पितुग, शाम (लद्दाख का पश्चिमी भाग), युरु, नूबरा, चङ्गथंग, शेचुकुन्न, चङ्गला आदि प्रदेशों और नगरों के लगभग ५० गुम्बों (विहारों) में ले जाई गईं। सर्वत्र बड़े समारोह के साथ अस्थियों का स्वागत हुआ। अस्थियों को ले जाने के लिये पालकी का प्रबन्ध था, जिसे १४ नवयुवक बौद्ध लेकर चलते थे। साथ में जानेवाले लद्दाख के प्रधान शासक श्री कुशोग बकुला लामा, महाबोधि-सभा के प्रतिनिधि, पुलिस, चौकीदार, रसोइया सब लोग घोड़ों पर चलते थे। सबका प्रबन्ध राज्य और बौद्ध जनता की ओर से था।

पवित्र अस्थियों का दर्शन कर लद्दाख के बौद्धों में नव चेतना का संचार हो गया। १८ अगस्त को पवित्र अस्थियाँ पुनः वायुयान द्वारा बड़ी धूमधाम के साथ श्रीनगर लाई गईं। कुशोग बकुला उन्हें पहुँचाने के लिये वहाँ तक आए। वहाँ गवर्नमेंट हाउस में दो दिनों तक पवित्र धातुओं का प्रदर्शन हुआ। इनके दर्शनार्थ कश्मीर प्रदेश के सहस्रों बौद्ध प्रतिदिन आये।

दिल्ली में स्वागत—पवित्र अस्थियाँ लद्दाख से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वापस आते समय २० अगस्त को श्रीनगर से दिल्ली लाई गईं। राष्ट्रपति के सैनिक सचिव श्रीचटर्जी तथा बर्मा और स्यामके दिल्ली स्थित प्रतिनिधि एवं अन्यान्य अधिकारियों ने हवाई अड्डे पर उनका स्वागत किया। हवाई अड्डे से एक वृहद् जुलूस द्वारा अस्थियाँ बुद्ध-मन्दिर नई दिल्ली में लाई गईं। वहाँ पहले से ही तैयारी थी। भदन्त ए० धम्माधार ने उनके स्वागत का सारा प्रबन्ध कराया था। बर्मी कौंसल द्वारा अस्थियों का प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। उस अवसर पर त्रिपिटकाचार्य श्री शासनश्री जी, भिक्षु धम्माधारजी आदि के भाषण हुए। दूसरे दिन २२ अगस्त को राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसादजी अस्थियों के दर्शनार्थ आये और पूजा किये। उन्होंने उन्हें पुष्प चढ़ाया और अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

राष्ट्रपति ने अस्थियों की सुनहली मंजूषा को खोलते हुए कहा—"यह भारतीय जनता के लिए बड़े ही सौभाग्य की बात है, जो हम लोग भगवान् बुद्ध और उनके प्रधान शिष्य सारिपुत्र तथा मोग्गल्लान की पवित्र अस्थियों के दर्शन कर रहे हैं। भगवान् बुद्ध ने केवल शान्ति का मार्ग ही हमें नहीं दिखलाया, किन्तु उन्होंने धर्म की ओर भी आकर्षित किया, जो आज सारे संसार में फैला हुआ है।"

राष्ट्रपति ने आगे कहा कि मैं यह चाहता हूँ कि भारत विश्व के बौद्धों के साथ परिचय प्राप्त करे, ऐसा होने से ही हम मनुष्य जाति की अत्यधिक सेवा कर सकेंगे। आगे उन्होंने घोषणा की कि **भारत गणतन्त्र इस समय भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं के आधार पर ही कार्य कर रहा है। जिस मार्ग को भगवान् बुद्ध ने दिखलाया, उसी पर चलने में हमारा कल्याण है। हमारे जीवन में भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं का काफी प्रभाव पड़ा है।"**

दो दिनों तक नई दिल्ली के बुद्ध मन्दिर में पवित्र अस्थियों का प्रदर्शन हुआ। भारतीय बौद्ध संघ और महाबोधि सभा के कार्यकर्त्ताओं ने बड़ी दिलचस्पी और अनुराग पूर्वक सारा कार्य किया। २४ अगस्त को प्रातः काल वायुयान द्वारा अस्थियाँ कलकत्ता ले जाई गईं।

भगवान् बुद्ध की अस्थि सारनाथ वापस—२४ अगस्त को वायुयान द्वारा जब अस्थियाँ कलकत्ता जा रही थीं, तब काशी के हवाई अड्डा बाबतपुर में ११ बजे दिन में संयुक्त प्रान्तीय सरकार की ओर से उनका स्वागत किया गया। महाबोधि-सभा सारनाथ के भिक्षु और उपासक भी जुलूस के साथ उनका स्वागत करने के लिए गये थे। भगवान् बुद्ध की अस्थि सारनाथ लाई गई और अग्रश्रावकों की अस्थियाँ कलकत्ता चली गईं।

अस्थियाँ पाकिस्तान जायेंगी—पाकिस्तान सरकार ने भारत सरका से प्रार्थना की है कि अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों को पूर्वी पाकिस्तान ले जाने का अवसर प्रदान किया जाय। वहाँ के बौद्ध अस्थियों के दर्शन के लिए बड़े ही उत्सुक हैं। पाकिस्तान सरकार इस समय बौद्धों के प्रति सद्व्यवहार कर रही है और वह अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में—विशेष कर बौद्ध देशों में बौद्धों के प्रति अपना सद्व्यवहार प्रगट करना चाहती है। अभी लंका के अखिल विश्व बौद्ध सम्मेलन में भाग लेने के लिए पाकिस्तान सरकार पाँच सहस्र रुपये व्यय करके पाकिस्तानी बौद्ध प्रतिनिधि को भेजी थी।

अस्थियाँ बर्मा को न दी जायेंगी—अभी हाल ही में बर्मा-सरकार ने भारत सरकार से अग्रश्रावकों की अस्थियों का एक भाग स्थायी ऋण के रूप में माँगा था। और भारत के प्रधान मंत्री पं० नेहरूजी के अनुरोध पर अस्थियाँ बर्मा सरकार को दी जाने वाली थीं, किन्तु लंका स्याम आदि देशों से भी आई हुई मांगों के कारण महाबोधि सभा ने यह निश्चय किया है कि अस्थियाँ किसी देश को ऋण के रूप में प्रदान न की जायेंगी।

लदाख का चार मुसलमान-कुटुम्ब बौद्ध बना—अस्थियों के लद्दाख जाने पर वहाँ का चार-मुसलमान-कुटुम्ब बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर बौद्ध बन गया। लद्दाख के मुसलमानों में बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा बढ़ती जा रही है। आशा है शीघ्र ही और भी अनेक मुसलमान-परिवार बौद्ध बनेगा।

सारनाथ में पशु-पक्षी-वध निषिद्ध—बनारस-गोरखपुर डिवीजन के कमिश्नर मियाँ हिफाजत हुसेन ने आदेश जारी किया है कि कोई व्यक्ति किसी प्रकार के पशु-पक्षी का बध का शिकार बनारस जिले के अन्तर्गत सार-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नाथ स्थित मूलगन्ध कुटी विहार के चतुर्दिक एक मील के अन्तर्गत किसी स्थान पर नहीं करेगा और न उस क्षेत्र में कोई व्यक्ति पशुपक्षी का मांस या कोई वस्तु, जो मांस से बनी हो या मिश्रित किसी प्रकार से हो, विक्री करेगा और न किसी अन्य स्थान से उक्त क्षेत्र के भीतर या उक्त क्षेत्र के एक स्थान से दूसरे स्थान तक मांस या उसके मिश्रित या निर्मित वस्तु विक्री या आहार के हेतु लायेगा या ले जायेगा। अवज्ञा करने पर १००) तक अर्थदण्ड दिया जायेगा।

फीनलैण्ड का एक व्यापारी भिक्षु बना—फीनलैण्ड का एक व्यापारी जिसे लगभग ३० वर्ष का समुद्री अनुभव है। अवकाश प्राप्त कर लंका में भिक्षु बन गया है। वह इस समय लंका में ही एक छोटे से द्वीप में है, जो दोण्डडुवा के पास दक्षिणी लंका में स्थित है। यह सन् १९१२ से बौद्ध धर्म से प्रभावित है। उक्त प्रसिद्ध व्यापारी का नाम है—कैप्टन परभियेनिन।

बोधि वृक्ष की एक शाखा कम्बोडिया को—सिंहल के अनुराधपुर स्थित बोधि-वृक्ष की एक शाखा शीघ्र ही कम्बोडिया जानेवाली है। कम्बोडिया की बौद्ध जनता और सरकार उसके लिए बड़ा ही उत्सुक है। अनुराधपुर का बोधि-वृक्ष वही वृक्ष है, जिसे अशोकपुत्री भिक्षुणी संघमित्रा बुद्ध गया से सिंहल ले गई थीं।

उत्तरी आसाम के बौद्ध विहारों का पता नहीं—अभी हाल में आसाम में भूकम्प का जो आघात पहुँचा है, उससे उत्तरी आसाम के कितने ही बौद्ध विहारों को भी काफी क्षति पहुँची है। शताब्दियों पुराना सुमा नामक विहार, जो बड़ी डिहांग नदी के तट पर स्थित था, नष्ट हो गया है। इसके पास का एक और बौद्ध मन्दिर क्षतिग्रस्त हुआ है।

लंका में धर्म-संगायन—पालि ग्रंथों के शुद्ध-संस्करण के लिए लंका के विद्यालंकार परिवेण में धर्म-संगायन हो रहा है, जिसमें लंका के सभी प्रदेशों एवं निकायों के विद्वान् भिक्षु सम्मिलित हैं। यह धर्म-संगायन लगभग छः मास तक क्रमशः होगा। भिक्षु लोगों की आवश्यक वस्तुओं को श्रद्धालु उपासक प्रदान कर रहे हैं

भारतीय ज्ञानपीठ काशी के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

शेरो-शायरी

[उर्दू के १५०० शेर और १६० नज्म]

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

प्राचीन और वर्तमान कवियों में लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का संकलन और उर्दू कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय। हिन्दी में यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है। मूल्य ८)

मुक्तिदूत

श्री वीरेन्द्रकुमार एम. ए.

उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है......मर्मज्ञों ने मुक्तकंठ प्रशंसा की है......। मूल्य ४।।)

ज्ञानोदय [मासिक]

वार्षिक मूल्य ६)

यूपी-सरकार से १०००) रु० पुरस्कृत—

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की अमरकृति

पथचिह्न

इसमें लेखक ने अपनी स्वर्गीया बहिन के दिव्य-संस्मरण लिखे हैं। साथ ही साथ साहित्यिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का मर्मस्पर्शी वर्णन भी किया है। पुस्तक मुख्यतः संस्कृति और कला की दिशा में है और युग के आन्तरिक निर्माण की रचनात्मक प्रेरणा देती है। सजिल्द मूल्य २)

केवल ज्ञान प्रश्न चूडामणि

सं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य

इस ज्योतिष ग्रंथ के स्वाध्याय से साधारण पाठक भी ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर सकता है। मूल्य ४)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ४

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हिन्दी में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें :—

—:❀:—

- दीघनिकाय—महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ६)
- मज्झिम निकाय— ,, ८)
- विनयपिटक— ,, ८)
- धम्मपद—अवध किशोर नारायण १॥)
- बुद्धवचन —भदन्त आनन्द कौसल्यायन ॥)
- भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल ।–)
- बोधिद्रुम (कविता) - सुमन वात्स्यायन ।=)
- भिक्षु के पत्र —भदन्त आनन्द कौसल्यायन १॥)
- महावंश— ,, ४)
- जातक भाग १, २ और ३ ,, ७॥), ७॥), १०)
- पालि महाव्याकरण – भिक्षु जगदीश काश्यप ५॥)
- सरल पालि शिक्षा – भिक्षु सद्धातिस्स १॥)
- बौद्ध-शिशुबोध – भिक्षु धर्मरक्षित ।)
- तेलकटाह गाथा— ,, ।)
- कुशीनगर का इतिहास— ,, २॥)
- सारनाथ-दिग्दर्शन — ,, ।)
- पालि-पाठ-माला (प्रेस में) – भिक्षु धर्मरक्षित १)
- जाति भेद और बुद्ध — ,, ॥)
- ब्राह्मणधम्मिय सुत— ,, =)
- बुद्धकीर्त्तन प्रेमसिंह चौहान १॥)
- बुद्धवाणी—वियोगी हरि ॥।=)
- यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त १॥=)
- अशोक—भगवती प्रसाद पांथरी ४)
- बुद्धार्चन – भगवती प्रसाद पांथरी ।)
- महापरिनिर्वाण सुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा १।)
- सिगालोवाद सुत्त— ,, ।)
- तथागत के अग्रश्रावक – पं० विश्वनाथ शास्त्री ॥।)
- अमिताभ—गोविन्दवल्लभ पन्त ४॥)
- बुद्धदेव—शरत कुमार राय १॥।)
- बुद्धचरित (अश्वघोष कृत)—सूर्यनारायण चौधरी ४)
- सौन्दरनन्द काव्य— ,, ३)
- शाक्यमुनि – गंगाप्रसाद ॥।≡)
- बुद्ध-हृदय—सत्यभक्त ॥)
- भगवान् बुद्ध ने कहा था—सुमन वात्स्यायन ।=)
- हर्षचरित (दो भाग) सूर्यनारायण चौधरी ३)
- बौद्ध-दर्शन—बलदेव उपाध्याय ६)
- बौद्धचर्य्या-पद्धति—भदन्त बोधानन्द १॥)
- सुत्तनिपात – भिक्षु धर्मरत्न १)
- खुद्दकपाठ— ,, ।)
- पञ्चशील और बुद्ध-वन्दना— =)
- बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय १॥)
- ब्रह्मजाल सुत –(मतों का जंजाल) =)
- अम्बट्ठ सुत्त –(वर्ण-व्यवस्था का वर्णन) =)
- अशोक के धर्मलेख— ३॥)
- बुद्ध चित्रावली— ७॥)
- बुद्ध और उनके अनुचर— १॥।)

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भण्डार,

सारनाथ, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

JAHAR LALL PANNA LALL & Co.

267 Dasaswamedh Road, Banaras.

Branch :
College Street Market
CALCUTTA
Phone B. B. 1909

OVER CENTURY FAMOUS
HOUSE
FOR

Branch :
Katra Aluwala,
AMRITSAR

BANARASI & Other Silk Saris etc.

Stock up-to-date designs of this year.

No Middlemen Profit from Factory direct to Customers

शाखा
कालेज स्ट्रीट मार्केट
कलकत्ता
बी० बी० १९०९

दशाश्वमेध रोड, बनारस
बनारसी और रेशमी कपड़े
की
भारत प्रसिद्ध प्रस्तुत कारक और विक्रेता

शाखा
कटरा आलूवाला
अमृतसर

प्रकाशक—धर्मालोक, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)

मुद्रक—ओम प्रकाश कपूर, ज्ञान मण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय-सूची

"धर्मदूत"

का

"अखिल विश्व बौद्ध संस्कृति अंक"

हम बुद्धाब्द २५०० (सन् १९५६) के शुभावसर पर "धर्मदूत" का एक सुन्दर और विशाल अंक प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं जिसमें विश्व के सभी देशों के बौद्धों का परिचय रहेगा। सब देशों के बौद्धों की कला, पुरातत्व, इतिहास, भेद, आचरण, वंश परम्परा, दार्शनिक-गवेषणा, प्राचीन और अर्वाचीन सभी प्रकार की अवस्था के वर्णन के साथ बौद्ध धर्म के पालि और संस्कृत के अतिरिक्त सर्वदेशीय बौद्धों की भाषाओं के ग्रन्थों का भी परिचय रहेगा।

स्थविरवाद के साथ सभी निकायों के धार्मिक सम्बन्ध तथा दार्शनिक विशेषताओं की गवेषणात्मक व्याख्या रहेगी। यह अंक हरेक बौद्ध देश के जातीय एवं धार्मिक चित्रों, रीति रिवाजों एवं विभिन्न अन्वेषणात्मक बातों से परिपूर्ण रहेगा।

हमारे ग्रन्थों में बुद्धाब्द २५०० का बड़ा महत्व वर्णित है। यही वह समय है जब से पुन बौद्ध धर्म का बिगुल संसार में बड़े वेग से बजेगा और फिर एक बार सारा जगत बौद्ध धर्म की शरण आयेगा। अत हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस अवसर पर अपना एक सुन्दर कार्यक्रम बनायें। उक्त कार्य के लिये हमें कम से कम एक लाख रुपये की आवश्यकता है। हम इस भव्य एवं पुनीत आयोजन की सफलता के लिये देशी तथा विदेशी (विशेष कर हिन्दी भाषा-भाषी) धार्मिक, संस्कृति-प्रेमी एवं दानी व्यक्तियों से निवेदन करते हैं कि वे मुक्तहस्त से हमारी सहायता करें।

दाताओं का नाम 'धर्मदूत' में सदा प्रकाशित होता रहेगा। थोड़ी या बहुत जो भी रकम सहर्ष स्वीकार की जायेगी।

निवेदक

व्यवस्थापक - "धर्मदूत"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोकपर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिए विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १५ } सारनाथ, अगस्त बु० सं० २४९४ / ई० सं० १९५० { अङ्क ५

बुद्ध-वचनामृत

धर्म में क्रमशः प्रगति

"भिक्षुओ! मैं शुरू में ही अर्हत्व की आराधना नहीं कहता, बल्कि भिक्षुओ! क्रमशः शिक्षा से, क्रमश क्रिया से, क्रमशः प्रतिपद् से अर्हत्व की आराधना होती है। भिक्षुओ! क्रमशः कैसे अर्हत्व की आराधना होती है? भिक्षुओ! श्रद्धावान् होने से ज्ञानी के समीप जाता है, समीप जाने से उसकी संगत करता है। संगत करने से कान लगाता है। कान लगाने से धर्म सुनता है। धर्म सुनकर धारण करता है। धारण किये धर्मों की परीक्षा करता है। अर्थ की भलीभाँति परीक्षा करने पर धर्म ध्यान में आने योग्य होते हैं। धर्म के ध्यान में आने योग्य होने पर रुचि उत्पन्न होती है। रुचि होने पर उत्साह करता है। उत्साह करने पर उत्थान करता है। उत्थान कर समाधि लगाता है। समाधिस्थ हो इस काया से ही परम सत्य का साक्षात्कार करता है। प्रज्ञा से उसे बेधता है। भिक्षुओ! यदि वह श्रद्धा भी न हुई, पास जाना भी न हुआ, समाधि भी न हुई, तो अमार्गारूढ़ हो वह मोघपुरुष (तुच्छ व्यक्ति) इस धर्म विनय से बहुत दूर चले जाते हैं।"

(—मज्झिम निकाय २, २, १०)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तथागत की जामिनी

श्री भरतसिंह उपाध्याय

भगवान् बुद्ध हमारे लिए जामिन बने हैं। ताकि अप्रमादी साधकों की साधना सफल हो, उनकी श्रद्धा बीच में ही छिन्न-भिन्न न हो जाय, मुक्त पुरुष ने अपने को जमानत के बन्धन में डाल लिया है। तथागत की करुणा इतनी ही विशाल है। मनुष्य नैतिक प्रयत्नों में दुर्बल है। वह पग-पग पर ठोकरें खाता है। उसे आश्वासन चाहिए। एक प्रकार का आश्वासन तो अनेक अवतारों और दूसरे शास्ताओं ने भी दिया है। किसी शब्द के उच्चारण या विश्वास लाने भर से मुक्ति का दरवाजा खोल दिया गया है। तथागत का यह ढंग नहीं है। "यह धर्म सु-आख्यात है। दुःख की निवृत्ति के लिए ब्रह्मचर्य का आचरण करो।" यही भगवान् बुद्ध की कृपा है। उनका कहना है—मैं इस मार्ग से चला हूँ, मेरा यह मार्ग देखा हुआ है। मैंने इस मार्ग पर चल कर यह प्राप्त किया है। यदि तुम भी इस मार्ग पर चलोगे तो तुम भी यह प्राप्त करोगे। बुद्ध-शासन का यही तरीका है। इसीलिए वह शत-प्रतिशत मानवीय है। उपनिषदों में तो कहीं-कहीं 'इति शुश्रुम' (ऐसा हमने सुना है—कठ १।३) की बात चिपटी भी चली आई है, किन्तु बुद्ध-शासन तो इससे सर्वथा मुक्त है। भगवान् बुद्ध ने साफ-साफ कहा है, "तं खो पनाहं भिक्खवे न अञ्ञस्स समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा सुत्वा वदामि...... अपिच भिक्खवे यदेव में सामञ्ञातं सामं दिट्ठं सामं विदितं तदेवाहं वदामि" अर्थात् "भिक्षुओ! मैं किसी दूसरे श्रमण या ब्राह्मण से सुनकर यह नहीं कहता, बल्कि जो मैंने स्वयं जाना है, स्वयं देखा है, स्वयं साक्षात्कार किया है, उसे ही मैं कहता हूँ।" इतना अनुभव जिन शब्दों के पीछे है, उनके बल का क्या अनुमापन किया जाय? निश्चय ही, इतने बल के साथ ही तथागत ने हमारी मुक्ति के लिए जामिनी की है। क्या है वह जामिनी?

"भिक्षुओ! एक वस्तु को छोड़ो। मैं तुम्हारा जामिन होता हूँ तुम्हें फिर इस आवागमन में आना नहीं पड़ेगा। किस एक वस्तु को? भिक्षुओ! राग ही एक वस्तु को छोड़ो। मैं तुम्हारा जामिन होता हूँ तुम्हें फिर इस आवागमन में आना नहीं पड़ेगा।

"भिक्षुओ! एक वस्तु को छड़ो। मैं तुम्हारा जामिन होता हूँ तुम्हें फिर इस आवागमन में आना नहीं पड़ेगा। किस एक वस्तु को? भिक्षुओ! द्वेष ही एक वस्तु को छोड़ो। मैं तुम्हारा जामिन होता हूँ तुम्हें फिर इस आवागमन में आना नहीं पड़ेगा।

"भिक्षुओ! एक वस्तु को छोड़ो। मैं तुम्हारा जामिन होता हूँ तुम्हें फिर इस आवागमन में आना नहीं पड़ेगा। किस एक वस्तु को? भिक्षुओ! मोह ही एक वस्तु को छोड़ो। मैं तुम्हारा जामिन होता हूँ तुम्हें फिर इस आवागमन में आना नहीं पड़ेगा।

"भिक्षुओ! एक वस्तुको छोड़ो। मैं तुम्हारा जामिन होता हूँ तुम्हें फिर इस आवागमन में आना नहीं पड़ेगा। किस एक वस्तु को? भिक्षुओ! क्रोध ही एक वस्तु को छोड़ो। मैं तुम्हारा जामिन होता हूँ तुम्हें फिर इस आवागमन में आना नहीं पड़ेगा।

"भिक्षुओ! एक वस्तु को छोड़ो। मैं तुम्हारा जामिन होता हूँ तुम्हें फिर इस आवागमन में आना नहीं पड़ेगा। किस एक वस्तु को? भिक्षुओ! ईर्ष्या ही एक वस्तु को छोड़ो। मैं तुम्हारा जामिन होता हूँ तुम्हें फिर इस आवागमन में आना नहीं पड़ेगा।

"भिक्षुओ! एक वस्तु को छोड़ो। मैं तुम्हारा जामिन होता हूँ तुम्हें फिर इस आवागमन में आना नहीं पड़ेगा। किस एक वस्तु को? भिक्षुओ! मान ही एक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वस्तु को छोड़ो। मैं तुम्हारा जामिन होता हूँ तुम्हें फिर इस आवागमन में आना नहीं पड़ेगा।"

लोक में जब चारों ओर अन्धकार छा जाता है तो सत्यदर्शी के ये शब्द हमारे दीपक बनते हैं। जिन्हें तथागत की बोधि पर श्रद्धा है उन्हें क्षण भर के लिए भी इन शब्दों को अपनी चेतना से विस्मृत नहीं होने देना चाहिए।

भारत से बौद्धधर्म का लोप नहीं

—डा० भीमराव अम्बेदकर

"किसी विषय का ज्ञान तभी ठीक-ठीक हो सकता है, जब तत्सम्बन्धी परम्परा का भी हमें ठीक ठीक ज्ञान हो। वैसे ही बौद्धधर्म के वास्तविक महत्व को हम तब तक नहीं समझ सकते, जब तक उन परिस्थितियों को हृदयंगम न करें, जिन्होंने बौद्धधर्म को जन्म दिया है। मैं इस बात को नहीं मानता कि भारत का धर्म सदैव हिन्दुत्व रहा है। हिन्दुत्व तो भारत में सबसे बाद के सामाजिक विचारों का विकास है। भारत में तीन बार धार्मिक परिवर्तन हुए हैं। वैदिक धर्म ब्राह्मण धर्म में बदला और ब्राह्मण धर्म हिन्दू धर्म में बदला। बुद्धधर्म का आविर्भाव ब्राह्मण धर्म के समय हुआ। क्योंकि बुद्धधर्म असमानता तथा समाज के विविध वर्णों में विभाजन के विरुद्ध था। जिसका पहले पहल ब्राह्मण-धर्म ने सूत्रपात किया था। बुद्ध-धर्म का उदय उतना ही महत्त्वपूर्ण था, जितनी की फ्रांस की महाक्रान्ति।"

ये हैं वे शब्द जो कि पिछले ६ जून को कोलम्बो की तरुण बौद्ध-समिति (Y.M.B.A.) के सभा-भवन में हुए विश्व बौद्ध भ्रातृत्व सम्मेलन में भारत के विधि मंत्री डाक्टर भीमराव अम्बेदकर ने "भारत में बौद्ध धर्म का उत्थान और पतन" विषय पर भाषण करते हुए कहा था।

उन्होंने आगे और कहा कि वैदिक शिक्षा पर आचरण करना सहज है। वैदिकों की प्रधान पूजा यज्ञ करना है। कहा जाता है कि वैदिक आर्यों के लगभग तैंतीस आराध्य देव रहे हैं। वे उन-उन देवताओं के निमित्त यज्ञ किया करते थे। देवताओं के लिये की जानेवाली इस पूजा का बहुत श्रेष्ठ होना आवश्यक है। कृषियुग के उन आर्यों के लिये गौधन ही श्रेष्ठतम धन था। इसलिए अपने इष्ट देवों के प्रति की गई उन पूजाओं में वे गो-बलि द्वारा यज्ञ करते रहे होंगे। इस तरह वैदिक धर्म हिंसा को प्रोत्साहन देनेवाला हो गया था। यज्ञ के निमित्त जीव हिंसा करना वैदिकों का मुख्य चलन था। ब्राह्मणवाद भी वैदिक धर्म के यज्ञ, यागादि को अपनालेने पर भी समाज का गठन करने में समर्थ रहा, अर्थात् समाज को चारवर्णों में विभक्त करना। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के नाम से चारवर्ण स्थापित कर समाज को विषम बनाना ही ब्राह्मणवाद का उद्देश्य समझना चाहिये। ब्राह्मणवाद ने समाज में भीषण विषमताएँ उत्पन्न की हैं। वे कहते हैं कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए हैं और शूद्र पैर से। क्या यह सोच सकते हैं कि किसी धर्म का मूल सिद्धान्त समाज में भेद करना है? शूद्रों के साथ और स्त्रियों के साथ बहुत ही तुच्छता का व्यवहार करना भी ब्राह्मण धर्म ने सिखलाया है। साम्यवाद बौद्ध-धर्म का प्रधान लक्षण है। वहाँ प्रत्येक को अपनी बुद्धि से सोच विचार कर किसी बात के स्वीकार करने का श्रेष्ठ उपदेश है। हिंसा का मूलोच्छेदन या अहिंसा का प्रचार उसका एक मुख्य अंग है। किसी जीव को देवता के आगे हनन करके मोक्ष प्राप्त करना बौद्ध-धर्म ने नहीं सिखलाया है। मैं तो कहूँगा कि फ्रांस की महाक्रांति और बौद्ध-धर्म का प्रादुर्भाव दोनों ही एक समान (महत्त्वपूर्ण) घटनाएँ हैं। बौद्ध-धर्म के प्रादुर्भाव के पहले शूद्रों को भी राज्य मिल जायगा, यह सोचना भी असम्भव था। भारत के इति-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हास को जो कोई भी ध्यान से देखेगा वह देख सकता है कि बौद्ध-धर्म के अभ्युदय के बाद शूद्रों के भी सिंहासनारूढ होने की बात है। समान सामाजिक स्थिति—प्रजातंत्रवादी शासन-बौद्ध-धर्म ने ही स्थापित किये हैं।

इस तरह के श्रेष्ठ धर्म का भारत से कैसे लोप हो गया! बुद्ध के परिनिर्वाण से ईसा पूर्व २७४ तक अर्थात् २०९ वर्ष के समय में बौद्ध धर्म किस स्थिति में था, यह जानने के लिये कम सामग्री उपलब्ध है। सम्राट् अशोक के समय में बौद्ध धर्म को विद्युद्गति से फैल जाना देखा जाता है। जो श्रेष्ठ धर्म इतना फैल गया था, उसका यहाँ से कैसे लोप हो गया? इसका दोषी मैं सम्राट् अशोक को समझता हूँ। यह मेरा अपना विचार है। सहनशीलता की भी कोई सीमा होनी चाहिये (सम्राट् अशोक अत्यन्त सहनशील थे) और इसीलिये मैं सम्राट् अशोक को दोष देता हूँ। अशोक ने अपने समय में बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य बहुत से धर्मों को जो बौद्ध धर्म के विरोधी थे, उन्हें जान बूझकर बढ़ने की छूट दे रखी थी। अतः मैं समझता हूँ यह बौद्ध धर्म के प्रति प्रथम आघात था।

बुद्ध धर्म का प्रबल विरोध लगभग ईसा-पूर्व १८४ में हुआ है। यह है मौर्य साम्राज्य के अन्तिम सम्राट का अपने सेनापति के हाथों मारा जाना। यह ब्राह्मणों के अपने धर्म के बचाने के लिये किये गये दारुण कृत्यों में से हैं। पर यह बड़े दुःख की बात है कि इस बात पर भारतीय इतिहासज्ञों ने अधिक महत्व नहीं दिया है। जब मैं बौद्ध साहित्य का अवलोकन करता हूँ तो आश्चर्य होता है। बुद्ध के श्रावकों में लगभग ९० प्रतिशत ब्राह्मण ही थे, यह उन ग्रन्थों में देखा जाता है। ब्राह्मण लोग बुद्ध से तर्क करने आते हैं। पर हार कर, उनके प्रति श्रद्धावान हो, अन्त में उनके धर्म में दीक्षित हो जाते हैं। ऐसी घटनाओं के उल्लेखों की बौद्ध साहित्य में सीमा नहीं है। इस तरह जो बुद्ध धर्म बहुसंख्यक ब्राह्मणों में रहा हो वह उन्हीं के कारण कैसे नष्ट हुआ?

मैं समझता हूँ इसका कारण कुलदेव-पूजा है। ग्राम भार-देव, प्रदेशभार-देव आदि की तरह भारत में कुलभार देवता भी थे। उनकी पूजा-अर्चना ब्राह्मणों के द्वारा (हाथों) होती रही। इस प्रकार राजप्रासाद में कुल-देवता की पूजा के लिये जाने वाले ब्राह्मण रानी के मार्फत ही सही देश के शासन सूत्र पर हावी होने लगते थे। बाद में चलकर सम्राट अशोक के समय में इन कुल-देवों की पूजा बन्द हो गई। सम्राट् अशोक ने कहा—'जब मैं बुद्ध के धर्म-मार्ग का अनुसरण करता हूँ तो और किसी देवता की क्या आवश्यकता है? और उन्होंने राजप्रासाद से उन कुल देवताओं की प्रतिमाओं को हटवा दिया। ब्राह्मणों के लिये यह भारी प्रहार साबित हुआ। क्योंकि इससे उनकी धूर्ततापूर्ण जीविका जाती रही।

ब्राह्मणों ने इसका बदला लेने की ठानी। पूर्व प्रचलन के अनुसार ब्राह्मण राज्य भार नहीं सम्हालते थे। उनकी यह धारणा थी कि जितने राजा हैं, वे सब मरकर नरक को जाते हैं। शासन के चलाने में होने वाली तरह-तरह की भूलों के कारण राजा लोग नरक में जाते हैं। इस कारण ब्राह्मण लोग राज काज चलाना स्वीकार नहीं करते थे। पर वे राजाओं को मंत्रणा देने के पद अपनाते थे।

राज-बल से कुल-देवों की पूजा बन्द हो जाने से ब्राह्मणों को बहुत नुक़सान हुआ। अतः शासन करने के अपने सिद्धान्त को तिलाञ्जलि देकर राज्यों के हाथियाने की घटनाएँ भी भारत के इतिहास में मिलती हैं। इसके अतिरिक्त अपने लिये हितू समझे गये क्षत्रियों को साथ लेकर ब्राह्मण क्षत्रिय नाम से एक नये समाज का गठन किया। अपने लाभ के लिये सिद्धान्त भी कैसे बदल गया! ब्राह्मणवाद का फिर से जोर पकड़ना बुद्ध-धर्म के भारत से लोप होने का एक कारण है।

विदेशियों के आक्रमण भी बौद्ध धर्म के भारत से लोप होने के हेतु हुए हैं। यूनानियों के आक्रमण से बौद्ध धर्म को कोई नुकसान नहीं हुआ। निश्चित रूप से यूनानियों के भारत में बौद्ध धर्म के कार्यों में आर्थिक सहायता देने तक के प्रमाण हैं। गुप्तकाल में भारत पर हूणों के आक्रमण हुए और वे गुप्तों से परास्त होकर भारत में ही बस गये। वे (हूण) परास्त होने के पहले बौद्ध धर्म का बहुत विरोध करके उसे नाश करने के लिये बहुत कोशिश किये। बहुत पीड़न तो मुसलमानों के आक्रमण से हुआ। वे प्रतिमा और प्रतीकों के प्रति श्रद्धावान् नहीं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

॥ प्रतिमाओं को तोड़ फोड़ कर बौद्ध भिक्षुओं को न्होंने मार डाला। वे नालन्दा के विशाल बौद्ध विश्व-द्यालय को शिक्षा का केन्द्र नहीं बल्कि किला समझे और भिक्षुओं को शस्त्रास्त्रों से लैस सैनिक समझ कर मार डाले। बचे खुचे भिक्षु डर से निकट अवस्थित नेपाल, तिब्बत और चीन आदि देशों को भाग गये।

मेरे कुछ हिन्दू मित्र मुझसे अकसर पूछते हैं कि हिन्दू धर्म में भी प्रतिमा, प्रतीक आदि हैं, पर वे मुसल-मानों के हाथों नष्ट क्यों नहीं हुए? इसका भी मेरे पास त्तर है। कोई भी धर्म क्यों न हो, उसके बचाये रखने के लिये पुरोहित पक्ष की आवश्यकता है। बौद्ध भिक्षुओं के अभाव होने पर बौद्धों ने शूद्रादिकों को भिक्षु बनाकर भिक्षु परम्परा को कायम रखने के लिये अतिविशिष्ट प्रयोग किये। पर अधिक शिक्षित न होने के कारण वे (भिक्षु) ब्राह्मणों के तर्कों का यथोचित उत्तर न दे सके और हार खानी पड़ी।

इस तरह बौद्ध भिक्षुओं के न रह जाने के कारण बौद्ध धर्म अभाव को प्राप्त हो गया। ब्राह्मणवाद या हिन्दू धर्म के विषय में इस तरह की बात नहीं कही जा सकती। ब्राह्मण के घर जन्म लेने से ब्राह्मण ही कहलाता है। इसलिये उन्हें अपने धर्म के बचाये रखने के लिये अलग से पुरोहित पक्ष की कोई आवश्यकता नहीं रहती। यह कारण है कि मुसलमानों से हिन्दू धर्म की रक्षा हुई।

इसी बीच हिन्दू लोग शिव और विष्णु को भी मनाने लगे। शुरू में ये ब्राह्मणों के नहीं क्षत्रियों के देवता रहे। इससे क्षत्रियों ने और भी ब्राह्मणों का साथ दिया। आजकल हिन्दू धर्म बहुत परिवर्तित रूप में है। हिन्दुओं का जो धर्म पहले हिंसा सिखलाता था वह अब अहिंसा अहिंसा सिखलाने लगा है। ये सब बातें बौद्ध धर्म से ली गई हैं। यह जरूर है कि प्रतिमा, विहार और चैत्य आदि की दृष्टि से अब भारत में बौद्ध धर्म नहीं है, पर बौद्ध धर्म का सार और आध्यात्मिक प्रभाव आज भी भारत में व्याप्त है।"

"सिंहल बौद्धया से" अनुवादक–भिक्षु प्रज्ञानन्द

लिच्छवि-गणतंत्र

—प्रो० चन्द्रिकासिंह उपासक एम० ए०

मगध का राजा अजातशत्रु जिसकी राजधानी राजगृह थी, वृजि-संघ पर आक्रमण कर उसे अपने आधीन करना चाहता था। उसने अनेक उपाय किये कि किसी तरह इस धन-धान्य-ऐश्वर्य सम्पन्न प्रदेश को जीतूँ। उनकी राज-धानी वैशाली जो "तीन खास मुहल्लों में विभक्त थी; पहले मुहल्ले में सात हजार मकान थे, जिनकी गुम्बजें सोने से ढकी हुई थीं; बीच के मुहल्ले में चौदह हजार मकान थे, जिनकी गुम्बजें चाँदी से ढँकी हुई थी; तीसरे मुहल्ले में इक्कीस हजार मकान थे, जिनकी गुम्बजें ताँबे से ढँकी हुई थीं"—ऐसी समृद्धशाली वैशाली की ओर वह अपनी जीभ से लार टपका रहा था। उसके इस प्रयत्न का वर्णन दीघनिकाय की अट्ठकथा में यों है:—"एक नदी के घाट के पास आधा योजन अजातशत्रु का राज्य था और आधा योजन लिच्छवियों का......। यहाँ पर्वत के नीचे बहुमूल्य सुगन्धित माल उतरता था।........ अजातशत्रु 'आज जाऊँ, कल जाऊँ' करता रहता कि उधर एक राय, एकमत लिच्छवि पहले पहुँच कर सभी ले लेते। अजातशत्रु पीछे जाता और उस समाचार को सुन कुपित हो लौट आता। वे दूसरे वर्ष भी वैसा ही करते। अजातशत्रु ने कुपित हो सोचा 'गण' (प्रजातंत्र) के साथ युद्ध करना कठिन है, उनका एक भी प्रहार कभी विफल नहीं जाता, अतः किसी बुद्धिमान से मंत्रणा करना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अच्छा होगा। और इसी उद्देश्य से उसने अपने ब्राह्मण महामात्य (महाकूटनीतिज्ञ) 'वर्षकार' को भगवान् बुद्ध के पास भेजा ।"

आज से प्रायः ढाई हजार वर्ष पहले की बात है। आर्यावर्त के उत्तर-पूर्व प्रदेश में एक राज्य था जो मही (आधुनिक गंडक) और गंगा नदियों के जल से सिंचित था। यहाँ कई गण राज्यों का एक 'संघ' था, जिसका नाम 'वज्जि' या 'वृज्जि-गणराज्य संघ' था। लिच्छवियों की राजधानी वैशाली थी और इस 'वृज्जि-गणराज्य-संघ' की भी यही थी। कारण स्पष्ट है। वैशाली नगरी उस उस गण-राज्य-संघ में अनुपम और सम्भवतः मध्य में थी। यही कारण था कि गंगा के दक्षिण का राजा अजातशत्रु उसको लेने के लिये इतना लालायित हुआ था।

यों तो साधारण लोगों में यह प्रख्यात है कि प्राचीन काल में राज्य की सार्वभौम सत्ता एकमात्र राजा में ही निहित रहती थी। राजा के अतिरिक्त न तो किसी को राज्य करने का अधिकार ही था और न तो कभी ऐसा हुआ ही। लेकिन वास्तव में बात ऐसी नहीं है। प्राचीन भारत में नृपतंत्र के साथ साथ ऐसे पंचायती राज्य जो 'गणराज्य' के नाम से विख्यात थे, विद्यमान थे। इन गणराज्यों में राज्य की सत्ता और शक्ति एक व्यक्ति (राजतंत्रिक राजा) के हाथ में न रहकर 'गण' या समूह के हाथ में होती थी। ये पंचायती राज्य थे जिनमें जनता द्वारा चुने हुए लोग राज्य का प्रबन्ध करते थे। वृज्जि भी ऐसा ही एक गणतंत्र राज्य था, जिसे भगवान बुद्ध का आशीर्वाद एवं सानिध्य प्राप्त था।

लिच्छवि जाति अति प्राचीन थी। इसका उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। बौद्ध ग्रन्थों से हमें मालूम है कि भगवान् बुद्ध का वैशाली से किस प्रकार का अटूट सम्बन्ध था, लिच्छवियों के प्रति उनकी कैसी शुभ आकांक्षायें थीं। लिच्छवियों की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं। लेकिन बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे क्षत्रिय थे। 'महापरिनिब्बान सुत्त' से ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध के कुशीनगर में 'महापरिनिर्वाण' पाने के उपरान्त सभी एकत्रित लोग भगवान् की शरीर-धातु की अपेक्षा करने लगे। सभी की यह इच्छा हुई कि भगवान् की शरीर-धातु पर स्तूप बनवा, पूजादि से उनका सम्मान करें! लिच्छविभी वहाँ पहुँचे। उन्होंने भी अपनी माँग पेश की। और अपनी दलील में यों कहा—"भगवापि खत्तियो, मयंपि खत्तिया, मयम्पि अरहाम भगवतो शरीरानं भागं" अर्थात् "भगवान् भी क्षत्रिय हैं, हम लोग भी क्षत्रिय हैं अतः भगवान् की शरीर-धातु को हमभी प्राप्त करेंगें।" स्पष्ट है कि लिच्छवि उसी प्रकार शुद्ध क्षत्रिय वंशज हैं जिस प्रकार शाक्य-सिंह गौतम बुद्ध। उनके क्षत्रिय होने के अनेक प्रमाण बौद्ध ग्रन्थों में अन्य स्थलों पर मिलते हैं। लेकिन लिच्छवि लोग क्षत्रिय नहीं थे, ऐसा भ्रम विद्वानों में कई कारणों से फैल गया। सबसे प्रधान कारण यह था कि धर्मशास्त्र के विख्यात नेता मनु ने अपने धर्मशास्त्र में लिच्छवियों को व्रात्यों की श्रेणी में रक्खा है। (मनुस्मृति १०-१२) मनु ने उन्हें व्रात्य कह कर क्यों सम्बोधित किया इसका भी एक कारण था। हमें बौद्ध ग्रंथों के अनुशीलन से स्पष्ट पता चलता है कि प्रायः सभी लिच्छवि लोग बौद्ध या जैन धर्मावलम्बी हो गये। स्वभावतः उन्होंने धर्म शास्त्रानुमोदित व्रत, नियमों (निश्चय ही हिन्दू-धर्म सम्बन्धी) की कोई परवाह न की। इसलिए, 'धर्म-च्युत' तत्पश्चात् निम्नतर होना अनिवार्य था। भला 'मनु' ऐसे शास्त्रकार लिच्छवि जैसे विद्यार्थियों को समाज में ऊँचा सिर किये रहना अपनी फूटी आँखों से कभी देखना चाहते? उन्होंने चट् से उन्हें 'व्रात्य' कह डाला तथा 'नट' 'करण' 'द्रविड' 'खस' आदि के साथ रख दिया। लिच्छवियों को डॉ० विन्सेन्ट स्मिथ ने तिब्बतियों की एक शाखा कहा है। उनका यह मत लिच्छवियों और तिब्बतियों में प्रचलित कुछ आचारों और नियमों की समानता पर अवलम्बित है। डॉ० शतीशचन्द्र विद्याभूषण इन्हें पारस वंशीय मानते हैं और बील साहब ने उन्हें 'यू पी' वंश का समझा है। परन्तु उपरोक्त धारणायें भ्रान्त हैं। यह निर्विवाद है कि लिच्छवि लोग क्षत्रिय थे और साथ ही भारतीय भी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शासन-विधान

जैसा कि ऊपर कहा गया है, 'गणराज्य' पंचायती राज्य होते थे। उनके प्रत्येक निर्वाचित सदस्य 'राजा' कहलाते थे। राज्य का एक 'गण मुख्य' होता था जिसे भी 'राजा' ही कहकर सम्बोधित किया जाता था। लिच्छवियों में ऐसे सदस्यों की संख्या ७७०७ थी। ऐसा जान पड़ता है कि गणतंत्रों की सभी जनता कुछ निश्चित क्षत्रिय कुलों में से अपने शासक चुनती थी। चुने हुए सदस्यों का अभिषेक होता था। वैशाली में ऐसी ही एक "अभिषेक-पुष्करणी" थी जिसके जल का स्पर्श लिच्छवि सदस्यों के अतिरिक्त सभी व्यक्ति के लिए निषिद्ध था। उसमें जाली भी लगी थी कि कोई दूसरा उसके जल को अपवित्र न कर सके। इन सभी निर्वाचित-सदस्यों के अधिकार पद आदि सभी बराबर होते थे। आपस में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं रखा जाता था। चुने हुए सदस्यों के समूह या शासन सभा अथवा पार्लियामेन्ट को 'परिषद्' या 'संस्था' कहते थे। इनकी बैठकें 'संथागार' (संस्थागार) में होती थीं। यहीं बैठकर लिच्छवि लोग अपने राज्य-कार्य करते।

परिषद् की बैठक 'गण-मुख्य' अर्थात् 'राजा' की अध्यक्षता में होती थी। इनकी बैठकों की कार्यवाही बड़े नियम पूर्वक होती थी। 'संथागार' में सबके लिए 'आसन' अर्थात् बैठने का स्थान नियत होता था। जिस व्यक्ति के हाथ में बैठाने का कार्य रहता उसे 'आसन ज्ञापक' कहते थे।

कार्यवाही प्रारम्भ होने के लिए 'कोरम' का होना अनिवार्य था।

अधिवेशन के लिये 'कोरम' पूरा करनेवाले व्यक्ति को 'गणपूरक' कहते थे। वह व्यक्ति सदस्यों को बुलाकर संथागार में लाता था।

'कोरम' पूरा होने पर प्रस्ताव रखा जाता था, जिसे 'प्रतिज्ञा' कहते थे। 'प्रतिज्ञा को नियमतः रखने को स्थापना' और उच्चटस्वर से सारी परिषद को सुनाने को 'अनुश्रावण' कहा जाता था। 'प्रतिज्ञा' यदि विवाद-ग्रस्त नहीं हुई तो उसकी एक 'ज्ञप्ति' (पाठ) और विवादग्रस्त होने पर तीन 'ज्ञप्ति' होती थी। यह स्वाभाविक है कि 'प्रतिज्ञा' पर बहुत वाद-विवाद होता रहा होगा। लेकिन ज्ञात है कि लिच्छवियों के यहाँ वाद-विवाद के अवसर कम आते रहे क्योंकि भगवान् बुद्ध ने उनके आपस के संगठन की बड़ी प्रशंसा की है। अजातशत्रु को भी उनके संगठन को तोड़ने के लिए तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ महान् व्यक्ति 'बुद्ध' से सलाह करने को सोचना पड़ा। वास्तव में यह अवस्था लिच्छवियों के स्वर्ण-युग की ओर संकेत करती है।

वाद-विवाद हो जाने पर मत लिया जाता था। मत को 'छन्द' कहते थे। 'छन्द' का अर्थ होता है 'स्वतंत्र' अर्थात् प्रत्येक सदस्य स्वतंत्रता के साथ अपना मत देता था। जो सदस्य अनुपस्थित रहते थे वे लिखकर अपना मत भेज सकते थे। मत-दान के लिये पक्ष-विपक्ष प्रत्येक के लिये अलग अलग दो रंग की 'शलाकाओं' (लकड़ी की छोटी पट्टी) का उपयोग होता था। ये शलाकायें पहले निश्चित कर ली जाती थीं। फिर इन शलाकाओं को दो भिन्न भिन्न डालियों में रखकर शलाका-गाहापक' सदस्यों के भीतर घूमता था और वे अपने मत के अनुसार एक एक शलाका ले लेते थे। बाकी बची हुई शलाकाओं को गिनकर मालूम कर लेते थे कि बहुमत किस पक्ष में है। इस बहुमत निर्णय को 'येभूय्यसिकं' कहा जाता था।

'परिषद' या संस्था का एक नियमित कार्यालय होता था जो कार्यवाही का पूरा पूरा ब्योरा रखता था। इसमें प्रायः चार लेखक (क्लर्क) नियुक्त होते थे, जो कार्यालय का संचालन करते थे।

लिच्छवियों के शासन प्रबन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात उनकी न्याय-प्रियता थी। उत्तम न्याय-व्यवस्था की थोड़ी झलक हमें दीघ-निकाय की अट्ठकथा में मिलती है: "परम्परा से चला आया है कि 'वज्जि धर्म' यह था, कि वज्जि के शासक 'यह चोर है, यह अपराधी है' न कहकर उस आदमी (अभियुक्त) को 'विनिच्छय महामात्य' (न्यायाधीश) के हाथ दे देते थे। वह विचार करता, यदि अपराधी न पाता तो छोड़ देता और अपराधी पाता, तो उससे अपने कुछ न कह 'व्यवहारिक' (न्यायाधीश) को दे देता।.........वह भी अपराधी पाने पर 'सूत्रधार' को देता।.........वह भी निरपराध पाने पर छोड़ देता

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपराधी पाने पर 'अट्ठकुलिक' को दे देता। वह भी वैसा ही करके 'सेनापति' को 'सेनापति' 'उपराज' (गणराज वा उपाध्यक्ष) को और उपराज (अंत में) 'राजा' (गण-मुख्य) को दे देता था। राजा विचार कर यदि अपराधी न पाता तो छोड़ देता और अपराधी होने पर 'पवेणि-पोत्थक' (दण्ड-विधान-Penalcode) बँचवाता। प्रवेणि-पुस्तक में लिखा रहता, कि अमुक अपराध का अमुक दण्ड है। अपराध को उससे मिलाकर दण्ड दिया जाता।" अपराधी के सम्बन्ध में न्याय करने के लिए कितना ध्यान रखा जाता, यह इस उद्धरण से स्पष्ट है। इससे यह भी मालूम होता है, कि लिच्छवि गणतंत्र का अपना अलग दण्ड-विधान था और उसका पालन नियम-पूर्वक कड़ाई से होता था।

लिच्छवियों के शासन प्रबन्ध के लिये प्रमुख व्यक्तियों में 'गण-मुख्य' या 'राजा', 'उपराजा', सेनापति (जो सारी सेना का प्रमुख था), 'अष्टकुलिक' 'व्यवहारिक' 'विनिच्छय महामात्य' थे। इनके अतिरिक्त प्रत्येक विभाग के लिये अनेक अफसर रहें होंगे।

लिच्छवि गणराज्य की महत्ता

प्राचीन गणराज्यों में लिच्छवि गणराज्य एक आदर्श राज्य था। उसकी सुन्दर शासन-प्रणाली और न्याय-प्रबन्ध जैसा कि पहले बताया गया है--वास्तव में सराहनीय थे। इसी से तो भगवान् बुद्ध ने सदा उनकी प्रशंसा की है। भगवान् बुद्ध को लिच्छवियों का संघ उसकी उत्तमता के कारण ही प्रिय था। उनकी परिषद को देखकर भगवान् बुद्ध ने एक बार कहा था, "भिक्षुओ ! इस लिच्छवि परिषद को त्रायस्त्रिंश की परिषद समझो। त्रायस्त्रिंश इन्द्रलोक हैं। भगवान् बुद्ध ने लिच्छवियों की परिषद की उपमा स्वर्ग के देवताओं से की। क्या यह कथन उनकी उत्तमता और सुगठनता की ओर नहीं संकेत करता है ?

अजातशत्रु ने अपने कूटनीतिज्ञ महामात्य वर्षकार को भगवान् बुद्ध के पास भेजा था कि उनसे कोई ऐसा उपाय मालूम करे कि लिच्छवियों को आसानी से हराया जा सके। लेकिन भगवान् को लिच्छवियों की शासन प्रणाली सुघड़ता और प्रबन्ध की उत्तमता का तो पता था। वे जानते थे कि लिच्छवि कुछ बातों से 'अजेय' हैं। केवल दुर्गुणों के आने पर ही वे हराये जा सकते हैं। वर्षकार के पूछने पर उन्होंने आनन्द से (वर्षकार से नहीं) कहा--

"आनन्द ! सुना है न कि वज्जी बराबर सभा कर के, बार बार सभा करके अपना काम करते हैं ?"

"सुना है भगवन् !"

"तो आनन्द !

(१) जब तक वज्जी अपनी परिषद् की बराबर सभा करके, बारबार सभा करके काम करते रहेंगे--

(२) जब तक वे मिलकर बैठते उठते और वज्जी कार्यों (राष्ट्रीय-कार्यों) को मिलकर करते रहेंगे--

(३) जब तक वे अवैधानिक वज्जिधर्म (कानून) विरुद्ध कोई काम नहीं करते रहेंगे--

(४) जब तक अपने वृद्धों का सम्मान-सत्कार तथा उनकी बात पर ध्यान देते रहेंगे --

(५) जब तक वे अपनी कुलस्त्रियों और कुल कुमारियों पर जोर जबरदस्ती या उन पर अत्याचार नहीं करते रहेंगे --

(६) जब तक वे नगर के भीतर और बाहर के चैत्यों (देवस्थानों) का सत्कार सम्मान करते और उनके लिए प्रदत्त सम्पत्ति और धार्मिक बलि नहीं छीनते रहेंगे--

तब तक वज्जियों की वृद्धि ही समझनी चाहिए, हानि नहीं।"

आमात्य वर्षकार और उसके राजा अजातशत्रु ने समझ लिया कि सिर्फ सैनिक शक्ति से वज्जियों को नहीं हराया जा सकता है। वे वास्तव में अजेय हैं। लेकिन राजा अजातशत्रु और आमात्य चतुर व्यक्ति थे। उन्होंने उनके संघ में फूट के बीज बोने आरम्भ किये और इस प्रकार वह बीज अंकुरित होकर इतना विशाल हुआ कि वज्जि संघ को मगध राज्य में विलीन ही होना पड़ा। लिच्छवि गण राज्य सम्राट अजातशत्रु का राज्य हो गया।

फिर भी इनका प्रताप-सूर्य सदा के लिये अस्त नहीं हुआ। इस विलय के बावजूद भी कई शताब्दियों तक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उनका अस्तित्व बना रहा। ३२० ई० से ३५० ई० तक गुप्त साम्राज्य के बीच इनका प्रताप प्रतिभासित रहा। गुप्त काल के प्रायः सभी शिला-लेख अपने पूर्वज चन्द्रगुप्त और लिच्छवि कन्या कुमार देवी के पाणिग्रहण का सदा गर्व युक्त वर्णन प्रस्तुत करते हैं। समरशत् विजेता राजच्छेत्ता, गुप्त कुल सम्राट समुद्रगुप्त अपने को 'लिच्छवि दौहित्र' कहलाने का अमाभिन करता था और सम्भवतः वही अपने पिता की स्मृति में "लिच्छवयः कुमार देवी और चन्द्रगुप्त" वाली स्वर्ण मुद्रा भी प्रचलित किया था। गुप्तों के इन उल्लेखों से ही लिच्छवियों की महत्ता स्पष्ट है।

अन्त

पाँचवीं सदी भारतीय इतिहास में रक्तमयी तथा वर्बर जातियों के आगमन की तिथि है। मध्य एशिया के क्रूर-हृदय हूण पहले से ही कुख्यात थे। उनका भारत पर आक्रमण इस सदी के अन्त में प्रारम्भ हो जाता है। प्रतापी गुप्त-कुल की भी 'लक्ष्मी विचलित' हो उठती है। अन्ततः गुप्त कुल उनके प्रहारों को सह सकने में असमर्थ हो टूक टूक हो जाता है। गुप्त-श्री इन्हीं वर्बर हूणों द्वारा पददलित होती है। गुप्त कुल को सदा के लिये इतिहास से पटाक्षेप करने के बहुत कुछ उत्तरदायी ये ही विदेशी हूण हैं। क्या यह सम्भव नहीं कि इन्हीं आततायी हूणों के हाथों लिच्छवि लोगों की भी श्रीहत हुई हो? अपने सम्बन्धी गुप्तों की तरह सम्भवतः लिच्छवि भी इन्हीं हूणों द्वारा सदा के लिये मटियामेट कर दिये गये। जब ६३५ ई० में चीनी यात्री ह्वेनसंग इनकी राजधानी वैशाली (आधुनिक बसाढ़, जि० मुजफ्फरपुर) आया था तो उसे नष्ट कीर्ति के अवशिष्ट चिह्न ही मिले थे। उस समय तक लिच्छवियों का गर्वयुक्त और उज्ज्वल इतिहास-सूर्य डूब चुका था।

शान्त-भावना का अभ्यास

प्रो० लालजीराम शुक्ल

शान्त भावना का अभ्यास अपने आपको शान्तमन करके बैठ जाने अथवा पड़ जाने का अभ्यास है। शान्त-भावना के अभ्यास के समान सरल और कोई भी अभ्यास नहीं है। सम्भवतः उसकी सरलता ही उसकी जटिलता है। हमारा मन इतना जटिल हो गया है कि उसके लिये शान्त-भावना की शक्ति में भी हमें विश्वास नहीं है। जिस प्रकार पुलिस का अफसर अथवा वकील की सी सच्चे व्यक्ति की सचाई में उसकी निस्वार्थ सेवा में विश्वास नहीं करता, इसी प्रकार शान्त-भावना की महती शक्ति में आधुनिक कालके जटिल मन के लोगों को विश्वास नहीं होता। मूल्यवान वस्तु परिश्रम से, देरतक चिन्तन से, अनेक प्रकार की उसके लिये उथल-पुथल करने से आती है। अथवा यदि किसी व्यक्ति से कहा जाय कि शान्त-भावना सुलाढ्य है और उसकी शक्ति अमित है तो उसे विश्वास नहीं होता। कभी कभी मनुष्य की चतुराई ही उसके दुःखों का, आपत्तियों का कारण होती है।

"मैं शान्त हूँ, मैं शान्त हूँ"--केवल इस प्रकार की कल्पना मन में लाने से मन में शान्त भाव आ जाता है। इस भाव के आते ही अनेक प्रकार के मानसिक खिंचावों का क्षणभर में अन्त हो जाता है। कभी कभी हमारे मन में किसी प्रकार का कुचिन्तन न होते हुये भी हमारे शरीर की दशा काम-उत्तेजना की होती है। यह दशा कुछ उत्तेजक भोजन के करने से भी हो जाती है। शान्त-भावना के क्षणभर के अभ्यास से यह दशा तुरन्त शान्त हो जाती है। शान्त-भावना के आत्म-निर्देश बड़े ही प्रबल होते हैं। शान्त मन होकर किसी प्रकार का निर्देश देने से शरीर की उन क्रियाओं पर प्रभाव डाला जा सकता है। जो हमारी इच्छा शक्ति की पहुँच के बाहर है। नाड़ी की गति को धीमी करना, हृदय की गति को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रोकना, किसी प्रकार की शारीरिक पीड़ा को हटाना, पाचन शक्ति को बढ़ाना, आँख और सिर के रोगों को दूर करना—ये सभी बातें शान्त-भावना के अभ्यास से उपलब्ध है। किसी प्रकार के शुभ आत्म-निर्देश तब तक फलित नहीं होते जब तक मनुष्य शान्त मन होकर उन्हें अपने आपको नहीं देता।

यदि आप सोकर उठें और थकावट की अनुभूति कर रहे हैं। आप अपने आपको शान्ति का निर्देश देवें। देखेंगे आपकी थकावट तुरन्त दूर हो गयी रहेगी। कभी कभी मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की अवस्था में मनुष्य जब सोकर उठता है तो स्वस्थ मन न होकर थक कर ही उठता है। कभी कभी उसे यहाँ तक स्वप्नों के कारण ठीक से नींद नहीं आती। ऐसी अवस्था में थोड़े समय का भी शान्त भावना का अभ्यास सारी थकावट और नींद की कमी की पूर्ति कर देता है। जो मनुष्य शान्त-भावना का अभ्यास नित्यप्रति करता रहता है उसे अधिक देर तक सोने की भी आवश्यकता नहीं होती। नींद शान्ति लाभ करने का साधन है। पर मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की अवस्था में शान्त भावना का अभ्यास करना आवश्यक होता है। फिर नींद भी ठीक से आने लगती है।

शान्त-भावना के अभ्यास के द्वारा अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग अच्छे किये जाते हैं। अमेरिका के मानसिक चिकित्सक इसका वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग करते हैं। बदहजमी, कब्जियत, सिर का दर्द, पेट का दर्द आदि रोग शैथलीकरण के अभ्यास से अच्छे किये जाते हैं। इसके द्वारा हकलाना, चिड़चिड़ापन स्मृति का ह्रास आदि मानसिक रोग भी अच्छे किये जाते हैं। इस विषय में "हाऊ रिलेक्स योर सेल्फ" नामक पुस्तक बड़ी उपयोगी है। अमेरिका की विधि में शारीरिक क्रियाओं के शैथली करण की प्रधानता है। यहाँ जिस विधि की चर्चा की जा रही है उसमें मानसिक शैथली-करण की प्रधानता पर जोर है। शारीरिक शैथली करण के प्रयत्न से मानसिक शैथली करण अवश्य होता है, पर दोनों एक ही बात नहीं। कभी कभी शरीर से मनुष्य शैथली करण की अवस्था में रहता है पर उसका मन उद्विग्न अवस्था में रह सकता है। कई दिनों के अभ्यास के पश्चात यह सम्भव होता है कि मनुष्य शरीर से तो अनेक प्रकार के कर्म करते रहे पर उसका मन शैथली करण की अवस्था में ही बना रहे। इतना ही नहीं एक मन से वह काम करता रह सकता है और दूसरा मन सुप्तावस्था जैसी अवस्था में पड़ा रह सकता है। यह कई दिनों के अभ्यास से उपलब्ध होता है।

शैथली करण नकारात्मक भाव है; शान्त-भावना का अभ्यास सकारात्मक है। शैथलीकरण शक्ति के अभाव को निर्देशित करता है और शान्ति-भावना शक्ति की उपस्थिति को। शैथलीकरण में सभी विचारों को बन्द कर देने की भावना रहती है। शान्त-भावना में शान्त विचारों की उपस्थिति का भाव रहता है। शान्त-भावना रचनात्मक शक्ति को जाग्रत करनेवाली मनोवृत्ति है। शैथलीकरण में मनुष्य प्रकृति पर अपनी शारीरिक क्रियाओं पर सुधारने का काम सौंप देता है। शान्त-भावना के अभ्यास के समय स्वयं व्यक्ति की चेतना गम्भीर चेतना से सम्पर्क स्थापित करके अपने शरीर की क्रियाओं में उचित परि-वर्तन कर देता है। जब मनुष्य का मन शान्तावस्था में रहता है तो वह अपनी व्यक्तिगत सत्ता को महान् सत्ता में मिला देता है। इस प्रकार के मिलन के परिणाम स्वरूप उसके शरीर और मन में चमत्कारक परिवर्तन हो जाते हैं। कई दिनों के रोग थोड़े ही काल के शान्त भावना के अभ्यास से नष्ट हो जाते हैं। मानसिक रोगों के लिए तो यह रामबाण का काम करती है।

शान्त-भावना के अभ्यास से मनुष्य अपने मन के ऊपर अधिकार पाता है। जब हमारा मन किसी विशेष प्रकार की टेव में लग जाता है तो उसे उससे मुक्त करना मोड़ना कठिन होता है। जैसे जैसे मनुष्य इन टेवों से छुड़ाने का प्रयत्न करता है वे और भी कठिन होती जाती हैं। ऐसी अवस्था में शान्त-भावना का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी होता है। पुराने विचारों के संस्कार शान्त भावना के अभ्यास से विनष्ट हो जाते हैं। इन संस्कारों के कारण ही मनुष्य किसी विशेष प्रकार का चिन्तन करता है। जब तक ये संस्कार उसके मन से नहीं हटते किसी प्रकार के शुभ निर्देश फलीभूत नहीं होते। कभी कभी वे प्रति निर्देश में ही परिणत हो जाते हैं। अर्थात् कभी २

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपने आपको आरोग्य का निर्देश देते हुए रोगी मौत के मुख में चला जा सकता है। पर सचमुच में वह इतनी दूर तक नहीं जाता। शान्त-भावना के अभ्यास के अभाव में रोगी को अपनी मानसिक शक्ति में विश्वास ही नहीं होता। अतएव वह आत्म निर्देश का अभ्यास करना अपने आप ही छोड़ देता है।

शान्त भावना का अभ्यास मानसिक अन्तर्द्वन्द का अन्त करता है, अतएव वह मानसिक शक्ति के संचय करने का बड़े महत्व का साधन है। इसके करते हुए मनुष्य बहुत सा काम करते हुए भी थकावट की अनुभूति नहीं करता। संसार के सभी महान पुरुष जाने अथवा अनजाने इस अभ्यास को करते रहे हैं। इसके कारण ही उनकी मानसिक शक्ति बढ़ती रही और वे अपने कार्यों से संसार को चकित करते रहे। यदि कोई मनुष्य चिन्ता-ग्रस्त होकर किसी काम को करे तो वह उस काम से अधमरा हो जाता है। उसे प्रायः सफलता न मिलकर विफलता ही मिलती है। जो लोग संसार के अनेक जटिल काम किये हैं, बड़ी बड़ी कठिनाइयों को पार किये हैं, उन्हें उन कठिनाइयों के पार करने का अनुभव ही नहीं हुआ। यदि उन्हें इसका अनुभव होता तो वे मर ही गये होते और वे कुछ भी नहीं कर पाते।

जब तक मनुष्य निरभिमान रहता है तब तक उसकी शक्ति अपार होती है। जब वह अभिमान युक्त हो जाता है तो उसकी सारी शक्ति का ह्रास हो जाता है। मनुष्य की सफलता उसके अभिमान को बढ़ाती है। और फिर उसकी सफलता ही उसकी विफलता का कारण बन जाती है। इसका कारण शान्त-भावना का उनके मन में न आना ही है। मनुष्य का अभिमान उसे उद्विग्न मन बना डालता है। वह अपने आपको महान् पुरुष समझने लगता है और सोचता है कि सभी लोगों को उसकी इच्छा के अनुसार चलना चाहिये। जब ऐसा वह अपने अनुयाइयों को अथवा सम्बन्धियों को करते नही देखता तो वह बेचैन हो जाता है। वह किसी का विरोध नहीं सह सकता। फिर उसकी यही मनोवृत्ति उसका विनाश कर डालती है। शान्त-भावना से वह कोसों दूर हो जाता हैं। शान्त भावना त्याग के अभाव में नहीं आती। यह त्याग शारीरिक नहीं मानसिक होना चाहिये। सबसे बड़ा त्याग अभिमान का त्याग है। जो इसे जितना अधिक छोड़ता है वह उतना ही बली हो जाता है। अभि-मान और उद्विग्नता एक दूसरे के सहगामी हैं। इनसे शान्तावस्था का विनाश हो जाता है और फिर शक्ति का भी ह्रास हो जाता है।

एक मनुष्य की शान्तावस्था दूसरे मनुष्य को भी लाभदायक होती है। जिस प्रकार मानसिक उद्विग्नता संक्रामक है उसी प्रकार शान्तावस्था भी संक्रामक है। किसी व्यक्ति को पहले पहल इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये ऐसे व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित करना होता है जो इस अवस्था का नित्य-प्रति अभ्यास करता हो। भगवान् बुद्ध के सम्पर्क में जो भिक्षु आते थे उन्हें समाधि लाभ सरलता से हो जाता था। स्वयं भगवान् बुद्ध समाधि अवस्था में बैठकर दूसरे भिक्षुओंको समाधि लाभ कराने में सहायक होते थे। उनके जीवन की कई गाथाओं से ज्ञात होता है कि जो लाभ अनेक दिनों के प्रयत्न से भिक्षुओं को नहीं हुआ वह एक ही दिन के भगवान् बुद्ध के समाधि अवस्था के दर्शन और ध्यान तथा उसी भावना के अभ्यास से हो गया। इस तरह हमारा अभ्यास न केवल हमें ही लाभकारी होता है, वरन् दूसरों को भी लाभ-कारी होता है। यदि इस प्रकार का अभ्यास देश के कुछ लोग ही करें तो देश की शक्ति अतुलित हो जाय। उसकी जटिल से जटिल समस्यायें सरलता से ही हल हो जायें। हम अपनी मानसिक जटिलताओं को ही परिस्थितियों पर आरोपित करके उन्हें जटिल बना देते हैं। यदि हम सरल चित्त हो जावें तो हमारी परिस्थितियाँ भी सरल हो जायें और बहुत सी समस्यायें अपने आप ही हल हो जायें।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चीन और भारत का सांस्कृतिक सम्बन्ध

श्री सुमन वात्स्यायन

ई० सन् के सैकड़ों वर्ष पूर्व से भारतीय विदेशों में जाकर बसते रहे हैं। जिन देशों में भारतीयों ने अपना उपनिवेश बसाया वहाँ तो भारतीय सभ्यता, संस्कृति साहित्य, कला आदि का अमिट छाप लगाया ही, साथ ही कुछ ऐसे देशों को भी भारतीय रंगों में रँग दिया ; जहाँ इनका कोई उपनिवेश नहीं था । ऐसे देशों में भारतीय मिशनरियों ने ऐसे-ऐसे काम किये, जिन्हें जानकर आज का भारत ही नहीं सारा संसार चकित हो जाता है। अनेक शताब्दियों तक, विशेष रूप से सम्राट् अशोक के समय से भारतीय बौद्ध-भिक्षु दुर्गम पहाड़, रेगिस्तान और अज्ञात समुद्रों को पार कर अनजाने देशों में धर्म प्रचार के लिये जाते रहे । उनका साहस, उनकी लगन और उनकी आत्मनिष्ठा आज भी इस अर्द्धमूर्च्छित देश को बल प्रदान कर सकती हैं । इनकी पहुँच और उनका प्रभाव सुदूर जापान तक ही नहीं, 'पवित्र रोम साम्राज्य' तक था। भारतीय व्यापार के साथ-साथ भूमध्य सागर के बन्दरगाहों की यात्रा व्यापारियों ने ही नहीं, काषाय वस्त्रधारी भिक्षुओं ने भी की । व्यापारी अपना सौदा बेंच हिसाब चुकता कर चले आते थे, पर ये भिक्षु अपने साथ जो सौदा-भारतीय ज्ञान-विज्ञान ले जाते थे, उसे सदा के लिए वहीं छोड़ देते थे।

इन भारतीय धर्म प्रचारकों की संख्या दस-बीस या सौ दो सौ नहीं थी, बल्कि सदियों तक हजारों की तादाद में प्रथम श्रेणी के दिमाग रखनेवाले भारतीय तरुण समस्त ज्ञात जगत में घूमते रहे। यही कारण था कि आज जो भारतीय-ग्रंथ भारत में अप्राप्य है, वे चीनी, तिब्बती आदि भाषाओं में मौजूद हैं। अनगिनत पुस्तकें अपने मूल रूप में विदेशों में पड़ी हैं। यद्यपि कालान्तर में बौद्ध-धर्मका नाम निशान भारत से मिट गया, किन्तु आज भी संसार के करोड़ों नर-नारी भारत के उस महान् पुरुष-बुद्ध की शिक्षा से अनुप्राणित होते हैं । चीन ऐसे ही देशों में है।

प्राचीन-संबन्ध

चीनके वाशिंदे चीनको चुँगकुओ या मध्य राज्य कहते हैं। प्राचीन कालमें लोग अपनेको साधारणतया लि-मिन (श्याmकेशी) और देशको चुँग-कुओ कहते थे।

चीनका दूसरा लोकप्रिय नाम है हुंआ-कुओ अर्थात् पुष्पित-राष्ट्र। संभवतः शेंसीके पवित्र पर्वत चुँग हुआ (मध्य पुष्प) के अधार पर ही वह नाम रखा गया हो। गणतंत्रके अनुसार चीन का नाम था चुँग-हुआ मिन-कुओ अर्थात् मध्यपुष्प जनराज्य लेकिन यूरोप वालोंने इसे सिने, कैथे, सेरेस आदि नामोंसे उल्लेख किया है।

पेरिप्लस ने लिखा है—इस प्रदेश के बाद बिलकुल उत्तर में एक बहुत बड़ नगर है जिसे थिनेय कहते हैं और जहाँ से कच्चा रेशम और रेशमी कपड़े तथा रेशमी सूती बैक्ट्रिया होकर बारायगाजा आता था और गंगा होकर दामिरिका (तामिलकम द्रविड़ या तमिल देश) पहुँचता था। बहुत संभव है कि 'त्सिन' राजवंश (ई० पू० २४९-२२०) के कारण ही देश का नाम चीन पड़ा है।

भारत और चीनका सांस्कृतिक सम्बन्ध इतना पुराना है कि इसकी शुरुआत का समय कोई नहीं बता सकता। चीनी जनश्रुति के अनुसार भारत में बुद्ध पैदा हुये तो चीन सम्राट लिन ने स्वप्न देखा कि उसके राजमहल पर एक अलौकिक दिव्य प्रकाश फैल रहा है। जाँच करने पर मालूम हुआ कि भारत-भूमि पर एक महापुरुष का जन्म हुआ है। इस घटनाके लगभग ५००वर्ष बाद सम्राट मिंग ती के समय में हम बाजाब्ता बौद्ध धर्म को चीन में प्रवेश करते देखते हैं।

संस्कृत-साहित्य तो चीन के उल्लेखों से भरा पड़ा है। महाभारत से लेकर चरक और वाराहमिहिर तक को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हम चीन का उल्लेख करते पाते हैं। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चीन की ओर से भी भेंट आई थी। पांडवों ने सुबाहु राजा के यहाँ जाते हुए चीनियों के देश को पार किया था १। 'चीनांशुक' (चीन के बने वस्त्र) कविशिरोमणि कालीदास को बहुत प्रिय था। इसीलिए तो शंकुन्तला और कुमारसंभव में उसका उल्लेख किया है। कौटिल्य को तो उसकी जानकारी थी ही। पालि साहित्य में भी चीन का उल्लेख हैं। "मिलिन्द-पन्हो" नामक ग्रन्थ (रचनाकाल १०० से १५० ई० स०) के चौथे परिच्छेद में भिक्षु नागसेन ग्रीकराज मिनांडर से कहते हैं–"महाराज! चीन देश में चीनी लोगों का एक राजा रहता है। वह समुद्र को बाँध देने की इच्छा से, कभी-कभी चार-चार महीनों का बीच देकर एक सत्यव्रत का पालन करता है। उसके बाद अपने रथ में सिंहों को जोतकर समुद्र में प्रवेश करता है।" मिलिन्द पन्हों (मिलिन्द प्रश्न) से भी प्राचीन ग्रंथ है जातक (ई पूर्व ५००) इसके 'निदान कथा' में लिखा है– "उनके बाद कोणागमन बुद्ध पैदा हुए। उस समय हमारे बोधिसत्व पर्वत नामक राजा थे। उन्होंने अमात्यों के साथ, बुद्ध के पास जा, धर्मोपदेश सुना, बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को निमंत्रित कर प्रतूर्ण-वस्त्र के साथ भोजन प्रदान कर शास्ता के पास प्रव्रज्या ग्रहण की।" ई० सन् चौथी पाँचवीं सदी के बाद की पुस्तकों में तो चीन का अनगिनत उल्लेख है। यदि भारतीय साहित्य का तुलनात्मक विशद अध्ययन किया जाय तो चीन और भारत के संबन्ध पर अच्छा प्रकाश पड़ेगा।

चीनी साहित्यके अध्ययनसे मालूम होता है कि उनके यहाँ भारतके विषयमें जो उल्लेख है वह ज्यादा सिलसिलेवार और निश्चित है। भारतके लिये चीनी प्राचीन साहित्यमें अनेक नाम आये हैं। जैसे-हियेन तू। पर ये सब शेनतूके ही अपभ्रंश हैं। ज्यादा व्यवहृत नाम तियेन-चू और चुंग-तियेन ही है।

ऐतिहासिक काल

हूण लोगोंके चीनपर बार-बार-आक्रमण करनेसे जहाँ एक ओर चीनियोंको अनेक प्रकारकी हानि उठानी पड़ी वहीं दूसरी ओर अनेक प्रकारसे लाभ भी हुये। चीनियोंका संपर्क पश्चिमी देशोंसे बढ़ा, जिससे उसके व्यापारमें तरक्की हुई, सांस्कृतिक उन्नति हुई। १२१ ई० पूर्वमें चीनका एक सेनापति हूणोंका पीछा करता हुआ मध्य एशिया पहुँचा। वहाँ एक हूण प्रधानसे उसे एक खूबसूरतमूर्ति मिली। यह हूण प्रधान इस मूर्तिकी पूजा करता था। चीनी-सेनापति यह मूर्ति अपने साथ चीन लाया। निश्चिय ही यह मूर्ति भगवान् बुद्धकी रही होगी। मध्य-एशियाके आधुनिक खोजोंसे भारतीय इतिहासपर बहुत प्रकाश पड़ता है। इन खोजोंके अध्ययनसे मालूम होता है कि आजसे लगभग दो हजार वर्ष पूर्व मध्य-एशियामें अनेक भारतीय उपनिवेश थे और जिनकी आबादी बौद्ध धर्मको मानती थी।

राजगृह-परिदर्शन

श्रामणेर सङ्घरक्षित

रासविहारी विद्यालय से हमने अपनी यात्रा का ढंग बदला और ११½ बजे राजगृह जानेवाली गाड़ी में सवार हो गये। एक घण्टे भी नहीं लगे कि राजगृह स्टेशन पर पहुँच गये। बीच मार्ग के अनेक मनमोहक दृश्यबरवश हमारी आँखों को अपनी ओर खींच लेते थे। हम उन्हें देखते हुए मगध के प्राचीन वैभव की याद करते हुए चल रहे थे। उस देश एवं प्रदेश की यात्रा कितनी मधुर स्मृतियों को ताजी कर देनेवाली थी, जहाँ कि तथागत ने महाभिक्षु संघ के साथ सदा भ्रमण किया था, उपदेश दिया था और बहुजन का कल्याण देखते हुए भिक्षाटन किया था।

१. इंडियन लिटरेचर इन चायना.

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गाड़ी से उतरते ही स्थानीय जापानी बौद्ध विहार के वर्तमान् अध्यक्ष एक हिन्दू स्वामी विश्वानन्दजी ने बड़े ही प्रेम-पूर्वक हमारा स्वागत किया। हम उनके साथ विहार की ओर गये। हमारी दृष्टि सदा उन पहाड़ों की ओर जा रही थी, जिधर कि कभी यहाँ का सुप्रसिद्ध कलन्दक निवाप का वेणुवन विहार था, जिसमें सदा भिक्षु निवास करते थे और जिसे महाराज बिम्बिसार ने भगवान् को दान दिया था एवं जो भिक्षु संघ को सर्वप्रथम विहार प्राप्त हुआ था।

यहाँ के पहाड़ों के मध्य में ही वह प्राचीन विश्व विख्यात राजगृह नगर स्थित था। जो सामने बाँस के झुरमुट दिखाई पड़ते थे, उनसे कुछ दक्षिण पटना और गया जिलों से आये हुए ग्राम-रक्षक दलों के शिक्षण-शिविर थे। उनके द्वारा निमन्त्रित किये जाने पर हमने बौद्ध-धर्म, अछूतोद्धार इत्यादि पर अगले दो सप्ताहों में भिन्न भिन्न अवसरों पर अनेक व्याख्यान दिये। भिक्षु श्री काश्यप ने राजगृह में भी एक भाषण दिया।

अन्तर्राष्ट्रीय-धर्म

१० फरवरी को हमें जापान के भिक्षु श्री रीरी नाकायामा से मुलाकात हुई, जो भारत वर्ष में शान्ति सम्मेलन में भाग लेने के लिए आये थे। उनके साथी हमें अपने मित्र भिक्षु अमृतानन्द से भेंट करने का अवसर हुआ। यहाँ से हम लोग पिप्पलि-गुफा की ओर चले, जहाँ महाकाश्यपजी के रहने का अनुमान किया जाता है। इसी बीच में हम चारों भिक्षुओं का ध्यान इस बात पर गया कि हम चारों ही भारत, नेपाल, जापान, एवं इंगलैण्ड देशों के निवासी हैं। वास्तव में बौद्ध-धर्म एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म है।

गृद्धकूट के शिखर पर

कई दिनों तक ठण्डी एवं बरसाती हवा के चलने के बाद आज अचानक मौसम में परिवर्तन हुआ। अतः हमने गृद्धकूट पर्वत पर चढ़ने का निश्चय किया। ज्योंही हम लोग उत्तरी फाटक पर पहुँचे, हमने अपने को एक शान्तिमय वातावरण में पाया। यहाँ से एक सड़क दक्षिण की ओर गयी है, निस्संदेह यह भगवान् बुद्ध और सम्राट् बिम्बिसार के समय वर्तमान रही होगी। श्वेत पुष्पों से सुशोभित थुहर के जंगल, छोटी छोटी काँटेदार झाड़ियों तथा पीले-पीले बाँसों के झुरमुट से होकर जानेवाली यह सड़क एक अलौकिक दृश्य उत्पन्न करती है। कड़ी धूप में डेढ़ घण्टे तक चलने के बाद हम जैन मन्दिर के ध्वंसावशेष को पार कर गये। जो पहले सर्प-पूजा का स्थान था, शीघ्र ही हमें बिम्बिसार का बन्दीगृह दिखायी पड़ने लगा। अजातशत्रु ने अपने वृद्ध पिता को यहीं कैद किया था। भवन की सिर्फ भित्ति ही रह गयी है। बौद्धों की धारणा के अनुसार वृद्ध बिम्बिसार अपनी छोटी सी कोठरी से पूरब की ओर गृद्धकूट पर्वत को देखा करता था, जहाँ उसे काषाय वस्त्रों में ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर जाते हुए भगवान् बुद्ध के दर्शन होते थे। महायान ग्रन्थों के अनुसार इसी दुःखमय वातावरण में वृद्ध सम्राट् को सान्त्वना देने के लिये भगवान् बुद्ध ने सुखावती व्यूह और अमिताभध्यान के सूत्रों का उपदेश दिया था।

थोड़ी ही देर में हमारी सड़क की एक शाखा पूरब की ओर मुड़ गयी और हम रत्नगिरि की निचली ढाल पर चढ़ने लगे। जगह-जगह पर विशाल चट्टानों द्वारा बनायी सीढ़ियों को देखकर हमारे पास उन प्राचीन इञ्जीनियरों की कार्य-दक्षता के वर्णन करने के लिए शब्द नहीं मिलते, जो इतनी ऊँचाई पर भी विशाल चट्टानों को लाकर भवन निर्माण करने में कैसे समर्थ थे, जब कि आज के क्रेन आदि आधुनिक सामग्रियों का सर्वथा अभाव था। ये जो दो ईंटों की इमारतों के ध्वंसावशेष दिखायी पड़ते हैं, कहा जाता है कि इस पहली इमारत के पास बिम्बिसार अपने रथ से उतरकर पैदल चढ़ाई आरम्भ करते थे और इस दूसरी इमारत के पास आकर अपने सभी प्रत्याहारियों को छोड़कर अकेले ऊपर जाया करते थे। इन दोनों स्थानों में हमने कुछ काल के लिये विश्राम कर ठण्डी वायु का आनन्द लिया।

गृद्धकूट पर्वत का शिखर चट्टानों के एक वृहत् अंश से बना है, ऐसा अनुमान किया जाता है कि किसी समय भयानक भूकम्प के कारण ये चट्टानें पृथ्वी से उड़कर ऊपर जा पहुँची होंगी। यहाँ से एक चक्राकार रास्ता चोटी के पूर्व से पश्चिम की ओर घूमता हुआ तथा अनेक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुफाओं और सुन्दर कुटियों को पार करता हुआ एक ध्वंसित इमारत के पास जाता है, जहाँ भगवान् कभी निवास किया करते थे।

यहाँ समूची घाटी का दृश्य एक ही बार आसानी से देखने में आ सकता है। पश्चिम की ओर स्वर्णगिरि, उत्तर पूर्व—वैभारगिरि; दक्षिण की ओर विपुलगिरि तथा रत्नगिरि और उत्तर में उदयगिरि पर्वत अवस्थित हैं। बसन्त और गर्मी के दिनों में भगवान् बुद्ध यहीं समाधि लगाया करते थे।

तथागत की करुणा

कौन कह सकता है कि वे महान् महाकारुणिक भगवान् यहाँ से ही इस प्राचीन राजगृह नगर-निवासियों के दुःखों को नहीं देखा करते थे ? कौन नहीं कह सकता है कि भगवान् बुद्ध आज भी इस विश्व को कौन कहे, सारे ब्रह्माण्ड के प्राणियों के दुःख को देखा करते हैं तथा अनन्त काल तक देखा करेंगे ? निस्संदेह उनके करुणामय उपदेश ओस की बूँदों की भाँति इस राजगृह, समस्त विश्व, समस्त ब्रह्माण्ड, देवताओं, मनुष्यों एवं पशुओं, तथा पीड़ितों पर समभाव से बरसते थे, बरसते हैं और बरसते रहेंगे। आज उनकी वह करुणा हम "धर्म" में पा सकते हैं। जब हम खोजने को प्रस्तु होंगे, हम देखेंगे इस धर्म का गूढ़ प्रभाव हम सब के हृदय पर पड़ा हुआ है।

बिहार में बौद्ध धर्म का प्रत्यावर्त्तन

यहाँ से जब हम १००० फीट नीचे की घाटियों पर दृष्टिपात करते थे जो कभी सुन्दर एवं समृद्धिशाली नगर रही होंगी तथा आजकल जंगल के रूप में परिवर्तित हो गयी हैं, हमें इन पाँच पर्वत-श्रृङ्गों के उसपार हरे भरे उपजाऊ खेत, मिट्टी की बनी हुई ग्रामीण किसानों की कुटियाँ एवं आम्रकुञ्जों के बीच प्राचीन मगध तथा आधुनिक बिहार के दर्शन होते हैं। इस तरह देखते-देखते ही हमारे हृदय में यह आकांक्षा उत्पन्न होती है जो निश्चय ही कभी भगवान् बुद्ध के हृदय में भी उत्पन्न हुयी होगी कि इस देश के निवासी—समस्त विश्व के निवासी-ध्यान पूर्वक शांति का संदेश सुनेगें तथा उस पथ का अनुसरण करेंगे जो निर्वाण एवं मुक्ति प्रदान करता है।

इन महान् अर्हन्तों के देश में हमने जो कुछ भी देखा उससे मालूम पड़ता है कि वह दिन दूर नहीं है जब यहाँ के निवासी एक बार फिर उस परम पवित्र पथ का अनुगमन करेंगे तथा उन महान् उपदेशक के धर्म को अपनाकर विश्वको शान्ति का संदेश देंगे।

शोक दुःख का कारण है

श्रीअनन्त

मगध देश के राजा मुण्ड की रानी का नाम भद्रा था। वह परम सुन्दरी थी। उसकी सुन्दरता पर राजा मुण्ड मोहित था। उठते-बैठते-सोते-जागते सदा वह उसे देखना चाहता था। वह जहाँ जाता था भद्रा को अपने साथ ले जाता था। भद्रा के बिना उसे एक क्षण भी रहना कठिन जान पड़ताथा।

एक दिन भद्रा को एक भारी रोग हो गया। राजा ने उसकी दवा-दारू के लिए उठा न रखा, किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी भद्रा न बच सकी। उसके पञ्चस्कन्ध छिन्न-भिन्न हो गये और वह मर गई। भद्रा की मृत्यु से राजा मुण्ड को बड़ा खेद हुआ। वह स्नान करना, माला-गन्ध धारण करना, खाना-पीना तक छोड़ दिया। उसके सारे कार्य रुक गये। किसी भी काम में उसका मन नहीं लगता था। वह 'भद्रा' के रूप में ही मूर्छित, भद्रा को ही चाहता हुआ 'हाय भद्रा ! हाय भद्रा !!' कहा करता था। उसने अपने कोषाध्यक्ष पियक को बुलाकर कहा—"सौम्य ! मेरी रूपवती भद्रा के मृत शरीर को तेल से भरी हुई एक लोहे की द्रोणी (सन्दूक) में डालकर ऊपर से लोहे की ही दूसरी द्रोणी से ढँक दो, ताकि हम लोग भद्रा के शरीर को बहुत दिनों तक देख सकें। पियक ने राजा के कथनानुसार भद्रा के शरीर को द्रोणी में बन्द कर सोचा —"यह अच्छा नहीं है कि राजा मुण्ड भद्रा के ही शोक में सदा रहे, इसके शोक को दूर होने का उपाय करना चाहिए।,, वह राजा के पास

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जाकर कहा देव ! पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम में नारद नाम के प्रसिद्ध भिक्षु रहते हैं, वे पण्डित, बुद्धिमान, बहुश्रुत, और ज्ञानी हैं, आप उनके पास चलें, सम्भवतः उनके सत्संग से आप का शोक दूर हो जाय। पियक की यह बात राजा को जँच गई। वह सवारी तैयार करा सज-धज कर पियक के साथ आयुष्मान नारद के पास जाने के लिए प्रस्थान कर दिया। जहाँ तक रथ से जाने का मार्ग था, वहाँ तक रथ से जाकर, रथ वहीं छोड़ पैदल ही आयुष्मान् नारद के पास गया और प्रणाम् कर एक ओर बैठ गया। उसने एक ओर बैठ जाने पर आयुष्मान् नारद ने कहा—"महाराज ! ये पाँच बातें नहीं प्राप्त होने वाली हैं, इन्हें श्रमण, ब्राह्मण, देवता, मार या ब्रह्मा कोई भी नहीं पा सकता। कौनसी पाँच ? (१) बुढ़ापा न आये (२) रोग न पीड़ित करे (३ क्षय होने वाली चीज़ें बनी रहें (४) नाश होने के स्वभाव की वस्तुयें नष्ट न हों और (५) मरण-स्वभाव वाले की मृत्यु न हो। महाराज ! जो इनके होने पर शोक करता है, नहीं खाता है, नहीं स्नान करता है, छाती पीट पीट कर रोता है, आंसू बहाता है, दुखी होता है, उसके दुःख को देखकर उसके भाई-बन्धु, मित्र आदि भी दुखी और चिन्तित होते हैं। उन्हें भी खाना-पीना अच्छा नहीं लगता है। किन्तु यथार्थ में इस रोने से, दुःख मनाने से, शोक करने से केवल दुःख ही होता है, कोई लाभ नहीं होता। इसे ही कहते हैं कि वह अनाड़ी व्यक्ति विषबुझे शोक के काँटे से छिद कर अपने को ही आप पीड़ित कर रहा है। बुद्धिमान व्यक्ति लोक के नश्वमान् स्वभाव को जान कर शोक करना छोड़ देता है, वह जानता है कि इन बातों से बचा नहीं जा सकता।,,

आयुष्मान् नारद के इस प्रकार के उपदेश को सुनकर मुण्ड का शोक शान्त हो गया। भद्रा की रूपशोभा के प्रति उत्पन्न मूर्छा मिट गई। हृदय में चुभा हुआ शोक का कांटा निकल गया। वह प्रसन्न होकर राजभवन गया और भद्रा का अन्त्येष्टि संस्कार किया।

मण्डल की ताज़ी पुस्तकें

पठनीय, मननीय और संग्रहणीय

१. **पन्द्रह अगस्त के बाद**—महात्मा गांधी के पन्द्रह अगस्त १९४७ से अन्तिम लेख तक का संग्रह। आज़ादी तथा उससे पैदा हुई समस्याओं पर सम्यक् विचार। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ २४०, मूल्य २)

२. **धर्मनीति**—जीवन नीति और उसके पालन सम्बन्धी नियम उपनियम का विवेचन करनेवाली महात्मा गांधी की चार पुस्तकों का संग्रह। बढ़िया छपाई व कपड़े की जिल्द, मूल्य २)

३. **बापू की कारावास-कहानी**—लेखिका डा० सुशीला नैयर। आगाखाँ महल में बापू के बन्दी-जीवन के इक्कीस महीनों का हृदय-स्पर्शी इतिहास, २८ चित्र, सुन्दर छपाई, पृष्ठ ४८०, मूल्य १०)

४. **सर्वोदय विचार**—आचार्य बिनोवाःसर्वोदय और उसके सिद्धान्तों का सूक्ष्म विश्लेषण, १।।)

५. **पंचदशी**—भारत के चिन्तकों और साहित्यकारों के पन्द्रह उच्चकोटिके निबन्धों का संग्रह, १॥)

मण्डल से प्रकाशित 'जीवन साहित्य' के ग्राहक बनने से ये तथा मण्डल की अन्य पुस्तकें आपको रियायती मूल्य में मिलेंगी। पत्र का वार्षिक मूल्य ४)।

व्यवस्थापक—**सस्ता साहित्य मण्डल**
नयी दिल्ली

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कर्म-द्वार

भिक्षु धर्मरक्षित

पुराने ज़माने में बहुत से नैयायिकों का कहना था कि हमारे जितने भी कर्म हैं, उन सब के द्वार काय और वाक् हैं। थाली में परोसकर रखा हुआ भोजन भी केवल मन से नहीं खाया जा सकता। यदि हाथ उसे उठा-उठाकर मुख में न डाले। पालथी मारकर बैठा हुआ व्यक्ति उस जगह नहीं जा सकता यदि उसके पैर गाम-ज़न न करें। वस्तुतः मनोद्वार उन्हें मान्य न था। ठीक इसके विपरीत कुछ ऐसे नैयायिक थे, जो केवल मनोद्वार के अस्तित्व को ही स्वीकार करते थे। उनका कहना था कि यदि हमारा मन खाने को न हो तो क्या हाथ भात की एक भी सिट्ठी मुख में डाल सकता है। यदि एक जगह से दूसरी जगह जाने का 'मन' न हो तो क्या हमारे पैर तदाभिमुख गामज़न कर सकते हैं? जो काय वाक् को कार्य-सिद्धि के लिये द्वार प्रज्ञापन करते हैं उनका कथन एकदम तुच्छ और प्रलाप मात्र है।

एक और भी न्याय-प्रकाश था जो मन, काय और वाक् इन तीनों द्वारों को मानता था, किन्तु उसे काय द्वार मात्र महादोषपूर्ण दीखता था। वचीद्वार और मनोद्वार की सावद्यता उसे कबूल न थी। उसका कहना था कि हम मन से सोचते हैं और कायद्वारा उस पर अमल करते हैं, यदि जीव-हिंसा करने के लिये मन होते हुए भी हाथ में हथियार लेकर प्राण-घात न करें, तो बुराई नहीं, दोष नहीं। वचन द्वारा नाना प्रकार के अच्छे बुरे कामों को करने के लिये उद्घोषण करते हुए भी काय-द्वारा उसके मुताबिक अमल न करें तो उनके अच्छे बुरे विपाक नहीं। व्यक्ति जब हाथ-पैर चलाकर सेंध काटता है, तभी जेल की सज़ा भुगतनी पड़ती है, न केवल सेंध काटने के लिये विचार मात्र से। 'मैं तुझे एक दिन हलाल कर दूँगा' कहने मात्र से उसका हिंसा कृत्य सिद्ध नहीं होता, यदि वह जान न मारे।

जब हम उक्त इन तीनों वादों पर भली-भाँति ग़ौर करते हैं, तब नाना प्रकार के दोष दीखने लगते हैं और उठ खड़े होते हैं नाना प्रकार के प्रश्न। यदि काय और वाक्द्वार मात्र अच्छे-बुरे कर्मों के द्वार हैं तो क्या बिना चित्त के, बिना मन के सामने परोसा भात खा सकते? बोलने की इच्छा न होते हुए कुछ भी बोल सकते? यदि सभी कर्मों का 'मन' मात्र द्वार है, काय और वाक् तुच्छ हैं, तो क्या मन के होते हुए भी बिना हाथ-पैर चलाये, कायिक कर्म साध्य हैं? मन के होते हुए भी वाणी द्वारा बिना बोले झूठ अथवा सत्य बचन बोलना सिद्ध है? यदि केवल काय-कर्म महादोषपूर्ण हैं, काय-द्वार से ही सारी बुराइयाँ होती हैं, तो क्या आते जाते बिना देखे, अनजान में अनेक जीव मर जाते हैं, जिन्हें मारने की चेतना स्वप्न में भी नहीं होती—महासावद्य है? यदि एक व्यक्ति नंगी तलवार उठाये और कहे कि मैं इस नगर में जितने प्राणी हैं, उन सबको मैं एक क्षण में तलवार के घाट उतार दूँगा, तो क्या यह सम्भव है? और एक वह व्यक्ति जो ऋद्धिमान है, जिसने अपने चित्त को वश में कर लिया है, ऐसा कहे कि मैं एक ही मन के क्रोध से इस सारे नगर को भस्म कर दूँगा, तो क्या यह असम्भव है?

यदि ऐसा नहीं तो मानना पड़ेगा कि काय, वाक् और मन—यह तीन कर्मद्वार हैं। सभी कर्म इन्हीं द्वारों से सम्भूत हैं एवं मन का सम्बन्ध सभी के साथ है। मन उनका प्रतिशरण है। कहा है—'सारी अवस्थाओं का मन अगुआ है, मन प्रधान है और सारे कर्म मनोमय हैं, जब अपना मन बुरा या भला होता है तब कायिक और वाचिक कृत्य भी उसके मुताबिक बुरे या भले होते हैं।'

काय-कर्म-द्वार

'काय' चार प्रकार का होता है—(१) उपादिन्नक, (२) आहारज, (३) ऋतुज और (४) चित्तज। इस शरीर में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वर्ण, गन्ध, रस और ओज—इन आठों को, जो कि कर्म से उत्पन्न हैं, उपादिन्नक काय कहते हैं। यही आठ आहार से उत्पन्न होने के कारण आहारज तथा ऋतु से उत्पन्न होने के कारण ऋतुज कहे जाते हैं। ऐसे ही चित्त से उत्पन्न चित्तज। इनमें काय-कर्मद्वार न तो उपादिन्नक काय है और न दूसरे ही,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रत्युत चित्तज काय में एक विज्ञप्ति दीख पड़ती है, इसी को काय कर्मद्वार कहते हैं।

'मैं चलूँगा', 'मैं लौटूँगा' ऐसे चित्तों की उत्पत्ति के साथ ही जो उक्त आठ रूप समूहों के अन्दर चित्तज वायो धातु है, वह अपने साथ उत्पन्न रूपकाय को हिलाती है, डुलाती है, चलाती है, बढ़ाती और लौटाती है, जिससे कि चलना-फिरना सिद्ध होता है।

आँख के सामने खड़ा व्यक्ति हाथ या पैर उठाता है, सिर या भौं चलाता है, यह सब आकार चक्षु द्वारा जाना जा सकता है, किन्तु विज्ञप्ति आँख द्वारा नहीं जानी जा सकती। वह केवल मनोविज्ञेय है। आँख से हाथ वगैरह को हिलाने मात्र को देखते हैं। विज्ञप्ति के मनोद्वारिक चित्त से सोच विचार कर जानते हैं कि फलाँ आदमी इस इशारे से यह कह अथवा कर रहा है। स्काउट कैप्टन जिस रास्ते से जाता है, पेड़ों या ऊँचे स्थानों पर संकेत करता जाता है, जिन्हें देखकर पिछली टोली के भी स्काउट यह जान लेते हैं कि पहली टोली फलाँ रास्ते गयी है। उत्सव के स्थान पर ध्वजा फहराते हैं। पताके उड़ाते हैं। पानी के अन्दर मछली के चलने से ऊपर बुलबुले उठते हैं। जिस ओर से होकर सैलाब बहा रहता है, उस ओर बाद में खर-पतवार आदि जहाँ-तहाँ जमा हुआ दीखते हैं। पानी का बहाव जान पड़ता है। इस प्रकार उन चीजों को आँखसे न देखकर भी तत्सम्बन्धी बातें जानी जा सकती हैं।

स्पष्ट है कि विज्ञप्ति आँख द्वारा नहीं जानी जाती, वह मन से ही समझी जाती है। जिसे जानवर भी जानते हैं। एक जगह जमा हुए कुत्ते, सियार आदि डण्डा या ढेला लेकर मारने के ख्याल से हाथ उठाते हुए आदमी को देखकर उसी क्षण समझ जाते हैं और वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं।

चित्तज काय के चलने पर उनसे उत्पन्न विज्ञप्ति भी उन्हीं का अनुगमन करती है जैसे कि पानी के बहने पर उसमें पड़ी सूखी लकड़ियाँ अथवा पत्तियाँ भी उसके साथ ही बहती हैं, रुकने पर रुकती हैं। इस तरह चित्तज काय में उत्पन्न जो विज्ञप्ति है, उसे काय-कर्मद्वारा जानना चाहिये। और जो उस द्वार पर सिद्ध चेतना है, जिससे कि जीव-हिंसा करते हैं, चोरी, व्यभिचार करके चोर और व्यभिचारी बनते हैं अथवा इन बुराइयों से अलग होते हैं, यह काय-कर्म द्वार है।

जिस प्रकार घर के दरवाजे अपने स्थान पर ही हमेशा रहते हैं, वे वहाँ से इधर-उधर एक इञ्च भी नहीं होते, आदमी अपने काम के मुताबिक उन द्वारों में सञ्चरण करते हैं, ऐसे ही उक्त तीनों द्वार अपनी जगह नहीं त्यागते। उन द्वारों के साध्य-कर्म वहाँ सिद्ध होते रहते हैं। कर्म से द्वार की प्रज्ञप्ति होती है और द्वार से कर्म की।

वची-कर्म-द्वार

'वाक्' तीन प्रकार का होता है—(१) चेतना, (२) विरति और (३) शब्द। इनमें वची कर्मद्वार न तो चेतना है और न तो विरति ही। शब्द के साथ एक विज्ञप्ति लगी दीख पड़ती है उसे ही वची कर्मद्वार कहते हैं। 'दत्तमित्र !' कहकर पुकारते हुए आदमी के शब्द को सुनकर हम जान लेते हैं कि फलाँ पुकार रहा है, और फलाँ स्थान पर फलाँ काम कर रहा है। यह पशुओं को भी प्रगट है। 'एही' 'सी-सी' आदि शब्दों को सुनकर वे भी जान लेते हैं कि व्यक्ति क्या कर रहा है। वची द्वार पर सिद्ध जो चेतना है, जिससे कि झूठ बोलते हैं, चुगली खाते हैं, बकवाद करते हैं, कड़ी बात बोलते हैं, अथवा इन सब बुराइयों से अलग होते हैं, यही वची कर्म है।

मनो-कर्म-द्वार

मन, विज्ञान, चित्त और आत्मा एक ही के पर्याय शब्द हैं, जैसे द्वारपाल द्वार पर बैठा हुआ पूरब, दक्खिन, पच्छिम, उत्तर सभी दिशाओं से आते हुए लोगों को देखता है, ऐसे ही आँख से रूप को देखकर, कान से शब्द को सुनकर नाक से महक को सूँघकर, जीभ से स्वाद चखकर, शरीर से स्पर्श कर उन्हें जो जानने का ज्ञान है, वही मन, विज्ञानादि है। इस तरह कामावचर के तैंतालिस चित्त, रूपावचर के पन्द्रह, अरूपावचर के बारह और लोकोत्तर के आठ—सभी नवासी चित्त मन है। इनमें तीनों भूमियों के अच्छे-बुरे उन्तीस चित्त-मात्र मनोकर्मद्वार हैं और जो उस मनोद्वार में सिद्ध चेतना है जिससे कि लोभ अतिहिंसा की भावना मिथ्या दृष्टि उत्पन्न

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

होती हैं अथवा इनसे विरति होती है, यह मनोकर्म है।

समन्वय

बहुत से काम ऐसे हैं जो काय, वाक् और मनोद्वार पर प्रारम्भ होकर भी पूर्ण नहीं होते। एक आदमी शिकार खेलने के लिए जाने को सोच बन्दूक सम्हालता है, छर्रे भरता है, पोशाक पहनता है, खाना खाता है—पर सब काम उसके काय द्वार पर उस बुरे कायकर्म की सिद्धि के सहायक होते हैं। वह जंगल में जाकर सुबह से शाम तक बन्दूक लिए घूमता है, अन्त में एक खरगोश मात्र भी न पाकर घर लौट आता है। उसका ऐसा अकुशल कर्म कायकर्म नहीं होता। केवल काय-दुश्चरित्र होता है। बंशी लगाकर मछली मारने आदि में भी ऐसे ही।

शिकार खेलने के लिये जाने को सोच, 'जल्दी बन्दूक लाओ', 'छर्रे भरो' आदि हुक्म देकर उक्तानुसार जंगल में जा सारे दिन घूमकर भी कुछ न पा लौट आता है, यहाँ भी वची-कर्म नहीं होता, केवल वची-दुश्चरित्र ही होता है। मनोद्वार पर हिंसा का विचार होते ही कर्मपथ का भेद होता है, और होता है व्यापाद के रूप में। अकुशल कायकर्म काय और वाक् द्वारों पर उत्पन्न होता है, मनोद्वार पर उसकी उत्पत्ति नहीं होती। ऐसे ही अकुशल वची कर्म। अकुशल मनोकर्म तीनों द्वारों पर उठता है, अकुशल काय, वची कर्म भी। स्वयं अपने हाथों जान मारते, चोरी करते, व्यभिचार करते हुए व्यक्ति का कर्म–काय भी कर्म होता है, द्वार भी काय द्वार ही। उस समय उत्पन्न चित्त लोभ, व्यापाद आदि होते हैं। 'जाओ, फलाँ को मार डालो' आदि हुक्म देनेवाले का कर्म कायकर्म होता है और द्वार वचीद्वार। अकुशल वची कर्म मनोद्वार पर नहीं उत्पन्न होता। जिस समय लोभ के वशीभूत दूसरे की वस्तु हाथ से पकड़ने आदि का काम करता है, तब कर्म मनो-कर्म होता है, द्वार होता है काय द्वार। इस तरह अकुशल मनो कर्म काय-द्वार पर उत्पन्न होता है। जिस समय लोभ के वशीभूत बड़ा 'अच्छा होता कि उस दूसरे का धन मेरा हो जाता' व्यापाद के चित्त से—'ये जीव मर जाँय' अथवा मिथ्या दृष्टि से—दान का विपाक नहीं, यज्ञ होम, करना व्यर्थ है। आदि कहता है, तब कर्म मनोकर्म होता है और द्वार वचीद्वार। जिस समय एकान्त में चुपचाप बैठे हुये लोभ वगैरह चित्तों के साथ संकल्प–विकल्प करता है, तब कर्म मनोकर्म होता है और द्वार भी मनोद्वार ही। इस प्रकार अकुशल मनोकर्म तीनों द्वारों पर पैदा होता है।

जब किसी कारणवश बोल नहीं सकता। जीवहिंसा, चोरी, व्यभिचार से अलग होने को वह इशारे से बतलाता है, तब कर्म कायकर्म और द्वार भी काय द्वार होता है। जब वह इन्हीं को बोलकर कहता है तब कर्म कायकर्म और द्वार वचीद्वार होता है। जब मनमें प्रतिज्ञा करता है कि मैं इन जीवहिंसा आदि कायिक बुरे कामों को नहीं ही करूँगा, तब कर्म कायकर्म होता है और द्वार मनोद्वार। कहा है—

> द्वारे चरन्ति कम्मानि, न द्वारा द्वारचारिनो।
> तस्मा द्वारेहि कम्मानि, अञ्ञमञ्ञं ववत्थिता॥

कर्म द्वारों पर विचरण करते हैं, किन्तु एक द्वार दूसरे द्वार पर नहीं जाता। इसलिए द्वारों से ही कर्म परस्पर व्यवस्थित हैं।

[१३६ वें पृष्ठ का शेषांश]

कविताओं में केवल जैन-धर्म के सार को ही भरसक भरने का प्रयत्न किया गया है, छन्द और भाषा आदि पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया है। ऐसी पाठ्य-पुस्तिकाओं के अन्त में 'बोधिनी' का देना परमावश्यक है किन्तु इसमें इसका भी अभाव है। जैन पारिभाषिक शब्दों को समझाने का कोई उपाय नहीं किया गया है। इस पाठ्य-पुस्तिका से अपेक्षित लाभ की सम्भावना नहीं दृष्टिगत होती। आशा है, इन सब त्रुटियों का सुधार किया जायेगा।

प्राप्ति स्वीकार—श्री पण्डित कर्णवीर नागेश्वर राव, (हिन्दी पण्डित) के द्वारा लिखित संस्कृत भाषा के दो ग्रन्थ हमें प्राप्त हुए हैं। (१) संस्कृतम् और (२) वज्रपातः। पहले ग्रन्थ में संस्कृत भाषा में लिखे गये ग्रन्थों और पण्डितों का परिचय दिया गया है तथा दूसरा प्रबन्ध काव्य है। मिलने का पता—बड्डु बापय्या हिन्दू हाई स्कूल, वेटपालेय, बापटूल तालुका, (आन्ध्रदेश)।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

आसाम में बौद्धों की सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ

आज से लगभग ६०० वर्ष पूर्व सारा आसाम बौद्ध धर्मावलम्बी था। अहुं जाति के शासन-काल में आसाम के बौद्धों की संख्या चालीस लाख से भी अधिक थी, किन्तु पिछली शताब्दियों में भिक्षुओं के अभाव और राजनीतिक उथल-पुथल के कारण आसाम के बौद्धों को बड़ा आघात पहुँचा। सन् १९०१ में जब जनगणना हुई तो ज्ञात हुआ कि उस समय तक बौद्धों की संख्या घटते-घटते केवल दस हजार रह गयी थी। इधर कुछ वर्षों से आसाम के बौद्धों में नव जागृति दीख रही है। सम्प्रति आसाम में ५० भिक्षुविहार हैं और शरणार्थी बौद्धों के अतिरिक्त आसाम प्रदेश-वासी बौद्धों की संख्या ३०,००० से भी अधिक है। आसाम प्रदेश की कच्छें, खन्ती और बंगाली (बरुआ) जातियाँ बौद्ध हैं। अहुं जाति में भी बौद्धों की संख्या कम नहीं है। पूर्वकाल में यह जाति पूर्णतः बौद्ध थी। इतिहास के विद्वानों का कहना है कि "आसाम" शब्द 'अहुं' का ही अपभ्रंश है। यह प्राक् बौद्ध-जाति सन् १२२८ ई० में आसाम—उपत्यका में आई थी। बर्मा का 'शान' शब्द भी इस 'अहुं' जाति का ही द्योतक है।

आसाम उपत्यका का प्राचीन नाम कामरूप और प्राग्ज्योतिष था। इस उपत्यका में बौद्ध धर्मकी पहुंच सम्भवतः अशोक-काल में ही हुई थी। उस समय महा-प्रतापी धर्मदूतों ने सुवर्णभूमि और हिमवन्त के पाँच पवित्र प्रदेशों में धर्म का प्रचार किया था, वे कामरूप में न पहुँचे हों, यह सम्भव नहीं। हर्ष-काल में तो सारा आसाम हर्ष से प्रभावित था। आसाम के राजकुमार को हर्ष ने अभिषिक्त भी किया था। उस समय आसाम में बौद्धों की पर्याप्त संख्या थी। पीछे बंगाल के पालवंशी राजाओं के समय में, बंगाल में बौद्ध धर्म की तूती बोलती थी, आसाम का बौद्ध धर्म शक्तिशाली हो चला था। भूटान, आराकान, चटगाँव और बर्मा की बौद्ध-संस्कृति का इस पर गहरा प्रभाव पड़ा था। बंगाल के जगद्दला आदि विद्यालयों के शिक्षा प्राप्त भिक्षु काफी संख्या में आसाम में बास करते थे।

पिछले दिनों आसाम में महायान के तंत्रयान का प्राबल्य था। तंत्र-मंत्र का इतना जोर था कि साधरण लोग वहाँ जाने में भी डरते थे। आज भी बिहार और उत्तर प्रदेश के ग्रामीण कामरूप, उड़िया और बंगाल की 'डाइन', टोनहिन और जादूगर से डरा करते हैं। गाय चराने वाले ग्वाले अब भी अपने विरहों में गाया करते हैं—"कामरूप से चली डइनिया, ले बंगालिनि साथी" इसी तंत्रयान ने आसाम में बौद्ध धर्म के प्रभाव को कम कर दिया।

गत वर्ष आसाम से एक "बौद्ध भ्रातृ मण्डल" बर्मा गया था और वहाँ से सांस्कृतिक सहायता की मांग की थी। फलतः बर्मा के बौद्धों के महासंघ की ओर से आसाम में सांस्कृतिक सेवा के निमित्त ९ भिक्षुओं के भेजने का प्रबन्ध होने लगा। उनके साथ ही ५० छाता ५० जोड़े चप्पल, ५० जोड़े चीवर, अट्ठकथाओं के साथ सारा त्रिपिटक, माण्डले के महामुनि बुद्ध की मूर्ति के २०० चित्र, संगमरमर की ९ बुद्ध प्रतिमायें और स्तूपों में स्थापित करने के लिये १० छत्र भेजने के लिये एकत्र किये गये। आसाम के भिक्षु और गृहस्थों ने उनके स्वागत की पूरी तैयारी भी कीं, किन्तु आसाम के अभागे बौद्धों को कहाँ बदा था ? पाकिस्तानी चालों और अड़ंगे-बाजियों ने भारत को भी इस महान कार्य में सहयोग देने से बंचित कर दिया और आसाम के बौद्ध उस महत्वपूर्ण मुहूर्त की राह देखते ही रह गये।

जब उक्त प्रयत्न विफल हो गया, तब भारत में आई हुयी तथागत के अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों को आसाम ले आने का प्रयत्न होने लगा। अग्रश्रावकों की अस्थियोंके बर्मा जाने से पूर्व ही आसाम के बौद्धों की ओर से काफी तैयारी हो चुकी थी। यदि बर्मा के प्रधान मंत्री ने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अस्थियों के लिये बर्मा सरकार की ओर से मांग न की होती तो अस्थियाँ अप्रैल के पूर्व ही आसाम चली गयी होतीं। बर्मा से लौटने के पश्चात् जब अस्थियाँ आसाम गईं तब वहां के बौद्धों में नव-चेतना का संचार हुआ और उन्होंने अपनी सारी विपत्तियों को भूल कर इस पुण्य कार्य में अपना बहुत-सा समय और धन व्यय किया। चकमा आदि स्टेटों से भाग कर आये हुये शरणार्थी बौद्धों ने भी इसमें दिल खोलकर हाथ बँटाया और अपने सारे भेद भाव त्याग दिया। अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों का उनपर गहरा प्रभाव पड़ा। किन्तु अस्थियों के वापस आने के पश्चात् उनमें कुछ आसामी और अ-आसामी का अन्तर-कलह-सा उत्पन्न हो गया है और इस कलह में किसी गुप्त शक्ति का हाथ है, जिसे आसाम प्रदेश की सरकार अब समझने लगी है। पहले वह इसकी ओर से निश्चिन्त सी थी।

उधर पूर्वी पाकिस्तान के आवाजों (सुन्दर-वन) प्रदेश वासी सभी आराकानी बौद्ध वर्षा ऋतु के पश्चात् आराकान या बर्मा जाने की तैयारी कर रहे हैं, उन्हें उक्त प्रदेश में रहना ठीक नहीं लग रहा है। इस समाचार एवं कार्य का आसाम के बौद्धों पर भी बुरा प्रभाव पड़ने की संभावना है। इस कार्य में उनका सांस्कृतिक प्रेम एवं मानसिक कमजोरियां ही अग्रसर हो रही हैं; इस बात का बर्मा सरकार को पता है क्योंकि आवाजो प्रदेश वासी बौद्ध अपने नेताओं को वहाँ अपने समाचार भेजने के लिये सदा प्रस्तुत रखते हैं।

"दक्खिनी हिन्द"

(मद्रास-सरकार की हिन्दुस्तानी मासिक पत्रिका)

- उत्तर और दक्षिण को साथ चलकर ही समृद्ध एवं शक्तिशाली नवभारत का निर्माण करना है।
- "दक्खिनी हिन्द" उत्तर और दक्षिण के बीच एक सांस्कृतिक सेतु है।
- सालाना चन्दा : सिर्फ चार रुपए। वी. पी. भेजने का नियम नहीं है। मनी-आर्डर से चन्दा पेशगी भेजें।

चन्दा भेजने का पता

डाइरेक्टर आफ़ इन्फ़रमेशन & पब्लिसिटी,
फ़ोर्ट सेन्ट जार्ज, मद्रास

'सूचना'

'धर्मदूत' के बुद्ध-जयन्ती विशेषाङ्ककी कुछ प्रतियाँ हमारे यहाँ उपलब्ध हैं, जिसमें बौद्धधर्म विषयक अनेक महत्वपूर्ण लेख पठनीय हैं। जो सज्जन उसे मँगाना चाहते हों वे आजही १) प्रतिके हिसाबसे मूल्य भेजकर मँगा लें।

या जो, सज्जन सिर्फ तीन रुपये वार्षिक चन्दा भेजकर ग्राहक बनेंगे उन्हें इस विशेषाङ्ककी एक प्रति मुफ़्त दी जायेगी।

व्यवस्थापक,
धर्मदूत, सारनाथ
बनारस,

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बौद्ध-जगत्

धर्मचक्र-प्रवर्तन-महोत्सव

गत २९ जुलाई, शनिवार को आषाढ़ पूर्णिमा के पुण्य दिवस के उपलक्ष में सारनाथ के सुप्रसिद्ध मूलगंध कुटी विहार में काशी के प्रमुख कांग्रेस सेवी श्री कमलापति त्रिपाठी एम० एल० ए० की अध्यक्षता में धर्मचक्र प्रवर्तन उत्सव मनाया गया। प्रातःकाल मन्दिर में बुद्ध पूजा की गयी। दोपहर में बर्मा, लंका, स्याम, चीन और भारत के भिक्षु-संघ को भोजन-दान दिया गया। मन्दिर का प्रधान् द्वार झंडी पताका आदि से सजाया गया।

अपराह्न में चार बजे विराट् सभा हुई, जिसमें स्थानीय स्कूलों के छात्र, अध्यापक एवं काशी की जनता पूर्ण उत्साह पूर्वक सम्मिलित हुयी थी। प्रारम्भ में भिक्षु संघ ने धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त का पाठ किया, तत्पश्चात् भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० ने पवित्र आषाढ़ी पूर्णिमा का महत्व बतलाया। उन्होंने भाषण देते हुए कहा कि यह मानव जगत् की महान् घटना के घटित होने का दिन है, इसी दिन तथागत ने इसी सारनाथ में सर्वप्रथम उपदेश दिया था। धर्म के चक्के को घुमाया था।

उसके बाद श्रीलालजीराम शुक्ल, जगदीशप्रसाद सिंह और विलियम बीस्टस् के मर्मस्पर्शी भाषण हुये। सब वक्ताओं ने बौद्धधर्म की विशेषताओं और सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला।

अध्यक्ष ने अपने भाषण के सिलसिले में कहा—"भगवान् बुद्ध और उनके द्वारा हमारे इतिहास में प्रवर्तित युग भारत के लिये ही नहीं, समस्त संसार के लिये भी स्वर्णयुग हो गया है। बौद्धकाल में ही इस देश की सांस्कृतिक धारा भारत से बाहर गयी और वृहत्तर भारत का निर्माण हुआ। इस देश के इतिहास में काशी सदा से भारत का सांस्कृतिक, धार्मिक तथा ज्ञानकेन्द्र रही है। हम काशीवासियों को इस बात का गर्व है कि हमारी नगरी के अंचल में यही सारनाथ में आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध के श्रीमुख से वह उपदेशामृत प्रवाहित हुआ जिसने सहस्र वर्षों तक न केवल इस देश के प्रत्युत समस्त भूखण्ड के करोड़ों नर-नारियों को शान्ति और आलोक प्रदान किया।

आज जब हम यहाँ एकत्रित होकर २५०० वर्ष पूर्व संसार की एक अत्यन्त पावन और उज्ज्वल घटना का स्मरण करते हैं तब हमें अपने अतीत के उस युग का सजीव साक्षात्कार हो जाता है। भगवान् बुद्ध और उनके बाद के प्रायः १००० वर्षों में हमारे देश ने अपनी उन्नति के चरमविन्दु की उपलब्धि की। भगवान् बुद्ध के वे उपदेश अमर हैं क्योंकि उनका आधार चिरन्तन सत्य है। उन्होंने मध्यम मार्ग तथा सदाचार मूलक जिस धर्म का उपदेश किया उसको आज के संसार को पूर्व की अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यकता है। मनुष्य सब कुछ पाकर और शक्ति तथा विभूति से सम्पन्न होकर भी अपने जगत को अपनी ही हिंसा, द्वेष और लोभ की आग में भस्म करता दिखाई दे रहा है। मानव समाज पथ भ्रष्ट है और उसके कल्याण का मार्ग यही है जिसकी ओर देश की आत्मा के रूप में भगवान् बुद्ध ने संकेत किया है।

हमारा सौभाग्य है कि वही उपदेश अभी भी हमारे सामने इस देश की चेतना के प्रतिनिधि रूप में बापू ने संसार को प्रदान किया है। हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि भारतीय राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता के इस युग में इतना ऊँचा उठे कि वह भगवान् बुद्ध के प्रकाश से प्रकाशित होकर समस्त मानव समाज का पथ प्रदर्शन करे और इस प्रकार प्राणिमात्र की सेवा करने की अपनी पुरानी और ऐतिहासिक परम्परा की रक्षा करे।"

अन्त में भिक्षु जगदीश काश्यप ने सभी व्याख्यान दाताओं और सभा में सम्मिलित होनेवाले लोगों को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धन्यवाद दिया। रात्रि में प्रदीप पूजा एवं परित्र पाठ के साथ उत्सव का सारा कार्यक्रम समाप्त हुआ।

उज्जैन में धर्मचक्र प्रवर्तन उत्सव—गत २९ जुलाई को श्री चम्बल भारती सभा के तत्वावधान में उज्जैन और जावरा नगर में धर्मचक्र प्रवर्तन उत्सव बड़ी धूम-धाम के साथ मनाया गया। वन्दे-मातरम् मंगल गान के पश्चात् संयोजक चम्बल भारती का भगवान् बुद्ध और समर पर उतरते हुए संसार के सम्बन्ध में भाषण हुआ। सब लोगों ने अहिंसा का व्रत लिया और पंचशील ग्रहण किया।

बुद्धपुरी में गुरु पूर्णिमा—गत आषाढ़ पूर्णिमा को बुद्धपुरी के राष्ट्रपाल हायर सेकण्डरी स्कूल में आचार्य मेधार्थी की अध्यक्षता में गुरुपूर्णिमा-दिवस मनाया गया। बुद्ध-वन्दना, और पंचशील ग्रहण के बाद अनेक व्यक्तियों के महत्वपूर्ण भाषण हुए।

वर्षावास-ग्रहण—गत २९ जुलाई को सारनाथ में रहनेवाले भारतीय, सिंहली, बर्मी और चीनी भिक्षुओं ने वर्षा के तीन मास स्थिर रहने का वर्षावास-व्रत ग्रहण किया। सारनाथ में वर्षावास करने के निमित्त स्याम देश से आये हुए दो भिक्षुओं ने भी वर्षावास का व्रत लिया।

सारनाथ में पालि का अध्यापन—विगत कई वर्षों से सारनाथ के महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल में पालि के अध्यापन की व्यवस्था है। इस वर्ष दसवीं श्रेणी में १२ और नवीं श्रेणी में २० छात्र पालि पढ़ रहे हैं। अध्यापन-कार्य भिक्षु धर्मरक्षित करते हैं।

महन्त द्वारा त्यागपत्र—"बुद्धगया-मन्दिर-संरक्षण-समिति" की सदस्यता से बुद्धगया के महन्त ने त्यागपत्र दे दिया है जो समिति द्वारा सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया है और उनके स्थान पर एक दूसरे व्यक्ति सदस्य चुन लिये गये हैं।

लन्दन के बौद्ध विहार को दान—लंका के एक व्यक्ति ने लन्दन में बौद्धविहार के निर्माणार्थ ३४०,००० रुपये का प्रशंसनीय दान दिया है। इंगलैण्ड के बौद्ध इतने धनी नहीं हैं जो इतना बड़ा दान दे सकें। अतः इस उदार दान की वहाँ बड़ी प्रशंसा की गई है। यद्यपि बृटिश सरकार आर्थिक-संकट के कारण लन्दन के बौद्ध विहार को आर्थिक सहायता देने में असमर्थ है, फिर भी वह विहार के निर्माण हेतु भवन निर्माण के लिए आवश्यक वस्तुओं की सहायता करेगी तथा विहार के निर्माण में पूरा हाथ बँटायेगी।

कालिंगपोंग में तरुण बौद्ध समिति की स्थापना—कालिंगपोंग में श्रामणेर संघरक्षितजी के उद्योग से तरुण बौद्ध समिति की स्थापना अभी हाल ही में हुई है। समिति का प्रधानकेन्द्र धर्मोदय विहार है। समिति की ओर से "स्टेपिंग स्टोन" नामक एक अँग्रेजी में मासिक पत्र भी प्रकाशित हो रहा है।

हमारे दो यावज्जीवी ग्राहक—गत मास में "धर्मदूत" के लिए पचास-पचास रुपये का दान देकर हमारे दो नये यावज्जीवी ग्राहक हुए हैं। हम अपने यावज्जीवी ग्राहकों को पचास रुपये में ही उनके जीवन-पर्यन्त "धर्मदूत" भेजेंगे। अब तक हमारे ग्यारह यावज्जीवी ग्राहक हो चुके हैं। नये यावज्जीवी ग्राहकों के पते इस प्रकार हैं—

१. बाबू हरवंश प्रसाद उपाध्याय, ईश्वरी निवास, नेपालगंज, पो० रुपारडीहा, जिला बहराइच।

२. श्री एम० कृष्णस्वरूप, ५५ पचकुइयांरोड, नई दिल्ली।

महाबोधि दातव्य औषधालय को दान—सारनाथ के महाबोधि दातव्य औषधालय को जैपुरिया कम्पनी, चौक, बनारस ने ५१) और यूरेका प्रिंटिंग प्रेस ने २५) का दान दिया है।

हमारे आगामी उत्सव—ता० १७ सितम्बर रविवार १९५० को स्वर्गीय अनागारिक धर्मपालजी की जन्म जयन्ती मनायी जायेगी और २३ नवम्बर गुरुवार १९५० को मूलगन्धकुटी विहार का वार्षिकोत्सव।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नये प्रकाशन

सम्प्रदायवाद—लेखकः डा० जगदीशचन्द्र जैन। प्रकाशक : जागरण-साहित्य मन्दिर, कमच्छा, बनारस। पृष्ठ संख्या १९२; सजिल्द, मूल्य ३)।

धर्म और जाति के नाम पर आज तक जो जो बुराइयाँ हुई हैं; किस प्रकार समाज ने अपने विकास और अपनी साम्यत को खोया है और भुला दिया है एक दम अपने कर्तव्यों को; किस प्रकार समाज गुलामों और उनके मालिकों के रूप में बँट गया है, दास-स्वामी का संघर्षमय जीवन उठ खड़ा हुआ है, स्वामी वर्ग ने दासों की इच्छाओं को सदा दबा रखने का प्रयत्न किया है और जागतिक सुख-समृद्धि की सम्प्रदाय के नाम पर होली खेली गई है आदि बातों का इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने ऐतिहासिक आधारों पर पर्याप्त विश्लेषण किया है। लेखक ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि सम्प्रदायवाद से हमारा कितना अनिष्ट सम्पादित हुआ है। तथा इसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि बिना अथक प्रयत्न किये इसका अन्त नहीं हो सकता।

यद्यपि लेखक इतिहास के विद्वान् हैं फिर भी कतिपय स्थलों पर उनसे भारी भूलें भी हो गई हैं। उन्होंने लिखा है "बिहार की शाक्य जाति" (पृष्ठ ४) किन्तु इतिहास के साधारण पाठक भी जानते हैं कि शाक्य जाति उत्तर प्रदेश के शाक्य जनपद में रहती थी, न कि बिहार प्रान्त में। आशा है अगले संस्करण में ऐसी अनेक भूलों का परिमार्जन कर लिया जायेगा।

ग्रन्थ संग्रहणीय एवं पठनीय है। छपाई-सफाई और गेट-अप् सुन्दर है।

सारनाथ दिग्दर्शन—लेखक : भिक्षु धर्मरक्षित। प्राप्तिस्थान : महाबोधि पुस्तक-भण्डार, सारनाथ, बनारस। मूल्य ।) मात्र।

यह पुस्तिका सारनाथ दर्शनार्थ आने वाले यात्रियों के लिये लिखी गई है। इसमें प्रारम्भ में सारनाथ का प्राचीन काल से लेकर आज तक का संक्षेप में इतिहास दिया गया है और उसके बाद पथ-प्रदर्शन के लिये सारनाथ के प्रत्येक दर्शनीय स्थान का क्रमशः वर्णन दिया गया है। कोई भी यात्री इस पुस्तिका के द्वारा बिना किसी की सहायता के ही सारनाथ का भली प्रकार निरीक्षण कर सकता है।

प्यारे राजा बेटा—(भाग १, २) लेखक : रिषभदास रांका। प्रकाशक : श्री भारत जैन महामण्डल, वर्धा। प्रत्येक का मूल्य ॥=)।

इस ग्रन्थ में विद्वान् लेखक ने अपने स्वर्गीय पुत्र राजेन्द्र को लिखे गये पत्रों का संकलन किया है। पहले भाग में भगवान् महावीर, भगवान् गौतम बुद्ध आदि १५ पत्र हैं और दूसरे भाग में ११। इन सब पत्रों में महान् पुरुषों के जीवन चरित लिखे गये हैं। ग्रन्थ में भगवान् बुद्ध, राजा शिवि, सम्राट् अशोक, और सत्याग्रही मघ—इन चार बौद्ध धर्म सम्बन्धी जीवन-चरितों का भी संकलन हुआ है। ग्रन्थ की भाषा परिमार्जित और सरल है। बच्चों का इससे बड़ा हित होगा। ग्रन्थ की छपाई और गेट अप् आदि भी आकर्षक हैं। विद्वान् लेखक का यह अनुपम प्रयास प्रशंसनीय है। यदि इन दोनों भागों को एक ही ग्रन्थ के रूप में छपाया गया होता तो बड़ा ही अच्छा होता, आशा है, जैन महामण्डल इस उपयोगी ग्रन्थ को दूसरे संस्करण के समय दो भागों में विभक्त न करेगा।

जैन पाठावली—(प्रथम भाग) प्रकाशक : श्री श्वे० स्थान जैन कॉन्फरेन्स ऑफिस, बम्बई न० ३। मूल्य ।=)

यह जैन पाठशालाओं में पढ़ाने के लिये लिखी गयी एक पाठ्य पुस्तिका है। यह तीन भागों में विभक्त है, पहले भाग में नमस्कार मंत्र आदि ग्यारह पाठ हैं, दूसरा भाग कथा विभाग है, जिसमें जैन धर्म की छः कथायें दी गई हैं और तीसरे भाग में कविताओं का संग्रह है। यद्यपि पुस्तिका का संपादन सुन्दर ढंग से हुआ है किन्तु इसमें दी हुई कवितायें कविता-सम्बन्धी दोषों से भरी हुई हैं।

[शेषांश १३१ वें पृष्ठ के नीचे]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हिन्दी में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें :—

—:※:—

दीघनिकाय—महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ५॥)
मज्झिम निकाय— ,, ६)
विनयपिटक— ,, ६)
धम्मपद—अवध किशोर नारायण १॥)
बुद्धवचन—भदन्त आनन्द कौसल्यायन ॥)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल ।-)
बोधिद्रुम (कविता)-सुमन वात्स्यायन ।=)
भिक्षु के पत्र—भदन्त आनन्द कौसल्यायन १॥)
महावंश— ,, ४)
जातक भाग १, २ और ३ ,, ७।,) ७॥), १०)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप ५॥)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स १॥)
बौद्ध-शिशुबोध—भिक्षु धर्मरक्षित ।)
तेलकटाह गाथा— ,, ।)
कुशीनगर का इतिहास— ,, २॥)
सारनाथ-दिग्दर्शन— ,, ।)
पालि-पाठ-माला (प्रेस में)—भिक्षु धर्मरक्षित १)
जाति भेद और बुद्ध— ,, ॥)
ब्राह्मणधम्मिय सुत्त— ,, =)
बुद्धकीर्तन-प्रेमसिंह चौहान १॥)
बुद्धवाणी—वियोगी हरि ॥।=)
यशोधरा—मैथिलीशरण गुप्त १॥=)
अशोक—भगवती प्रसाद पांथरी ४)

बुद्धार्चन— ,, ।)
महापरिनिर्वाण सुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा १।)
सिगालोवाद सुत्त— ,, ।)
तथागत के अग्रश्रावक-पं० विश्वनाथ शास्त्री ॥।)
अमिताभ—गोविन्दवल्लभ पन्त ४॥)
बुद्धदेव—शरत कुमार राय १॥।)
बुद्धचरित (अश्वघोष कृत)—सूर्यनारायण चौधरी ४)
सौन्दरनन्द काव्य— ,, ३)
शाक्यमुनि—गंगाप्रसाद ॥।≡)
बुद्ध-हृदय—सत्यभक्त ॥)
भगवान् बुद्ध ने कहा था—सुमन वात्स्यायन ।=)
हर्षचरित (दो भाग) सूर्यनारायण चौधरी ३)
बौद्ध-दर्शन—बलदेव उपाध्याय ६)
बौद्धचर्य्या-पद्धति—भदन्त बोधानन्द १॥)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न १)
खुद्दकपाठ— ,, ।)
पञ्चशील और बुद्ध-वन्दना— =)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय १॥)
ब्रह्मजाल सुत्त—(मतों का जंजाल) =)
अम्बट्ठ सुत्त—(वर्ण-व्यवस्था का वर्णन) =)
अशोक के धर्मलेख— ३॥)
बुद्ध चित्रावली— ७॥)
बुद्ध और उनके अनुचर— १॥।)

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भण्डार,

सारनाथ, बनारस ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

JAHAR LALL PANNA LALL & Co.

267 Dasaswamedh Road, Banaras.

Branch :	OVER CENTURY FAMOUS	*Branch* :
College Street Market	**HOUSE**	**Katra Aluwala,**
CALCUTTA	*FOR*	AMRITSAR
Phone B. B. 1909		

BANARASI & Other Silk Saris etc.

Stock up-to-date designs of this year.

No Middlemen Profit from Factory direct to Customers

शाखा	दशाश्वमेध रोड, बनारस	शाखा
कालेज स्ट्रीट मार्केट	**बनारसी और रेशमी कपड़े**	**कटरा आलूवाला**
कलकत्ता	की	अमृतसर
बी० बी० १९०९	भारत प्रसिद्ध प्रस्तुत कारक और विक्रेता	

प्रकाशक—धर्मालोक, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

"धर्म-दूत" के नियम

१—धर्मदूत भारतीय महाबोधि सभाका हिन्दी मासिक मुखपत्र है। "धर्मदूत" प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।

३—पत्रव्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुंचने में गड़बड़ी न हो।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिए।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता व लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिनका लेख व कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।

६—"धर्मदूत" में सिर्फ बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।

७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

८—धर्मदूत का वार्षिक मूल्य ३) और आजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक—
"धर्मदूत" सारनाथ (बनारस)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय पिटक)

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोकपर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिए विचरण करो। भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १५ } सारनाथ, जुलाई बु० सं० २४९४ / ई० सं० १९५० { अङ्क ४

बुद्ध-वचनामृत

शील के गुण

"भिक्षुओ ! तीन प्रकार के सुखों को चाहनेवालों को चाहिए कि वे शील की रक्षा करें। कौन से तीन ? (१) मैं प्रशंसित होऊँ, (२) मुझे भोग-पदार्थ प्राप्त हों, (३) काया को छोड़ मरने के बाद सुगति-स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होऊँ।" (इतिवुत्तक ७६)

"चन्दन, तगर, कमल, या जूही-इन सभी की सुगन्धियों से शील की सुगन्ध बढ़कर है। यह जो तगर और चन्दन की गन्ध है। वह अल्पमात्र है। शीलवानों की उत्तम सुगन्ध देवताओं तक में फैलती है।

दुःशील और चित्त की एकाग्रता से हीन व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से शीलवान् और ध्यानी का एक दिन का जीवन भी श्रेष्ठ है।"

(धम्मपद ४, १२)

"सीलं किरेव कल्याणं सीलं लोके अनुत्तरं।"

शील ही कल्याणकर है, लोक में शील सब से बढ़कर है।

(जातक १, ९)

"जिस प्रकार विमल चन्द्रमा आकाश में जाते हुए सभी तारागण में प्रभा से अत्यन्त ही सुशोभित होता है, उसी प्रकार श्रद्धावान्, शीलसम्पन्न मनुष्य संसार के सभी मत्सरियों में अपने त्याग से अत्यन्त ही शोभता है।"

(अंगुत्तर निकाय ५, ४, १)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बौद्धधर्मसे ही मानव-कल्याण

श्रीबलाइचन्दबोस एम० ए०

विश्व आज युग-सन्धिकाल से गुजर रहा है। मानव संचलित इस विश्वव्यापी युद्ध एवं इसकी प्रतिक्रियात्मक शक्तियों ने आज मानव समाज में भयंकर उथल-पुथल मचा रखा है। इतना ही नहीं, मानव ने आज मात्स्यन्याय का जामा पहन कर ताण्डव नृत्य करना आरम्भ किया है। अपने को सभ्य कहने वाले मानव ने प्राक्कालीन विश्रृङ्खलता को भी मातकर रखा है। अशांति ने आज जो भयंकर रूप धारण किया है, उससे विश्व शान्ति की भित्ति तक हिल गयी है और इस पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व भी रह सकेगा ऐसा विश्वास नहीं होता। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि हमारे चारों तरफ पाशविक प्रवृत्तियाँ दिनोंदिन बलवान होती जा रही हैं। क्षमता और शक्ति के दुर्व्यवहार के फलस्वरूप उत्तरोत्तर बढ़ते हुए भयानक अविश्वास, परस्पर विषम विद्वेष, घृणा आदि का अन्त, ध्वंसात्मक युद्ध, रक्तपात, हत्या, बलात्कार आदि के रूप में हो रहा है। यह स्पष्ट ही देखने में आता है कि मानव समाज अपनी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता सत्य-अहिंसा तथा विश्व-बन्धुत्व के महान् आदर्श से कोसों दूर भागता जा रहा है। हम लोगों के व्यक्तिगत भौतिक सुख प्राप्त करने की भावना ने हमें अपने नैतिक एवं धार्मिक मार्ग से विचलित कर दिया है। युग-युगान्तर में भारत के इस प्राङ्गण में कभी अहिंसा और सत्य की वाणी ध्वनित हुयी थी, हम लोग सर्वथा भूल गये हैं। एक अनुत्तरदायी उच्छृङ्खलता ने हम लोगों के धार्मिक संगठन की भित्ति तक ढाह दी है। जो आदर्श-नीति हम लोगों के समाज में एकता और हमारे नैतिक जीवन की सृष्टि करने में समर्थ हुयी थी, उसके उन्मूलन के फलस्वरूप हम लोग दुर्दशा के असीम गर्त में गिर चुके हैं। जीवित रहने और दूसरों को जीवित रहने देने का आदर्श हम लोग भूल चुके हैं। फलस्वरूप हमारी सांस्कृतिक एवं भौतिक प्रगति ठप पड़ गयी है। महात्मा गाँधी ने कहा है कि "अर्थ की उपासना एवं वाक्य इन्द्रजाल ही आज की सभ्यता का प्रधान अंग है।" चित्त की वह शान्ति, वह शान्तिमय जीवन, आनन्द और विश्व-बन्धुत्व का आदर्श, जिनने विभिन्न धर्मावलम्बी समाज को भी एकता और नैतिकता के सूत्र में बाँध रखा था, आज वे लुप्त हो गये हैं। इस कठिन समस्या ने विश्व को यह सोचने को बाध्य किया कि किस तरह मानव के नैतिक जीवन चरित्र में आमूल परिवर्तन कर 'तथागत' प्रदर्शित मैत्री, करुणा और उपेक्षा के मार्ग का अवलम्बन कर, इस विश्व में चिर शान्ति स्थापित करने में समर्थ हो सकेंगे—भारत और प्राची ने विश्व को ढाई हजार वर्ष पहले ही वह मार्ग दिखलाया था।

इस भयंकर परिस्थिति में भगवान् बुद्ध के उपदेशों मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा द्वारा एकमात्र भारत ही विश्व को परित्राण के पथ पर ले चलने में समर्थ हो सकता है। अतएव, हमलोगों का प्रथम कर्त्तव्य होता है कि हम अपने दुःखों (राग-द्वेष, अविश्वास, लोभ इत्यादि) के मूल कारणों का पता लगावें। हम देखते हैं कि हमलोगों के चारों तरफ अवांछित ज्ञानहीन एवं अनुत्तरदायी जीवन का पूर्ण प्रसार है। अपने सत् कर्तव्य से हटकर हमलोग अपने जीवन में असह्य यातना सह रहे हैं। यही कारण है कि आज हमारा अस्तित्व भी खतरे में दिखायी पड़ता है। हमलोगों में मैत्री, मुदिता, करुणा, उपेक्षा—इन ब्रह्म विहारों का सर्वथा अभाव हो गया है और यही कारण है कि हम दिनोंदिन विनाश-पथ पर तीव्र गति से अग्रसर होते जा रहे हैं। यदि हम इन उच्च विचारों से युक्त मानवीय सत्ता की यथार्थ चर्चा करें तो अवश्यमेव मानव समाज का वृथा नाश न कर हम 'प्रकृत प्रदत्त रत्न-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मानव,को एकता के सूत्र में पिरोकर विश्वशान्ति स्थापित करने में समर्थ होंगे।

किन्तु आज भारतीयों के रग-रग में साम्प्रदायिक विद्वेष व्याप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप हमारी कठिन तपस्या से अर्जित स्वाधीनता मूल्यहीन एवं प्रगति असम्भव हो गयी है। इस संकटमय परिस्थिति में एकमात्र बौद्ध धर्म ही मानव समाज की अज्ञानता दूर कर, नैतिक एवं सामाजिक भावना में आमूल परिवर्त्तन तथा प्रेम का प्रचार कर, उसे परित्राण कर सकता है। बौद्ध धर्म के अष्टाङ्गिक मार्ग का अनुसरण करने पर हम अपने चरित्र को सुधार कर एवं अपने चरित्र का गठन कर, अपने को पतन के गर्त में गिरने से बचा सकते हैं। आदर्श-चरित्र और व्यवहार के लिये अन्य धर्मों में जो मार्ग बतलाये गये हैं, वे तो इस धर्म में भी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसकी अपनी कुछ विशेषतायें हैं। इसका कार्य-कारण का सिद्धान्त समस्त संसार के प्राणियों के दुःख निवारण में अद्वितीय है। सर्व साधारण एवं सर्व वर्ग तथा सर्व जाति के लिये बौद्ध-धर्म एक बहुमूल्य धर्म है। स्व० बालगंगाधर तिलक के मतानुसार बौद्ध-धर्म कोई रूढ़िवादी धर्म नहीं, प्रत्युत 'बुद्ध शासन' चरित्रगठन तथा उच्च सभ्यता का एक स्वाभाविक निर्झर है। बुद्धकालीन भारत का वर्णन करते हुये, सत्य और अहिंसा के अनन्य भक्त महात्मा गांधी ने अपने 'यङ्ग इण्डिया' (१९२१) में लिखा था—

"भारत जिस काल में सब प्रकार से उन्नत हुआ था, वह बौद्ध-कालीन युग में ही। भारत का सर्वाधिक सीमा विस्तार उसी समय हुआ था। प्रेम के वशीभूत होकर ब्राह्मण एवं शूद्र एक साथ हिल-मिल कर रहते थे। ब्राह्मण की घृणा एवं शूद्र के द्वेष का नामोनिशान न था। भ्रातृ-प्रेम से प्लावित होकर दोनों दलों ने पृथ्वी की शेष सीमा पर्यन्त इस भ्रातृ-प्रेम का प्रचार किया था।"

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने गत १९३४ ई० में लंका में कहा था "मेरे अन्तःकरण में दृढ़ धारणा बनी हुई है कि समस्त मानव एक हैं और यह वही विचार है जिसे भगवान् बुद्ध ने विश्व को दिया था।"

भगवान् बुद्ध के सन्देश

श्री एन० एन० घोष, एम० ए०

भगवान् बुद्ध ने आज से शताब्दियों पूर्व मानव मात्र के दुःख को दूर करने के विचार से सारनाथ में धर्मचक्र का प्रवर्त्तन किया था। उनके उपदेशों का एकमात्र उद्देश्य था—विश्व में प्रेम का प्रचार कर शान्ति स्थापित करना। वर्तमान् समाज में जाति एवं वंश के मिथ्या अभिमान ने परस्पर घृणा की वृद्धि में पूर्ण सहायता की है। परस्पर घृणा, अविश्वास विचार-वैषम्य और अधिकार लिप्सा की भावना ने आज अपना विकराल रूप धारण किया है। आज मानव को मानव का शोषण करने में ही सुख की अनुभूति हो रही है। एक दूसरे को धोखा देकर क्षणिक सुख प्राप्त करने की भावना इतनी प्रबल हो गयी है कि मानव ने आज दानव का रूप धारण कर लिया है। वह एक दूसरे के रक्त का प्यासा हो रहा है। भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेशों में इन्हीं कष्टों को दूर करने के लिए सहज उपाय बतलाये थे। उनके अमर सन्देश किसी स्थान-विशेष के लिए नहीं, प्रत्युत समस्त विश्व के कल्याण के लिये थे और आज भी उनका प्रयोग विश्व-शांति के लिये किया जा सकता है।

भगवान् बुद्ध के महान् अनुयायी सम्राट् अशोक ने अपने धर्मानुशासन को एक विशाल शिला-स्तम्भ पर खुदवा कर सारनाथ में गड़वा दिया था। उसके शीर्ष पर बनी हुई चार सिंहों की मूर्तियाँ संसार की चारों दिशाओं में धर्म-प्रचार के उद्देश्य की प्रतीक हैं। भारत सरकार ने इसे राज्य-चिह्न स्वीकार कर विश्व-बन्धुत्व, शान्ति एवं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विश्व-प्रेम की भावना का सुन्दर परिचय दिया है।

भगवान् बुद्ध के सन्देश जो आज तक अनगिनत व्यक्तियों को शान्ति प्रदान किये हैं एवं करते आ रहे हैं। वे और कुछ नहीं, केवल शान्ति, प्रेम और विश्व-बन्धुत्व के ही सन्देश हैं, उनमें प्राणिमात्र के कल्याण और शान्ति का रस है, जिसे पीकर कोई भी प्राणी संसार के दुःखों से शान्ति प्राप्त कर सकता है। ये सन्देश चिरकाल तक, जब तक कि पृथ्वी का अस्तित्व रहेगा, अमर रहेंगे। इन सरल, शान्त एवं उदार सन्देशों में देखिये कैसी समता, सहृदयता, प्रेम, शान्ति, विश्व-मैत्री एवं प्राणिमात्र के कल्याण की बातें कही गई हैं। परम कारुणिक तथागत ने कहा है :—

'दण्ड से सभी डरते हैं, मृत्यु से सभी भय खाते हैं, अपने समान इन बातों को जानकर न किसी प्राणी को मारें न मारने की प्रेरणा करे।'

'सुख चाहने वाले प्राणियों को, अपने सुख की चाह से जो दण्ड से मारता है, वह मरकर सुख नहीं पाता। सुख चाहने वाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से जो दण्ड से नहीं मारता, वह मरकर सुख को प्राप्त होता है।'

भगवान् बुद्ध के इन कल्याणकारी सन्देशों में शील (सदाचार), आत्म-विश्वास, आत्म त्राण, भावना एवं चित्त का एकीकरण (समाधि) का वह अद्भुत समन्वय है, जिससे व्यक्ति के उपर्युक्त सारे कष्ट दूर हो सकते हैं। यही कारण है कि ये सन्देश भारत ही नहीं, प्रत्युत विश्व के कोने-कोने में वायु वेग के सदृश व्याप्त हो गये। आज भी बर्मा, लंका, चीन, जापान, साइबेरिया, तिब्बत, नेपाल आदि के अधिकांश मनुष्य या यों कहें कि संसार के एक तिहाई से भी अधिक मानव इन सन्देशों में आस्था रखते हैं। भारत यद्यपि कुछ दिनों इन सन्देशों के प्रबल प्रभाव से वंचित रहा है, फिर भी इनका अद्भुत प्रभाव अति वेग से अब व्याप्त होता दीख रहा है। हमारे नेता (डा० अम्बेडकर, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि) या राष्ट्र के कर्णधार इनमें पूरी आस्था करने लगे हैं। लंका में हुये बौद्ध मातृ मण्डल के अधिवेशन से अब यह बात स्पष्ट है कि इन सन्देशों के पुनः प्रसार का समय आ गया है और शीघ्र ही बड़े वेग से इनका सारे संसार में प्रसार होगा एवं मानवमात्र इसे अपने तथा जागतिक कल्याण का साधन समझने लगेगा। वस्तुतः हमारा परम कल्याण इसी में निहित है कि हम भगवान् बुद्ध द्वारा दिये गये इन सन्देशों को—जो त्रिकाल सत्य हैं—सहर्ष तथा शीघ्र अपना लें।

भिक्षु उत्तम

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

जब भी मैं कभी बर्मा का कोई समाचार सुनता हूँ तो मुझे उनकी याद आ जाती है, जिन्हें हम सब भूल गये प्रतीत होते हैं।

सन् १९२७ की मद्रास-कांग्रेस में ही शायद मैंने उन्हें सबसे पहले देखा था। मैं सिंहल के रास्ते पर जैसे-तैसे मद्रास पहुँचा था। राहुलजी ने मथुरा बाबू (राजेन्द्र बाबू के निजी मन्त्री) को लिख दिया था कि वह मुझे मद्रास पहुँचने पर सिंहल तक का किराया दे दें या शायद किसी से मिला दें। मेरा हाथ खाली था और मैं इस चिन्ता में था कि जब लोग अपनी-अपनी बोलियाँ बोलकर उड़ जायेंगे अर्थात् मद्रास-कांग्रेस समाप्त हो जायेगी तो मैं कहाँ जाऊँगा? क्योंकि मैं कुछ बौद्ध भावना को लिये हुये सिंहल की ओर जा रहा था, इसलिये मुझे सूझा कि उस समय की कांग्रेस वर्किंङ्ग कमेटी या शायद केवल अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य भिक्षु उत्तम से मिल लूँ। उनसे जब भेंट-मुलाकात हुई और उन्हें मेरी प्रवृत्ति मालूम हुई तो उन्होंने कहा कि चलो, मेरे साथ बर्मा चलो। मैं रास्ते का सब खर्च आदि की व्यवस्था कर दूँगा।

किन्तु मैं तो सिंहल जाने के लिये दृढ़ निश्चयी था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—नहीं भन्ते, मैं तो एक बार रामेश्वर पहुँचकर भारतमाता के चरणों में प्रणाम करके ही आना चाहता हूँ।

उस समय तक उर्दू समाचार-पत्रों की कृपा से मैं उन्हें भिक्षु ओटामा ही समझता था। और न जाने कैसे भिक्षु ओटामा और ओटावा-कान्फ्रेंस में कुछ बहुत भेद भी न कर पाता था?

दो-तीन वर्ष सिंहल रहकर भारतीय सत्याग्रह संग्राम में हिस्सा लेने की इच्छा से जब मैं १९३० में बम्बई भाग आया, तो उस समय वे बम्बई के प्रसिद्ध बुद्ध-भक्त स्वर्गीय डा० नायर के यहाँ ठहरे हुए थे। मैं उनसे मिला। बहुत देर तक बातें की। बड़ी जली-कटी सुनने को मिली। उस दिन पहले पहल मैं इस बात को समझ सका कि प्रकाश की आवश्यकता हो तो आग से नहीं घबराना चाहिये। भिक्षु उत्तम सचमुच कुछ इतने खरे थे, इतने आग थे कि सहज में उनके पास कोई ठहर ही न सकता था, किन्तु ऐसी आग कि समय आने पर वह दूसरों को पिघलाने का कारण बनने की बजाय स्वयं ही पिघल जायें।

बीच-बीच में भेंट हुई तो, किन्तु कानपुर-हिन्दू महासभा की समाप्ति के बाद तो उन्होंने मुझे अपना अनुचर ही बना लिया; बोले—चलो साथ चलें। मेरी अपेक्षा कहीं ज्येष्ठ होने से उनका मुझ पर वही अधिकार था जो बड़े भाई का छोटे भाई पर; वह किसी से मेरा जिकर भी करते थे तो भाई आनन्द जी ही कहते थे। कानपुर-अधिवेशन की ही, उनकी कम से कम तीन बातें हृदय पार अंकित हैं—

(क) अधिवेशन हो रहा था। कार्यसमिति में अथवा हिन्दू सभा में बुद्ध-गया का प्रश्न उपस्थित था। बौद्ध होने से उनकी स्वाभाविक सहानुभूति ही नहीं, उनका हृदय बौद्ध-माँग के साथ था, किन्तु हिन्दू महासभा के अध्यक्ष की हैसियत से वे तटस्थ रहने के लिये मजबूर थे। बड़ी विषम परिस्थिति थी। तब उन्होंने एक कथा सुनाई। बोले—एक शेर था। वह प्रायः जानवरों को अपना मुँह सुँघाता और उनसे पूछता कि उसके मुँह से सुगन्ध आ रही या दुर्गन्ध? कोई डर के मारे कह देता कि आपके मुँह से सुगन्ध आ रही है। शेर उसे डाँटता। मैं दिन भर जानवरों को मार-मार कर खाता रहता हूँ; मेरे मुँह से सुगन्ध कैसे आ सकती है? और वह उसे खा जाता। कोई जानवर साफ-साफ कह देता कि मुँह से दुर्गन्ध आ रही है, तब शेर गर्ज उठता—मैं जंगल का राजा; मेरे मुँह से दुर्गन्ध आ सकती है? वह उसे भी खा जाता। एक गीदड़ ने सोचा क्या किया जाय, दोनों तरह जान जाती है। शेर ने उससे भी पूछा—मेरे मुँह से सुगन्ध आ रही है अथवा दुर्गन्ध? गीदड़ बोला—हुजूर मुझे तो जुकाम हो रहा है। पता ही नहीं लगता कि आपके मुँह से सुगन्ध है अथवा दुर्गन्ध? सब लोग खिलखिला कर हँस पड़े। भाई परमानन्द, जो हिन्दू सभा के कार्याध्यक्ष थे, वे तो एकदम लोटपोट हो गये। सभी भिक्षु उत्तम की इस चतुराई पर प्रसन्न थे कि उन्होंने अध्यक्ष की तटस्थता की रक्षा करते हुये अपना मत भी व्यक्त कर ही दिया।

मैं उनके साथ सारा उत्तर भारत घूमा। वे भाषाओं में व्याकरण शुद्ध भाषा न बोलते थे, किन्तु ऐसा एक भी अवसर याद नहीं जब उनके प्रत्युत्पन्नमतित्व ने उनका साथ छोड़ा हो।

(ख) अधिवेशन समाप्त हुये तो कानपुर के ही किसी एक बड़े औषधालय के मालिक उन्हें अपने यहाँ बुलाकर उनका स्वागत सत्कार करना चाहते थे। मैंने देखा कि वह बराबर बच रहे हैं। एक बार बोले—हमें अपने यहाँ बुलाकर अपनी दवाइयों का ही विज्ञापन करेगा। अधिक आग्रह करने पर चले गये और वहाँ उनकी सम्मति पुस्तक में बड़ी ही अन्यमनस्कता के साथ मुझे दो शब्द लिख देने का आदेश भी दे दिया।

(ग) बात तो छोटी सी ही है किन्तु भिक्षु उत्तम की विशेषता पर प्रकाश डालती है। उन्हें गांधी जी की ही तरह अपने संगी-साथियों का बड़ा ख्याल रहता था। उत्सव की समाप्ति पर जब उन्होंने अपने सभी साथियों के लिये सवारी की उचित व्यवस्था के बारे में अपना संतोषकर लिया तब ही वे मोटर में सवार हुये।

वे हिन्दू महा सभा के अध्यक्ष थे, किन्तु ऐसे अध्यक्ष

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जो हिन्दू महासभा के कांग्रेस-विरोध के पक्के विरोधी। भिक्षु उत्तम अध्यक्ष और भाई परमानन्द उपाध्यक्ष। अजब बेमेल जोड़ी थी। श्रीयुत युगल किशोर बिड़ला के विशेष प्रयत्न से ही वे हिन्दू महासभा के अध्यक्ष बने थे। किन्तु थोड़े ही दिनों में लोगों को पता लग गया कि यह टेढ़ी–मेढ़ी हिन्दी बोलने वाला बौद्ध साधु प्रायः हर बारे में अपनी स्पष्ट राय रखता है, और उसके धर्म को अथवा उसकी राजनीति को पचा जाना आसान नहीं।

दिल्ली में प्रसिद्ध आर्य समाजी नेता ला० नारायणदत्त जी के यहाँ उतरे थे। एक दिन लाला जी ने कहा— देखिये भिक्षुजी इस चित्र में राम, कृष्ण और अन्य अवतारों के साथ बुद्ध का भी चित्र है। सोचा होगा भिक्षुजी बड़े प्रसन्न होंगे? बोले क्या खाक है! एक योगी को कामभोगियों के साथ ले जा बिठाया है। ऐसी तीखी बात कह सकने वाले अपने सभपति को कोई क्या कहे? हिन्दू बौद्ध एकता का प्रदर्शन करने के लिये जिसे अभी चार ही दिन हुये सभापति बनाया, उससे लड़ा भी नहीं जा सकता था!

भिक्षु उत्तम चाहते थे कि हिन्दू–महासभा राजनीति में न पड़कर केवल समाज– सुधार का कार्य करे। राज नीति में वह कांग्रेस के साथ थे जो हिन्दू-महासभा को करना चाहिए था, वह या तो करती ही न थी, या उससे होता ही न था। इसलिए भिक्षु उत्तम उसे कभी-कभी बड़े आड़े हाथों लेते थे। रावलपिंडी की एक सभा में लोगों ने, जिनकी राजनीति केवल चुनाव लड़ने और मुसलमानों को गालियाँ देने अथवा उनकी शिकायतें करने में ही समाप्त हो जाती थी, भिक्षु उत्तम को चारों ओर से घेरा। जब भिक्षु उत्तम से न रहा गया तब उपस्थित लोगों को डांटकर बोले—राजनीति—राजनीति करता है। छोड़ेगा सरकारी रेल-तार, छोड़ेगा सरकारी डाकखाना। करेगा अंग्रेजी स्कूलों और कचहरियों का बायकाट। होता–जाता कुछ नहीं। राजनीति, राजनीति करता है! उनकी वह डांट मुझे अभी भी ज्यों की त्यों सुनाई दे रही है। उसने रावलपिंडी के उन–हिन्दू महा सभाई नेताओं को एक बारगी ही ठंडा कर दिया।

अब हिन्दू महासभा जिस बात को अपनाने की बात कर रही है, काश! उसने अपने आरम्भ से ही उसे अपनायी होती। किन्तु सामाजिक क्रान्ति का कार्यक्रम किसी को भी अपील नहीं करता। कांग्रेस ने ही उसे अपने हाथ में लिया और न हिन्दू-महासभा ने ही।

लोगों को देखा है कि वे प्रायः दूसरों पर नीतिशास्त्र के नियमों की बड़ी कड़ाई से लादते हैं। किन्तु भिक्षु उत्तम अपने ही प्रति विशेष रूप से कड़े थे। दूसरा आदमी चाहे प्रायः कैसा भी हो, उसे निभा लेते। एक बार न जाने पंजाब में ही कहां से कहां को यात्रा की जा रही थी। रात के समय ड्योढ़े दर्जे में चढ़े। डिब्बे में जगह काफी थी। लोगों ने कहा कि आप का बिस्तर खोलकर बिछा दें। लेट जाइयेगा। बोले नहीं हमने लेटने का टिकट नहीं लिया है। वह सारी रात अपने बिस्तरे के सहारे बैठे रहे। एक मिनट भी बिस्तर बिछाकर लेटे नहीं।

वे नित्य कुछ पालि सूत्रों का पाठ किया करते थे। दिन में अगर व्याख्यानों का तांता लगा रहे तो कोई परवाह नहीं। शाम को यदि पाठ करने के लिए समय नहीं मिला है तो कोई चिन्ता नहीं। रात को बारह बजे के बाद तो रात अपनी है। मैंने उन्हें रात के एक और दो बजे पाठ करते देखा है; बिना पाठ किये सोते कभी नहीं देखा।

अपने प्रति तो इतने बड़े किन्तु दूसरों के प्रति? एक पंजाबी तरुण हमारे साथ चल रहे थे। दो चार स्टेशन साथ रहने पर भी मुझे सन्देह हुआ कि वह खाने-पीने की चीजें खरीदने जाते हैं तो बीच में कुछ पैसे बना लेते हैं। मैंने महास्थविर का ध्यान आकर्षित किया। बोले आखिर इतनी गर्मी में अपने पीछे-पीछे दौड़ता है। कोई वेतन तो पाता नहीं। कुछ न कुछ बनायेगा ही। बहुत नहीं बनाता। चुप रहो।

प्रायः हर देशाटन करने वाले को दो-चार भाषाओं से परिचय हो ही जाता है। भिक्षु उत्तम अपनी मातृभाषा बर्मी के अतिरिक्त, जापानी, बँगला, हिन्दी, अँग्रेजी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और दो-एक और भाषाएँ बोल लेते थे; किन्तु सभी टूटी-फूटी। अपने वाक्यों में दो एक अंग्रेजी वाक्यों के प्रयोग वे किया करते थे, जो व्याकरण की दृष्टि से प्रायः अशुद्ध होते और जिन्हें उनके समय के अंग्रेजी से अपरिचित अथवा अल्प परिचित व्याख्याताओं की विशेषता थी। हिन्दी-हिन्दुस्तानी में वे निधड़क बोलते थे, मानों कोई सड़क कूटने वाला इंजन सड़क कूटता चला जा रहा हो!

भाषण में हँसाते भी खूब थे और कभी कभी तो विरोधी का ऐसा मजाक बनाते मानों कोई चार्ली चेपलन ही रंगमंच पर उतर आया हो!

उन्हें अपनी माता से बहुत सा रुपया मिला था। उनकी इच्छा थी कि वह सारा रुपया नागरी अक्षरों में पालि त्रिपिटक के मुद्रण पर खर्च हो जाय। कितने बड़े खेद की बात है कि भारत को अपने बुद्ध पर इतना गर्व है, और उचित गर्व है; किन्तु बुद्ध के जो मूल उपदेश पालि भाषा में सुरक्षित हैं, उन्हें यदि आप आज भी पढ़ना चाहें तो वे आपको देवनागरी अक्षरों में पढ़ने को ना मिलेंगे? आप उन्हें रोमन अक्षरों में पढ़ सकते हैं, सिंहल अक्षरों में पढ़ सकते हैं, बर्मी अक्षरों में पढ़ सकते हैं, स्यामी अक्षरों में पढ़ सकते हैं, किन्तु बुद्ध की अपनी भूमि के आज देवनागरी अक्षरों में नहीं पढ़ सकते। भिक्षु उत्तम की प्रेरणा से राहुलजी ने नागरी अक्षरों में त्रिपिटक मुद्रण के कार्य को अपने हाथ में लिया। भिक्षु जगदीश काश्यप और इन पंक्तियों के लेखक ने भी उसमें सहयोग देना स्वीकार किया। खुद्दक पाठ के ११ ग्रंथ छपे भी, किन्तु राहुल जी के बहुधन्धीपन के कारण और हम लोगों के उस कार्य को अपने सिर न ओढ़ सकने के कारण वह गाड़ी आगे न चल सकी। भिक्षु उत्तम की वह पुण्यमयी इच्छा मन ही मन रही।

उन्होंने बर्मा के सार्वजनिक जीवन को प्रायः हर तरह से उभारने का प्रयत्न किया था। जनता के प्रिय-भाजन होने के हिसाब से तो वे बर्मा के गांधी थे। चलते थे तो स्त्रियाँ अपने सिर से बाल उनके पैरों के नीचे बिखेर देती थीं; बड़े ही आदरणीय, बड़े ही स्पष्ट वक्ता।

किन्तु, हायरी छलना राजनीति! उनके अन्तिम दिन बड़े दुःखमय बीते। बर्मा के दो राजनैतिक दलों में से एक का साथ उन्होंने जन्म भर दिया। अन्तिम दिनों में उसे छोड़कर दूसरे दल में शामिल हो गये। जिसे छोड़ दिया था वह दल जीत गया, जिसमें शामिल हुए वह दल हार गया। भिक्षु उत्तम कहीं के न रहे।

उनके अन्तिम दिन विक्षिप्त शब्द के यथार्थ अर्थ में एक विक्षिप्त का जीवन था। अपनी चप्पल अपनी बगल में लिए लोगों ने उन्हें बर्मा की सड़कों पर फटेहाल घूमते देखा है?

किन्तु, उनका जब शरीरान्त हुआ बर्मी जाति ने उनके प्रति वही गौरव प्रदर्शित किया, जिसके वे अधिकारी थे।

बर्मा के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के साथ उनकी याद अमिट है।

महान् पुरुषों के ध्यान से मानसिक लाभ

प्रो० लालजीराम शुक्ल

अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक डेल कारनेगी महाशय अपनी 'पबलिक स्पीकिंग' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि जब सभा में बोलने में घबराहट का अनुभव हो तो किसी महान् पुरुष का ध्यान करो तो तुम अपने आप में वह शक्ति आते हुये देखोगे जिससे अपने श्रोताओं को वश में कर लोगे। जब कभी प्रेसिडेन्ट रुजवेल्ट को राज्य के काम में कोई बड़ी कठिनाई का अनुभव होता था, जब उन्हें किसी ऐसे निर्णय को करना पड़ता था जिसमें अनेक प्रकार की जटिल बातों पर विचार करने की आवश्यकता होती थी तो वह अब्राहम लिंकन का ध्यान करता था। वह सोचता था कि यदि मेरी स्थिति में अब्राहम लिंकन होता तो क्या करता? फिर जो कुछ

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इस प्रकार निर्णय होता वह उसी के अनुसार कार्य करने लगता था। किसी भी महान् पुरुष की अच्छी तस्वीर अपने कमरे में रखने का यही लाभ है कि हम उनके साथ मानसिक एकता स्थापित कर सकें; किसी भी संकट के समय जैसा उन्होंने किया वैसा हम भी अपने संकट काल में करें।

महान् पुरुषों का ध्यान मनुष्य की इच्छा शक्ति को बली बना देता है। जो कुछ मनुष्य सोचता है वह तत्क्षण वही हो जाता है। जब हम किसी उद्विग्न मन के व्यक्तिके विषय में चिन्तन करते हैं, उससे लड़ते झगते हुये अपने आपको देखते हैं तो हम उसे उद्विग्न मन के व्यक्ति के अनुरूप ही हो जाते हैं। जब हम किसी भले शान्त स्वभाव के व्यक्ति का ध्यान करते हैं, उससे बातचीत करने की कल्पना अपने मन में लाते हैं तो हम उसी प्रकार के अपने आप ही हो जाते हैं।

भगवान् बुद्ध के ध्यान मात्र से मन शान्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है। लेखक के एक अँग्रेज मित्र श्री रोनाल्ड निकसन ने भगवान् बुद्ध की प्रतिमा के ऊपर ध्यान जमाने के लाभ के विषय में लेखक को एक बार अद्भुत बातें कहीं। इस प्रकार के ध्यान से वे गृहस्थ जीवन छोड़कर साधु बन गये। श्री निकसन महाशय ने पहले जर्मन युद्ध में भाग लिया था। वे वायुयान के संचालकों के आफिसर थे। उनके बासठ साथियों में से लड़ाई समाप्त होने पर केवल पाँच बच गये थे। उनके मन में इस युद्ध के समाप्त होने पर भारी अशान्ति हुयी। वे किसी तथ्य को खोजना चाहते थे। एक बार जब वे अपने गम्भीर चिन्तन में लगे थे और संसार से निराश हो चुके थे तब उनका ध्यान कैंब्रिज विश्वविद्यालय के एक बड़े कमरे में रक्खी बुद्ध भगवान् की मूर्ति पर गया। वे बहुत देर तक भगवान् बुद्ध की ध्यान मुद्रा में अपने आप ही डूब गये। भगवान् बुद्ध के शान्त भाव ने उन्हें इतनी शान्ति दी कि उन्हें निश्चय हो गया कि यदि उस शान्त भाव को वे सभी समय के लिये प्राप्त कर लें तो अवश्य ही उनकी मानसिक व्यथा का सब काल के लिये अन्त हो जाय। उसी शान्ति की खोज के लिये श्री निकसन ने बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया। वे भारत-वर्ष आये और फिर साधु बन गये। आज भी वे त्याग के रूप में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

जापान में बौद्ध धर्म का एक विशेष प्रकार का विकास हुआ है। वहाँ का एक सम्प्रदाय मुक्ति और शांति लाभ के लिये पढ़ना लिखना और तार्किक विचार करना व्यर्थ समझता है। वह ध्यान को ही प्रधानता देता है। इस सम्प्रदाय को "जेन बौद्ध" सम्प्रदाय कहते हैं। इस सम्प्रदाय के लोग बड़े कर्मठ और ज्ञानी होते हैं। उनकी शान्ति-मुद्रा से संसार के बड़े-बड़े विद्वान् और दार्शनिक प्रभावित होते हैं। मनुष्य की शान्त मुद्रा में दूसरों को प्रभावित करने का जो बल है वह दूसरी किसी बात में नहीं है। शान्त भाव के व्यक्ति के विषय में चिन्तन मात्र करने से मनुष्य में नई शक्ति उत्पन्न हो जाती है, उसका खोया आत्म-विश्वास चला आता है। उसके हृदय का अन्धकार दूर हो जाता है और उसे नया प्रकाश मिल जाता है।

इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध कवि कीट्स महाशय एक सुन्दर मूर्ति को देखकर इतने मुग्ध हो गये कि उन्होंने सौन्दर्य को मूर्तिमान सत्य कह दिया। सुन्दर पदार्थों को देखकर हृदय का सौन्दर्य आता है। परन्तु सुन्दर भावों वाले व्यक्ति की कल्पना मनुष्य के व्यक्तित्व को ही उसके बिना जाने ही बदल देती है। सुन्दर भावों का व्यक्ति चाहे कुछ बोले अथवा न बोले उसकी उपस्थिति मात्र का प्रभाव सभी लोगों के मन पर पड़ता है। मनुष्य जो कुछ करता अथवा कहता है उससे कहीं अधिक प्रभावकारी उसका व्यक्तित्व है। अर्थात् भाषण की अपेक्षा मौन भाषण मनुष्य के हृदय को अधिक प्रभावित करता है। महान् पुरुष संसार की सेवा उनकी उपस्थिति मात्र से करते हैं। दृढ़व्रती मनुष्य की कल्पना मात्र से हम दृढ़व्रती बन जाते हैं, त्यागी की कल्पना से त्यागी और उदार की कल्पना से उदार बन जाते हैं। जो व्यक्ति जैसा अपने आप को बनाना चाहता है, वह यदि अपने आदर्श के अनुरूप किसी महान् पुरुष का प्रति दिन ध्यान करे तो वह धीरे धीरे अपने आपको तदानुरूप परिणित होते हुए पायेगा।

मनुष्य महान् पुरुष के ध्यान से अपनी आत्म-निर्देश की शक्ति को बढ़ा लेता है। मान लीजिये आपके पेट में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दर्द हो रहा है। आप मानते हैं कि अमुक व्यक्ति आपके पेट के दर्द का हरण कर सकता है। आप उसका ध्यान कीजिये और सोचिये कि वह आपके ऊपर हाथ फेर कर उस पीड़ा को हटा रहा है। आप देखेंगे कि कुछ काल के बाद आपकी पीड़ा जाती रही। इमील कूये महाशय अपने रोगियों को यही आदेश देते थे, कि वे प्रति दिन इस विचार का नियमित रूप से अभ्यास करें कि हम हर प्रकार हर दिन अच्छे हो रहे हैं। वे यह भी कह देते थे कि इन शब्दों को कहते समय रोगी सोचे कि इमील कूये उनके पास खड़े हैं। इस प्रकार के चिन्तन से रोगी को स्वास्थ्य लाभ करने में अपार लाभ होता था।

जब मनुष्य अपने पुरुषार्थ में विश्वास खो देता है तो किसी महान् पुरुष का ध्यान फिर से उसमें विश्वास उत्पन्न कर देता है। अंग्रेजी में कहावत है, 'जिस प्रकार रोग संक्रामक है उसी प्रकार स्वास्थ्य भी संक्रामक है। रोगी मनुष्य के सम्पर्क में आने से साधारण व्यक्ति भी अपने आप में रोग की कल्पना करने लगता है और स्वस्थ मनुष्य के सम्पर्क में आने से साधारण मनुष्य अपने आप में शक्ति के उदय की अनुभूति करने लगता है। वह स्वास्थ्य वृद्धि के साधनों को अपनाने लगता है। यह सम्पर्क दो प्रकार का होता है। एक भौतिक और दूसरा मानसिक अधिक प्रभावकारी सम्पर्क मानसिक सम्पर्क है। कोई मनुष्य महात्मा के समीप भौतिकदृष्टि से रहकर भी उससे मानसिक दृष्टि से कोसों दूर रह सकता है और कोई उससे भौतिकदृष्टि से कोसों दूर रहकर भी मानसिक दृष्टि से अत्यन्त समीप रह सकता है। सच्चा सम्पर्क हृदय की चाह है। जिस व्यक्ति को जिसकी चाह है वह उसी के पास है।

नलनी जल विच वसे, चंपा बसे अकास,
जाको जासो नेह है, सो ताही के पास।

जो लोग संसारी पुरुषों का सदा चिन्तन करते रहते हैं; उनकी सम्पत्ति और चरित्र के बारे में सोचा करते हैं वे उन्हीं के पास हैं चाहे वे जंगल में ही क्यों न बैठे हों और जो व्यक्ति त्यागी महापुरुष का नित्य प्रति ध्यान करते रहते हैं वे संसार के अनेक कार्य करते हुये भी उन महान् पुरुषों के समीप ही हैं। किसी भी महान् पुरुष का आदर उसके भौतिक शरीर की सेवा करने उससे प्रणाम् करने में नहीं है उसके विचारों पर उसके शान्त-भाव के बारे में बार-बार चिन्तन करने में है। लौकिक व्यक्तियों से सबसे अधिक लाभ उनके शरीर के समीप रहने से होता है। महान् पुरुषों से सबसे अधिक लाभ उनके शरीर से दूर रहने से ही होता है। महान् पुरुष सत्य के प्रतीक हैं। सत्य व्यापक तत्व है। महान् पुरुष की कल्पना हमें सत्य दर्शन का साधन बन जाती है। कल्पना की प्रबलता से मन और बुद्धि के परे का तत्व प्रत्यक्ष हो जाता है। जो लाभ सत्य के विषय में वर्षों चिन्तन करने से, उस पर तर्क-वितर्क करने से नहीं होता वह क्षण भर के सच्चे ध्यान से हो जाता है। संसार के महान् पुरुष मूर्तिमान सत्य हैं। उनका ध्यान करना उनके साथ आत्मसात करना है। इस प्रकार की मानसिक सम्पत्ति से मनुष्य वही मानसिक बल, शौर्य और प्रसाद अपने आप में आते हुए पायेगा जो उसके व्यक्तित्व में वर्तमान है। भौतिक दृष्टि से महान् पुरुष उसी प्रकार नश्वर है जिस प्रकार अन्य पुरुष हैं। पर विचार की दृष्टि से वे अमर हैं। जो व्यक्ति हर परिस्थितियों में अपने धैर्य को बनाये रखता है जो हर प्रकार के कष्ट में प्रसन्न-वदन रहता है वह महान् शक्ति का केन्द्र है। ऐसे व्यक्ति का ध्यानमात्र शक्ति और प्रसन्नता का उत्पादक होता है। भगवान् बुद्ध के ध्यान से कितने ही साधकों को समाधि लाभ होती है।

महान् पुरुष का ध्यान नई स्फूर्ति, नई प्रेरणा और नये भले संकल्पों का कारण होता है। इसका एक कारण यह है इन महान् पुरुषों के सभी मन्तव्य अभी तक पूरे नहीं हुये। वे उनके बाद आने वाले लोगों के द्वारा पूरे हो रहे हैं। इमरसन महाशय के इस कथन में मौलिक सत्य है कि "महान् पुरुष एक ध्येय, एक राष्ट्र, एक युग है, वह अपने मन्तव्य की पूर्ति के लिए अनन्त व्यक्तियों और समय की अपेक्षा रखता है" यदि हम ऐसे महात्मा से अपना सम्पर्क जोड़कर उसकी शुभाकांक्षाओं की पूर्ति के साधन बन जायें तो हम अपने आपको ही ऊँचा उठा लेंगे। महान् पुरुष अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व को दबाते नहीं; वे अपने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शिष्यों को अपने जैसा ही बना लेते हैं। जब जलती हुई एक मशाल का दूसरी मशाल से सम्पर्क होता है तो वह भी जल जाती है। फिर जो निर्जीव थी वह जीवित जाग्रत मशाल बन जाती है। जब तक मनुष्य किसी महान् पुरुष से अपना मानसिक सम्पर्क स्थापित नहीं कर लेता वह मनुष्य ही नहीं बनता। जिस प्रकार हम शरीर से अपने भौतिक माता-पिता के पुत्र हैं, मन से हम उन लोगों के पुत्र हैं जिन्हें हम ज्ञानी मानते हैं। शारीरिक जन्म एक ही बार होता है। पर मानसिक जन्म बार-बार होता रहता है। संसार के सभी महान् पुरुष प्रत्येक व्यक्ति को महान् बनने की प्रेरणा देते हैं। कभी यह प्रेरणा एक व्यक्ति से मिलती है, कभी दूसरे से। किसी न किसी महान् पुरुष का निकटतम मानसिक सम्पर्क बनाये रखना हमारे लिए आत्मोत्थान का सर्वोत्तम उपाय है।

बुद्ध का कर्मवाद

भिक्षु धर्मरक्षित

संसार में अनेक पारस्परिक खिलाफ बातें दीखती हैं—एक हीन है तो दूसरा उत्तम। एक अल्पायु है तो दूसरा दीर्घायु। एक रोग बाहुल्य का शिकार बना हुआ है तो दूसरा एकदम निरोग। एक बदसूरत है तो दूसरा बहुत ही खूबसूरत। एक निर्बल है तो दूसरा सबल। एक दरिद्र है तो दूसरा महाधनी। एक नीच कुल में उत्पन्न हुआ है तो दूसरा उच्चकुलमें। एक निर्बुद्धि है तो दूसरा बुद्धिमान। इन विभिन्नताओं के क्या मूल हेतु हैं? कौन से ऐसे कारण हैं कि सभी एक योनि में उत्पन्न होकर भी मुख्तलिफ बातों में बिल्कुल जुदा है?

भगवान् बुद्ध के पूर्व और समसामयिक दर्शनिकों में यह प्रश्न एक ऐसी जटिल समस्या का विषय रहा कि एतद् विषयक मतैक्य कभी भी नहीं हो सका। एक दार्शनिक कहता है—'जहाँ तक व्यक्ति की हीनता प्रणीतता, सुख दुःख आदि बातें दीखती हैं, उन सब के कारण हैं व्यक्ति के पूर्व-कर्म। जब वह पुरबले कर्मों को तपस्या द्वारा समाप्त कर डालेगा और नये कर्मों को नहीं करेगा तो भविष्य में विपाक रहित होगा, विपाक रहित होने से उसके सारे दुःख खत्म हो जायेंगे।'

यदि सारे सुख-दुःख पुरबले कर्मों के ही विपाक हैं तो क्या व्यक्ति जानता है कि हम पहले थे अथवा नहीं? हमने पूर्व जन्म में पाप कर्म किया है अथवा नहीं? इस समय इतना दुःख खत्म हो गया और इतना बाकी है जो इतने समय में खत्म हो जायेगा? इसी जन्म में सारी बुराइयों का अन्त हो जायेगा और कुशलधर्म का लाभ? यदि 'नहीं' तो पुरबले कर्मों के हेतु ही सबको स्वीकार करना न्याय संगत नहीं।*

दूसरा दार्शनिक कहता है—'सबको बनाने वाला जगत–नियन्ता एक ईश्वर है, जो सब जगह और सबमें रहता है, यदि यह सत्य है तो वह बड़ा ही अन्यायी, दुःखद, व्यभिचारी, कुटिल और सब तरह की बुराइयों की जड़ है, क्योंकि तत्प्रवर्तित दुःख आदि कष्टदायक अनुभूतियों का ही पलड़ा भारी है। नृशंसता, शोषणता आदि से जगति-तल व्याकुल है। अगर सारी अनुभूति उसकी है तो दरअसल वह बड़ा मूर्ख है क्योंकि संसार की दुःखादि पीड़ाओं के लिये सभी सत्व अनिच्छुक हैं।

यह ईश्वर वस्तुतः एक महान् गुलामी की शिक्षा है जो कभी भी विचार विमर्ष को स्थान नहीं देता और अपने को एक दूसरी शक्ति का पक्का गुलाम समझता है।†

तीसरा दार्शनिक कहता है—'दान, यज्ञ, हवन करना व्यर्थ है, अच्छे-बुरे कर्मों का फल-विपाक नहीं है, न

---

* मिलाओ मज्झिम निकाय १, २, ४।

† मिलाओ दीघ निकाय १, १ और जातक १८, ३।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तो यह लोक है और न परलोक। माता-पिता का अस्तित्व स्वीकार करना अपने को दूसरों के हाथ बाजाप्ता बेंच देना है। संसार में अयोनिज सत्व अथवा देवता आदि नहीं हैं। हमें किसी श्रमण-ब्राह्मण की सत्यारूढ़ता में विश्वास नहीं। यह चार महाभूतों (= पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु) से बने शरीर वाला व्यक्ति जब मरता है तब पृथ्वी पृथ्वी में मिल जाती है। जल जल में मिल जाता है। अग्नि अग्नि में लय हो जाता है। वायु वायु में चला जाता है। इन्द्रियाँ आसमान में उड़ जाती हैं। मरने के बाद कौन आता है और कौन जाता है ?'

दान, यज्ञ, हवन आदि कर्मों के विपाकों को देखते हुये यह कैसे स्वीकार किया जाय कि सब व्यर्थ है ? दान की बात तो छोड़ो, एक न्यायधीश को कुछ भेंट चढ़ाकर न्याय के ऊपर अन्याय की विजय करा लेते हैं। दुश्मन को धन, सम्पत्ति, राज्य आदि अपनी चीजें देकर सन्धि कर सुखपूर्वक विचरने लगते हैं। भूखों मरते व्यक्ति के प्राण को भी भोजन दान से बचा लेते हैं। इस धरती पर के सभी प्रदेश, नदी, नाले, गिरि, सागर को देखते हुए कैसे इस लोक को न मानें ? धरती से दूर चन्द्रमा, सूर्य आदि को अपनी आँखों देखते हुये कैसे परलोक के अस्तित्व से मुकर जायँ ? नित्य प्राणियों की च्युति और उत्पत्ति इहलोक तथा परलोक को मानने के लिये बाध्य करती है।

एक भले आदमी की प्रशंसा होती है। कीर्ति फैलती है। अच्छे कर्मों के फलस्वरूप उसे इस धरती पर राजा-राजमन्त्री वगैरह होते हुये देखते हैं और ठीक इसके विपरीत अपने बुरे कर्मों के कारण फाँसी की सजा पाते, कैदखाने का चक्कर काटते और छूट कर दिये जाते। फिर कैसे अच्छे बुरे कर्मों के फल को न माना जाय ? माता-पिता का अस्तित्व स्वीकार न करना अपने को पशु से भी नीच बना देना है। बिना योनि से उत्पन्न लाखों भूत-प्रेत देखे जाते हैं। यदि सूर्य्य चन्द्रमा आदि को देव न मानें तो भी काली, हवहिया, बाइसी, दुर्गा, शीतला, भैरव आदि—देवी देवताओं के कृत्य देखते हुए कैसे हम इनका निषेध करें ?

'शरीर केवल चार महाभूतों से निर्मित है, जब तक शरीर है तब तक ही जीवन है, उसके आगे फिर कुछ नहीं, जो हममें चेतना जान पड़ती हैं, वह सिर्फ विभिन्न परिणाम में मिश्रित रसों के कारण सम्भूत है, ऐसे ही उष्णता भी। उनके न्यूनाधिक होने मात्र से व्यक्ति काल कर जाता है।'

यदि इसे मान लिया जाय, तो न हमें अपने जीवन से कोई ताल्लुक रह जाता है और न उद्योग करने की आवश्यकता रहती है। जैसे कुक्कुर-बिलार खाते-पीते, जीते और मर जाते हैं, वैसे हमारी हस्ती भी निकम्मी बन जाती है। किसी को भी किसी ऊँचे आदर्श के लिए प्रोत्साहन देना फिजूल हो जाता है। लोक, समाज, देश और व्यक्तिगत हित-साधक कर्म हमसे दूर हो रहते हैं'। अपने भले बुरे कर्मों का दायित्व नहीं रहता।*

चौथा दार्शनिक कहता है—'प्राणियों के संक्लेश के लिये कोई हेतु नहीं है, बिना किसी कारण के प्राणी संक्लेशित होते हैं, ऐसे ही विशुद्धि के लिये भी हेतु-प्रत्यय का अभाव है। सभी भवितव्यता के वशीभूत हैं।'

हम देखते हैं कि सिर्फ एक दिन के नहीं खाने से शरीर कुछ दुबला पड़ जाता है और घी, दही, दूध आदि ओजपूर्ण भोजन के सेवन से शीघ्र ही गात्र स्थूल और बलवान हो जाते हैं। व्यक्ति की पैदाइश भी तो माता-पिता, शुक्रशोणित और गन्धर्व (= माता के पेट में प्रतिसन्धि ग्रहण करने वाली चित्त-सन्तति) के संयोग पर ही निर्भर है, फिर कैसे माना जाय कि प्राणियों के कर्म-कलाप हेतु-प्रत्यय रहित हैं और बिना किसी हेतु के उनकी शुद्धि अथवा संक्लेशिता सम्भव है ? नाना प्रकार के कुशल-अकुशल कर्मों के द्वारा अच्छे बुरे फलों की प्राप्ति के बावजूद भी अहेतुकवाद कहाँ तक ठीक ठहरता है।†

पाँचवाँ दार्शनिक कहता है—'व्यक्ति पुण्य करे अथवा पाप, वह चौरासी हजार महाकल्पों तक उन-उन योनियों में दौड़ते रहने के पश्चात् ही निर्वाण पायेगा। आत्मा नित्यध्रुव, शाश्वत, अपरिवर्त्तनशील और कूटस्थायी है, सुख-

---

* मिलाओ अंगुत्तर निकाय ३, ४, ५ और संयुत्त निकाय ३, २३, १, ६।

† मिलाओ संयुत्त निकाय ३, २३, १, ९ और दीघ निकाय १, १।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दुःख नपे तुले हुए हैं। उनका घटाव बढ़ाव नहीं होता, जैसे कि सूत की गोली फेंकने पर उधरती हुई गिरती है, ऐसे ही मूर्ख पण्डित—सभी आवागमन में पड़कर दुःख का अन्त करेंगे।'

यदि सुख-दुःख नपे-तुले बराबर हैं तो क्या कारण है कि एक जीवनपर्यन्त पेट भर खाना नहीं पाता और दूसरा सर्वदा मालपूवे उड़ाता सुख की करवटें बदलता है? अगर पुण्य पाप नहीं है, चौरासी हजार कल्पों के पश्चात् निर्वाण-लाभ अवश्यम्भावी है, तो गृहस्थ और श्रमण में फर्क ही क्या? वस्तुतः संसार शुद्धि वाद में न तो जीवहिंसा अनुचित ठहरती है और न चोरी, व्यभिचार, झूठ, कटुवचन, आदि। पाप पुण्य नहीं मानने वाले को संसार में कोई भी बुरा काम गुनाह भरा नहीं।

कूटस्थ आत्मभाव में हमारी सारी क्रियायें हमारे वशीभूत अपेक्ष्य हैं, किन्तु होता है ठीक इसके विपरीत। एक क्षण पहले की बात भी स्मृति पटल पर नहीं दीखती, दो चार दिन अथवा वर्ष भर की तो दरकिनार। आत्म-परिकल्पना भी आत्मा के लिए सिद्ध नहीं होती। क्षण-क्षण बदलने वाला नाम-रूपों का योग (= पञ्चस्कन्ध) सर्वथा अनित्य, दुःख और अनात्म है।'*

(२)

भगवान् बुद्ध ने पुरबले कर्मों को इनकार नहीं किया, उन्होंने भी कहा—'सभी सत्व अपने कर्मों के साथी हैं। कर्म-दायाद हैं। कर्म ही उनकी योनि है। वे कर्म-बन्धु हैं। उनका रक्षक या विनाशक कर्म ही इस हीन-प्रणीतता में विभक्त करता है। इस जीवन में उनके कर्म और विपाक मौजूद हैं। विपाक कर्म से उत्पन्न होता तथा इस प्रकार सत्व की उत्पत्ति का सिलसिला बँध जाता है। परन्तु "सभी दुःख पुरबले कर्मों के ही विपाक हैं।"—ऐसा नहीं कबूल किया।

हम देखते हैं कि वात, पित्त, कफ़ और सन्निपात के प्रकोप से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं ऋतु तथा विषम-आहार-पान के कारण भी नाना रोग उठ खड़े होते हैं। बहुत से लोग जीवन से आज़िज हो उपक्रम कर मर जाते हैं। कोई रेल से कट मरता है। कोई विष खा लेता है। कोई आत्म-हत्या के अन्यतम प्रयोग से मर जाता है। इसलिए भगवान् बुद्ध ने सभी दुःखों की उत्पत्ति के आठ कारणों को बतलाया। उन्होंने कहा—' '(१) वात प्रकोप (२) पित्त प्रकोप (३) कफ़ प्रकोप (४) सन्निपात (५) ऋतु (६) विषमाहार (७) औपक्रमिक और (८) कर्म-विपाक दुःखों की उत्पत्ति के कारण हैं, हेतु हैं, निदान हैं।"

पित्तं सेम्हञ्च वातो च सन्निपाता उतूनि च।
विसमं ओपक्कमिको च कम्मविपाकेन अट्ठमी॥

अतीतांशवादी कह सकता है कि यह सभी पुरबले कर्मों की ही देन है किन्तु अगर ऐसा होता तो उनके जुदा-जुदा लक्षण न दीख पड़ते। हम देखते हैं कि जाड़ा, गर्मी भूख, प्यास, अधिक भोजन, स्थान, परिश्रम, दौड़-धूप, उपक्रम और कर्म-विपाक—इन दस कारणों से वात प्रकोप होता है। इनमें नव कारण न तो भूतकालिक हैं और न भविष्यत् कालिक। ये सभी वर्त्तमान कालिक हैं। अतः यह मानना ठीक नहीं उतरता है कि सभी रोग पुरबले कर्मों के ही विपाक हैं। ऐसे ही पित्त, कफ भी जाड़ा, गर्मी, विषमाहार-पान से प्रकुप्त होते हैं। भली-भाँति विचार कर देखने पर दीख पड़ता है कि पुरबले कर्मों से उत्पन्न होनेवाली दुःखादि वेदनायें अवशेष कारणों से उत्पन्न वेदनाओं की अपेक्षा बहुत न्यून हैं।

भगवान् ने सभी कर्मों का चार प्रकार से विभाजन किया है—(१) कृत्य के अनुसार (२) विपाक देने के पर्याय से (३) विपाक के काल के अनुसार (४) विपाक के स्थान के अनुसार।*

इस प्रकार बुद्ध ने ईश्वर की गुलामी से निकालते और आत्मा के नित्य, शाश्वत होने की बुरी धारणा को त्यागते हुए कहा है—"भिक्षुओ, सभी बुद्ध कर्मवादी, क्रियावादी, वीर्यवादी होते हैं, मैं भी इन्हीं तीनों वादों का समर्थक हूँ, इन्हीं की शिक्षा देता हूँ। जो ऐसा कहते हैं कि कर्म नहीं है, वीर्य (उद्योग) नहीं है, क्रिया नहीं है, वे केशकम्बल जैसे घृणित हैं।"

जब तक पाप-कर्म का विपाक नहीं मिलता है, तब तक मूर्ख आदमी मधु के समान समझता है, किन्तु जब पाप का विपाक मिलता है, तब दुःखी होता है। बहुत

* मिलाओ, संयुत्त निकाय २, २३, १, ८ इत्यादि।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ये ऐसे कर्म हैं जो ताजे दूध की भाँति तुरन्त फल नहीं देते, वे भस्म से ढँकी आग की भाँति दग्ध करते हुए मूर्ख लोगों का पीछा करते हैं। अस्तु—

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्त परियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

सारे पाप (कर्मों) का न करना, पुण्यों का सञ्चय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना—यह बुद्धों की शिक्षा है।
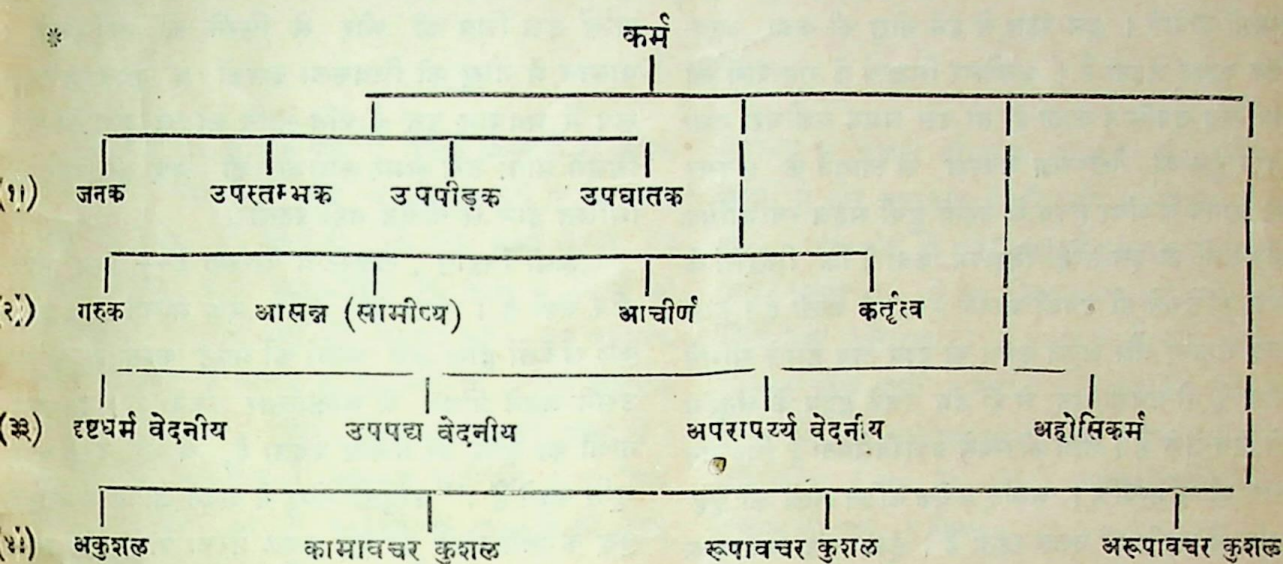
मूलगंध कुटी विहार के भित्ति-चित्र

श्री बी० एन० सरस्वती

मूलगंध कुटी विहार की भव्य दीवारों पर जापान के प्रसिद्ध चित्रकार श्री कोसेत्सु नोसु ने अपनी ओजस्विनी तूलिका सर्वप्रथम १९३१ ई० में चलायी। चार वर्ष के अनावरत परिश्रम के पश्चात् उनका यह कार्य सफल हुआ। आज सारनाथ की पवित्र भूमि में जो कोई मानव के अन्धतम हृदय में ज्ञान की ज्योति दिखाने वाले भगवान् बुद्ध पर प्रेमाञ्जलि अर्पित करने आता है, वह अवश्य ही इस भित्ति-चित्र को देखकर उस अमर कलाकार की प्रशंसा किये बिना नहीं जाता। श्री नोसु के इस कला सौष्टव ने सारनाथ की महत्ता में सक्रिय योग दिया है। आज दर्शक यदि भगवान् बुद्ध का दर्शन कर अपने को धन्य समझते हैं, तो इस असाधारण कला का निरीक्षण भी उन्हें कम हर्षित तथा कम आकर्षित नहीं करता।

बौद्धकालीन कला का चरम विकास हम अजन्ता की चित्रकारी में पाते हैं। कलाकार नोसु ने भी प्रायः उसी आधार पर अपने सजीव भित्ति-चित्र की कल्पना की। इसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है।

किसी भी राष्ट्र की कला उसके इतिहास की परिचायिका होती है। इतिहास के पृष्ठों में हमें केवल लिखित सामग्री मिलती है, परन्तु कला के द्वारा राष्ट्र इतिहास के सजीव चित्र देखने को मिलते हैं। इसी प्रेरणा से प्रेरित तथा भगवान् की प्रीत में निमग्न होकर ही कलाकार नोसु ने भगवान् बुद्ध के जीवन इतिहास को अपने चित्रों में अभिव्यक्त किया है जिस कलात्मक दृश्य से शताब्दियों के इतिहास को हम थोड़े समय में समझ लेते हैं। भगवान् बुद्ध के जीवन का यह कलात्मक इतिहास हमारे हृदय में किताब के पन्नों पर लिखित इतिहास के अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव डालता है। ये सजीव चित्र आज कई

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शताब्दियों का प्राचीन इतिहास हमारी आँखों के सामने नूतन रूप में रख देते हैं। जो कला भौतिक उपकरणों से जितनी अधिक स्वतन्त्र होकर भावों की अधिकाधिक अभिव्यंजना में समर्थ होंगी वह उतनी ही अधिक श्रेष्ठ समझी जावेगी। इस पहलू से हमें नोसु की कला अत्यधिक महान् जँचती है। कलाकार सिद्धार्थ के गृहत्याग का जब चित्र उपस्थित करता है, तो उस समय यशोधरा तथा पुत्र राहुल का निद्रा-मग्न अवस्था में त्यागने के अवसर पर मानव के अंतर हृदय में उठती हुयी सहज स्वाभाविक भावनाओं का इस तरह निरूपण किया है कि सिद्धार्थ के चित्र को देखते ही उनकी भावना प्रगट हो जाती है। इसी तरह आनन्द और अछूत कन्या का दृश्य जब हमारे सामने आता है तो उनकी मुद्रा से ही हम उनके हृदय के अंतरंग को जान जाते हैं। कला की सबसे बड़ी विशेषता है चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति। अर्थात् प्रत्येक लक्षित कला की पृष्ठभूमि में प्रकृति की नकल रहती है। इसी तरह चित्र-कला की सफलता चित्र के बाह्यालंकारों पर नहीं वरन् उसकी स्वाभाविकता पर निर्भर करती है। यहाँ दो तरह के कलाकार को देखिये; जो किसी रमणी के चित्र बनाने में उस पर आभूषण के सुनहले रंग चढ़ा कर अपने को कलाकार में आँकते हैं और दूसरे तरह के वे हैं जो रमणी के सहज स्वाभाविक सौन्दर्य को अभिव्यक्त करते हैं। प्रथम श्रेणी के कलाकार से ऊपर लिखित सिद्धान्त की पुष्टि नहीं हो पाती। वे रंग चढ़ाने में ही अपना उद्देश्य भूल जाते हैं। अतः उसमें वह कृत्रिम सौन्दर्य, सौन्दर्य की श्रेणी से नीचे उतर आता है। पर दूसरी श्रेणी के कलाकार से चित्र की स्वाभाविक सुन्दरता, प्रचुर मात्रा में सुन्दर ही प्रतीत होती। हमारे नोसु भी द्वितीय श्रणी के चित्रकार हैं। उन्होंने कला के कर्म को ठीक-ठीक समझा, या यों कह सकते हैं कि वे एक सफल कलाकार हैं। उनकी चित्रकारी में हमें विशिष्ट अलंकार तो नहीं मिलते पर भावों की अभिव्यंजना तो प्रचुर रूप में मिलती ही है। उनके प्रायः प्रत्येक चित्र भावों से ओत-प्रोत हैं। "सुजाता की खीर" शीर्षक चित्र में भगवान् बुद्ध का शुष्क शरीर तथा सुजाता की खीर समर्पण का भाव उन्होंने इस रूप में दर्शाया है कि सुजाता की समर्पण की भावनापूर्ण रूपेण स्पष्ट हो जाती हैं। इस तरह उन्होंने प्रत्येक चित्र में भावों की अभिव्यंजना में मस्त हो अपनी तूलिका चलायी। रंगों का तो उन्होंने इतना सुन्दर उपयोग किया है कि आज भी दर्शकों की पैनी आँखें उस चित्र की ओर से फिरने को नहीं करती। वास्तव में नोसु की चित्रकला दर्शकों के हृदय पर सहज रूप में भगवान् बुद्ध के प्रति प्रीति का जयघोष कर देती, जिसमें प्रायः उस अमर कलाकार की श्रद्धा की ध्वनि भी मिश्रित होने से वंचित नहीं रहती।

रूसी विद्वान्, टॉलस्टाय लिखता है--"कला मानवीय चेष्टा है। चेष्टा वही है कि एक मानव ज्ञान पूर्वक कुछ संकेतों द्वारा उन भावों को प्रकट करता है, जिनका उसने अपने जीवन में साक्षात्कार किया है। इन भावनाओं का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है, वे भी उनकी अनुभूति करते हैं।" वस्तुतः नोसु ने अपने जीवन में भगवान् बुद्ध के प्रति प्रीति की एक प्रबल प्रेरणा पायी और उसको हम सफल कलाकार इसलिये कहते हैं कि दर्शक भी उसकी उस कला सौष्ठव में भगवान् बुद्ध के प्रति प्रीति-भावना से प्रेरित होते हैं। कलाकार की महानता को बतलाते हुए भारत के प्रसिद्ध कलाकार, श्री अवनेन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है--'कलाकार के मन का पता उसकी कला में चलता है। इसलिये हम कलाकार का आदर करते हैं। नहीं तो हिमालय पहाड़ को कई इञ्च के चतुष्कोण फ्रेम में बाँधकर दीवार पर लटका रखने में मुझे क्या लाभ है? हमें तो हिमालय के मन की बात की ही आवश्यकता है। कलाकार का तो यही काम है कि वह अपने मन से पार्थिव वस्तु के मन की बात को समझे और इस बात को हमारे मन में अंकित कर दे।" इस कथन की पुष्टि हमें श्री नोसु की चित्रकला में मिलती है। वह भगवान् बुद्ध के जीवन के प्रत्येक घटना को हमारे मन में सत्य के परे नहीं अंकित किया। सभ्यता की जिस रूप-रेखा पर उसने भगवान् बुद्ध के जीवन को चित्रों में अंकित किया वह किसी भी कला मर्मज्ञ के लिए श्रेय एवं प्रेय हो सकता। वस्तुतः उन चित्रों को देखने से नोसु को कलाकार होने के पहले एक सच्चे बौद्ध होने की

(शेषांश १०४ पृष्ठ पर)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तथागत का धर्मराज्य

श्री अनन्त

भगवान् बुद्ध में दस बल थे, उन्हीं दसबलों के कारण वे 'दशबल' कहलाते थे और उन्हीं दशबलों से वे 'ब्रह्म चक्र' का प्रर्वन भी करते थे, जो चक्र अन्य किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या लोक के किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रवर्तित नहीं हो सकता था। वह ब्रह्मचक्र किसी भी प्रकार से पलटने वाला नहीं था। उस ब्रह्मचक्र के प्रभाव में मनुष्य, देवता, मार और ब्रह्मा सभी थे। तथागत उस धर्मराज्य के अनुपम धर्मराजा थे। 'ब्रह्म चक्र', 'धर्मचक्र' का ही पर्यायवाची शब्द है जो बुद्ध शासनका अपना पारिभाषिक शब्द है।

धर्मराज तथागत ने ऐसे अनुपम धर्मचक्र को प्रवर्तित करने से पूर्व एक धर्मनगर की स्थापना की थी। उस धर्मनगर के प्राकार 'शील' (सदाचार) के बने थे। उसके चारों ओर ह्री (लज्जा) की खाई खुदी थी। ज्ञान उसके फाटक पर चौकसी करता था। उस धर्मनगरमें उद्योग की अटारियाँ बनी थीं। श्रद्धा की नींव बनी थी और स्मृति द्वारपाल का काम करती थी। प्रज्ञा के बड़े बड़े भवन बने थे। उसमें धर्मोपदेश के सूत्रों के सुन्दर-सुन्दर उद्यान लगे थे। उस धर्मनगर में धर्म की ही चौक बसी थी। विनय की कचहरी लगी थी। उसकी सड़कें स्मृति प्रस्थान की थीं, जिनके किनारे किनारे नाना प्रकार की सुगन्धियों की दूकानें सजी थीं। वे सुगन्धियाँ दिव्य और अनुपम थीं। साधारण और लौकिक सुगन्धियाँ केवल सीधी हवा की ओर ही बहा करती हैं, किन्तु वे उल्टी, सल्टी, नीचे, ऊपर सर्वत्र अपनी गमगमाहट से सबको अपनी ओर आकर्षित किया करती थीं। लोग उन्हें सूँघकर फिर राग, द्वेष, मोह की ओर नहीं लौटते थे। जो उस धर्मनगर में प्रवेश कर जाते थे, वे उस नगर के अमूल्य रत्नों को अपना कर वहीं के नागरिक बन जाते थे, उन्हें कामवासनामय-जगत् से उदासीनता हो आती थी। वे नैष्कम्य के पुजारी हो परम शांति की ओर अग्रसर होने लगते थे और अल्पकाल में ही उन्हें ऐसा ज्ञान हो आता था—"जन्मक्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया, जो कुछ करना था, सो कर लिया और कुछ यहाँ करने के लिये शेष नहीं रहा।" वे तथागत के पास जाते और प्रसन्नतापूर्वक अपने उदानों (प्रीति वाक्यों को सुनाते थे—"किलेसा झापिता मरहं, कतं बुद्धस्स सासनं" मेरे सारे क्लेश, (राग, द्वेष, मोह) जला डाले गये, मैंने बुद्ध शासन को पूर्ण कर लिया।

तथागत ने अपने धर्मराज्य की स्थापना सर्वप्रथम आषाढ़ पूर्णिमा को ऋषिपतन मृगदाय (सारनाथ) में की थी और धर्मचक्र को प्रवर्तित कर वहीं अपने धर्म-नगर का उद्घाटन भी। जिस प्रकार साधारण और लौकिक शासक श्वेत-छत्र, राजमुकुट, जूते, चँवर, तलवार, बहु-मूल्य पलङ्ग इत्यादि राज्य भाण्डों का उपयोग करते हैं, उसी प्रकार उन अनुपम धर्मराज ने चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक-प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग और आर्य अष्टाङ्गिग मार्ग को अपने काम में लाया।

धर्मराज तथागत ने अपने धर्मराज्य के नागरिकों को सदा कर्मवादी, क्रियावादी, वीर्यवादी बनाया। उन्होंने अक्रियावाद को केशकम्बल जैसा घृणित कहा। अनु-शासन करते हुये सदा ही उन्होंने भिक्षुओं को कहा—"भिक्षुओ! श्रद्धालु श्रावक के लिये शास्ता के शासन में परियोग के लिये वर्तते समय शास्ता का शासन ओजवान् होता है। भिक्षुओ! तुममें ऐसी दृढ़ता होनी चाहिये—चाहे चमड़ा, नस और हड्डी ही बच रहे, शरीर का रक्त-मांस सूख क्यों न जाय, किन्तु पुरुष के स्थाम एवं पराक्रम से जो कुछ प्राप्य है, उसे बिना पाये मेरा उद्योग न रुकेगा।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धर्मराज्य के अपराधियों को जला डालना, खत्म कर देना, निर्वासित कर देना, दबा डालना और उन्हें दूर भगा देना ही सजायें हैं। धर्मराज्य के अपराधी हैं क्रोध, मान, लोभ, द्वेष, मोह, डाह, मात्सर्य आदि अकुशल धर्म। इनके त्याग के लिये तथागत जामिन भी होते थे और कहते थे कि इन्हें त्यागो, मैं तुम्हारी मुक्ति के लिये जामिन होता हूँ, किन्तु परम दयालु तथागत इन अपराधियों के साथ भिड़ने में, संग्राम करने में, उन्हें जला डालने में दया करने को अवकाश नहीं देते थे। किंतु जब ये अपराधी दूसरे को पीड़ित करते थे और उन्हें पराजित करके उनके सहयोग से आ जुटते थे तब तथागत सहनशीलता का उपदेश देते थे और कहते थे--"सहलो, सह लेना परम तप है।" "भिक्षुओ! चोर लुटेरे चाहे दोनों ओर मुठिया लगे आरे से भी अंग अंग को चीरें तो भी यदि वह मन को दूषित करे तो वह मेरा शासन कर नहीं है। वहाँ पर भी भिक्षुओ! ऐसा सीखना चाहिए--मैं अपने चित्त को मैत्री से प्लावित कर विहरूँगा।"

धर्मराज तथागत अपने धर्मराज्य के कर्त्तव्यों को बतलाते हुए कहा करते थे--"भिक्षुओ! यह ब्रह्मचर्य लाभ, सत्कार, प्रशंसा, पाने के लिये नहीं है। शील-सम्पत्ति के लाभ के लिए नहीं है, न समाधि-सम्पत्ति के लाभ के लिये है, न ज्ञान-दर्शन के लाभ के लिये है। भिक्षुओ! जो यह न च्युत होनेवाली चित्त की मुक्ति है, इसी के लिये यह ब्रह्मचर्य है। यही सार है, यही अन्तिम निष्कर्ष है।" "भिक्षुओ! मैं बेड़े की भाँति पार जाने के लिये तुम्हें धर्म का उपदेश देता हूँ, पकड़कर रखने के लिये नहीं।" "एकत्रित होने पर भिक्षुओ! तुम्हारे लिये दो ही कर्त्तव्य हैं-(१) धार्मिक कथा या (२) आर्य तूष्णी-भावं (उत्तम मौन)।"

तथागत के धर्मराज्य में सभी लोग समान थे, किसी प्रकार का सामाजिक या धार्मिक भेदभाव नहीं था। जिस प्रकार छोटी-बड़ी सभी नदियाँ समुद्र में मिलकर समान जलवाली हो जाती हैं, उनका नाम, गोत्र लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार तथागत के धर्मराज्य में प्रवेश पाते ही सब अपने नाम, गोत्र, वंश, कुल की मर्यादा को त्याग कर एक समान हो जाते थे। धर्मराज्य के नागरिक चार भागों में विभक्त थे-(१) भिक्षु (२) भिक्षुणी, (३) उपासक और (४) उपासिका। उनकी सामर्थ्य के अनुसार तथागत का सब के लिए अनुशासन था। गृहस्थ और प्रव्रजितों की भी सीमाबन्दी थी। प्रव्रजितों को गृहस्थों के प्रगाढ़ संसर्ग से दूर रहने की आज्ञा थी। तथागत सदा ध्यान रखते थे कि प्रव्रजित गृहस्थों में मिल-जुलकर कहीं अपने उद्देश्य को न भूल जायँ और उन्हें 'मार' अपने वश में कर ले।

तथागत प्रव्रजितों को अपने समान ही रहने की शिक्षा देते थे। जिन कार्यों को करने में उन्हें स्वयं सुख की अनुभूति होती थी, उसे वे भिक्षुओं को भी करने के लिये आज्ञा देते थे। तथागत ने जब एकाहारी व्रत ग्रहण किया और देखा कि उसी में सुख है तो भिक्षुओं को भी कहा--"भिक्षुओ! मैं एक आसन-भोजन का सेवन करता हूँ। एक आसन-भोजन का सेवन करने से मैं अपने में निरोगिता, स्फूर्ति, बल और सुख का अनुभव करता हूँ। आओ भिक्षुओ! तुम भी एक आसन-भोजन को सेवन करो। एक आसन-भोजन करने से तुम भी निरोगिता स्फूर्ति, बल और सुख का अनुभव करोगे।" तथागत के धर्मराज्य में कभी भी किसी प्रकार के बल का प्रयोग नहीं किया जाता था और न तो तथागत अपनी बातों को बिना सोचे-समझे ग्रहण कर लेने को ही कहते थे, उनका उपदेश था कि "मेरी किसी भी बात को ग्रहण करने से पूर्व उसे बुद्धि की कसौटी पर खूब कस लो, यदि वह तुम्हें जँचे तो ग्रहण करो और यदि न जँचे तो त्याग दो।" धर्मराज्य में बुद्धि की पूरी स्वतन्त्रता थी। सब लोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विचार-विमर्ष करने के लिये स्वतन्त्र थे। तथागत ने उन्हें 'महापदेश' की अनुपम कसौटी सौंप दी थी, जिससे वे अपने बुद्धि-स्वातन्त्र्य का प्रयोग भली प्रकार कर सकते थे।

तथागत के धर्मराज्य के धर्म सेनापति आयुष्मान् सारिपुत्र थे। वे तथागत द्वारा प्रवर्तित 'धर्मचक्र' को अनुप्रवर्तन करते थे। जो अनन्तज्ञानी, सांसारिक वस्तुओं में नहीं फँसनेवाले, अतुल्यगुण, यश, बल, तेजवाले थे और जिन्होंने प्रज्ञाकी सीमा पा ली थी। ऋद्धिमान् भिक्षु धर्म

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

राज्य के पुरोहित थे और उसके नागरिक थे—सूत्रों के जानने वाले, विनय को जानने वाले, अभिधर्म को जानने वाले, धर्म के उपदेशक, जातक-कथाओं को कहने वाले पाँच निकायों को याद करने वाले, शील, समाधि और प्रज्ञा से युक्त, बोध्यङ्ग-भावना में लगे रहने वाले। वह धर्मराज्य बाँस या सरकण्डे के झाड़के समान अर्हतों से खचाखच भरा रहता था। राग, द्वेष और मोह रहित क्षीणाश्रव (जीवन मुक्त) तृष्णा रहित तथा उपादान को नाश कर देने वाले उसमें रहते थे। जंगल में रहने वाले, धुताङ्गधारी ध्यान करने वाले, रूखे चीवर वाले, विवेक में रत, धीर लोग उसमें बास करते थे धुताङ्गधारी ही उस राज्य के हाकिम थे। दिव्य चक्षु प्राप्त प्रकाश जलाने वाले थे। आगम के पण्डित चौकीदार थे और विमुक्ति प्राप्त थे माली। फूल बेचने वाले आर्यसत्यों के रहस्य को जानने वाले थे तथा शीलवान थे गंधी।

ऐसे अनुपम धर्मराज्य के तथागत राजा थे, जो अपने विशाल एवं अद्‌भुत, आश्चर्यमयी राज्य सम्पत्ति पर अपनत्व नहीं रखते थे, उन्हें कभी भी ऐसा नहीं होता था कि मैं भिक्षु-संघ को धारण करता हूँ और भिक्षुसंघ मेरे उद्देश्य से है। वे जो कुछ भी कहते थे स्पष्ट कहते थे। आचार्य मुष्टि नहीं रखते थे वे बहुजन के हित-सुख का ध्यान रखते हुये ही किसी बात को कहते भी थे।

तथागत का धर्मराज्य भीतर-बाहर सब प्रकार से परिशुद्ध, निर्मल औ एक समान आकर्षक था। वह मधुपिण्डिक (लड्डू) के समान चारों ओर से सुन्दर और माधुर्य पूर्ण था। तथागत ने अपने श्रावकों को धर्मराज्य में भली प्रकार विचरण करने के लिये करुणा, प्रेम, दया और अनुकम्पा से प्रेरित-हृदय हो यह आदेश दिया था—"भिक्षुओ! श्रावकों के हितैषी, अनुकम्पक शास्ता को अनुकम्पा करके जो करना चाहिए, वह तुम्हारे लिये मैंने कर दिया। भिक्षुओ! यह वृक्षमूल हैं, यह सूने घर हैं, ध्यान रत होओ। भिक्षुओ! मत प्रमाद करो, मत पीछे अफसोस करने वाले बनना—यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासन है।"

तथागत के उस अनुपम धर्मराज्य की स्मृति को बार-बार प्रणाम है और प्रणाम है उसके अनुप्रवर्तक तथा सभी नागरिकों को। क्या वह 'तथागत का धर्मराज्य' स्वप्न में भी देखने को मिलेगा ?

भारतीय ज्ञानपीठ काशी के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

शेरो-शायरी

[उर्दू के १५०० शेर और १६० नज्म]

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

प्राचीन और वर्तमान कवियों में लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का संकलन और उर्दू-कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय। हिन्दी में यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है। मूल्य ८)

मुक्तिदूत

श्री वीरेन्द्रकुमार एम. ए.

उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है......मर्मज्ञों ने मुक्तकंठ प्रशंसा की है......। मूल्य ४॥)

ज्ञानोदय [मासिक]

वार्षिक मूल्य ६)

यूपी सरकार से १०००) रु० पुरस्कृत—

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की अमरकृति

पथचिह्न

इसमें लेखक ने अपनी स्वर्गीया बहिन के दिव्य-संस्मरण लिखे हैं। साथ ही साथ साहित्यिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का मर्मस्पर्शी वर्णन भी किया है। पुस्तक मुख्यतः संस्कृति और कला की दिशा में है और युग के आन्तरिक निर्माण की रचनात्मक प्रेरणा देती है। सजिल्द मूल्य २)

केवल ज्ञान प्रश्न चूडामणि

सं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य

इस ज्योतिष ग्रंथ के स्वाध्याय से साधारण पाठक भी ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर सकता है। मूल्य ४)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ४

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नये प्रकाशन

आइ कुड् नॉट सेव बापू—लेखक : डा० जगदीश-चन्द्र जैन। प्रकाशक—जागरण साहित्य मन्दिर, कमच्छा, बनारस। पृष्ठ संख्या २४१, मूल्य ३)।

गांधी जी के विरुद्ध षड्यन्त्र, उनकी निर्मम हत्या और न्यायालय की कानूनी कार्यवाही ही इस पुस्तक का विषय है। लेखक की भाषा अत्यन्त ही सरल एवं सुबोध है। गांधी जी की हत्या के विषय में बहुत सी बातें जो जन-साधारण को ज्ञात नहीं हैं वे सब इस पुस्तक से जानी जा सकती हैं।

लेखक ने संक्षेप में बड़ी योग्यता के साथ उन प्रवृत्तियों का भी विश्लेषण करने का प्रयास किया है जो भारत विभाजन के कारण उत्पन्न हो गई थीं और जिनके फल-स्वरूप नैतिक अव्यवस्था फैल गई थी। भारत की राजनीति आध्यात्मिक तत्व सर्वथा उठ रहे थे। मानवता दानवता परिणत हो रही थी। लोगों के मस्तिष्क और विचार पित हो रहे थे। गाँधी जी को इन दानवीय प्रवृत्तियों को रोकने के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर देना पड़ा। लेखक का विश्वास है कि अधिकारीवर्ग की शिथिलता और असतर्कता के ही कारण बापू को अपनी बलि देनी पड़ी। लेखक ने बड़ी सरलता के साथ यह दिखलाया है कि किस प्रकार एक शरणार्थी युवक इन दानवीय प्रवृत्तियों का शिकार हो जाता है, किस प्रकार उसमें प्रतिशोध और हिंसा की भावना जागृत होती है, किस प्रकार लेखक उससे सारे षड्यन्त्र का हाल मालूम कर देता है और किस प्रकार इस षड्यन्त्र का पता अधिकारीवर्ग को देता है, इत्यादि।

गाँधी जी को इस षड्यन्त्र से बचाने का जो भी प्रयास लेखक ने किया, सब विफल हुआ। यही लेखक के जीवन का सबसे बड़ा पश्चाताप है। लेखक की शैली आडम्बर रहित, सौंदर्य एवं जीवन से ओतप्रोत है।

विज्ञान के चमत्कार—लेखक : प्रिंसिपल छबीदास प्रकाशक : मरुभूमि जीवन ग्रन्थ माला, संगरिया, बीकानेर। पृष्ठ संख्या ९२, मूल्य १)

इस पुस्तक में गुड़ से पेट्रोल, कृत्रिम ऊन, न जलने वाले वस्त्र, बारहमासी गेहूँ, बर्फ के मकान आदि पदार्थ कैसे बनते हैं, इस प्रकार की अनेक ज्ञातव्य बातें बताई गई हैं। सृष्टि के वैचित्र्य की यह वैज्ञानिक व्याख्या पाठकों की ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ मनोरंजन भी करती है।

आर्थिक कहानियाँ—लेखकः ठाकुर देशराज। प्रकाशकः नवजीवन प्रकाशन लि०, संगरिया, बीकानेर। पृष्ठ संख्या ९८ मूल्य-अज्ञात।

अर्थशास्त्र जैसे कठिन विषय को सरल ढंग से कहानी के रूप में लेखक ने सफलता से रखा है। धन और उसका माध्यम, मुद्रा, मापतोल, व्यापार, यातायात, उत्पादन, सहकारिता, बैंक, हुण्डी, आर्थिक विषमता आदि विषयों को कहानियों की बातचीत में लेखक ने बच्चों को समझाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार की सरल, रोचक शैली में लिखी गई पुस्तकें बच्चों के लिए निस्सन्देह बहुत उपयोगी होंगी।

"दक्खिनी हिन्द"

(मद्रास-सरकार की हिन्दुस्तानी मासिक मत्रिका)

- ★ उत्तर और दक्षिण को साथ चलकर ही समृद्ध एवं शक्तिशाली नवभारत का निर्माण करना है।
- ★ "दक्खिनी हिन्द" उत्तर और दक्षिण के बीच एक सांस्कृतिक सेतु है।
- ★ सालाना चंदा : सिर्फ चार रुपए। वी. पी. भेजने का नियम नहीं है। मनी-आर्डर से चंदा पेशगी भेजें।

चंदा भेजने का पता

डाइरेक्टर आफ़ इन्फ़रमेशन & पब्लिसिटी,
फ़ोर्ट सेन्ट जार्ज, मद्रास

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

भारत में बौद्धधर्म का नव-जागरण

बौद्ध धर्म विश्वका अनुपम धर्म है। इससे संसारके बहुसंख्यक प्राणियोंका कल्याण हुआ एवं होता आ रहा है। यद्यपि इसकी जन्मभूमि भारत महादेश है, यह भारतका गौरव है, इससे ही विश्वमें भारत देशकी कीर्ति बढ़ी है, सांस्कृतिक अभ्युत्थान एवं प्रसारमें जिस चमत्कारिक एवं अहिंसक रूपसे इसने अग्र स्थान ग्रहण किया है, यह इतिहासकी एक स्वर्ण-श्रृङ्खला है, भारतका स्वर्ण-युग बौद्ध-युग है, जबतक भारतमें यह व्याप्त रहा तबतक हमारा देश धन धान्यसे सम्पन्न एवं सुखी रहा, वाह्य देशोंका गुरु बना रहा, विदेशी लोग इसके सार्वभौमिक सिद्धान्तसे सदा प्रभावित रहे, किन्तु हमारे देशकेही वर्ग विशेष की जलन एवं विदेशी आक्रमणोंसे—जो वस्तुतः उस जलनकाही फल था—इसके अनुयायियों (बौद्धों) की शक्ति क्षीण हो गई। उसके बाद भारतमें एक ऐसा भी समय देखनेको मिला जबकि भगवान् बुद्ध एवं बौद्धधर्मके जाननेवालोंका एकदम अभाव हो गया। कुछ दिन पूर्वतक लोग बुद्ध-मन्दिरोंमें जाकर पूछा करते थे—"क्या यह बर्माके भगवान् हैं ?"

हमारे देशके पण्डित नामधारियोंने अपनी अज्ञानताका परिचय देनेमें भी उठा न रखा। 'ऐतिहासिक बुद्ध' एवं 'पौराणिक बुद्ध' बनाना स्वार्थ-लोलुप वर्ग-विशेषका ही काम था, किन्तु अब वह समय बीत गया। इस समय जबकि हमारा महादेश साम्प्रदायिक अग्निमें जल रहा है, जाति-भेद, छूआछूत, नीच-ऊँच, स्वेच्छाचारिता, अन्याय, धार्मिक-पाखण्ड, स्वच्छन्दता एवं उच्छृंखलतासे लोग ऊब गये हैं, तब ऐसे समयमें अब इन सब बातोंसे रहित प्रजातन्त्रके सिद्धान्तके अनुकूल, समता एवं मैत्रीके अद्वितीय परिपोषक बौद्धधर्मकी ओरही सबकी दृष्टि जा रही है।

रंगून में भारत के प्रधान मन्त्री नेहरू जी ने भारत में बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में जो यह कहा था कि 'भारत भगवान् बुद्ध के उपदेशों से अत्यन्त प्रभावित है। भारत बौद्ध धर्म के निकटतम सम्बन्ध में आता जा रहा है।' वह अक्षरशः सत्य है। इस समय पीड़ित एवं शोषित वर्गों का ध्यान बौद्ध धर्म की ओर अधिक आकर्षित हो रहा है और यह भी सत्य है कि उन्हें बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी शान्ति न प्राप्त होगी। बौद्ध धर्म का सार्वभौम सिद्धान्त न केवल उनके लिए ही, प्रत्युत मानवमात्र के लिए शान्तिदायक और कल्याणकर है।

इधर भारत के विधि मन्त्री डा० अम्बेदकर के बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाने एवं श्री पी० एन० राजभोज के भाषणों तथा अखिल भारतीय परिगणित जातिसंघ द्वारा बौद्ध धर्म को ग्रहण करने की घोषणा से भारत के बहुत से कट्टरपंथी थर्रा गये हैं एवं बुरा-भला कहने लगे हैं, किन्तु उन्हें जरा हृदय पर हाथ रखकर शान्त मन से विचार करना चाहिए कि बौद्ध धर्म—जो अपनी विशेषताओं के ही कारण विश्व व्याप्त है—भारत का ही अपना धर्म है, जिसे वे अपना' कहते भी हैं, अन्य विदेशी धर्मों की अपेक्षा इसके प्रसार से उन्हें क्षोभ क्यों हो रहा है ? क्या वे इस देश में भारतीय संस्कृति की अपेक्षा वाह्य देशीय संस्कृति का प्रसार ही चाहते हैं ? बौद्ध धर्म ने दर्शन, इतिहास, संस्कृति एवं नैतिक क्षेत्र में भारत की जो सेवा की है, वह किसी धर्म या सम्प्रदाय से नहीं हो पायी है। यह बिल्कुल सत्य है कि यदि बौद्ध धर्म न होता तो भारतीय संस्कृति विश्वकी अन्य संस्कृतियों के समक्ष नगण्य समझी जाती और भारतीय जीवन की मिट्टी पलीद हो गई होती। प्राच्य धर्मों में यही एक ऐसा धर्म है जो सभी सम्प्रदाय, वर्ग, जाति, वंश एवं कुल की मर्यादा को छिन्नभिन्न कर समता की श्रृंखला में बाँधने में समर्थ है। जिस प्रकार समुद्र से मिलते ही सभी सरिताओं का नाम लुप्त हो जाता है एवं सभी के जल का स्वाद भी समान हो जाता है, उसी प्रकार सभी लोग इसे अपनाकर समान हो जाते हैं, उनमें किसी प्रकार का भी भेद नहीं रह जाता। भारत का नैतिक उत्थान यदि हो सकता है तो केवल बौद्ध धर्म के ही अवलम्बन से। बापू ने भी इसीलिए इसे अपना आदर्श माना एवं इसके अहिंसा आदि सिद्धान्तों का प्रचार तथा पालन किया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बौद्ध-जगत्

अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ

अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ गत २६ मई को भारतीय वायुसेना के विमान में श्रीनगर से लेह पहुँचाई गईं और वहां उनका भव्य स्वागत हुआ। लद्दाख के प्रधान लामा श्री कुशक बकुला और भारतीय महाबोधि सभा के कुछ सदस्य उनके साथ साथ गये थे। लेह में २ हजार लामाओं ने इन पवित्र अस्थियों का स्वागत किया। हेमिस गुम्बा के दस वर्षीय शिशु लामा ने प्रार्थना की और परम्परागत बौद्ध विधि से इनकी अभ्यर्थना करके जुलूस के साथ इन्हें शंकर गुम्बा पहुँचाया गया। लद्दाख के लगभग सभी प्रसिद्ध एवं बड़े बौद्ध-विहारों (गुम्बों) में इन अस्थियों का प्रदर्शन हुआ। लद्दाख के बौद्धों ने अपने धार्मिक नृत्य आदि के साथ इनका सर्वत्र स्वागत किया।

लद्दाख से लौटकर पुनः पवित्र अस्थियाँ दिल्ली आयेंगी और वहाँ भी उनका कई दिनों तक स्वागत होगा।

महामन्त्री को चोट—लद्दाख-यात्रा में घोड़े से जाते समय भारतीय महाबोधि सभा के महामंत्री ब्रह्मचारी श्री देवप्रिय वलिसिंह जी अचानक घोड़े से गिर पड़े, जिससे उनके दायें हाथ में काफी चोट आई थी। आप कुछ दिनों तक श्रीनगर के अस्पताल में रहे और वहाँ से स्वस्थ होकर गत २२ जून को वायुयान द्वारा कलकत्ता वापस आ गये। अब आप पूर्ण स्वस्थ हैं।

बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र फ्रांस—फ्रांसीसी विद्वानों, प्रकाशकों और लेखकों ने अपनी सद्भावना के प्रतीकस्वरूप लंका के बौद्धों को तीन सौ पुस्तकें प्रदान की हैं। अधिकांश पुस्तकें बौद्ध धर्म पर लिखी गई हैं और उनमें धर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति तथा कला की नवीनतम गवेषणाओं का उल्लेख है।

यूरोप के देशों में फ्रांस में ही सर्वप्रथम बौद्ध धर्म का अध्ययन आरम्भ किया गया था और १८७० में यूजिन बर्नाफ का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था। आज पेरिस विश्वविद्यालय पश्चिम में बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र है।

परिगणित जाति वाले बौद्ध धर्म अपनायेंगे—गत ११ जून को मद्रास में होने वाले "तामिलनाद परिगणित जाति सम्मेलन" में सभापतिपद से भाषण करते हुए अखिल भारतीय परिगणित जाति-संघ के महामन्त्री श्री पी० एन० राजभोज ने कहा कि केवल मन्दिरों और होटलों में प्रवेश की समानता से कुछ न होगा, हम हिन्दू जाति के अन्य वर्गों के समान ही राजनीतिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं। हमें सरकार में उचित अनुपात में प्रतिनिधित्व चाहिए। हिन्दू धर्म के पास जनता के लिए कोई कार्यक्रम नहीं है, अतः हम भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार करेंगे क्योंकि उसी में हमारा हित है जब तक सामाजिक भेदभाव जारी है तब तक नये संविधान में की गयी व्यवस्थाओं से कुछ न होगा।

सदियों से हम अछूत कहकर अनगिनत सामाजिक असमानताओं के शिकार रहे हैं और आज भी हमारे साथ वही व्यवहार हो रहा है। अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में हुए नेहरू-लियाकत समझौते की चर्चा करते हुए श्री राजभोज ने कहा कि उससे पाकिस्तान की परिगणित जातियों का कोई लाभ नहीं हुआ। इतनी बड़ी संख्या में वहां रहते हुए भी उन्हें उचित प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है।

एक अन्य नेता ने भी भाषण करते हुए कहा कि यदि आज हम लोग बौद्ध धर्म की बात करते हैं तो इसका कारण यह है कि हमें हिन्दू भाइयों से बहुत कष्ट सहने पड़े हैं। अतः यदि शीघ्र इस सामाजिक बुराई को दूर करने की रचनात्मक चेष्टा की गई तो हमें बौद्ध धर्म के अतिरिक्त कहीं और शरण न चाहिए।

(१०२ पृष्ठ का शेषांश)

भावना सहज रूप में परिलक्षित होती है। अस्तु, इससे बढ़कर उनकी सफलता के और क्या चिह्न हो सकते। अन्त में हम यही कहेंगे कि अतीत के अध्याय में यदि यह लिखा है कि अशोक ने बुद्ध धर्म के प्रचार में कोई भी कसर नहीं रक्खी तो वर्तमान के इन पृष्ठों में हमें यह लिखना होगा कि श्री नोसु ने भित्ति-चित्र की कला से भगवान् बुद्ध के प्रति प्रेम भावना का मानव हृदय पर कम आकर्षण नहीं रक्खा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उत्तर प्रदेश के परिगणित जातियों की बौद्ध होने की उत्सुकता—उत्तर प्रदेश के १ करोड़ २२ लाख हरिजनों के बौद्ध हो जाने की बात अभी हाल ही में श्री तिलकचन्द कुरील ने कही है। कुरील महाशय उत्तर प्रदेश के परिगणित जाति-संघ के अध्यक्ष हैं। उन्होंने कहा है कि इस राज्य के सवाकरोड़ हरिजन बौद्ध धर्म की दीक्षा ले लेंगे। हम सभी बौद्ध धर्म की दीक्षा के लिए उत्सुक हैं।

पं० नेहरू के जीवन पर बुद्ध धर्म का प्रभाव—गत २१ जून को पं० जवाहरलाल नेहरू ने रंगून के एक सीज में भाषण करते हुए कहा—'भारत भगवान् बुद्ध के उपदेशों से अत्यन्त प्रभावित है। भारत बुद्ध धर्म के निकटतम सम्बन्ध में आता जा रहा है। मैं स्वयं अपने बाल्यकाल से सिद्धार्थ के जीवन तथा उनकी शिक्षाओं से प्रेरणा पाता रहा हूँ।''

कंबोडिया के संघराज की तीर्थ-यात्रा—कंबोडिया के संघराज ने गत जून मास में लंका के अखिल विश्व बौद्ध सम्मेलन समाप्त होने पर भारत के बौद्ध तीर्थ स्थानों की यात्रा की। उन्होंने बुद्धगया, राजगृह, नालंदा एवं सारनाथ के दर्शन कर वायुयान द्वारा काशी से कलकत्ते के लिए प्रस्थान कर दिया। गर्मी के कारण अन्य तीर्थ स्थानों की यात्रा सम्भव न हुई।

सिंगापुर की चीनी-पार्टी भी तीर्थयात्रा के लिए आई थी। सब तीर्थस्थानों की यात्रा कर २७ जून को सारनाथ से सिंगापुर के लिए प्रस्थान की।

शांतिनिकेतन में बर्मी बौद्ध अनुसन्धान केन्द्र—शान्तिनिकेतन में बर्मा देशीय भिक्षु लोगों के अध्ययन एवं अनुसन्धान सम्बन्धी एक केन्द्र खोलने का आयोजन हो रहा है। बर्मा के एक प्रमुख बर्मी पत्र के संचालक यू० आंगमिन ने शान्तिनिकेतन में एक 'बर्मी-बौद्ध विहार' के निर्माणार्थ तीस हजार रुपये भी प्रदान किया है। इस समय शान्ति निकेतन में कई भिक्षु इस योजना को सफल बनाने में लगे हैं।

भिक्षु संघरत्नजी की बर्मा-यात्रा—भारतीय महाबोधि सभा के उपमन्त्री भिक्षु संघरत्नजी गत जनवरी मास में पवित्र अस्थियों के साथ बर्मा गये। आपको बर्मा की संस्कृति, एवं रहन-सहन ने विशेष रूपसे आकर्षित किया। आप पवित्र अस्थियों के वापस चले आने पर भी वहीं रह गये और एक मास ध्यान-भावना में व्यतीत किये। आपको बर्मा में जो सबसे आकर्षक चीज मिली वह थी बौद्ध लोगों की श्रद्धा एवं वहाँ के भिक्षु लोगों की ध्यान-भावना की पद्धति। यद्यपि आप इस समय बर्मा से सारनाथ वापस आ गये हैं, किन्तु पुनः बर्मा जाने की आपकी जिज्ञासा बनी ही हुई है।

विश्व बौद्ध धर्म की ओर—हाल ही में इटली के भिक्षु लोकनाथ ने लंका की एक सभा में भाषण देते हुए कहा है कि अमेरिका-वासियों की दृष्टि बौद्ध धर्म की ओर लगी है, वे वैज्ञानिक बौद्ध धर्म से अधिक प्रभावित हैं। उन्होंने आगे 'मैं बौद्धभिक्षु क्यों हुआ ?' पर बोलते हुए कहा कि यद्यपि मेरा जन्म कैथोलिक धर्म में हुआ था, किन्तु भगवान् बुद्ध के उपदेशों का मेरे जीवन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मुझे भिक्षु हो जाना पड़ा। अब सारा विश्व बौद्ध धर्म की ओर आ रहा है। वह समय दूर नहीं है कि हमलोग सम्पूर्ण विश्व में बौद्ध धर्म की महान् प्रभुता देखेंगे।''

कलकत्ता में ज्येष्ठ महोत्सव—गत ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को कलकत्ता के धर्मराजिक विहार में स्थानीय बौद्धों द्वारा बड़ी धूमधाम के साथ ज्येष्ठ महोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर भगवान् बुद्ध की पुष्प, दीप, धूप आदि से पूजा की गई और आगत सभी बौद्धों को पंचशील-अष्टशील आदि दिया गया। भीड़ काफी इकट्ठी हो गई थी। सन्ध्या समय भदन्त एम० संघरत्नजी ने एक भाषण दिया तथा सबका स्वागत किया। उत्सव में चीनी, सिंहली, बर्मी, नेपाली और बंगाली बौद्ध सम्मिलित हुये थे। उक्त अवसर पर श्री जे० एन० चौधुरी ने इस पवित्र दिन की महत्ता को बतलाते हुए कहा—"इस पवित्र दिन महामहेन्द्र स्थविर ने लंका में बौद्ध धर्मका प्रथम उपदेश दिया था और उसे बुद्ध शासन का अधिकारी बनाया था। आज २२५७ वर्ष हुये कि तब से लेकर आज तक वह परम कल्याणकारी बुद्ध धर्म लंका का जातीय धर्म बना हुआ है।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उत्सव में सिंगापुर से आये हुए चीनी बौद्ध भी सम्मिलित हुए थे। पीनांग बौद्ध समिति के प्रधान श्री च्योम स्योगं ने भी बुद्ध धर्म के सिद्धांतों पर चीनी भाषा में प्रकाश डाला।

बौद्ध धर्म में दीक्षा—गत २९ जून को धर्मराजिक विहार कलकत्ता में बहुसंख्यक भिक्षु लोगों के समक्ष हबड़ा के श्री कुमुदविहारी राय तथा नदिया के श्री देवेन्द्र नाथ विश्वास ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। भारतीय महाबोधि सभा के उपमन्त्री भदन्त एम० संघरत्नजी ने उन्हें पंचशील देकर बौद्ध धर्म में दीक्षित किया।

अखिल विश्व बौद्ध सम्मेलन—लंका में गत २६ मई से ६ जून तक संसार के सभी बौद्ध राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का एक महासम्मेलन हुआ, जिसकी तैयारी कई वर्षों से हो रही थी, जो अपने ढंग का विचित्र और अभूतपूर्व सम्मेलन था। इस सम्मेलन में चीन, जापान, स्याम, बर्मा, काम्बोज, वीयतनाम, फ्रांस, इंगलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, फीनलैण्ड, जर्मनी, जेकोस्लोवाकिया, भारत, पाकिस्तान, नेपाल, तिब्बत, भूटान, सिक्किम, हवाई द्वीप, मलाया, अमेरिका आदि उन्तीस राष्ट्रों के प्रतिनिधि भाग लिए थे। सबके रहने एवं भोजन आदि का प्रबन्ध भी बड़े ही सुन्दर ढंग से हुआ था। लंका के बौद्ध गृहस्थों ने सारा प्रबन्ध किया था। एक एक मण्डल एक-एक स्थान पर रहता था और उसकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति प्रबन्धक करते थे।

सर्वप्रथम २५ मई को महनुवर (कैण्डी) में जुलूस के साथ उत्सव मनाया गया एवं दन्तधातु की पूजा की गई। सभी आगन्तुकों को कार्यकारिणी समिति की ओर से दोपहर में भोजन कराया गया। अपराह्न में ३ बजे दन्तधातु मन्दिर (दळदा मालिगाव) में सभा प्रारम्भ हुई। आरम्भ में श्री प्रियरत्न नायक स्थविर ने पालि भाषा में सबका स्वागत किया। तदुपरान्त असगिरि विहार के महानायक स्थविर का भाषण हुआ। उन्होंने अपने भाषण में लंका और बौद्ध धर्म की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए आधुनिक युग में प्रचार कार्य की आवश्यकता की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया। तत्पश्चात् बर्मा के ऊ चान् टुन्, चीन के भिक्षु फाफों, भारत के श्री अरविन्द बरुआ और आनन्द कौसल्यायन, इटली के भिक्षु लोकनाथ और जापान के श्रीरीरी नाकायामा के भाषण हुए। लंका के वाणिज्य मंत्री श्री एच० डब्ल्यू० अमरसूरिय ने सम्पूर्ण उपस्थित लोगों को धन्यवाद दिया।

सन्ध्या समय चाय पीने के पश्चात् सब लोगों ने कोलम्बो के लिए प्रस्थान कर दिया।

इसी दिन २६ मई को कोलम्बो के रेस-मैदान में लंका के प्रधान मंत्री श्री डी० एस० सेनानायक की अध्यक्षता में सम्मेलन का कार्य प्रारम्भ हुआ। उक्त अवसर पर काषाय वस्त्रों से सुशोभित हजारों भिक्षु उपस्थित थे। पहले भिक्षु लोगों ने परित्राण पाठ किया। तदुपरान्त विद्यालंकार परिवेण के प्रधान भिक्षु ने उपदेश दिया। लंका के स्वास्थ्य मंत्री श्री बण्डार नायक ने स्वागत-भाषण किया और महाबोधि सभा के अध्यक्ष परवाहर श्री वाजिरञान महास्थविर ने समस्त लंका के भिक्षु संघ की ओर से आगत प्रतिनिधियों को धन्यवाद दिया। तत्पश्चात् विभिन्न देशों से आये सन्देश पढ़कर सुनाये गये। उक्त अवसर पर लंका [illegible]धारे भारत के विधिमंत्री डा० भीमराव अम्बेडकर ने कहा—"इस समय भारत में प्रजातन्त्रवादी धर्म की अत्यन्त आवश्यकता है और बौद्ध धर्म बिल्कुल ही प्रजातन्त्रवादी धर्म है, अतएव यह भारत के लिए अत्यन्त ही उपयुक्त धर्म है।"

इस सम्मेलन में अनेक प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए और छः उपसमितियों का निर्माण हुआ जो ग्रंथ प्रकाशन, प्रचार, विपत्ति-निवारण, धर्म प्रचार, धर्मदूत-प्रेषण आदि कार्य करेंगी। आगन्तुक सभी प्रतिनिधियों को सीमा बन्धन, प्रदीप पूजा, भिक्षु-दीक्षा आदि लंका के सभी चारित्र दिखलाए गए एवं अनुराधपुर, पोळोन्नरुव, सीहगिरि आदि लंका के सभी प्रधान तीर्थ एवं दर्शनीय स्थानों का दर्शन कराया गया। यह विचित्र एवं आश्चर्यजनक सम्मेलन शान्ति पूर्वक समाप्त हुआ।

लंदन में बौद्ध विहार की स्थापना—लन्दन में शीघ्र ही एक बौद्ध विहार की स्थापना होगी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जिसमें भगवान् बुद्ध की अस्थियाँ रखी जायेंगी। लन्दन विहार-समिति के उपाध्यक्ष ने अखिल विश्व बौद्ध सम्मेलन में उस विहार की स्थापना की योजना की प्रगति का वर्णन किया। आपने कहा कि लंका के प्रधान मंत्री श्री सेनानायक ने मुझसे कहा कि जहाँ तक हो सकेगा वे ब्रिटेन की सरकार से विहार स्थापना के लिए जमीन दिलवायेंगे।

कश्मीर में बौद्ध विहार—७ मई को लद्दाख के बड़े लामा श्री कुशक बकुल ने कश्मीर के प्रधान मंत्री शेख अब्दुल्ला से भेंट की, जिसमें उन्होंने श्रीनगर में एक विहार बनाने के लिए प्रार्थना की। शेख अब्दुल्ला ने झेलम नदी के तट पर सुन्दर भूमि देने का वचन दिया है। कहा जाता है कि धन एकत्र होने पर मठ-निर्माण का कार्य आरम्भ हो जायगा।

वर्मा द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार—वर्मा बौद्ध धर्म के प्रचार की योजना कार्यान्वित करने जा रहा है। बौद्ध संस्थाओं की अखिल बर्मा परिषद् और महासंघ ने बर्मा के पहाड़ी क्षेत्रों में स्थानीय नेताओं की सहायता से बौद्ध धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया है। स्याम तथा कलकत्ता के लिए शिष्टमण्डल भेजे गये हैं। स्याम से भी एक शिष्ट मण्डल शीघ्र ही बर्मा पहुँचेगा।

आसाम का चार अहुँ परिवार बौद्ध बना—अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों के देशांपाणी में पहुँचने पर आसाम का चार अहुँ परिवार बुद्ध धर्म से प्रभावित होकर बौद्ध बन गया। बौद्ध हुए लोगों में अहुँ जाति के प्रसिद्ध नेता श्री नाथूराम गोगोई, अखिल आसाम अहुँ जाति के सभापति श्री दुर्गानाथ गोगोई, उपप्रधान मन्त्री तथा मेन्दा-री हाई स्कूल के प्रधान अध्यापक श्री जयचन्द्र हागोहसन उल्लेखनीय हैं।

बौद्ध दीक्षा लेने के पश्चात् शांति-निकेतन के चीन-भवन के प्रो० थान यून सान, तथा महाबोधि सभा के महामन्त्री श्री देवप्रियवलि सिंह ने उन लोगों को हार्दिक धन्यवाद दिया एवं उनकी मंगल कामना की।

स्याम द्वारा बुद्ध-मूर्ति का दान—वैशाख पूर्णिमा के शुभ अवसर पर स्याम की बौद्ध समिति द्वारा कलकत्ता के प्रसिद्ध धर्माङ्कुर विहार को एक भगवान् बुद्ध की भव्य मूर्ति प्रदान की गई, जिसकी स्थापना उसी दिन उक्त विहार में हुई।

बौद्ध विहारों के संरक्षण के लिए भारत द्वारा सहायता—भारत सरकार ने हिन्देशिया के बौद्ध-विहारों के संरक्षण एवं सुधार के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की है। विचार विमर्श एवं समुचित देख-रेख के लिए भारत ने एक पुरातत्वज्ञ को भी भेजने का वचन दिया है। भारत सरकार यह सब इसलिए करती है कि हिन्देशिया के स्मारक एवं अवशेषों की बहुत कुछ भारतीय इतिहास से लगाव है। इससे दोनों प्रजातंत्र देशों का मैत्री-सम्बन्ध दृढ़ होगा।

विश्व की अत्यन्त सुन्दर बुद्ध-मूर्ति

जोग्याकार्ता,

१२ जून। राष्ट्रपति सुकर्नो आज नेहरूजी को बाहर के रमणीय स्थानों को दिखाने के लिए प्रसिद्ध स्मारक मेण्डुट और बोरोबूदुर लिवा गये। वहाँ पर नेहरूजी ने तीन मूर्तियों को आध घण्टे तक निरीक्षण किया। मध्य की मूर्ति गौतम बुद्ध की है। यह मूर्ति एक ही ठोस पत्थर की बनी है।

राष्ट्रपति सुकर्नो ने कहा कि यह मूर्ति विश्व में अत्यन्त सुन्दर मूर्ति है।

पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर जनरल डा० चक्रवर्ती ने जो नेहरूजी के साथ थे, बताया कि यह मूर्ति बुद्ध के 'धर्मचक्र मुद्रा' की है। इस मूर्ति के दोनों ओर दो बोधिसत्व हैं।

नेहरूजी भगवान् बुद्ध की शान्त मुद्रा की प्रशंसा करते रहे। आप ने सौगज की दूरी पर स्थित मन्दिर और आधुनिक ध्वंसावशेष को देखा जो डचों की पुलिस काररवाई के समय ध्वस्त किये गये थे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत का सर्वोत्कृष्ट सचित्र मासिक

वार्षिक मूल्य ६॥), नमूने की प्रति दस आने।

"कृषि-संसार"

के

प्रसिद्ध विशेषाङ्क यह हैं:—

गन्ना विशेषांक १॥) अधिक उत्पादन विशेषाङ्क १)

१. कृषि पर वैज्ञानिक तथा सुन्दर, खोजपूर्ण लेख पढ़िये।
२. देश विदेशों के कृषि समाचार पढ़िये।
३. देश की कृषि सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन कीजिये।
४. देश के किसानों का प्रोग्राम पढ़िये।
५. नई २ खोजों और सारगर्भित विचारों का अध्ययन कीजिये।
६. आकर्षक, सुन्दर चित्रों तथा रोचक, सरस कविताओं का आस्वादन कीजिये।
७. कृषि संसार के प्रकाशन विभाग से कृषि सम्बन्धी नई वैज्ञानिक पुस्तकों की जानकारी प्राप्त कीजिये।

पता—"कृषि-संसार" कार्यालय, बिजनौर (यू० पी०)

सचित्र मासिक पत्रिका—

'इतिहास' का नया आयोजन

बृहत्तर भारत विशेषांक

अगस्त १९५० में सजधज से प्रकाशित होगा—

पृष्ठ संख्या १२८—अनेक चित्रों से सुशोभित, मूल्य १)

विशेषांक के लिए डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, क्यूरेटर, नेशनल म्यूजियम आफ इंडिया, डा. बी. सी. छाबरा, गवर्नमेन्ट एपिग्राफिस्ट फार इंडिया, डा० रघुवीर, भूतपूर्व सदस्य भारतीय संसद; डा० लोकेशचन्द्र डी० लिट्०; प्रो० दशरथ शर्मा एम० ए० लिट्; प्रो० अम्बाप्रसाद एम० ए०; प्रो० बलराज मधोक एम० ए०; स्वामी सत्यदेव परिव्राजक; श्री० नरेन्द्रकुमार एम ए० बी० टी०; सम्पा० (वेद सन्देश) डा० आर० एस० अग्रवाल—प्रभृति भारत प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वानों के विशेष लेख प्राप्त हो चुके हैं।

वार्षिक शुल्क ५) रु०

भेजकर आप किसी भी अंक से ग्राहक बन सकते हैं। शैक्षणिक संस्था, स्कूल, कालेज, लायब्रेरी आदि से रियायती रूप में वार्षिक शुल्क ४) रु० होगा।

यह अंक विज्ञापनदाताओं के लिए स्वर्ण अवसर है। विशेष जानकारी के लिए अभिकर्ता एवं विज्ञापनदाता पत्र व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—

इतिहास कार्यालय, कटरा बड़ियान, दिल्ली।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"धर्मदूत"

का

"अखिल विश्व बौद्ध संस्कृति अंक"

हम बुद्धाब्द २५०० (सन् १९५६) के शुभावसर पर "धर्मदूत" का एक सुन्दर और विशाल अंक प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं, जिसमें विश्व के सभी देशों के बौद्धों का परिचय रहेगा। सब देशों के बौद्धों की कला, पुरातत्व, इतिहास, भेद, आचरण, वंश परम्परा, दार्शनिक-गवेषणा, प्राचीन और अर्वाचीन सभी प्रकार की अवस्था के वर्णन के साथ बौद्ध धर्म के पालि और संस्कृत के अतिरिक्त सर्वदेशीय बौद्धों की भाषाओं के ग्रन्थों का भी परिचय रहेगा।

स्थविरवाद के साथ सभी निकायों के धार्मिक सम्बन्ध तथा दार्शनिक विशेषताओं की गवेषणात्मक व्याख्या रहेगी। यह अंक हरेक बौद्ध देशों के जातीय एवं धार्मिक चित्रों, रीति-रिवाजों एवं विभिन्न अन्वेषणात्मक बातों से परिपूर्ण रहेगा।

हमारे ग्रन्थों में बुद्धाब्द २५०० का बड़ा महत्व वर्णित है। यही वह समय है जब से पुनः बौद्ध धर्म का बिगुल संसार में बड़े वेग से बजेगा और फिर एक बार सारा जगत बौद्ध धर्म की शरण आयेगा। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस अवसर पर अपना एक सुन्दर कार्यक्रम बनायें। उक्त कार्य के लिये हमें कम से कम एक लाख रुपये की आवश्यकता है। हम इस भव्य एवं पुनीत आयोजन की सफलता के लिये देशी तथा विदेशी (विशेष कर हिन्दी भाषा-भाषी) धार्मिक, संस्कृति-प्रेमी एवं दानी व्यक्तियों से निवेदन करते हैं कि वे मुक्तहस्त से हमारी सहायता करें।

दाताओं का नाम 'धर्मदूत' में सदा प्रकाशित होता रहेगा। थोड़ी या बहुत जो भी रकम सहर्ष स्वीकार की जायेगी।

निवेदक—

व्यवस्थापक—"धर्मदूत"

मण्डल की ताज़ी पुस्तकें

पठनीय, मननीय और संग्रहणीय

१. **पन्द्रह अगस्त के बाद**—महात्मा गांधी के पन्द्रह अगस्त १९४७ से अन्तिम लेख तक का संग्रह। आज़ादी तथा उससे पैदा हुई समस्याओं पर सम्यक् विचार। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ २४०, मूल्य २)

२. **धर्मनीति**—जीवन नीति और उसके पालन सम्बन्धी नियम उपनियम का विवेचन करने-वाली महात्मा गांधी की चार पुस्तकों का संग्रह। बढ़िया छपाई व कपड़े की जिल्द, मूल्य २)

३. **बापू की कारावास-कहानी**—लेखिका डा० सुशीला नैयर। आगाख़ाँ महल में बापू के बन्दी-जीवन के इक्कीस महीनों का हृदय-स्पर्शी इतिहास, २८ चित्र, सुन्दर छपाई, पृष्ठ ४८०, मूल्य १०)

४. **सर्वोदय विचार**—आचार्य विनोबा : सर्वोदय और उसके सिद्धान्तों का सूक्ष्म विश्लेषण, १॥)

५. **पंचदशी**—भारत के चिन्तकों और साहित्यकारों के पन्द्रह उच्चकोटिके निबन्धों का संग्रह, १॥)

मण्डल से प्रकाशित 'जीवन साहित्य' के ग्राहक बनने से ये तथा मण्डल की अन्य पुस्तकें आपको रियायती मूल्य में मिलेंगी। पत्र का वार्षिक मूल्य ४)।

व्यवस्थापक—**सस्ता साहित्य मण्डल**

नयी दिल्ली

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय-सूची

विषय

हिन्दी साप्ताहिक पत्र :—

'श्री वेंकटेश्वर समाचार' की सर्व प्रियता का रहस्य

- ❀ अर्द्धशताब्दी से अधिक की राष्ट्र सेवाएँ
- ❀ उच्चकोटि की पाठ्य सामग्री
- ❀ आकर्षक व सुन्दर छपाई
- ❀ ओजस्वी निर्भीक विचार
- ❀ अटल व निष्पक्ष नीति
- ❀ राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्राधान्य
- ❀ सत्य सनातनधर्म पर पूर्ण आस्था
- ❀ स्वतः का राजनैतिक दृष्टिकोण
- ❀ विविध विषय से विभूषित विशेषांक
- ❀ लेखकों, पाठकों व विज्ञापनदाताओं से सीधा सम्पर्क

वार्षिक मूल्य

स्वदेश में ५) रुपए । एक प्रति ‑)॥ आना । विदेश में १० शिलिंग

स्थानः— **श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई**

जो आज से प्रायः ८० वर्ष पूर्व प्रकाशनकार्य द्वारा
संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य की सेवा करने में संलग्न है
वेद, वेदान्त, न्याय, पुराण, उपपुराण, कोष, धर्मशास्त्र, साहित्य कर्मकाण्ड, इतिहास,
व्याकरण, राजनीति अलंकार, अनुष्ठानादि अनेक विषयों की
पुस्तकें हमसे लीजिए।

विज्ञापन रेट के लिए। लिखिए वृहद् सूचीपत्र मँगा देखिए

खेमराज श्रीकृष्णदास, 'श्रीवेंकटेश्वर' स्टीम प्रेस बवम्ई ४

शुभ सूचना

आगामी १७ अप्रैल से 'ग्रहवाणी' साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होगी। वार्षिक मूल्य ज्यों त्यों ५) रहेगा, एक अङ्क का =) मात्र। पता—

विजयकुमार शुक्ल
व्यवस्थापक ग्रहवाणी
दारागंज, प्रयाग।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनयपिटक)

"भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोकपर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त – सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १४ | सारनाथ, मार्च बु० सं० २४९३ / ई० सं० १९५० | अङ्क १२

बुद्धवचनामृत

वृद्ध-जनों की सेवा

"भिक्षुओ चाहे क्षत्रिय हों, चाहे ब्राह्मण; चाहे वैश्य हों, चाहे शूद्र; चाहे गृहस्थ हों या प्रव्रजित; चाहे पशु योनि के प्राणी हों—जो कोई भी प्राणी अपने से बड़े जनों की पूजा करने के कर्म में दक्ष होते हैं, गुणवान होकर वृद्धजनों की पूजा करते हैं, वे इस जन्म में—'बड़ों का आदर करनेवाला है'—इस प्रकार की प्रशंसा को प्राप्त करते हैं और शरीर-भेद होने पर स्वर्ग लोक में उत्पन्न होते हैं।"

ये वद्धमपचायन्ति नरा धम्मस्स कोविदा।
दिट्ठेव धम्मे पासंसा सम्पराये च सुग्गति॥

जो धर्म के ज्ञाता नर वृद्धों की सेवा करते हैं, वे इस जन्म में प्रशंसा तथा परलोक में सुगति के भागी होते हैं।

अभिवादनसीलिस्स निच्चं वद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं॥

जो अभिवादनशील है, जो सदा वृद्धों की सेवा करनेवाला है, उसकी चार बातें बढ़ती हैं—आयु, वर्ण, सुख और बल।

पुण्य की अभिलाषा से यदि वर्ष भर लोक के सभी यज्ञ और हवन करे तो भी ऋजुभूत सन्त को किये एक प्रणाम का चौथा हिस्सा फल भी नहीं प्राप्त होता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय-सूची

भगवान् बु

रिक प्रियदर्शी सु

एम० ए०

भगवान् गौतम बुद्ध ने जिस महान् आदर्श के सम्मुख उपस्थित कर धर्म एवं समाज को शु चाहा था, यह मूर्ति निस्सन्देह उन्हीं महान् आ प्रतीक है। शान्ति तथा सौम्यता की प्रतीक इस उज्ज्वल मूर्ति के प्रत्येक अङ्ग से वर्तमान् युद्ध-प्रिय और धन-ऐश्वर्य-लोलुप जगत के भौतिक सुख साधन प्राप्ति के आदर्शों से सर्वथा विपरीत शान्ति, अहिंसा और त्याग का सन्देश टपकता है। चित्रकारों एवं कलाकारों ने भी इस मूर्ति को शान्त और सौम्य रूप देने में बड़ी ही सतर्कता से काम लिया है। एक शब्द में यह मूर्ति मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा की ही प्रतिमूर्ति हैं। ये वही भाव हैं, जिनको मनुष्य तपस्या और साधना द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा करता है। अधिक से अधिक व्यक्तिगत सुविधा, इन्द्रिय-सुख प्रदान करने वाली वस्तुओं के निरन्तर अन्वेषण तथा शक्ति हीन एवं निर्बलों के क्रूर शोषण के पीछे पागल आधुनिक जगत को ये भाव व्यर्थ और निरर्थक प्रतीत होंगे।

वैज्ञानिक पुनर्गठन

मानव-जीवन को सुखमय बनाने के लिए वर्तमान् मानव समाज की पुनर्रचना नवीन मनोवैज्ञानिक पद्धति से करनी होगी। ऐहिक सुख प्राप्त करने की चेष्टा को सर्वथा दूसरी ही ओर मोड़ना पड़ेगा। बाहरी शान्ति चित्त की शान्ति की ही प्रतीक है। आज से पचीस शताब्दी पूर्व उस महाप्रभु ने अपनी साधना से आविष्कार कर जो उपदेश मानव को दिया था, उसका मनन करने पर इस विषय पर पूर्ण प्रकाश पड़ेगा। उनकी वे शिक्षायें आधुनिक जगत की जटिल समस्याओं और मानव मात्र के दुःख का निवारण करने में आज भी उसी प्रकार सहायक हो सकती हैं। भगवान् बुद्ध ने मानव को दुःख के मूल कारण को अच्छी तरह पहचाना था। उन्होंने सत्य का दर्शन किया था। उनके वे विश्लेषण आज अकाट्य हैं।

समय समय पर मानव मात्र को दुःख के असीम गर्त ढकेल देने वाले युद्धों के मूल कारणों पर यदि हम विचार करते हैं तो देखते हैं कि इन युद्धों की जड़ में व्यक्तिगत सुख-सुविधा, धन-ऐश्वर्य एवं शक्ति प्राप्त करने की एक असीम तृष्णा छिपी हुई रहती है। तृष्णा और लोभ से रहित संसार में युद्ध की सम्भावना ही नहीं रहती। हम लोगों की अविद्या, वास्तविक सत्य से अनभिज्ञता एवं मिथ्या धारणाओं के कारण ही तृष्णा और लोभ उत्पन्न होते हैं। यदि हम इस परिवर्तनशील संसार की प्रत्येक वस्तु की अनित्यता को ठीक ठीक समझ सकें तो हमें विश्वास है कि हम तृष्णा और लोभ के वशीभूत हो किसी अनित्य वस्तु के पीछे पागल नहीं हो उठेंगे। क्योंकि तब हम अपनी इच्छित वस्तु के क्षणिक अस्तित्व से भली भाँति परिचित रहेंगे। हमारी इच्छित वस्तु जिसके पीछे हम पागल हैं दो दिन में ही नष्ट हो जायेगी। हिटलर का स्वप्न उसकी मृगतृष्णा के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। जो मृगतृष्णा अब वीरान जर्मनी के ध्वंसावशेष के नीचे विलीन हो गई है।

समाज के पुनर्गठन का प्रारम्भ समुचित मनोवैज्ञानिक पद्धति से करना होगा। बुद्धि को साधना द्वारा इतना तीक्ष्ण बनाना होगा कि वह सहज में ही झूठी सुन्दरता और इन्द्रिय सुख के छद्म वेश को छेदकर उसकी अनित्यता और वास्तविकता का दर्शन कर सके। अपनी सहज उज्ज्वल बुद्धि द्वारा अपनी इच्छाओं और कार्यों को गलत रास्ते से हटाकर सही और उचित रास्ते पर मोड़ना होगा। भगवान् बुद्ध द्वारा बताये हुए आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग-सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि के आधार पर व्यक्ति सांसारिक दुःखों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"पालि भाषा का ज्ञान हमारी [illegible] हिन्दी के साथ एक अति [illegible] पाठ [illegible] कराकर उसके हृदय से स्वार्थ [illegible] चाहिए। शिक्षा का चरम उद्देश्य-- [illegible] बुद्धि को इतना तीक्ष्ण बना देना, जिससे कि [illegible] अनित्यता और वास्तविकता का ठीक-ठीक दर्शन कर [illegible]

बौद्ध धर्म, जो अन्य धर्मों की भाँति व्यक्तिगत ईश्वर देवी और देवताओं में विश्वास नहीं करता, वर्तमान युग [illegible] एक युक्तिसंगत सरल और आदर्श धर्म का दान दे सकता है जिसे सहज में ही समझा और अनुसरण किया जा सकता है। बौद्धधर्म रूढ़िवादिता में बिल्कुल विश्वास नहीं रखता। इसके अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करने पर भी यह अन्य रूढ़िवादी धर्मों में विश्वास रखनेवालों के प्रति द्वेष या हिंसा का भाव नहीं रखता।

मध्यम-मार्ग

क्षणिक ऐहिक और इन्द्रिय सुख प्राप्त करने की असीम लालसा और लोभ के कारण ही सांसारिक दुःख, विशेषतया पूँजीवाद और युद्ध जनित उत्पन्न संकटों का प्रादुर्भाव होता है। अत्यधिक वस्तुओं का उत्पादन, सञ्चय और इनकी खपत के लिए विदेशी बाजारों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्ष--दुःख के इन सभी मूल कारणों का अन्त, सात्विक जीवन एवं सांसारिक वस्तुओं की अनित्यता को ध्यान में रखकर किया जा सकता है। यहीं हमारे मध्यम मार्ग की महत्ता और आवश्यकता दिखाई पड़ती है। उपवास और कठिन साधनाओं द्वारा सांसारिक दुःखों से मुक्ति प्राप्त करने के हेतु-जीवन को अन्त कर देने का अति कष्टमय मार्ग वर्तमान युग में जन साधारण पर अपना कोई विशेष प्रभाव नहीं रखता। अतएव इन कठिन साधनाओं से बचना कोई कठिन कार्य नहीं है। हाँ, ऐहिक एवं इन्द्रिय सुख भोगने की असीम लालसा--दूसरे अति से बचने को समस्या अवश्य ही कठिन है। परन्तु इस वर्तमान युग में भी महात्मा गाँधी ने सात्विक जीवन व्यतीत कर संसार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है, तथा उनकी सत्य और अहिंसा से विभिन्न देशों के असंख्य व्यक्ति प्रभावित हुए हैं। यह देखकर ऐसा कहा जा सकता है कि सुख भोगने की जो विनाशकारी धारा बह चली [illegible] विचारों से एक प्रबल आघात पहुँचा है एवं [illegible] निकट भविष्य में ही मानव की विचारधारा का [illegible] पलटकर एक बार फिर सत्य की ओर हो जायगा। [illegible] स्वार्थपरता और सुख प्राप्ति की चेष्टा के कटु प्रतिफल [illegible] विश्व, यदि मध्यम मार्ग की ओर आकृष्ट हो तो [illegible] आश्चर्य नहीं। अतएव सात्विक जीवन व्यतीत करने [illegible] आज संगठित एवं मनोवैज्ञानिक तौर पर आन्दो[illegible] [illegible]ने की आवश्यकता है। आज सात्विक जीवन ही [illegible] विश्व को यथार्थ शान्ति प्रदान कर सकता है।

हिंसा और अहिंसा

विश्व में प्रचलित धर्मों में एक बौद्ध धर्म ही प्राणिमात्र को पूर्ण अहिंसा का संदेश देता है। यह जीवहिंसा और क्रोध करने का सर्वथा विरोधी है। यह उचित अवसरों पर भी क्रोध दर्शाने को मना करता है। क्रोध के विषय में तो ईसाई धर्म से बहुत आगे बढ़कर है जो उचित अवसरों (संकट) पर क्रोध दर्शाने की आज्ञा भी प्रदान करता है। ईश्वर एवं देवी-देवताओं में विश्वास नहीं करने के कारण, उनको खुश करने के हिंसात्मक तरीके भी इस धर्म में नहीं पाये जाते। जहाँ इस्लाम और ईसाई धर्म का प्रचार, तलवार की धार और अन्य हिंसात्मक तरीकों से किया गया है, वहाँ बौद्ध धर्म का प्रसार सिर्फ अहिंसात्मक ढंग से ही हुआ है। अन्य धर्मों की भाति बौद्ध-धर्म-प्रचार के इतिहास में रक्तपात, शक्तिप्रयोग आदि के धब्बे कहीं नहीं दिखायी पड़ते। इसके मौलिक उपदेशों से प्रभावित होकर ही लाखों और करोड़ों मनुष्यों ने इसे स्वीकार किया था।

इतिहास से शिक्षा

बौद्ध धर्म का गत इतिहास प्राणिमात्र के भविष्य के लिये एक उज्ज्वल एवं अनुकरणीय उदाहरण है। जिसके अनुसरणमात्र से ही जन साधारण का कल्याण सम्भव है। आजकल कुछ व्यक्तियों को वर्तमान समाज के मनुष्यों का चरित्र अध्ययन करने पर ऐसा भ्रम हो जाता है कि पूर्ण अहिंसक जीवन व्यतीत कर सकना सर्वथा असम्भव ही है। परन्तु क्या रक्तपात और दूसरों को हिंसा करना भी असम्भव है? गाँधी जी के प्रयोगों की ओर संकेत करते हुए कुछ व्यक्ति कह सकते हैं कि उनका सत्य, अहिंसा का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रयोग सफल नहीं हुआ। वे तर्क करेंगे कि राष्ट्रीय एवं मानव समाज पर अपना क्षणिक प्र गये हैं। कुछ हद तक ये आलोचनायें ठीक भी हो

परन्तु दूसरी ओर, क्या बौद्ध धर्म का इतिहा नहीं बतलाता कि उसके प्रभाव ने असंख्य मन अहिंसक बना रक्खा था। प्रचार मात्र से यह फै राजाओं तथा जन साधारण ने इसे ग्रहण कर अ को सुधारा। बौद्ध महात्मा हिंसात्मक ढंग से स पर भी अपने अहिंसा के पथ को नहीं छोड़ते थे। कई बार हजारों की संख्या में बौद्धों की हत्या की गई, परन्तु प्रतिकार करने को कौन कहे, उन्होंने प्रतिकार का विचार तक नहीं किया। हिंसक प्रवृत्तियों की, अहिंसक प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने के कई उदाहरण हमारे सम्मुख उपस्थित किये जाते हैं तो क्या इतने से हमलोगों को निराश होकर भविष्य में गलत पथ पर चलना उचित होगा?

मनुष्य के विचारों को सत्य और अहिंसा के पथ पर मोड़ने की समस्या—एक टेढ़ी समस्या है। इतिहास बतलाता है कि संसार में जब कभी महापुरुषों का प्रादुर्भाव होता है, उनके विचारों से प्रभावित होकर हजारों और लाखों मनुष्य उनके अनुयायी बन जाते हैं। परन्तु यह परम सत्य है कि उन नहीं है, जिससे हम अपनी इच्छा एवं बुद्ध और गाँधी को उत्पन्न किया करें, संसार के प्राणियों का कल्याण सर्वदा होता रहे। है समूची मानवजाति ही धीरे-धीरे उस सत्य-पथ की ओर अग्रसर हो जहाँ उसे वर्तमान दुःख से मुक्ति मिल सके। किन्तु अभी तक इस प्रगति का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ा है वर्तमान युग में हम एक ज्वालामुखी पर खड़े हुए हैं। भौतिकवाद और विश्वव्यापी अविश्वास हमारे चारों तरफ गहन अन्धकार की सृष्टि कर रहा है। ऐसे विकट समय में जिन सौभाग्यवानों के हृदय में विश्वास और सत्य का प्रदीप जल रहा है, उन प्रदीपों को उनके हृदय में प्रज्वलित होने दें। कौन जानता है—ये सब प्रदीपशिखायें निकट भविष्य में ही एक नवीन जगत का निर्माण कर संसार का कल्याण कर सकने में समर्थ हो सकेंगी। एक शब्द में मैं कह सकता हूँ कि भगवान् बुद्ध पर अविश्वास करना अपनी अमूल्य राष्ट्रीय कीर्ति और सभ्यता पर अविश्वास करना है।

—:o:—

[पृष्ठ २७५ कालम दो के आगे]

फेणपिण्डूपमं रूपं, वेदना बुब्बुलूपमा।
मरीचिकूपमा सञ्ञा, सङ्खारा कदलूपमा;
मायूपमञ्च विञ्ञाणं, देसितादिच्च बन्धुना॥

धर्मराज तथागत आदित्य-बन्धु ने रूप को पानी के फेन के समान (क्षणिक) बतलाया है। वेदना को पानी के बुलबुले के समान, संज्ञा को मृग-मरीचिका के समान, संस्कार को केले के खम्भे के समान और विज्ञान को माया के समान।

बौद्ध दर्शन में यह बतलाया गया है कि किसी 'सत्' (आत्मा) का भान केवल पञ्चस्कन्ध पर अवलम्बित है और उस 'सत्' के भान की स्थिति में आदमी की मुक्ति हो जाय—यह सम्भव नहीं है।

"आर्ये! सत्काय, सत्काय कहा जाता है, आर्ये! भगवान् ने किसे सत्काय कहा है?"

"यह जो रूप उपादान स्कन्ध है, वेदना उपादान स्कन्ध है, संज्ञा उपादान स्कन्ध है, संस्कार उपादान स्कन्ध है, विज्ञान उपादान स्कन्ध है, आवुस विशाख! इन्हीं पाँच उपादान स्कन्धों को भगवान् ने सत्काय कहा है।"

'सत्काय' की भावना को त्याग अनित्य, दुःख और अनात्मा की दृष्टि से ही शील, समाधि और प्रज्ञा की पूर्ति कर आदमी परम सुख-शान्ति निर्वाण की अवस्था को प्राप्त कर सकता है। इसलिए —

पञ्चक्खन्धं विजानित्वा, कत्वा साधु विनिच्छयं।
भावनं अनुब्रूहन्ती, पत्वा निब्बानमुत्तमं।
सब्बा पजा सुखी होतु, विनस्सन्तु भवाभवं॥

विचार-विमर्ष करके भली प्रकार पञ्चस्कन्ध को जानकर भावना (योगाभ्यास) बढ़ाते हुए श्रेष्ठ निर्वाण को प्राप्त कर सभी लोग सुखी हों, उनकी सारी विघ्न-बाधायें दूर हो जाँय।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य पं०

मरत...

सिद्धान्त... याँ

"पालि भाषा का ज्ञान हमारो...
...ए हिन्दी के साथ एक अति सरल पाठ...

बहु...

...वर्ग...

१. वेदना-स्कन्ध

इन्द्रियों और विषयों के संयोग से दुःखात्मक, सुख... ...और न दुःख-सुखात्मक — किसी भी प्रकार की अनुभूति... वेदना कहते हैं। हम रोते हुए व्यक्तियों को देखकर... भी रोने लगते हैं, आक्रोषन को सुन तेवरी ... दुर्गन्ध के आते ही नाक पर हाथ लगा लेते हैं ... करते हैं। मीठी चीजों को खाने में आनन्द स... चित्त-सौमनस्य का अनुभव करते हैं। इस प्रकार ... चैतसिक अवस्थाओं में विभिन्न वेदना भी होती है। चा... कोई भी वेदना हो — कामावचर की रूपावचर की, अरूपावचर की अथवा इनसे मुक्त लोकोत्तर की — सभी वेदन लक्षण हैं। (वेदेति वेदेतीति आवुसो वेदनाति वुच्चति) और वे चाहे भूतकाल की हों, चाहे वर्तमान् काल की, चाहे आध्यात्मिक हों अथवा बाह्य, इष्टानिष्ट जितनी भी हों, वे सब वेदना-स्कन्ध के अन्तर्गत हैं।

वेदना नाना प्रकार की होती हैं। किसी पर्याय से दो भी, तीन भी, पाँच भी, अठारह भी, एक सौ आठ भी। तथापि साधारणतः तीन वेदनाओं के अन्दर ही सभी का समावेश हो सकता है। वे तीन हैं—(१) सुखा वेदना (२) दुःखा वेदना, (३) अदुःख-असुखा वेदना। सुखा तथा दुःखा—ये दो वेदनाएँ भी कही जाती हैं। सुख, दुःख, सौमनस्य, दौर्मनस्य तथा उपेक्षा के विभाजन से पाँच प्रकार की भी होती हैं। इस प्रकार अनेक भेद किये जा सकते हैं। विशाख गृहपति के यह पूछने पर कि "आर्ये, कितनी वेदनायें हैं?" धम्मदिन्ना भिक्षुणी ने उत्तर दिया— "आवुस विशाख! यह तीन वेदनायें हैं—(१) सुखा वेदना (२) दुःखा वेदना (३) अदुःख-असुखा वेदना।"

हम जो काय तथा मन से शान्त, अनुकूल अनुभव करते हैं, वह सुखा (सुखमय) वेदना है, जो अशान्त, प्रतिकूल अनुभव करते हैं, वह दुःखा (=दुःखमय) वेदना है और ... शान्त भी नहीं है, अशान्त भी नहीं है, प्रतिकूल ..., वह अदुःख-असुखा वेदना है।

...में जो इन नाना अनुभूतियों का पुञ्ज है, नाना ...नाओं का उत्पाद है, क्षण-क्षण चक्कर करते आलात (प्रज्वलित काष्ठ खण्ड) की भाँति इनका जो परिवर्तनमय क्षणिक स्कन्ध दीख पड़ता है, वह वेदना स्कन्ध है।

यह वेदना-स्कन्ध शेष धर्मों के साथ राजा के समान है। जैसे बावरची नाना रस-सम्पन्न भोजन तैयार कर मंजूषा ... बन्दकर राजा के पास ले जाए, वहाँ ताला खोल मंजूषा को उघाड़कर सभी सूप और व्यञ्जनों को भली भाँति एक बर्तन में निकालकर सदोष-निर्दोष भाव को जानने के लिए पहले थोड़ा-थोड़ा स्वयं चखकर राजा को दे और तब राजा उन्हें इच्छानुसार खाये। ऐसे ही बावरची की भोजन-मीमांसा मात्र के समान अवशेष धर्म हैं, वे किसी भी आलम्बन के थोड़े से अंश का ही अनुभव करते हैं, राजा के रसाग्र भोजन के खाने के तुल्य वेदना है, क्योंकि यह किसी भी आलम्बन में आवर्जन, दर्शन, सम्पटिच्छन, संतीरण, व्यवस्थापन के पश्चात् ही जवन के क्षण में उत्पन्न होती है तथापि अनुभूति इसी के मत्थे होती है अर्थात् इसी क्षण वेदना का काम दिखाई देता है।

२. संज्ञा-स्कन्ध

नाना आलम्बनों के नील आदि भेद का परिचययुक्त ज्ञान ही संज्ञा है। पहचानना इसका लक्षण है। यथा—

"आवुस, संज्ञा, संज्ञा कही जाती है, किस कारण से संज्ञा कही जाती है?"

"चूँकि आवुस, यह संजानन (पहचान) करती है, इसलिए संज्ञा कहते हैं। क्या संजानन करती है? नीले को भी संजानन करती है, पीले को भी संजानन करती है, लाल को भी, सफेद को भी; इसलिए संज्ञा कहते हैं।"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जिसको हम अनुभव करते हैं। उ[illegible]—श्री अमरनन्दी भी करते हैं। जितनी भी संज्ञा हैं, चाहे भू[illegible] चाहे वर्तमान की, चाहे भविष्यत् की, चाहे [illegible] हों या बाह्य, बुरी हों या भली—सभी संज्ञा-स्कन्ध के [illegible]गत हैं और सभी का लक्षण है संजानन ही। [illegible] संज्ञा का कृत्य है। जैसे बढ़ई लकड़ी के ऊपर [illegible] करता है, पुनः उस चिह्न के प्रत्याभिज्ञान से उ[illegible] है। हम किसी पुरुष के काले तिलक आदि को [illegible] कालान्तर में भी उसी अभिज्ञान से यह [illegible] जान लेते हैं।

इस प्रकार क्षण क्षण उत्पत्ति, स्थिति, विनाश के क्रमानुसार परिवर्तनशील, 'व्यक्ति' में जितना भी आलम्बन के पहचानने का ज्ञान है, वह सब संज्ञा-स्कन्ध है। अस्तु, नवासी (८९) चित्तों का संग्रह ही संज्ञा-स्कन्ध विज्ञेय है।

३. संस्कार-स्कन्ध

कहा है—"सङ्खरोन्तीति सङ्खारा, लोकिय कुसलाकुसल चेतना।" अर्थात् संस्करण करने के कारण संस्कार कहे जाते हैं। लौकिक कुशल-अकुशल चेतना ही संस्कार है। कुशलाकुशल कर्मों का राशिकरण इसका कृत्य है। जितने भी संस्कार हों—चाहे भूतकाल के, चाहे वर्तमान् काल के, चाहे भविष्यत् के; आध्यात्मिक हों अथवा बाह्य, कुशल हों या अकुशल—वे सब संस्कार-स्कन्ध के अन्तर्गत हैं।

स्पर्श, मनस्कार, जीवित, समाधि, वितर्क, विचार, वीर्य, प्रीति, छन्द, अधिमोक्ष, श्रद्धा, स्मृति, ह्री (=लज्जा), अपत्रपा (=संकोच), अलोभ, अव्यापाद, प्रज्ञा, उपेक्षा, काय-प्रश्रब्धि, चित्त-प्रश्रब्धि, काय की लघुता, चित्त की लघुता, काय-मृदुता, चित्त-मृदुता, काय-कर्मण्यता, चित्त-कर्मण्यता, काय-प्रागुण्यता, चित्त-प्रागुण्यता, काय-ऋजुकृत्यता, चित्त ऋजुकृत्यता, करुणा, मुदिता, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, लोभ, द्वेष, मोह, दृष्टि, औद्धत्य, अ-ह्री, अन्-अपत्रपा, विचिकित्सा (सन्देह), मान, ईर्ष्या, मात्सर्य, कौकृत्य, स्त्यानमृद्ध ये सभी धर्म चेतना के साथ पचास (५०) पुञ्जार्थरूप में संस्कार-स्कन्ध कहे जाते हैं। जो काय, वाक्, मन द्वारा ही साध्य हैं। इस प्रकार

[illegible] प्रियदर्शी सु[illegible]

[illegible]कार कितने हैं ?"

[illegible] विशाख ! यह तीन संस्कार हैं—(१) काय [illegible] (२) वचन संस्कार (३) चित्त संस्कार।"

"आर्ये, क्या है काय संस्कार ? क्या है वचन संस्कार ! [illegible] है चित्त संस्कार ?"

"[illegible] विशाख ! आश्वास-प्रश्वास काय संस्कार हैं, [illegible] वचन संस्कार हैं, संज्ञा और वेदना चित्त [illegible]"

[illegible] आर्ये, आश्वास-प्रश्वास काय संस्कार हैं ? क्यों [illegible] विचार वचन संस्कार हैं ? क्यों संज्ञा, वेदना चित्त [illegible]स्कार हैं ?"

"आवुस विशाख ! आश्वास-प्रश्वास काया से सम्बद्ध कायिक धर्म हैं, इसलिए आश्वास-प्रश्वास काय संस्कार हैं। आवुस विशाख, पहले वितर्क-विचार करके पीछे वचन निकलता है, इसलिए वितर्क-विचार वचन संस्कार हैं। आवुस विशाख ! संज्ञा और वेदना चित्त से सम्बद्ध चैतसिक धर्म हैं, इसलिए संज्ञा और वेदना चित्त संस्कार हैं।"

काय, चित्त, वाक्—इन्हीं के द्वारा आदमी पुण्य-पाप आदि का संचय करता है, जिनसे सुगति, दुर्गति विज्ञेय हैं और इन्हीं संस्कारों के कारण हमारा संसार भ्रमण लगा हुआ है जैसे कि अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं और क्रमशः जन्म, जरा, मरण, दुःख, दौर्मनस्य आदि सभी दुःखों का ढाँचा उठ खड़ा होता है।

४. विज्ञान-स्कन्ध

विज्ञान का लक्षण विजानन है। जैसे नगर-रक्षक द्वारपाल बीच रास्ते में बैठकर पूरब, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर—सभी दिशाओं से आते हुए लोगों को देखे, ऐसे ही आँख से रूप को देखकर, श्रोत्र से शब्द सुनकर, घ्राण से गन्ध सूँघकर, जिह्वा से रसास्वादन कर, काय से स्पर्श कर—उन्हें जानता है, जो विजानन (विशेष रूप से जानना) लक्षण है, वही विज्ञान है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

[stamp: ...-पत्रिका, गुरुकुल काँगड़ी]

विज्ञान ...

"पालि भाषा का ज्ञान हमारो ... हिन्दी के साथ एक अति सरल पाठ... जाता है।"

"क्या जानता है ?"

"यह सुख है—इसे जानता है। यह दु... जानता है। यह अदुःख-असुख है—इसे जानता है, ... आवुस, विज्ञान कहा जाता है।"

संज्ञा, वेदना और विज्ञान - यह तीनों धर्म मि... हैं, बिलग नहीं। और इन तीनों को बिलग-... इनका भेद नहीं जतलाया जा सकता, क्योंकि ... अनुभव करते हैं उसी का संजानन और विजानन ... अथवा तिक्त कोई चीज खाते समय स्वादाभिभूति ... ज्ञान वेदना है, वस्तु का परिचायक ज्ञान संज्ञा है, तत्प... यथार्थ ज्ञान की अवस्था विज्ञान है।

उपर्युक्तानुसार विज्ञान के ही आगमन से 'व्यक्ति' की स्थिति का प्रादुर्भाव होता है। यह विजानन लक्षण वाला स्कन्धों के योग से उत्पन्न एक ऐसा धर्म है, जो क्षण-क्षण उत्पन्न तथा विलीन होता है, जबतक यह इस शरीर में रहता है तबतक शरीर सजीव कहा जाता है। बौद्ध दर्शन में विज्ञान, चित्त, मन तथा आत्मा एक ही के पर्याय हैं। हम कह सकते हैं कि 'व्यक्ति' केवल रूप और विज्ञान का पुञ्ज है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति में ही शेष तीन की उत्पत्ति सम्भव है किन्तु उसकी अवस्था त्रय से ही उसका विजानन कार्य होता है, इसलिए हमें उन्हें भी प्रज्ञापन करना लाजिमी होता है। बिना अवस्था त्रय विशेष के 'नाम-स्कन्ध' सम्भव नहीं। अतः सम्पूर्ण (८९) चित्त की, आत्मा की—जो अवस्थायें हैं, वह प्रत्येक विज्ञान हैं और पुञ्जार्थ रूप में वही सब 'विज्ञान-स्कन्ध' हैं।

५. रूप-स्कन्ध

'व्यक्ति' में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि ये चारों महाभूत तथा इनसे उत्पन्न अन्य जितने भी रूप हैं, वह सब रूप स्कन्ध कहे जाते हैं। चाहे भूतकाल के हों, चाहे वर्तमानकाल के, चाहे भविष्यतकाल के। वे भीतरी हों अथवा बाहरी, स्थूल हों या सूक्ष्म, बुरे हों या भले; चाहे दूरस्थ हों अथवा समीपस्थ।

जैसे काष्ठ, वल्ली, तृण तथा मिट्टी से घिरा आकाश घर ...याँ ऐसे ही हड्डी, स्नायु, मांस और चर्म से घिरा ...र्या कहा जाता है।

...। महाभूतों तथा उनके कारण उत्पन्न सभी रूपों ...ो इन दो भागों में बँटे हैं, ग्यारह (११) प्रकार से संग्रह ... और सब रूप अट्ठाइस तरह के होते हैं। यथा—

...पृथ्वी धातु[1] आप धातु,[2] तेज धातु,[3] वायु धातु[4] =

...चक्षु,[5] श्रोत्र,[6] घ्राण,[7] जिह्वा,[8] काय[9] = प्रसाद रूप।

३—रूप,[10] शब्द,[11] गन्ध,[12] रस,[13] जल धातु को छोड़ कर तीनों धातुओं से उत्पन्न स्पर्श = गोचर या विषय रूप।

४—स्त्रीत्व,[14] पुरुषत्व[15] = भावरूप।

५—हृदयवस्तु[16] = हृदय रूप।

६—जीवितेन्द्रिय[17] = जीवित रूप।

७—कौर कौर करके खाने योग्य आहार[18] = आहार रूप

उपर्युक्त अठारह प्रकार के यह रूप स्वभाव रूप, स्व-लक्षण रूप, निस्पन्द रूप आदि नामों से पुकारे जाते हैं। निम्नलिखित यह दश प्रकार के रूप अनिस्पन्द कहे जाते हैं—

१—आकाश[1] धातु = परिच्छेद रूप।

२—काय विज्ञप्ति,[2] वची विज्ञप्ति[3] = विज्ञप्ति रूप।

३—रूप को लघुता,[4] मृदुता,[5] कर्मण्यता[6] और दोनों विज्ञप्तियाँ = विकार रूप।

४—रूप[7] का उपचयन, सन्तति,[8] जरता,[9] अनित्यता[10] = लक्षण रूप। जन्म रूप ही यहाँ उपचयन सन्तति के नाम से पुकारा जाता है।

इन अट्ठाइस प्रकार के रूपों का अतीत, अनागत, वर्तमान, भीतरी, बाहरी, स्थूल, सूक्ष्म, दूरस्थ, समीपस्थ, हीन, प्रणीत (उत्तम) आदि के क्रम से नाना प्रकार का भेद होता है। इन रूपों की उत्पत्ति कर्म के द्वारा, चित्त के द्वारा, ऋतु के द्वारा तथा आहार के द्वारा होती है। एको-त्पाद, एक निरोध, एक निश्रय, सहवृत्ति वाले इक्कीस प्रकार के रूप-कलाप होते हैं। ये कामलोक, रूपलोक और असंज्ञी लोक—इन तीन स्थानों में ही प्रतिसन्धि-जनित दो प्रकार से पाये जाते हैं। कहा है—

[शेष पृष्ठ २७२ के नीचे]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय-सूची

स्वर्णिम अतीत [illegible] ...जना के तीर।
शुभ्र इन्दु राका [illegible] ...स-जाल को चीर॥

उरुबेला के [illegible] में,
तरुवर [illegible] नीचे।
तरुण तपस्वी शा[illegible]
सरिता [illegible] सींचे।

कठिन तपस्या में [illegible] शाक्य कुमार सुधीर।
उन घड़ियों की स्मृति आती, निरंजना के तीर॥

ध्यान मग्न उस तेजपुञ्ज को,
लखकर आँखें मींचे।
विद्युत सुमन समान सुन्दरी
निज अंचल पट खींचे।

हेम थाल में लेकर आई, सुमधुर सुरभित खीर।
मंजु मधुरिमा बिखर रही थी, निरंजना के तीर॥

किये कृतार्थ ग्रहण कर पायस,
सात्विक स्नेह उलीचे।
मार-विजय कर शुद्ध बुद्ध बन,
ऋषि - पत्तन के बीचे

पहुँचे सुगत तृषित विश्व को, देने ज्ञान सुनीर।
उस अतीत की स्मृति आती, निरंजना के तीर॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य पं०

सरल

विद्वान ... याँ

"पालि भाषा का ज्ञान हमारा ...
... हिन्दी के साथ एक अति सरल पाठ ...

... प्रत्यावर्त्तन

... सुगतानन्द

मुसलमानों के आक्रमण के फलस्वरूप भ... बुद्ध का धर्म अपनी जन्मभूमि से प्रायः लुप्त हो ... दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम ... आततायियों की बर्बरता ने गत छः शताब्दियों के ... भारतवर्ष से बौद्ध धर्म का अस्तित्व ही मिटा ... जैन और बौद्ध धर्मों की समानता देखकर ज... में एक भ्रमात्मक धारणा जम गयी है कि इन ... में कोई विभिन्नता नहीं है। यद्यपि इन दोनों ... प्रवर्त्तक इतिहास के लगभग एक ही युग में हुए थे ... इन दोनों धर्मों के मुख्य उद्देश्य साधारणतः एक समा... प्रतीत होते हैं तथापि इनके नैतिक एवं धार्मिक आचार-विचार में यथेष्ट विभिन्नता है।

भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का प्रत्यावर्त्तन हो चुका है--यद्यपि यह कहना कठिन और असम्भव प्रतीत होता है; तथापि यह परम सत्य है कि वर्तमान् शिक्षित समाज शनैः-शनैः बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हो रहा है। बौद्ध-धर्म के उसकी जन्मभूमि में प्रत्यावर्त्तन की कहानी एक महात्मा की जीवनी के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखती है। वे महात्मा बौद्ध-जगत् में अनागारिक धर्मपाल के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप प्रख्यात प्राचीन सिंहल देश के निवासी थे। स्व० धर्मपालजी अपनी युवावस्था में भारतीय तीर्थ स्थानों का परिभ्रमण करने के उद्देश्य से सन् १८९० ई० में सिंहल से निकले।

सिंहल में उस समय युग-संदिग्ध-काल उपस्थित था। उस समय पाश्चात्य सभ्यता और धर्म का पूर्ण प्रभाव जम गया था। जिसके फलस्वरूप तथागत का धर्म सिंहबाहु के सिंहल द्वीप से कुछ दिनों के लिये लुप्त हो गया था। ईसाई मिशन विद्यालय में शिक्षा पाकर भी स्व० धर्मपालजी की विचारधारा अन्य सिंहली युवकों से सर्वथा भिन्न थी। अपनी तीर्थ-यात्रा में उन्होंने अत्यन्त ही हृदय ...दृश्य देखे। भारतीय समाज शाक्य सिंह के उन उपदेशों को भूल चुका था। लुम्बिनी, कपिलवस्तु, ... कुशीनगर आदि तीर्थ स्थान महा श्मशान के रूप ... हो गये थे। जिन स्थानों में कभी शत्-शत् ...र्मावलम्बी भिक्षुओं के मुख से सूत्रोच्चार और धर्मोपदेश मुखरित होता था, उन्हीं सब स्थानों में दिन में सूअर तथा रात्रि में कुत्ते एवं शृगाल भूँका करते थे। जिस स्थान ...न महान् शाक्य राजकुमार ने सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया ... शैव-मतावलम्बी हिन्दुओं के हाथ में पड़कर, वह ...ओं का प्रमुख क्रीड़ा-स्थल बन गया था। अतएव सभी स्थानों में बौद्ध संघारामों की स्थापना तथा तथागत के धर्म का भारतवर्ष में पुनः प्रचार स्व० धर्मपालजी का मुख्य उद्देश्य बन गया। १८९१ ई० में सुमंगल महानायक स्थविर की सहायता से उन्होंने महाबोधि सभा की स्थापना की। इन प्रधान चार तीर्थ स्थानों में बौद्ध संघ की पुनः प्रतिष्ठा और अखिल विश्व में--विशेषतः भारतवर्ष में बौद्ध-धर्म का प्रचार ही उक्त संस्था का वर्तमान् उद्देश्य था।

भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक नेताओं ने भी स्व० धर्मपालजी के इस पवित्र कार्य में यथेष्ट प्रोत्साहन और सहानुभूति प्रदर्शन किया था। इनमें स्व० महात्मा गांधी और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

१८९३ ई० में शिकागो में अखिल धर्मसंघ के अधिवेशन के अवसर पर, स्वामी विवेकानन्द के साथ स्व० धर्मपालजी भी बौद्ध जगत् के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित हुए थे। उन्होंने कई अमेरिकावासियों को बौद्ध धर्म की दीक्षा देकर उनसे आर्थिक सहायता प्राप्त की थी। शिकागो से लौटने के बाद धर्मपालजी ने महाबोधि मन्दिर में जीव बलि बन्द करने का आन्दोलन चलाया, जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली। इनकी प्रचेष्टाओं से बौद्ध मन्दिरों का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

द्वार एक बार फिर बौद्ध यात्रियों के... गया। प्राचीन मृगदाव (सारनाथ), जहाँ ... सर्वप्रथम धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था, भारतीय पुर... द्वारा खोदा और मरम्मत किया जा चुका था। ... धर्मपालजी के भगीरथ प्रयत्न से इस सारनाथ ... मन्दिर, महाबोधि सभा का कार्यालय-गृह, प्राथ... उच्च अँग्रेजी विद्यालय एवं एक दातव्य औ... स्थापना हुई। तदुपरान्त, कलकत्ता के धनी सेठ ... किशोर बिड़ला ने एक धर्मशाला बनवाकर स... कर दिया। इसके अतिरिक्त कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली ... बोधगया में भी बौद्ध मन्दिर एवं महाबोधि सभा ... शाखाओं की स्थापना हो चुकी है। इन सब स्थानों ... बौद्ध धार्मिक पर्वों पर, भगवान् बुद्ध को श्रद्धांजलि ... करने के निमित्त आए हुए यात्रियों की भीड़ देखकर ... विश्वास होता है कि एक तरुण सिंहली ने १९वीं ... के शेष भाग में जो स्वप्न देखा था, वह अक्षरशः सत्य घटित हुआ। भारतवासियों ने भी बौद्ध धर्म की मौलिकता से प्रभावित होकर इस पवित्र कार्य में यथेष्ट सहायता पहुँचायी है।

समय-समय पर, इस प्राचीन महाद्वीप ने अनेक महापुरुषों को जन्म देकर, जनता को सत्य का मार्ग एवं उसके दुःख को दूर करने की चेष्टा की है। परन्तु एक मात्र भगवान् बुद्ध के त्रिकाल सत्य उपदेश ही भारतीय सीमा के बाहर, विश्व के एक बहुत बड़े हिस्से में अपना अमिट छाप छोड़ गये हैं। समय और स्थान का बन्धन इन उपदेशों के प्रसार को रोकने में सर्वथा असमर्थ सिद्ध हुआ। मनुष्य की सहज बुद्धि को प्रखर बनाकर, उसे उच्चतम शिखर पर पहुँचा देनेवाला बौद्ध धर्म—अपने करुणा एवं प्रेममय उपदेश तथा जीवन की समस्याओं के वैज्ञानिक एवं तार्किक विश्लेषण के कारण जन साधारण को बरबस ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इसने मानव चरित्र का विश्लेषण कर उसे सत्य का दर्शन कराया है। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा मानव चरित्र का अध्ययन आरम्भ करने के शताब्दियों पहले भगवान् बुद्ध ने चरित्र-शुद्धि एवं आत्मसंयम द्वारा सांसारिक दुःखों को दूर करने का सुन्दर मनोवैज्ञानिक और हृदयग्राही ढंग बताया था।

...गा, तब बौद्ध धर्म ही उसे सत्य मार्ग ...गा।

...न् युग में जब कि पाश्चात्य देशों में अनीश्वरवा... यथार्थवाद-प्रयोगशालाओं तथा रसायनशालाओं ... सिद्धान्तों पर विश्वास बढ़ता जा रहा है, कुछ ऐ... ...हैं जो यह समझते हैं कि विश्व के किसी ... सत्य का प्रकाश भी छिपा हुआ है। आज ... पूर्व भारतवर्ष ने विश्व को उसी सत्य ... ...या था। यद्यपि ऐतिहासिक घटना-चक्र ने बु... ...के लिये उस सत्यपर परदा डाल दिया था, तथा... ...ह त्रिकाल सत्य आदर्श आज भी विश्व को सत्य, अहिं... और शान्ति का पथ-प्रदर्शन करा रहा है। यद्यपि हि... धर्म से सर्वथा भिन्न बौद्ध धर्म का प्रत्यावर्त्तन बहुत ही धीरे धीरे हो रहा है, तथापि इसमें संदेह नहीं कि शिक्षा के प्रचार के साथ-साथ इसका प्रचार भी हो रहा है।

गत कई शताब्दियों का इतिहास हमें बतलाता है कि पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से बौद्ध धर्म की प्रगति में यथे... बाधा पहुँची है, परन्तु यह उस युग के धार्मिक नेताओं तथा उपदेशकों की कमजोरी का परिचायक है। एक तरफ यदि ईसाई मिशन के विद्यालयों ने बौद्ध धर्म को धक्का पहुँचाया है, तो दूसरी तरफ पाश्चात्य अविश्वासों के बढ़ते हुए प्रभाव ने भी बौद्ध धर्म की प्रगति को अवरुद्ध करने में कोई कोर-कसर नहीं रक्खी।

सदियों से शासित और प्रताड़ित एशिया ने आज करवट बदला है। आज अशिक्षित एशिया में भी नव-जागरण का संचार हो रहा है। राजनीतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ विचार स्वातन्त्र्य का भी प्रादुर्भाव हो रहा है और वह समय दूर नहीं, जब पाश्चात्य सभ्यता से क्या ग्रहण करें, क्या नहीं—का निर्णय करने में एशियावासी भी समर्थ हो सकेंगे। निर्भय और प्रगतिवादी विचारों के प्रसार से बौद्ध देशों में बौद्ध धर्म का प्रत्यावर्त्तन लगभग हो चुका है। [शेषांश पृष्ठ २८२/पर]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य पं० [illegible]

सरल [illegible]

विद्वानों [illegible] याँ

"पालि भाषा का ज्ञान हमारी [illegible] यों ?

[illegible] हिन्दी के साथ एक अति सरल पाठ [illegible] क

[illegible] राय एम० ए०

बिहार शरीफ से नवादा होकर हजारीबा[illegible] इन्द्रशैल पर्वत की गोद में बसे हुए एक छ[illegible] की प्राकृतिक छटा बराबर ही हमें अपनी ओर आ[illegible] करती है। इस ग्राम से थोड़ी ही दूर (लगभग [illegible] पर एक घोषरावाँ नामक भूमिहारों की बस्ती [illegible] ओर विस्तृत धान के खेतों के मध्य पहाड़ी के [illegible] पर अवस्थित यह भूमिहार-ग्राम किसी दिन बौ[illegible] इतिहास में एक सुप्रसिद्ध विहार के रूप में प्र[illegible] १८.५ ई० में वर्तमान शिक्षित जगत का इसके सा[illegible] परिचय हुआ था। कैप्टेन मार्शल नामक एक अ[illegible] कर्मचारी ने तत्कालीन श्मशान के सदृश्य घोषरावाँ से एक शिलाखण्ड ले जाकर कलकत्ता के एशियाटिक सोसाइटी के सम्मुख पेश किया था। इस शिला-खण्ड पर अङ्कित लिपि का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि नालन्दा के मठाधीश बीरदेव ने इस स्थान में वज्रासन मुद्रा में भगवान् बुद्ध की एक प्रतिमा प्रतिष्ठित कर एक विहार की स्थापना की थी।

बीरदेव का जन्म नगरहार नामक शहर में हुआ था। यह नगरहार वर्तमान अफगानिस्तान राज्य में अवस्थित है। कनिंघम साहब के मत से नगरहार जलालाबाद उपत्यका का वर्तमान निंगरहार नामक स्थान है। परन्तु फ्रांसिसी पुरातत्व वेत्ता हौंका के मत से 'हाड्डा' का ध्वंसावशेष ही प्राचीन नगरहार है। ९ वीं शताब्दि के शेष भाग में इसी नगरहार के एक ब्राह्मण परिवार में बीरदेव का जन्म हुआ था। उस स्थान के तत्कालीन राजा के साथ बीरदेव के पिता की घनिष्ठ मित्रता थी। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह राजवंश काबुल के हिन्दू राजवंशों में से ही एक था। वेद, पुराण आदि शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर भी बीरदेव की ज्ञान पिपासा शान्त न हुई। अतएव इन्होंने प्राचीन पुरुषपुर में जाकर बौद्धधर्म की दीक्षा ली तथा पुरुषपुर महाविहार के आचार्य श्री सर्वज्ञ [illegible] विनय प्रभृति शास्त्रों में निपुणता प्राप्त की। इसके [illegible] महाबोधि (बोध गया) की अर्चना के निमित्त [illegible] आये तथा यशोवर्म्मपुर के महाविहार में रहने लगे। [illegible] द्वितीय सम्राट् श्री देवपालदेव की दृष्टि इन पर [illegible] ये नालन्दा के मठाधीश निर्वाचित किये गये।

[illegible] इसी यशोवर्म्मपुर की स्थापना के साथ प्राचीन मगध [illegible] एक दुःखान्त घटना का घनिष्ठ सम्बन्ध है। गुप्त साम्राज्य का सूर्य अस्त हो रहा था। पतनोन्मुख मगध का [illegible] हूणों के आक्रमण से उत्तरी सीमान्त के विशाल [illegible] की रक्षा कर सकने में अपने को सर्वथा असमर्थ पा रहा था। गुप्त वंश के अन्तिम सम्राट् 'जीवित गुप्त' जिस समय पाटलिपुत्र के जीर्ण सिंहासन पर अधिष्ठित थे, महोदय नामक नगरी में एक नये राज शक्ति के आविर्भाव का पता चलता है। भारतीय ऐतिहासिक इन्हें यशोवर्म्मन के नाम से पुकारते हैं। एक समय था, जब यशोवर्म्मन की विजय-कहानी कृत्रिम कही जाती थी। परन्तु नालन्दा के ध्वंसावशेषों से प्राप्त यशोवर्म्मन के परराष्ट्र मन्त्री उदीचिपति तेगिन पुत्र 'मलाद' के शिलालेखों द्वारा उनपर स्वीकृति की मुहर लग जाने के बाद भी क्या किसी को यशोवर्म्मन के मगध विजय की कहानी पर संदेह रह जाता है ! यशोवर्म्मन के सभाकवि वाक्पति द्वारा रचित 'गउडवह' नामक प्राकृत काव्य से हम लोग जान सकते हैं कि मगधाधिपति जीवित गुप्त के पाटलिपुत्र से पलायन के बाद यशोवर्म्मन ने राजगृह के समीप उसे पकड़कर उसकी हत्या कर डाली थी। यशोवर्म्मन ने इस विजय-स्मृति में जिस नगर की स्थापना की थी, वह वर्तमान घोषरावाँ एवं प्राचीन यशोवर्म्मन शायद यही नगरी है।

इन दोनों महत्वपूर्ण शिलालेखों की सहायता से हम-लोग भारतवर्ष के मध्ययुग के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन के सम्बन्ध में कितनी ही नयी बातें जान सकते हैं। इनसे पता चलता है कि इस्लाम धर्म को कबूल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय-सूची

करने से पहले समूचा अफगानिस्तान हिन्दू
वलम्बी था। काबुल से ८० मील की दू
गिरि के पार्श्वों में प्राप्त भगवान् बुद्ध की विशा
को देखकर इस पर अविश्वास करने की गुञ्जाइस
रहती। अफगानिस्तान की इन्हीं दुर्गम गिरि—कन्दरा
निवासी, एक उच्चवंशीय ब्राह्मण पुत्र (वीरदे
"तथागत" के पवित्र और सरल धर्म ने अपनी अ
किया। सत्य और अहिंसा की प्रेरणा से प्रेरित ह
देव ने पुरुषपुर में आकर बौद्ध धर्म की दीक्षा ली
का वर्तमान् नाम पेशावर है। यहाँ के स्तूप क
करने पर महाराज कनिष्क के राजत्वकाल में प्रतिष्ठित
निर्मित पात्राधार में भगवान् बुद्ध का देहावशेष पाया
था। वीरदेव की अतृप्त ज्ञानपिपासा और महाबोधि-अर्हत
की लालसा ने उन्हें समस्त एशिया के तत्कालीन
और शिक्षाकेन्द्र नालन्दा तक खींच लाया। कर
प्रधान आचार्य निर्वाचित किया गया।

यशोवर्म्मन के परराष्ट्र मन्त्री तेगिन पुत्र 'मलाद' के सम्बन्ध में विचार करने पर हम देखते हैं कि आलसगीन और सुबुक्तगीन की तरह 'तेगिन' भी तुर्की शब्द है। अतएव इससे स्पष्ट पता चलता है कि नवम् और दशम शताब्दि में समस्त तुर्की भी हिन्दू या बौद्ध धर्मावलम्बी था। भारतीय हिन्दू राजाओं के दरबार में तुर्की निवासी भी राज्य के उच्चपदों पर प्रतिष्ठित थे। इस कथन की पुष्टि में यशोवर्म्मन के "सन्धिविग्रहिक" (परराष्ट्रमन्त्री) तुर्की जातीय तेगिन पुत्र 'मलाद' का उदाहरण पेश किया जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि ई० सन् की ९ वीं तथा १० वीं शताब्दि में भारत तथा अफगानिस्तान राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सम्बन्ध में एक दूसरे के साथ एक अटूट सूत्र में बँधे हुए थे। तेगिन पुत्र मलाद ने बौद्धधर्म स्वीकार कर नालन्दा विहार के नवम संघाराम की स्थापना की थी। हाल

र के अस्तित्व, उत्थान और पतन के
संसार त्र हमें कोई संदेह नहीं है। ११९५ ई० के
है शीत मास में इस्लाम धर्म में दीक्षित मुहम्मद बिन
र खिलजी ने यशोवर्म्मपुर से दक्षिण पूर्व दस
सके है री पर अवस्थित प्राचीन उद्दण्ड महाविहार को
दिखाई पड़ा त कर डाला था। उसी समय किसी अज्ञात
ले हुए है र हाथों से नालन्दा और यशोवर्म्मपुर भी
मारे चारों गये थे। नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय
ऐसे विकट ड अग्नि ज्वालाओं के बीच, भारतीय सभ्यता और
शिव ति के एकमात्र प्रतीक उन असंख्य पुस्तकों का
होलिका-दहन दो महीने तक होता रहा।

बाह्य जगत के कोलाहल से दूर गिरिकन्दराओं के शान्तिमय वातावरण में रहकर, अखिल विश्व को सत्य, अहिंसा और शान्ति का संदेश देनेवाले त्रिचीवरधारी उन शांतिप्रिय भिक्षुओं से डरकर अपने को मानव कहनेवाले सभ्यता और संस्कृति के शत्रु, उस क्रूर दानव ने यदि उनके संघारामों और विहारों को नष्ट कर डाला तो क्या उन भिक्षुओं के संदेशों के अमूल्य संग्रह से भी उसे भय लगता था? अथवा धन-ऐश्वर्य की लूट के लिये आये हुए लुटेरे ने धन के बदले भिक्षुओं और पुस्तकों को पाकर चिढ़ और क्रोध में उनका नाश कर डाला?

आज से प्रायः आठ शताब्दी पूर्व जो स्थान काषाय वस्त्रधारी भिक्षुओं का मिलन-क्षेत्र था, उस प्राचीन यशोवर्म्मन (वर्तमान घोषरावाँ) के अनुसंधान का प्रश्न भी क्या कभी किसी के हृदय में उठता है?

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य पं०

सरल

विद्वानों ...याँ

"पालि भाषा का ज्ञान हमारी ...
...ए हिन्दी के साथ एक अति सरल पाठ...

...प्रयास

द्वितीय महायुद्ध के समय से बर्मा अने... संघर्षों को सहन करते आ रहा है। उसे कभी ... के भीषण प्रहारों को सहना पड़ा है, तो कभी अंग्रेजों ... और उनके बाद स्वतन्त्रता-प्राप्ति से दिनों से आन्तरिक ... युद्ध का शिकार होना पड़ रहा है। पूर्व के सं... प्रभावी थे क्योंकि युद्ध की जो घटा पूर्व में उठ... प्रचण्ड रूप से आगे बढ़ना और बरसना था, ... पश्चात् इधर जो आन्तरिक गृह-युद्ध छिड़ गया है, ... की जनता तथा राष्ट्रीय सरकार के लिए बड़ा ही ... सिद्ध हुआ है। न केवल सरकार के लिए ही, प्रत्युत उसका आघात बर्मी जीवन और संस्कृति पर भी पहुँचा है। बर्मा की राष्ट्रीय सरकार यद्यपि शान्ति-स्थापना चाहती थी, उसके लिए नाना प्रकार के प्रयत्न भी करती थी, उसी प्रयत्न में बर्मा के वीर सेनानी श्री टिन्टुट मारे भी गये और अनेक बर्मी नवयुवक करेनों के अत्याचार के शिकार हो गये, फिर भी शान्ति स्थापित नहीं हुई। इसके जहाँ अनेक कारण थे, वहाँ धर्म की ओर ध्यान न देना भी एक प्रधान कारण था। यदि बर्मा की राष्ट्रीय सरकार धर्म पर ध्यान देती और बर्मा के भिक्षुसंघ द्वारा शान्ति-स्थापित करने का प्रयास कराती तो बर्मा को इस आन्तरिक गृह युद्ध का शिकार नहीं होना पड़ता। कौन ऐसा बर्मी बौद्ध होगा, जिसे अपने 'सयाडो' की बात नापसन्द होगी ! जब बर्मी जनता शान्त हो जाती, तब थोड़े से करेन कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे।

सिंहल में हुए शान्ति-सम्मेलन के समय से बर्मी सरकार की विचार धारा बदली है और वह बर्मी जनता को अपने धार्मिक कृत्यों से शान्त करने का प्रयास करना प्रारम्भ की है। इसी हेतु गत फरवरी मास में लंका से कुछ भिक्षु, बोधिवृक्ष और भगवान् की पवित्र अस्थियाँ तथा भारत से बोधिवृक्ष, महाबोधि-सभा के कुछ कार्य-कर्त्ता और अग्रश्रावकों की पवित्र धातुयें बर्मा ले जायी गयीं जिन्हें ले... ...ए बर्मा के प्रधान मंत्री श्री थाकिन नू स्वयं लंका ... आये रहे। इस समय बर्मा के प्रायः सभी ...ों और नगरों में उनका प्रदर्शन हो रहा है तथ... ...र्मिक-भावना से ओतप्रोत करने का प्रयत्न ... की कतिपय लोकहित कारी धार्मिक ... कार्य में योग दे रही हैं। बर्मा की राष्ट्रीय ... कार्य के लिए तीन लाख रुपये व्यय करने का ... है। जान पड़ता है बर्मी सरकार अपने इस ... में सफलता प्राप्त करेगी। अग्रश्रावकों तथा भगवान् की पवित्र अस्थियों के अनुभाव और प्रवचन से बर्मी जनता धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत होकर आन्तरिक गृह-कलह त्याग देगी। लंका के राजा देवानां प्रियतिष्य ने जिस प्रकार लंका में शान्ति स्थापित करने के लिए महेन्द्र और संघमित्ता का स्वागत किया था, भगवान् की पवित्र अस्थियों और बोधिवृक्ष को मंगाया था, उसी प्रकार बर्मी सरकार ने भी बोधि-वृक्ष, भिक्षु-संघ और पवित्र अस्थियों का स्वागत किया है। अब सबकी दृष्टि बर्मा की शान्ति-स्थापना की ओर लगी है। यदि बर्मा में शान्ति स्थापित हो गई तो भारत के लिये भी कम्यूनिस्टों का बढ़ता हुआ खतरा शान्त हो जायेगा और पूर्व दिशा से भारत सरकार निश्चिन्त हो सकेगी तथा बौद्ध संस्कृति का महत्वपूर्ण प्रदेश एक बहुत बड़ी विपत्ति से वंचित होकर अपना भविष्य कल्याणकारी बना सकेगा।

हिमाचल-बौद्ध-सोसाइटी

यह भारत की उत्तरी सीमा के बौद्ध निवासियों की संस्था है। इस संस्था के प्रमुख कार्यकर्त्ता डा० बी० एस० बोध एवं उनकी पत्नी श्रीमती लाज बोध हैं। गत कई वर्षों से ये लोग हिमाचल प्रदेश के पार्वतीय अञ्चलों में बौद्ध धर्म का प्रचार कर रहे हैं एवं कुछ स्थानीय उत्साही युवकों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय-सूची

के साथ मिलकर उत्तरी पंजाब के पिछड़े ... संगठित कर रहे हैं। यहाँ के व्यक्तियों के ... ऊँचा करने के लिए जहाँ बौद्ध धर्म के उपदेश ... श्यकता है, वहाँ शिक्षा तथा चिकित्सा का उचित ... एवं अन्य जीवनोपयोगी आवश्यक सामग्रियों की भी ... श्यकता है। आर्थिक कठिनाई एवं अन्य साधनों ... के कारण हिमाचल बौद्ध सोसाइटी की योजनाओं ... रूप में परिणत करने में इन्हें बहुत कठिनाई हो ... महाबोधि सभा ने इन दोनों कार्यकर्त्ताओं का ... सहायता ... प्रगति में आशातीत सफलता नहीं मिल ... इन सब कठिनाइयों का सामना करते हुए भी ... संसार ... ब और उनके सहयोगियों ने जो कार्य किया है, ... लिए वे बधाई के पात्र हैं। हम हिमाचल बौद्ध ... टी की उन्नति की कामना करते हैं।

... स्तूप के ... ल्ल में प्रतिष्ठित ... शेष पाया ... बोधि-अर्हत ... दिखाई पड़ा ... लिए हुए ... मारे चारों ... ऐसे विक ... शिव ...

महाबोधि सभा एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्कालीन ... बौद्ध धर्म के विचारों का आदान प्रदान करती है ... भारतीय धर्म-जगत् में भी एक महान् उथल पुथल मचा हुई है। भारतीय जनता विभिन्न रूढ़िवादी धर्मों से असन्तुष्ट होकर किसी अनिश्चित उद्देश्य की ओर अग्रसर हो रही है। वह जानना चाहती है कि किस कारण से भगवान् बुद्ध और अशोक के समय भारत अपने गौरव की चरम सीमा पर पहुँचा था। नालन्दा और तक्षशिला आदि भारतीय बौद्ध विद्यालयों की लोकप्रियता के कौन से विशेष कारण थे। अतएव वे बौद्ध तीर्थस्थानों का परिभ्रमण करते महाबोधि ... द्वारा आयोजित सभाओं में हजारों की संख्या में उपस्थित होते तथा सभा द्वारा प्रकाशित बौद्ध साहित्य का आग्रहपूर्वक अध्ययन करते हैं।

महाबोधि सभा की दातव्य संस्थाएँ दरिद्र भारतीय समाज की यथाशक्ति सेवा करती आ रही हैं। गरीब रोगियों की सेवा तथा समय समय पर कलकत्ता आदि स्थानों में सेवा-कार्य में सहायता प्रदान कर अनेक निराश्रितों को आश्रय तथा भूखों को अन्न एवं रोगियों को निःशुल्क चिकित्सा प्रदान करती रही है। भगवान् बुद्ध ने भी कहा है—"रोगी की सेवा करना मेरी सेवा है।"

वैशाख महोत्सव

प्रति वर्ष की भाँति भारतीय महाबोधि सभा द्वारा आगामी वैशाख पूर्णिमा २ मई '५० को बुद्ध गया सारनाथ, कुशीनगर, लुम्बिनी, दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास, बंबई, लखनऊ तथा सभा के अन्य सभी केन्द्रों में समारोह के साथ वैशाख महोत्सव मनाया जायगा, जिसके लिए लगभग ५०००) व्यय होंगे। इस पुनीत कार्य में हरेक दानी एवं धर्म-प्रेमी व्यक्ति को सहायता देकर पुण्य का भागी बनना चाहिए। जो सज्जन सहायता करना चाहें, वे निम्नलिखित पते पर अपनी सहायता शीघ्र भेजने की कृपा करें।

—देवप्रिय बलिसिंह
प्रधान मंत्री
सारनाथ, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
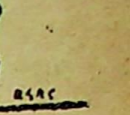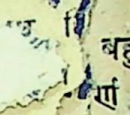
तथागत तथा अग्रश्रा[illegible] बर्मा यात्रा

भगवान् बुद्ध और उनके प्रधान शिष्य [illegible] मौद्गल्यायन की पवित्र अस्थियाँ गत ३ फरवरी [illegible] महाबोधि सभा के प्रधान कार्यालय कलकत्ता [illegible] लिए प्रस्थान कीं। उस समय उनके प्रस्था[illegible] उपलक्ष में एक शानदार उत्सव मनाया गया। [illegible] अवसर पर बर्मा के प्रधान मंत्री श्री थाकिन नू एवं भारतस्थित बर्मी राजदूत भी उपस्थित थे। पवित्र अस्थियों और बोधि वृक्ष के पौधों को बर्मा ले जाने के लिए भारत सरकार की ओर से भारतीय नौसेना का 'तीर' नामक जहाज नियुक्त किया गया था।

अस्थियों को 'तीर' पर रखने से पूर्व महाबोधि सभा और बर्मी जनता द्वारा एक सजाधजा जुलूस निकाला गया। बर्मा के भारत स्थित राजदूत ने महाबोधि सभा द्वारा अस्थियों का भार अपने हाथ में लिया। धर्मराजिक विहार कलकत्ता में जनता द्वारा श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के हेतु श्री मौंगगी द्वारा अस्थियों का प्रदर्शन किया गया। सहस्रों व्यक्तियों के साथ श्री मौंगगी ने अपनी पत्नी सहित अस्थियों की पूजा की।

सन्ध्या समय बर्मा के प्रधान मंत्री ने महाबोधि सभा में आकर बर्मी राजदूत के हाथ से अस्थियों को लेकर समारोह के साथ उन्हें जहाज पर रखा। अस्थियों को जहाज पर रखने के लिए एक सुसज्जित वेदिका का निर्माण किया गया था।

महाबोधि सभा ने भिक्षु श्रीनिवास नायक स्थविर के नेतृत्व में अपना एक प्रतिनिधि-मण्डल अस्थियों के साथ बर्मा भेजा है, जिसमें भिक्षु संघरत्न और भिक्षु जिनरत्न भी [illegible] अस्थियों के बर्मा में प्रदर्शन काल तक [illegible] वहां ठहरेगा।

[illegible] भी अस्थि के साथ बोधिवृक्ष

[illegible] के प्रधान मंत्री श्री थाकिन नू के लंका भ्रमण [illegible] अवसर पर कैंडी स्थित भगवान् बुद्ध की "दन्त-अस्थि" को बर्मी जनता में प्रदर्शन के लिये बर्मा ले जाने का प्रबंध किया गया। बर्मा के प्रधान मंत्री ने अनुराधपुर, पोलोन्नरुव कैण्डी आदि तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया।

अपनी इस तीर्थ यात्रा का उद्देश्य बतलाते हुए माननीय मंत्री ने कहा कि बर्मा की वर्तमान अशान्ति धर्म की सहायता से ही दूर की जा सकती है। तक्षशिला से प्राप्त भगवान् बुद्ध की दन्त अस्थि को भारत सरकार ने लंका सरकार को प्रदान किया था। अस्थि एवं अनुराधपुर में अशोक पुत्री द्वारा लगाये गये महाबोधि वृक्ष के पौधों को बर्मा तक ले जाने का प्रबंध लंका सरकार तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा प्राप्त 'कीनिया' नामक जहाज से किया गया। पवित्र अस्थि और बोधि वृक्ष के पौधे गत् ३ फरवरी को लंका से बर्मा के लिए प्रस्थान किये।

अस्थियों का बर्मा में भव्य स्वागत

भारत एवं लंका से अस्थियों को बर्मा ले जानेवाले 'तीर' तथा 'कीनीया' नामक जहाजों के बर्मा पहुँचने पर अपार जन-समूह ने बड़े ही समारोह के साथ अस्थियों एवं भिक्षुओं का स्वागत किया। जहाजों के शुभागमन पर स्वागतार्थ एकत्रित जन समूह में बर्मा के राष्ट्रपति, मंत्रिमंडल के सदस्य तथा देशी एवं विदेशी कूटनीतिज्ञ भी उपस्थित थे।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अस्थियों को सुसज्जित मोटरों में रं... तक ले जाया गया। सड़क के दोनों तरफ ... ने अस्थियों को पुष्पाञ्जलि अर्पित की।

रंगून में अस्थियों के प्रदर्शन के बाद उ... मांडले, मौलमीन तथा चीन हिल्स में प्रदर्शन के ... जाया जायगा।

बर्मा में धर्म-प्रचार की नई प्रगति

बर्मा के निवासियों में दिन प्रतिदिन बौ... अखिल विश्व में प्रचार करने की अ... है। इस उद्देश्य की अनेक संस्थायें ... में प्रतिष्ठित ... परन्तु जगत के अन्य भागों से उचित ...शेष पाया ... अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के अभाव से इन सं... में यथेष्ट बाधा पहुँची है। आजकल सं...कालीन ... भागों में बौद्ध संघों की स्थापना एवं सहयो... कार्य में कुछ प्रगति दिखायी पड़ती है, जिससे ... की जाती है कि निकट भविष्य में ही बर्मा अपने अमूल्य साहित्य भण्डार द्वारा 'थेरवाद' पर प्रकाश डालेगा।

इस कार्य के लिए एक नई संस्था गत २२ जनवरी को गठित की गई। सूल पेगोडा में हुई गत बैठक में यह घोषणा की गई है कि उक्त संस्था के संचालन के लिये कोष प्रकाशन-गृह, पुस्तक बिक्री केन्द्र एवं कार्यालय गृह इत्यादि का प्रबन्ध हो चुका है। उक्त घोषणा अनागारिक पी० सुगतानन्द द्वारा की गई है, जो अपने सतत् प्रयत्न द्वारा विभिन्न देशों से संस्था के लिये धन एकत्रित करने एवं बर्मा का संसार के अन्य देशों से धार्मिक सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं।

संस्था का नामकरण अभी तक नहीं हुआ है, उसका मुख्य उद्देश्य धार्मिक बर्मी लेखकों तथा कवियों के लेखों का अंग्रेजी में अनुवाद, अध्ययन एवं वादविवाद दलों का गठन, व्यख्यान आदि का प्रबन्ध, पाक्षिक पत्रिकाओं तथा 'लोक हित समितियों' की स्थापना कर बौद्ध धर्म का प्रचार करना है। 'उद्योग' 'शील' और 'मैत्री' ही इसका एक मात्र आदर्श होगा। आशा है समस्त बौद्ध जगत इस संस्था का हृदय से स्वागत करेगा।

...ते हैं, अंग्रेजी में नियमित विद्यालय त... प्रचार के हेतु व्याख्यान देने एवं वादविवा... संसार ...क कार्य-क्रम बना लिया गया है।

... 'बुद्ध-सासन लोक हित समिति' के अध्यक्ष श्री ...गतानन्द ने धर्म प्रचार कार्य में सहायता प्रदान करने ... अपनी इच्छा प्रगट की है एवं अभी और ... ...ी आवश्यकता है। अनेक व्यक्ति अनुवाद ... हुए हैं एवं आशा है कि श्री लेडी सयाडो द्वा... ...मारे चारों के अंग्रेजी में शीघ्र ही प्रकाशित हो जायेंगी। ऐसे विक... पर प्रकाश डालने के लिए बर्मा में साहित्य ... ...विश... वृहत् भण्डार है जिसका पता विश्व को अभी तक नहीं है और इस कार्य के सम्पादन का भार बर्मा बौद्ध मिशन के ऊपर है, ताकि सारा विश्व बर्मा के इन अमूल्य बौद्ध साहित्य भण्डारों से कुछ लाभ उठा सके। बौद्ध धर्म के इन प्रकाश पुञ्जों का बर्मा तक ही सीमित रहने के कारण बर्मा के बाहर उसका प्रकाश नहीं फैल सका है। अब वह समय आ गया है, जब बर्मा अपने इस प्रकाश पुञ्ज एवं ज्ञान भण्डार को विश्व में बिखेर कर प्रेम और करुणा का प्रचार करने में सहायक हो सकेगा। अतएव यह कहा जा सकता है कि बर्मा का बौद्ध साहित्य प्राणि-मात्र को एक उज्ज्वल प्रकाश का दान कर उसे शान्ति प्रदान कर सकने में सफल हो सकेगा।

लंका के अनुराधपुर से प्राचीन बुद्ध मूर्तियों की प्राप्ति

अनुराधापुर के प्राचीन स्तूप के चारों ओर स्थित पाषाण की प्राकार के पुनरुद्धार का कार्य एक पुनरुद्धार सोसाइटी द्वारा किया जा रहा है। कुछ दिन हुए मजदूरों ने कुछ पत्थरों को हटाकर भगवान् बुद्ध की दो सुनहली प्रतिमायें प्राप्त कीं।

कहा जाता है कि इस पवित्र प्राचीन नगर से प्राप्त मूर्तियों में ये सबसे सुन्दर हैं। एक मूर्ति ताँबे की बनी हुई है। परन्तु दूसरी देखने में बिल्कुल स्वर्ण जैसी लगती

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

...न्वित एक बैठक में गत १६ अक्टूबर ...याँ श्री सीरिल डे सोयजा कोषाध्यक्ष निर्वाचित ...यीं ?

...सिद्धान्त...

"पालि भाषा का ज्ञान हमारी ... हिन्दी के साथ एक अति सरल पाठ...

समाधि मुद्रा का इन मूर्ति... एक ... ९ः इञ्च चौड़ी एवं १५ पौंड भारी है और दू... आकार की है। इन मूर्तियों की निर्माण कला ... ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये मूर्तियाँ २ री ... शताब्दी में निर्मित हुई थीं।

अखिल विश्व बौद्ध सम्मेलन

अखिल सिंहल बौद्ध कांग्रेस की २९ वीं वा... में गत १९४७ के दिसम्बर मास में एक अखिल ... सम्मेलन करने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत ... था। तदनुसार विश्व बौद्ध सम्मेलन की प्रारम्भिक बै... में बौद्ध जगत का पूर्ण प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के हेतु एक कार्यकारिणी समिति गठित की गई थी। समिति ने आगामी मई मास में सिंहल द्वीप में सम्मेलन की प्रथम बैठक बुलाने का निश्चय किया है। जो एक सप्ताह से दस दिन तक होती रहेगी। प्रथम दो या तीन दिनों में विभिन्न देशों से आये हुए प्रतिनिधि अपने-अपने देशों में बौद्ध-धर्म की प्रगति और कार्य-क्रमों की रिपोर्ट बैठक के सम्मुख उपस्थित करेंगे। तदुपरान्त आगन्तुक प्रतिनिधिगण अनुराध-पुर, पोलोन्नरुव आदि प्राचीन बौद्ध नगरों के ध्वंसावशेषों के अतिरिक्त लंका के अन्य तीर्थ-स्थानों का भ्रमण करेंगे। लंका में होने वाले बौद्ध उत्सवों में भाग लेने के लिये प्रतिनिधियों को आवश्यक सुविधायें भी प्रदान की जायेंगी। उक्त अवसर पर अधिकारियों की अनुमति प्राप्त होने पर भगवान् बुद्ध की 'दाठाधातु' का भी प्रदर्शन किया जायगा। प्रतिनिधियों की सम्मति से कार्य-क्रम में सुविधानुसार परिवर्तन भी किया जा सकता है।

बैठक समाप्त होने पर प्रतिनिधियों के लिए भारत के प्राचीन बौद्ध भग्नावशेषों एवं तीर्थ-स्थानों की यात्रा का भी प्रबन्ध किया जा सकता है। लंका में प्रतिनिधियों के ठहरने का प्रबन्ध वहाँ के बौद्ध निवासियों द्वारा किया जायगा और उन्हें बौद्ध गृहों में रहने की सुविधा प्रदान

अमेरिका में बौद्ध धर्म का प्रभाव

...न के एक प्रमुख धार्मिक नेता एवं जापान की ...राज्ञी के संबंधी श्री एबोट कोबो ओटानी अपनी ... अमेरिका का भ्रमण करके लौटे हैं। आप ...न्य प्रमुख व्यक्तियों के अतिरिक्त श्री हेलेन केलर ... भेंट की। उन्होंने प्रेस संवाददाताओं ... में बौद्ध धर्म का प्रभाव दिन प्रति-... हुआ ... आगे उन्होंने कहा कि अमेरिकी ...पुस्तकालयों में बौद्ध धर्म के ग्रन्थों का ...न पुस्तकों को जापान से पाना भी ...उन पुस्तकों को अमेरिका के पुस्तकालयों में ...देख कर हमें आश्चर्य हुआ।

पत्रकार ने प्रव्रज्या ग्रहण की

सुप्रसिद्ध अंग्रेज लेखक श्री रोनाल्ड रोज ने रतगम (लंका) द्वीपाश्रम में वास करनेवाले श्री ज्ञानातिलोक नायक स्थविर से गत मास में प्रव्रज्या ग्रहण की।

वे इङ्गलैंड में रहते समय ही बौद्ध धर्म का अध्ययन करने में लगे थे तथा उनका झुकाव बौद्ध धर्म की ओर बहुत दिनों से था। वे प्रव्रज्या से छः मास पूर्व लंका द्वीप में पधारे थे और वहाँ भी अपने धार्मिक अध्ययन को बढ़ाने में लगे रहे।

अफगानिस्तान में दो सौ फीट ऊँची बुद्ध मूर्ति

अभी हाल में हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में अपने देश का प्रतिनिधित्व करते हुए अफगानिस्तान के प्रधान श्रमसंचालक श्री अब्दुसत्तार शलाजी ने कहा—अफगा-निस्तान बौद्ध-भग्नावशेषों से भरा हुआ है, जो यह बतलाते हैं कि इस्लाम स्वीकार करने से पूर्व अफगानिस्तान निश्चय ही एक बौद्ध देश रहा होगा।

उन्होंने कहा कि संसार की सबसे बड़ी पाषाण प्रतिमा अफगानिस्तान में है और वह भगवान् बुद्ध की है। काबुल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से अस्सी मील दूर बाम्यान की उपत्य... पार्श्व में ठोस चट्टानों पर खुदी हुई भग... विशाल प्रतिमायें हैं। प्रत्येक की ऊँचाई दो... अधिक है एवं पोलोन्नरुव की बुद्ध प्रतिमा के सदृश... पड़ती है। इसके अतिरिक्त अन्य बौद्ध स्तूपों ... मंदिरों के भग्नावशेष भी मौजूद हैं।

श्री शलाजी ने आगे कहा कि उनकी सर... तीर्थयात्रियों एवं पुरातत्व अनुसन्धानी वि... स्वागत करेगी। अप्रैल से लेकर सितम्बर... समय अफगानिस्तान भ्रमण के लिए... वर्ष के दूसरे भागों में वहाँ ... पड़ती है।

तिब्बती चित्रकला का सारनाथ...कालीन ...

मध्य और पश्चिमी तिब्बत के प्राचीन म... मठों का लगभग दो वर्ष तक खोज करने के बाद लामा गोविन्द अपनी पत्नी ली गौतमी गोविन्द के साथ भारत लौटे हैं। वे लोग अपने साथ प्राचीन तिब्बत की राजधानी नागराङ्ग से अजन्ता शैली में अङ्कित बहुमूल्य चित्रपटों की प्रतिलिपियाँ ले आये हैं।

बम्बई जाते हुए इन दोनों पर्यटकों ने सारनाथ में कई दिन व्यतीत किया। इस अवधि में यहाँ के आश्रम वासियों, अतिथियों और महाबोधि विद्यालय के शिक्षकों तथा छात्रों को तिब्बत की कला, सामाजिक तथा धार्मिक जीवन से परिचित कराया। पर्यटकों ने अपनी मानसरोवर (प्राचीन बौद्ध जगत का अनोतत्त झील) यात्रा में कैलाश पर्वत की परिक्रमा एवं एक १९,००० फीट की ऊँची चोटी को पार करने के लोमहर्षक तथा चित्ताकर्षक वृत्तांत का वर्णन किया। रास्ते में जहां उन्हें साधु लामाओं से प्रेमपूर्ण व्यवहार मिला, वहाँ डाकुओं तथा तिब्बत के कठिन शीत का सामना भी करना पड़ा था। उनकी इस यात्रा का परिणाम उन शताब्दियों के महत्वपूर्ण अन्वेषणों में अपना स्थान प्राप्त कर सकता है तथा आशा है कि उनके अन्वेषण प्राचीन भारतीय-तिब्बत बौद्ध कला का इतिहास प्रदान करने में समर्थ हो सकेंगे।

अखिल विश्व विशेषतः भारत को अपने अनुसंधान ... तथा ... एकत्रित किये जा सकें) की स्थापना कर इन ... फिर से धार्मिक तथा सांस्कृतिक संबन्ध ... करना है।

सारनाथ जहां भगवान् बुद्ध ने सर्वप्रथम अपना धर्म-प्रवर्त्तन किया था तथा जहाँ तिब्बत और विश्व के ... होने से प्रतिवर्ष हजारों तीर्थ यात्री भ्रमण के लिए ... हैं, (विशेषकर जहाँ एक बौद्ध विश्वविद्यालय ... करने का विचार वर्षों से हो रहा है) इस ... केन्द्र के लिये सर्वोत्तम स्थान होगा। आशा है ... सरकार इस पुनीत कार्य में धन और जन से सहायता कर सारनाथ में इस प्रकार की एक समिति स्थापित करेगी।

दक्षिण भारत में बौद्ध धर्म पर प्रकाश

महाबोधि सभा मद्रास के एगमोर स्थित धर्मपाल-मन्दिर में आयोजित एक सार्वजनिक सभा में राष्ट्रभाषा विशारद श्री नीलवक सोमानन्द स्थविर ने बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला। तदन्तर एकत्रित श्रोताओं की सुविधा के लिए उन्होंने अपनी वक्तृता का सारांश तामिल में भी सुनाया।

इसके अतिरिक्त महाबोधि सभा के श्री धर्मज्योति जी ने भी भाषण दिया।

थाई-मंत्री का आगमन

भारत स्थित थाई-मंत्री माननीय श्री एल० फीनीत अक्षोन ने भारतीय महाबोधि सोसाइटी के केन्द्रिय कार्यालय का निरीक्षण किया। मंत्री महोदय ने पवित्र अस्थियों को श्रद्धांजलि एवं पुष्पाञ्जलि अर्पित की। सभी भिक्षुओं ने एकत्रित होकर माननीय अतिथि को आशीर्वाद देने के लिये 'मंगलसुत्त' का पाठ किया।

सोसाइटी के प्रधान मंत्री श्री देवप्रिय वलिसिंह ने मन्त्री महोदय का स्वागत करते हुए कहा कि थाईलैंड और भारत प्राचीनकाल से ही धर्म, कला और साहित्य के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य पं० [illegible]

सरल [illegible]

विद्वान [illegible]

"पालि भाषा का ज्ञान हमारे [illegible] लिए हिन्दी के साथ एक अति सरल पाठ [illegible] के कार्य में [illegible] राजवंश [illegible] प्रात [illegible] उल्लेख करते हुए कहा कि मंत्री महोदय [illegible] बहु [illegible] महाबोधि सभा और थाइलैण्ड के बौद्धों में पर [illegible] के एक नये अध्याय के शुरू होने की आशा है। [illegible] वर्ग।

मंत्री महोदय ने अपने स्वागत के लिये धन्यवाद [illegible] सज्जन के [illegible] में हुए कहा कि थाइलैण्ड की सभ्यता बौद्ध धर्म की [illegible] है। इसके उपदेशों ने जन साधारण की बहुत [illegible] की है। सोसाइटी द्वारा बौद्ध धर्म की अपनी [illegible] प्रत्यावर्त्तन के प्रयत्न को संतोषजनक बतलाते [illegible] महोदय ने इस पवित्र कार्य में सहयोग प्रदान [illegible] वचन दिया।

भारत वर्ष 'धर्म' का अनुसरण करेगा

भारत के प्रधान मंत्री पं० नेहरू ने गत अमेरिका भ्रमण के समय बैंकूवर के नागरिकों की एक सभा में भाषण देते हुए कहा कि अशोक नीति का द्योतक "धर्म-चक्र" के आदर्शों पर ही भारत अपनी राष्ट्रीय नीति निर्धारित करेगा।

वहाँ के नागरिकों द्वारा दिये गये एक प्रतिभोज की भोज्य-तालिका में धर्मचक्र नामक एक मिष्ठान भी सम्मिलित किया गया था। इस मिष्ठान्न की प्रशंसा करते हुए पं० नेहरू ने कहा कि भारत के राष्ट्रीय झंडे के प्रधान उद्देश्य धर्मचक्र के नाम का मिष्ठान्न की योजना कर स्वागत समिति एवं होटल अधिकारियों ने उनपर बड़ा ही मर्मस्पर्शी प्रभाव डाला है।

उन्होंने कहा कि इस धर्मचक्र से हमें सत्य और धर्म के मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा मिलती है। यह अशोक निर्मित स्तम्भ से लिया गया है। भारत इस धर्मचक्र द्वारा बताये हुए, उच्च आदर्शों का अनुसरण करना चाहता है। अशोक की जैसी सफलता भारत को फिर मिले अथवा नहीं, परन्तु वह महात्मा द्वारा बताये हुए सत्य-अहिंसा के कार्य-क्रम को यथाशक्ति अपनाने की चेष्टा करेगा।

[illegible]ली में सर्व धर्म सम्मेलन

[illegible] मास में दिल्ली में हुए सर्वधर्म सम्मेलन [illegible] की ओर से पं० भिक्षु सद्धातिस्स, स्वामी भिक्षु [illegible], अमेरिकन उपासिका धर्मदिन्ना तथा चीनी [illegible] प्रतिनिधि भाग लिए और बौद्ध धर्म पर महत्वपूर्ण [illegible] ये।

लाहुली बौद्ध सम्मानित

[illegible] स्थल सैनिक बेड़े के चार लाहुल (काँगड़ा) [illegible] को लद्दाख में की गई वीरता के उप- [illegible] ओर से गणतन्त्र दिवस के शुभा- [illegible] के बढ़ाए [illegible] ताब्दों में हुआ त [illegible] क' तथा 'वीर चक्र' नामक पदक [illegible] किया गया है। 'महावीर-चक्र' को [illegible] चन्द और ठाकुर कर्नल कुशलचन्द तथा [illegible] को सुबेदार भीमचन्द और लैएडस् नायक टोग्गी ने [illegible] किया है।

भिक्षु मेत्तेय्य का स्वर्गवास

हमें यह सूचित करते हुए अत्यन्त खेद हो रहा है कि सिंहल के वजिराराम विहारवासी भिक्षु मेत्तेय्य का गत १२ फरवरी को स्वर्गवास हो गया। आप एक अल्पेच्छ, सन्तोषी, संयमी, शीलवान और करुणा-मैत्री से पूर्ण भिक्षु होने के साथ-साथ एक अच्छे लेखक और कवि भी थे। आप एक उच्चकोटि के योगी और साधना में लगे रहने वाले तपस्वी थे। आपका जीवन सदा परोपकार और श्रद्धा-पूजन में ही व्यतीत हुआ। आपके अभाव से आज लंका द्वीप अपने एक आदर्श भिक्षु एवं कुलपुत्र से शून्य हो गया है। हम धर्मदूत परिवार की ओर से हार्दिक शोक प्रगट कर रहे हैं।

जापानी भिक्षु कुशीनगर में

जापानी भिक्षु श्री रीरी नाकायामा सारनाथ होते हुए गत फरवरी मास में शिवरात्रि के अवसर पर कुशीनगर गये और वहाँ एक सप्ताह रहकर तथागत की पूजा किये। जापानी बौद्धों की धारणा है कि भगवान् बुद्ध का महापरि-निर्वाण फाल्गुन मास में शिवरात्रि को ही हुआ था।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्री नाकायामा ने बुद्ध इएटर का... में बौद्ध धर्म" पर एक महत्वपूर्ण भा... वहाँ से लुम्बिनी, कपिलवस्तु तथा श्रावस्ती ... प्रस्थान किया।

कुशीनगर में बुद्ध जयन्ती सप्ताह का आयो...

इस वर्ष वैशाख पूर्णिमा के शुभावसर पर ... में १ मई से ६ मई तक बुद्ध जयन्ती सप्ताह ... वृहद् आयोजन किया जा रहा है। उक्त अवसर ... जयन्ती महोत्सव के साथ ही विराट् बौद्ध ... उद्योग, कृषि, व्यायाम और पशु प्र... होगा। कुशीनगर की खोदाई से प्रा... संग्रहालय से कुशीनगर प्रदर्शनी के ... जिनका आना सम्भव होगा। इस महो... के बौद्ध विद्वानों के अतिरिक्त माननीय मु... गोविन्द बल्लभ पन्त, शिक्षा तथा अर्थ मंत्री श्री ... भारत स्थित बर्मा राजदूत आदि भी सम्मिलित होंगे।

बुटौल के बौद्ध बिहार का वार्षिकोत्सव

गत माघ शुक्ल पञ्चमी के दिन बुटौल के बौद्ध विहार का प्रथम वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से हुआ। उक्त विहार को श्री बुद्धराज उपासक ने अपने दिवंगत पिता श्री पुण्यराज के आज्ञानुसार निर्मित कराकर गत वर्ष नेपाली भिक्षु-संघ को दान दिया था। इस शुभावसर पर भिक्षुओं और अनागारिकाओं को भोजन दान दिया। बुद्ध पूजा और रात्रि में ज्ञानमाला का भजन हुआ। कथिकोदय सभा द्वारा भाषण विजेत्री तीन बालिकाओं को पुरस्कार भी दिया गया। जिनमें प्रथम पुरस्कार कुमारी हर्ष शोभा, द्वितीयपुरस्कार ध्यानकुमारी और तृतीय पुरस्कार मिमकुमारी को प्राप्त हुआ।

...स्तूप ... में प्रतिष्ठित ... अवशेष पाया ... संग्... बोधि-अर्हत ... कालीन ...

...ङ्ग तोडुब लामा का देहावसान

...प्रधान लामा श्री छेरिङ्ग तोंडुब का गत जनवरी ... संसार ... देहावसान हो गया। आपका जन्म बर्ची ग्राम में ...८८४ ई० हुआ था। आप बौद्ध धर्म के पाण्डित्य के ...ई बार भूटान गये थे और भूटान से लौटने के पश्चात् ...बहुत वर्षों से लाहुल में रहकर धर्म का प्रचार कर ... दिखाई पड़ा ...लाहुल में आपके लगभग डेढ़ सौ शिष्य हैं। लामा ... लगे हुए ... और लामा कुङ्गा—जो आजकल सारनाथ में ... हमारे चारों ... आपके ही शिष्य हैं। हम इन वयोवृद्ध और धर्म- ... ऐसे विक... लामा के देहावसान से दुःख का अनुभव कर रहे हैं। ...शिवा...

भारतीय बौद्ध-बन्धुत्व

भारतीय बौद्धों को इस समिति की ओर से सूचित किया जाता है कि नैनीताल निवासी एक २५ वर्षीय बौद्ध तरुण के लिए एक हिन्दी पढ़ीलिखी कन्या की आवश्यकता है। तरुण आठवीं श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद टेकनिकल कोर्स पास कर इस समय इंजनीयरिङ्ग सेक्शन में काम कर रहा है। उसका मासिक वेतन २००) है। घर का भी सम्पन्न है। आशा है हमारे बौद्ध बन्धु इस आवश्यकता पर ध्यान देंगे और उक्त तरुण के विवाह का प्रबन्ध करेंगे।

पत्र-व्यवहार का पता —

मार्फत 'सम्पादक धर्मदूत,'

पो० बाक्स नं० १०, सारनाथ बनारस।

[पृष्ठ २९१ का शेषांश]

ज्ञान प्राप्त कर 'बुद्ध' बने। बुद्ध हो कर वे धर्म प्रचार करने लगे। थोड़े ही दिनों में भारतवर्ष के सभी राजा उनके अनुयायी हो गये। जब वे लौटकर कपिलवस्तु की ओर गये तब यशोधरा भी 'भिक्षुणी' बन गई। 'राहुल' भी भिक्षु हो गये।

भगवान् बुद्ध ने जिस बौद्ध धर्म का उपदेश दिया वह अत्यन्त ही सुन्दर और सर्वोत्तम था। यही कारण है कि आज भी बौद्ध धर्म के मानने वाले चीन, तिब्बत, लंका, जापान, भूटान, भारत, हिन्देशिया, नेपाल, बर्मा, सिक्किम, साइबेरिया, यूरोप, अमेरिका आदि सभी देशों में हैं। आजकल बौद्ध धर्म का प्रचार बड़ी तेजी के साथ हो रहा है। जान पड़ता है कि पुनः भारतवर्ष बुद्ध धर्म को स्वीकार करेगा और भारत में बौद्ध धर्म की पताका फहरेगी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य पं०

सरल

विद्वान

"पालि भाषा का ज्ञान हमारो
हिन्दी के साथ एक अति सरल पाठ

प्रातःकाल का समय था। भास्कर अपनी किरणों को लेकर अवतीर्ण हुआ था। खगगण अपने पंख फैला कर आकाश का आनन्द ले रहे थे। श्रावस्ती का दृश्य बड़ा ही मनोरम था। तथागत वहीं रहे थे।

राजा प्रसेनजित का युग था। राज्य में ध्वनि चारों ओर गूँज रही थी। ऐसा क्यों? डाकू के कारण। भगवान बुद्ध ने जंगल की एक कृषक ने आश्चर्य भरे स्वर में कहा—"अरे उधर कहाँ? वहाँ कोई नहीं जाता है—उधर ही अँगुलि-माल डाकू बास करता है। बड़े-बड़े बीर एवं पहलवान उसके आगे नत हैं। तुम तो दुबले पतले काषाय वस्त्रधारी हो। डाकू कैसे जीता छोड़ेगा?

भगवान बुद्ध ने हँसते हुए कहा—दुबला पतला अवश्य हूँ परन्तु वह मुझसे अधिक पहलवान नहीं है।

मार्ग के वृक्षों ने तथागत का स्वागत किया। पुष्पों ने कलियों का अवगुण्ठन हटा दिया। पत्ते मार्ग को पीले रंग से भर रहे थे। तथागत के पग बढ़ते ही जा रहे थे, मार्ग समाप्त होता जा रहा था। सूर्य देव के स्वर्ण कलश पर उज्ज्वल वर्ण चढ़ता जा रहा था।

भयानक जंगल के ठीक मध्य में एक कुटी थी। वहाँ कोई नहीं था। कैवल हिरन के शावक परस्पर-चौकड़ी भर कर खेल रहे थे। पक्षी चहचहा कर तथागत का अभिनन्दन कर रहे थे। एक भयङ्कर मानव बड़े उच्च स्वर में ठहाका मार कर हँसने लगा। भगवान् बुद्ध ने चतुर्दिक दृष्टि फेर कर देखा। कुटी के भीतर से हँसने का स्वर आ रहा था।

"अरे! बुड्ढा योगी उधर क्या देखता है? यहां तक आने का साहस तूने कैसे किया? यहां तो शूरमा लोगों का साहस भग जाता है। अच्छा स्मरण कर! स्मरण कर!! अब तुम्हारी मृत्यु सन्निकट है—डपट कर डाकू ने कहा।

कर उसने धनुष पर तीर चढ़ा चलाना प्रारंभ [illegible] भगवान बुद्ध एक स्थान पर खड़े हो गये। भगवान [illegible] हास्य से हँसते हुये कहा—"तू तीर शक्ति भर [illegible] आश्चर्य में पड़ गया। क्रोध में भर कर [illegible] रा। ऐ! बात क्या है—धनुष पर [illegible] हुआ तथापि ओ हो! मुझसे चला भी नहीं जाता [illegible] अरे मानव तू खड़ा रह! खड़ा रह!! [illegible] पहले ही से खड़ा हूँ।

[illegible] झूठ बोलता है—कहीं साधु झूठ बोलता है।"

[illegible] सत्य भाषण कर रहा हूँ अंगुलिमाल!"

[२]

डाकू भगवान के चरणों पर गिर पड़ा। उसने कहना प्रारम्भ किया—"हे! भगवान्! मैं अब तक अशुद्ध मार्ग में ही पड़ा रहा। अब मेरा उद्धार करने वाला कोई नहीं। संसार मेरे ऊपर कैसे विश्वास करेगा?"

तथागत ने अपनी वाणी से अमृत बरसाते हुए कहा—"अंगुलिमाल तू सचमुच इन्हीं कुकृत्यों में सुख समझता था। ये भौतिक सुख नश्वर शरीर के लिए तो सुखदाई प्रतीत होते हैं। परन्तु यथार्थ में अत्यन्त कष्टदाई हैं। मनुष्य पापों का बदला पाप से लेता है तथा पुण्य का बदले निर्वाण प्राप्त करता है, पुनः संसार सागर में डुबकियाँ लगाने का उसे अवसर ही नहीं मिलता।

अंगुलिमाल तुम्हारे ऊपर बुढ़ापा का साम्राज्य व्यापेगा। जवानी ढल जायेगी, झुर्रियां पड़ जायेगी। सारी सुन्दरता झुर्रियों में परिणत हो जायेगी तब तुम क्या करोगे? तुम इस समय अपने आगे किसी को नहीं समझते हो, सबको मृत्यु के घाट उतारते हो। वृद्धावस्था में यदि कोई मारे तो ... ।

भगवान बुद्ध कहते ही जा रहे थे कि अंगुलिमाल ने अश्रुकणों से पैर को धोना प्रारंभ कर दिया। कमलवत्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चरण धुल गये। हृदय का काला ... हो गया।

(३)

"अरे ! यह कौन ?" श्रावस्ती के एक ना... कहा। "यह तो अंगुलिमाल डाकू है।" दूसरे ने "यह ढोंग, डाकू महाराज भिक्षु हैं, चीवर लेकर के पीछे घूम रहे हैं।" तीसरे ने मुँह बनाकर ... फिर क्या था ? चारों ओर से ढेलें तथा कं... प्रारम्भ हो गये। अङ्गुलिमाल के सिर से रुधिर बह चली। वह धराशायी हो गया। उ... के शब्द नहीं आ रहे थे, बल्कि वह ... में प्रतिष्ठित ...

अंशुमाली अपने स्वर्ण-रश्मियों ... शेष पाया ... था। सन्ध्या काली रजनी का आह्वान ...

...को अंगुलिमाल ने भी निर्निमेष नेत्रों से ... स्वर में हँसते हुए कहा—

बुद्धं सरणं गच्छामि !
धम्मं सरणं गच्छामि !!
संघं सरणं गच्छामि !!!

... विहार के भिक्षु तथा श्रावस्ती के नागरिकों ... में कहा—
"...मारे चारों ...लिमाल डाकू नहीं भिक्षु है।"

...वोन

श्रीरामवचन सिंह 'आनन्द'

दूर करो मानव-उर-भ्रम हे !
गूँजे सद्-मन्त्रों से नभ-थल
मिटे कुटिल नीति के शृंखल
हटें कपट-छल-अहम्-भावना
जगती के आँगन से शतदल
जागो अब जागो हे गौतम !

इस विप्लव के निशा तिमिर में
शोषित जगती के तृण घर में
बन्धु - भावना, ऐक्य जगाते
मानव-मानव के अन्तर में
उगो आज तुम रवि-अनुपम हे !

जर्जर-युग के भाव अमंगल
हों परिणत पावन में पल-पल
सत्य - अहिंसा - ध्वजा - निरंजन
लहरे अनिल अखिल-क्षितिमंडल
नष्ट करो अन्तस के तम हे !
जागो अब जागो गौतम हे !

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य पं०

भरत...

विद्वान...

"पालि भाषा का ज्ञान हमारो... ...ए हिन्दी के साथ एक अति सरल पाठ...

गौतम बुद्ध का जन्म उत्तर भारत में ... नामक नगर में हुआ था। उनके पिता वहाँ के ... वे बड़े प्रतापी और पराक्रमी थे। राजा का नाम ... शुद्धोदन था। उनकी पत्नी महामाया बड़ी ही साध्वी ... विदुषी थी। इन्हीं माता-पिता के गौतम बुद्ध ...

गौतम बुद्ध का पहला नाम सिद्धार्थ ... उत्पत्ति के पूर्व से ही चमत्कार दिखाई देने लगे ... ये अपनी माँ की कोख में आये तभी इनकी माँ ने ... देखा कि उनके पेट में एक हाथी का सफेद ... प्रवेश किया है। पण्डितों से पूछने पर मालूम हुआ कि यह चक्रवर्ती पुत्र पैदा होने का लक्षण है। यह सुनकर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि उन्हें कोई पुत्र न था।

सिद्धार्थ कुमार जब उत्पन्न हुए, तब मनुष्यों का भाग्य खुल गया। कहते हैं नाना प्रकार के सुखों से संसार समृद्ध होने लगा। सयाने होने पर यह गुरु के पास पढ़ने के लिए भेजे गये। विद्याध्ययन करने के बाद राजा ने उन्हें युवराज बनाया। किन्तु उनका मन सांसारिकता में नहीं लगता था। वे प्रायः विरक्त और चिन्ता निमग्न रहते थे। वे संसार के दुःखों को देख नहीं सकते थे। किसी को दुःखी देख कर मानों उन्हें ही दुख हो आता था। एक बार की बात है कि उनका चचेरा भाई देवदत्त सन्ध्या के समय आकाश में उड़ते हुए एक हंस को मार गिराया। हंस को तड़पते हुए देख कर सिद्धार्थ का हृदय भी तड़प उठा। उनसे नहीं रहा गया वे जा कर हंस को उठा लए और बहुत ही करुणा से देख कर पुचकारने लगे। उन्होंने तीर निकाल दी। उन्हें उस समय विचार होने लगा कि यदि तीर मुझे लगी होती तो कैसा दुःख होता? उसकी तीखी वेदना को अनुभव करने के लिए उन्होंने उस तीर को अपने अङ्ग में भी धँसा ली। कवि रामचन्द्र शुक्ल ने इसी पर लिखा है—

...चि लीनी निठुर शर करि यतन बारंबार।
...पै धरि जड़ी बूटी कियो बहु उपचार॥
...एवे हित पीर कैसी होति लागे तीर।
...प्रसाय सो शर आप खोलि शरीर॥

... कर देवदत्त को बड़ी चिढ़ लगी। ...ता ... हुआ तथापि शिकार मांगा, किन्तु सिद्धार्थ ने न ... के पास गये। राजा ने फैसला कर ... र्थ को ही दे दिया। यह तो रही शिकार ... सिद्धार्थ सब पर ही करुणा करते थे।

... सब बातों से राजा को दुःख होता था, इसके कारण उन्होंने छोटी अवस्था में ही सिद्धार्थ कुमार का 'यशोधरा' नामक परम सुन्दरी कन्या से विवाह कर दिया और नाना प्रकार की सुख सामग्रियों के साधनों को एकत्र कर दिया ताकि सिद्धार्थ कुमार विरक्त न हों, किन्तु सिद्धार्थ का मन घरबार में नहीं लगता था। वे इन मोह-माया की झंझटों से सदा दूर रहना चाहते थे। इसी बीच एक दिन वे नगर से होकर उद्यान की ओर भ्रमणार्थ रथ से जा रहे थे, कि मार्ग में उन्हें एक रोगी, वृद्ध, मृतक और संन्यासी दिखाई दिये। पहले के तीन दुःखान्त बातों को देख कर उन्हें संसार से विरक्ति उत्पन्न हुई और अन्तिम को देख कर घरबार छोड़ देने की प्रतिज्ञा ही कर लिए। वे उस सारे ऐश्वर्य को छोड़ कर घर से निकल भागने का उपाय ढूँढ़ने लगे। उन्हें स्त्री, माता, पिता और अपने कुटुम्बियों का ममत्व जाता रहा। इसी बीच 'राहुल' नामक उन्हें एक पुत्ररत्न भी प्राप्त हुआ। अब उनकी चिन्ता और भी बढ़ी। वे एक दिन रात के समय सोती हुई स्त्री और सोते हुए बच्चे को त्याग कर निर्मोही पथिक की भाँति घरबार छोड़ जंगल की राह ले लिए।

वे कपिलवस्तु से चल कर बुद्ध गया की ओर गये और वहाँ छः वर्षों तक कठोर तपस्या किये और अन्त में

[शेषांश पृष्ठ २८८ पर]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय-सूची

घोषणा

केवल वाचनालयों के लिए बम्ब
बिक्री की सलाह देने वाली संस्था एजें
घोड बन्दर रोड, मलाड ने हमें २००१ रुप
पूर्वक इसलिए भेजा है कि हम हिन्दुस्तान के
वाचनालयों को सुप्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय साप्ताहिक

जनवाणी

७) सालाना के बजाय ५) रुपये में दें। व
के पदाधिकारी के दस्तखत का पत्र आना

देश के सबसे बड़े
अमृत बाजार पत्रिका द्वा

सम्पादक—सूर्यनाराय

२, गोराकुण्ड, इन्दौर सिटी

स्तूरा
ष्ठ में प्रतिष्ठित
सन्तोष पाया
बोधि—अर्हन्त
कालीन

तीय संस्कृति का संदेशवाहक

संसार समृद्धि एवं एकात्मता का पुरष्कर्त्ता

ष्ठ कलात्मक साहित्य से भरपूर

ष्ट्रभाषा हिन्दी में अनुपम प्रयास

दिखाई पड़ा
ले हुए
मारे चारों
ऐसे विक
शिवा

वें—
क—९ मा०
, ४॥। आ०
—३ आने

व्यवस्थापक—'युगधर्म'
वाकर रोड—नागपुर २

राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रथम प्रयास

प्रमुख राष्ट्रीय मासिक पत्रिका

इ ति हा स

- ऐतिहासिक गवेषणात्मक लेख
- भारतीय संस्कृति व विचार प्रणाली पर विचार
- सामयिक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्या
- सुन्दर सुरुचिपूर्ण कहानी
- ओजस्वी कविता विभिन्न चित्रों से सुशोभित

१५ अगस्त सन् १९४८ से पत्र का लगातार प्रकाशन हो रहा है। किसी भी अंक से आप ग्राहक हो सकते हैं। एक प्रति का मू० ।।) । वार्षिक शुल्क ५), वाचनालयों एवं शिक्षणालयों से रियायती ४)। शीघ्र ही स्वयं तथा अपने मित्रों को वार्षिक ग्राहक बना भारतीय इतिहास के प्रचार में सहायक हों। अभिकर्ता और विज्ञापनदाता निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें।

इतिहास कार्यालय, कटरा बड़ियान, दिल्ली।

कृषि सम्बन्धी विषयों का सचित्र हिन्दी मासिक

'कृषक'

सम्पादक – माणिकचन्द्र बोन्द्रिया B. Sc. [कृषि]

वार्षिक मूल्य ९) एक अंक ।।।)

जिसमें आपको खेती, पशुपालन, दुग्धोत्पादन, जंगल, खाद्य पदार्थ व उनका पौष्टिक महत्व, उद्योग-धंधे, ग्राम-सुधार, सहकारिता पर लेख तथा चित्र और व्यंग चित्र आदि मिलेंगे।

सभी प्रान्तों के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कालेजों और लायब्रेरियों के लिये स्वीकृत है।

'कृषक' का शानदार विशेषांक ग्राहकों को भेंट कर दिया जायगा।

देश के नेताओं से प्रशंसा प्राप्त !!

खेती की तरक्की में सच्ची मदद करने वाला !!!

ग्राम पंचायत, स्कूलों, कालेजों, लाइब्रेरियों और विद्यार्थियों से ७) वार्षिक मूल्य लिया जायगा।

व्यवस्थापक,

कृषक कार्यालय, घाट रोड, नागपुर २

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य पं०

सरल

विद्वान ... नों !

"पालि भाषा का ज्ञान हमारो ...

... हिन्दी के साथ एक अति सरल पाठ ...

न तो मैं कोई ... हूँ, न काई ... न वैद्य ही जानती हूँ, बल्कि आप ही की तरह एक गृहस्थ स्त्री हूँ। विवाह ... दुर्भाग्य से मैं लिकोरिया (श्वेत प्रदर) और मासिकधर्म के दुष्ट रोगों में फँस ... कधर्म खुलकर न आता था। अगर आता था तो बहुत कम और दर्द के ... दुःख होता था। सफेद पानी (श्वेत प्रदर) अधिक जाने के कारण मैं प्रतिदिन ... चेहरे का रंग पीला पड़ गया था, घर के कामकाज से जी घबरा... , कमर दर्द करती और शरीर टूटता रहता था। मेरे पतिदेव ने ... औषधियाँ सेवन कराई परन्तु किसी से भी रत्ती भर लाभ न हुआ ... दो वर्ष तक बड़ी दुःख उठाती रही। सौभाग्य से एक सन्यासी महात्मा ... पर भिक्षा के लिए आये। मैं दरवाजे पर आटा डालने आई तो महात्मा जी ने मेरा मुख देखकर कहा—बेटी, तुझे क्या रोग है, जो इस आयु में ही चेहरे का रङ्ग रुई की भाँति सफेद हो गया है? मैंने सारा हाल कह सुनाया। उन्होंने मेरे पतिदेव को अपने डेरे पर बुलाया और उनको एक नुस्खा बतलाया, जिसके केवल १५ दिन के सेवन करने से ही मेरे तमाम गुप्त रोगों का नाश हो गया। ईश्वर की कृपा से अब मैं कई बच्चों की माँ हूँ। मैंने इस नुस्खे से अपनी सैकड़ों बहिनों को अच्छा किया है और कर रही हूँ अब मैं इस अद्भुत औषधि को अपनी दुःखी बहिनों की भलाई के लिए असल लागत पर बाँट रही हूँ इसके द्वारा मैं लाभ उठाना नहीं चाहती क्योंकि ईश्वर ने मुझे बहुत कुछ दे रखा है।

यदि कोई बहिन इस दुष्ट रोग में फँस गई हों तो वह मुझे जरूर लिखें। मैं उनको अपने हाथ से औषधि बनाकर वी० पी० पार्सल द्वारा भेज दूँगी। एक बहिन के लिए पन्द्रह दिन की दवाई तैयार करने पर २॥।=) दो रुपये चौदह आने असल लागत होती है महसूल डाक अलग है।

जरूरी सूचना—मुझे केवल स्त्रियों की इस दवाई का ही नुस्खा मालूम है। इसलिये कोई बहिन मुझे और रोग की दवाई के लिये न लिखें।

प्रेम प्यारी अग्रवाल, नं० (३२२) बुढलाडा,

जिला हिसार (पूर्वी पञ्जाब)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय-सूची

"हमारी बात" का

गांधी संदेश अंक

पुस्तक रूप में

महात्मा जी की विचार-धारा का अभूतपूर्व, संक[illegible]

यू० पी०, मध्यप्रांत तथा मद्रा[illegible] शिक्षा-विभागों द्वारा स्वीकृत [illegible] अन्य प्रांतों में भी स्वीकृति [illegible]

मूल्य १) अपनी कापी आज [illegible]

यदि आप वर्तमान भारत [illegible] समस्याओं को वैज्ञानिक [illegible] समझना चाहते हों तो पढ़िये

'हमारी बात लेखक मण्डल' के द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली

दो महत्वपूर्ण पुस्तकें—

भारतीय समाजवादी पार्टी स्वर्ग या नर्क की ओर

और

यदि आज मार्क्स जीवित होते,

(लेखक श्री गोपीनाथ दीक्षित)

प्रत्येक पुस्तक की पृष्ठ संख्या १०० और मूल्य १) सुन्दर और मोटे कागज पर छप रहा है, और दोनों कई व्यंग तथा कलात्मक ढंग से बने हुए रेखा-चित्रों से परिपूर्ण हैं।

मिलने का पता—व्यवस्थापक, 'हमारी बात' हजरतगंज, लखनऊ।

[illegible] रिक प्रियदर्शी सु[illegible] [illegible]न्होंने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।......

[illegible]य के महान् मर्मज्ञ श्रीअयोध्याप्रसाद [illegible] की दीर्घकालव्यापी साधनाः—

शेर ओ-शायरी ८)

[illegible] पंक्ति पंक्तिसे संकलयिताकी अंतर्दृष्टि और [illegible]ययनका परिचय मिलता है। हिन्दीमें [illegible]जन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है।

[illegible] और विलक्षण साहित्यकार [illegible] श्री द्विवेदी की जीवन-झाँकी :—

पथचिह्न २)

मनोरम भाषा, मर्मस्पर्शी शैली...

लेखक ने पंक्ति पंक्ति में अपना हृदय उधेड़ दिया है

प्रबुद्ध विद्वान् और ओजस्वी ग्रंथकार डॉ० जगदीशचन्द्र जैन की प्रासादिक कृत :—

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ ३)

जन परम्परा के मनोरंजक उपख्यान...

शैली सरल और सुबोध...

जैन शासन ४।)

जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन करानेवाली सुन्दर कलाकृति।

कुन्दकुंदाचार्य के तीन रत्न २)

* कुन्दकुन्द स्वामीके पंचायितकाय, प्रवचनसार और समयसार इन तीन महान् आध्यात्मिक ग्रन्थों का हिन्दी में विषय परिचय।

अन्य पुस्तकों के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगाइये

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस नं० ४

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आचार्य पं० ... ्स जी की

सरल ... शिक्षा

विद्वानों ... याँ

"पालि भाषा का ज्ञान हमारे ... र्थी के लिए आवश्यक है, किन्तु उसके अध्ययन के लिए हिन्दी के साथ एक अति सरल पाठ ... क रहा था। भिक्षु सद्धातिस्स पालि के योग्य पण्डित हैं, उन्होंने 'सरल-पालि-शिक्षा' को लिखकर ... ड़ा उपकार किया है। पुस्तक छोटी है, किन्तु इससे पालि भाषा के स्वतः या गुरुमुख से सीखने में बड़ा ... विद्यार्थी आसानी से भगवान् बुद्ध के मूल उपदेशों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।"

—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

'सरल पालि-शिक्षा जैसी सुगम, सुलभ ... पुस्तक की अत्यन्त ही आवश्यकता थी। यह उत्तर प्रदेश और बिहार की मैट्रिकुलेशन परीक्षा के लि ... क है। प्रत्येक पाठ के अन्त में जो अभ्यास दिए गए हैं वे अत्यन्त उपयोगी हैं। ...... मैं ... लता चाहता हूँ।"

भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए०

"हिन्दी में पालि-अध्ययन को सु ... म देगी। व्याकरण और रचना का यहाँ एक सुसंगठित, क्रमबद्ध पाठ्य-क्रम उपस्थि ... ने के साथ-साथ मौलिक भी है। भिक्षु श्री सद्धातिस्स जी लङ्का और भारत में वर्षों से पा ... चुके हैं। उन्हें विद्यार्थियों की कठिनाइयों का पूरा ज्ञान है। विषय के प्रतिपादन और अभ्यास के लि ... उदाहरणों के चयन में उनकी दृष्टि सदा विद्यार्थी की योग्यता पर रही है। हिन्दी में पालि के उच्च विद्यार्थियों के लिए जब कि भिक्षु जगदीश काश्यप कृत पालि महा-व्याकरण एक बेजोड़ ग्रन्थ है, पालि में प्रवेश पाने के इच्छुक विद्यार्थी के हाथ में "सरल पालि शिक्षा" से अधिक अच्छी पुस्तक नहीं दी जा सकती।"

—भरतसिंह उपाध्याय एम० ए० प्रो० एवं अध्यक्ष
हिन्दी संस्कृत विभाग, जैन कालेज, बड़ौत।

मिलने का पता—
महाबोधि पुस्तक-भण्डार, सारनाथ, बनारस।

आवश्यक सूचना

ग्राहकों से

'धर्मदूत' का आगामी अङ्क "बुद्धजयन्ती विशेषाङ्क" होगा, जो बौद्धधर्म, संस्कृति, कला, पुरातत्व आदि अनेक विषयों पर प्रामाणिक विद्वानों के लेखों से सुसज्जित और दर्जनों चित्रों से समालंकृत होगा। अन्य वर्षों की अपेक्षा विशेषाङ्क का कलेवर दुगुना होगा। हम उसकी सीमित प्रतियां ही छपायेंगे।

अतः जो लोग धर्मदूत के ग्राहक नहीं हैं, वे अपनी प्रति अभी से १) भेजकर सुरक्षित करा लें या वैशाख पूर्णिमा से पूर्व २) भेज कर ग्राहक बन जाँय। वैशाखपूर्णिमा के पश्चात् 'धर्मदूत' का वार्षिक मूल्य ३) हो जायेगा। इस सुनहले अवसर को हाथ में न जाने दें।

विज्ञापन दाताओं से

विज्ञापन दाताओं के लिए भी यह एक सुनहला अवसर है, जो लोग विशेषाङ्क में विज्ञापन देना चाहते हैं, वे १५ अप्रैल से पूर्व अपना विज्ञापन भेज दें। विज्ञापन दर इस प्रकार है—

साधारण पृष्ठ पूरा	३०)	कवर का दूसरा तथा तीसरा पृष्ठ पूरा	४०)
,, ,, आधा	१५)	,, ,, ,, आधा	२०)
,, ,, चौथाई	८)	,, ,, ,, चौथाई	१२)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

व्यवस्थापक—
"धर्मदूत" सारनाथ, बनारस।

विषय-सूची

"धर्म-दूत" के नियम

१—धर्मदूत भारतीय महाबोधि सभा का हिन्दी मुखपत्र है। "धर्मदूत" प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।

३—पत्रव्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिए, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिए।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता व लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिनका लेख या कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।

६—"धर्मदूत" में सिर्फ बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।

७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

८—धर्म-दूत का वार्षिक मूल्य २) और आजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक—
"धर्मदूत", सारनाथ, (बनारस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

समालोचनार्थ — परिवर्तनार्थ

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवामनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय-पिटक)

"भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोकपर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख [illegible] करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—[illegible] अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके [illegible] उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण [illegible]शुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादकः—त्रिपि[illegible]त

वर्ष १४ | सारनाथ, फरवरी [illegible] बुद्धाब्द २४९३ / ई० सन् १९५० | अङ्क ११

बुद्धवचनामृत

माता-पिता की सेवा

भिक्षुओ! जिस कुल में पुत्रों द्वारा माता-पिता की सेवा होती है, वह कुल स-ब्रह्म है। पूर्व-देवताओं के साथ है। पूर्व-आचार्यों के साथ है। आह्वान करने योग्य व्यक्तियों के साथ है। भिक्षुओ! ब्रह्मा, पूर्व-देवता, पूर्व-आचार्य और आह्वानीय शब्द माता पिता के लिए हैं। सो किस कारण? वे नाना प्रकार से संसार को दिखलाने वाले हैं।"

ब्रह्मा ति मातापितरो पुब्बाचरिया,ति वुच्चरे,
आहुनेय्या च पुत्तानं पजाय अनुकम्पका।
तस्मा ति ने नमस्सेय्य सक्करेय्य च पण्डितो,
अन्नेन अथ पानेन वत्थेन सयनेन च।
उच्छादनेन न्हापनेन पादानं धोवनेन च,
ताय नं पारिचरियाय मातापितूसु पण्डितो।
इधेव नं पसंसन्ति पेच्च सग्गे पमोदती'ति॥

माता पिता ही ब्रह्मा, पूर्व-आचार्य आह्वानीय और पुत्रों के अनुकम्पक कहे जाते हैं, इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि उनका नमस्कार एवं सत्कार करे। अन्न, पेय, वस्त्र, शयन उबटन, स्नान और पैरों को धोने से उनकी सेवा करे। बुद्धिमान् पुरुष माता-पिता की उस सेवा से यहां भी प्रशंसित होता है और मरने पर स्वर्ग में भी प्रमोद करता है।

———

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पञ्चस्कन्ध

श्री रामलाल मानधर

'व्यक्ति' किन किन हेतु प्रत्ययों पर अवलम्बित है ? -यह प्रश्न जितना पेचीदा है उतना ही सरल भी। पेचीदा है उन नैयायिकों के लिए जिन्होंने व्यक्ति-विश्लेषण में एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया है किन्तु सम्यक दृष्टि के [illegible] अभाव में सफलता नहीं प्राप्त की है [illegible] जिन्होंने व्यक्ति को अनित्य, दु[illegible] देखा और समझा है।

सम्यक दृष्टि से ध्यान पूर्व दे[illegible] अवस्थाओं का पुञ्ज सा दीखता है। [illegible] रिक और मानसिक। इन्हीं दोनों अवस्थाओं [illegible] रूप और नाम कहा जाता है। यहाँ जो कुछ स्थूल-पुञ्ज है वह सब रूप है और जो सूक्ष्म है वह सब नाम है। त्रिपिटक में इन्हीं को 'नामरूप' कहा गया है। मानसिक अवस्था अर्थात् नाम चार विभिन्न अवस्थाओं में बँटा है। वे अवस्थाएँ हैं—वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान। इस प्रकार 'व्यक्ति' की अवस्थाओं के प्रधानतः पाँच पुञ्ज, समूह अथवा स्कन्ध दीख पड़ते हैं, इन्हीं को बौद्ध-दर्शन 'पञ्चस्कन्ध' के नाम से प्रज्ञप्त करता है। यथाः—

"कतमे पञ्चक्खन्धा ? रूपक्खन्धो, वेदनाक्खन्धो, सञ्ञाक्खन्धो, संखारक्खन्धो, विञ्ञाणक्खन्को' ति।"

अर्थात्—पञ्चस्कन्ध कौन से हैं ? (१) रूपस्कन्ध (२) वेदना स्कन्ध (३) संज्ञास्कन्ध (४) संस्कार स्कन्ध (५) विज्ञान स्कन्ध।

इन्हीं पञ्चस्कन्धों के योग से यह 'व्यक्ति' निर्मित है, इनकी स्थिति है, इनके अतिरिक्त यहाँ अन्य कुछ नहीं है। इनके एकी भाव में ही 'व्यक्ति' का प्रादुर्भाव है, अन्यथा 'व्यक्ति' का सर्वथा अभाव। जैसे डण्डों, धुरों, चक्कों, रस्सियों, रथ के खजानों के योग से रथ की प्रज्ञप्ति होती है, ऐसे ही नाम तथा रूप के योग से, एकीभाव से व्यक्ति का प्रादुर्भाव सम्भव है। कहा है—

यमकं नामरूपञ्च उभो अञ्ञोञ्ञनिस्सिता।
एकस्मिं भिज्जमानस्मिं उभो भिज्जन्ति पच्चया॥

अर्थात्-नाम और रूप दोनों जोड़े एक दूसरे [illegible]श्रित हैं, एक के नाश होने पर दोनों के प्रत्यय नष्ट [illegible] हैं।

[illegible] दिखाई पड़ा "नामञ्च रूपञ्च इधत्थि सच्चतो" आदि वचनों से [illegible] हुए, केवल नाम और रूप मात्र की ही स्थिति है, [illegible] मारे चाहे और कोई भी नित्य, अपरिवर्तनशील, कूटस्थ स[illegible] ऐसे [illegible] अथवा इन्द्रकील के समान एकस्थायी आत्मा नहीं [illegible] जो नाम रूप हैं यह भी क्षण-क्षण पर बदलने वाले नाशमान् हैं, अनित्य हैं, दुःख हैं, अनात्मा हैं, ये आ[illegible] सन योग्य नहीं हैं, यह ज्ञात नहीं कि ये कब नष्ट हो जा[illegible] सत्व के विश्लेषण में वजिरा भिक्षुणी द्वारा भी उदा[illegible] यह गाथा है—

यथा हि अङ्ग सम्भारा होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु होति सत्तो' ति सम्मुति॥

जैसे रथाङ्गों के मेल से 'रथ' नाम होता है, ऐसे स्कन्धों के होने पर ही 'सत्व' है—यह प्रज्ञप्ति होती है।

जैसे नौका मल्लाह के सहारे नदी तैरती है और मल्ल[illegible] नौका के सहारे नदी के इस पार से उस पार चला जा[illegible] है, ऐसे ही नाम रूप का परस्पर सम्बन्ध है। जिस प्र[illegible] अन्धे का, लँगड़े का योग तथा लँगड़े का अन्धे के आ[illegible] से उनकी कार्य-सिद्धि अभिलक्षित है, उसी प्रकार नाम[illegible] का योग 'व्यक्ति' का हेतु है, प्रत्यय है। इनकी भिन्न[illegible] में उसका नाश और एकी भाव में स्थिति सम्भव है। [illegible] नाम अर्थात् वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान नहीं, [illegible] रूप नहीं और यदि रूप नहीं तो विज्ञान के साथ उन[illegible] अन्य तीन अवस्थायें (वेदना, संज्ञा संस्कार) नहीं। ऐ[illegible] भी विभिन्नाकार में इनका आपतनाभाव है जैसे कि [illegible] कह सकें नाम के प्रत्यय से रूप होता है और रूप [illegible] प्रत्यय से नाम। कारण ! एक क्षण, एक साथ [illegible]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी.

समयानन्तर भावोत्पत्ति जो है। नाम रूप के प्रत्यय से ज्ञान =प्रतिसन्धि विज्ञान) होता है और विज्ञान के त्यय से नाम रूप—ऐसा कहना ही समुचित है। यदि हें कि नाम के अन्तर्गत ही तो विज्ञान है, फिर नाम रूप त्यय से होने वाला यह विज्ञान कौन सा है ? शंका-माधान यों है—नाम में प्रधानभूत विज्ञान है और शेष तीन उसकी ही अवस्था विशेष हैं तथा एकोत्पाद एवं सह-निरोध का इनका सम्बन्ध है तथा रूप की भी उत्पत्ति में कालान्तराभाव है, इसलिए यह कहा जाता है कि नाम [illegible] के प्रत्यय से विज्ञान होता है और विज्ञान के होने [illegible] रूप। अधिक स्पष्ट रूप से जानने के लिए ऐसे [illegible] समझना चाहिये – पूर्व-आत्मभाव में जो नाम रूप था और [illegible] जो कुछ कुशलाकुशल कर्म किया गया, उसके विपाक [illegible] इस वर्तमान आत्मभाव की प्राप्ति हुई अर्थात् व्यक्ति बना। इस प्रकार दोनों आत्मभावों के बीच परिवर्तनशील अच्छे कर्मों से अच्छी तथा बुरे कर्मों से बुरी होने वाली, पूर्व-संस्कार-वाहक जो चित्त-सन्तति है, उसी के भाव में नाम रूप का भाव है अन्यथ अभाव जिस परिवर्तनशील, क्षणिक, अनित्य कर्म-विपाक वाहक चित्त-सन्तति से प्रति-सन्धि होत है, उसी का नाम विज्ञान है। अस्तु, विज्ञान-भाव में नामरूप का सर्वथा अभाव सिद्ध है।

इसे इस प्रकार से भी समझना चाहिये कि तीन के एकत्रित होने से गर्भ-धारण होता है—(१) माता और पिता एकत्र होते हैं, किन्तु माता ऋतुमती नहीं होती और उत्पन्न होनेवाली चित्त-सन्तति अर्थात् गन्धर्व उपस्थित नहीं होता तो गर्भधारण नहीं होता। (२) माता पिता एकत्र होते हैं, माता ऋतुमती होती है, किन्तु गन्धर्व उपस्थित नहीं होता तो भी गर्भ धारण नहीं होता। (३) जब माता-पिता एकत्र होते हैं, माता ऋतुमती होती है और गन्धर्व उपस्थित होता है, तब इस प्रकार तीनों के एकत्रित होने से गर्भ धारण होता है। भगवान् के ही शब्दों में—

"विज्ञान के प्रत्यय से नाम रूप होता है–यह जो कहा गया है, तो आनन्द, इसे इस प्रकार जानना चाहिए, जैसे कि विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप होता है। आनन्द, यदि विज्ञान माता के पेट में न आवे तो क्या नाम रूप माता के [illegible] में संचित होगा ?"

"नहीं भन्ते ?"

"और यदि आनन्द, केवल विज्ञान ही माता के पेट में प्रवेश कर निकल जाये तो क्या नाम रूप (कहना) इसके लिए बनेगा ?"

"नहीं भन्ते ?"

'यदि आनन्द, बचपन में ही बच्चा या बच्ची का विज्ञान नष्ट हो जाय, तो क्या नाम रूप की वृद्धि, विपुलता होगी ?"

"नहीं भन्ते ?"

[illegible] नामरूप का यही हेतु है जो कि [illegible] य से विज्ञान होता है—यह जो [illegible], इस प्रकार जानना चाहिए—[illegible] नामरूप में प्रतिष्ठा न पाये तो क्या [illegible] जरा, मरण, दुःख का उत्पन्न होना दिखाई देगा ?"

"नहीं भन्ते ?"

"इसलिए आनन्द, यही हेतु है जो कि विज्ञान का नामरूप। इस तरह आनन्द, विज्ञान के साथ नामरूप एक दूसरे के प्रत्यय से प्रवर्तित हैं। इसी से पैदा होना, जीना, मरना, च्युति, उत्पत्ति, अधिवचन, निरुक्ति, संसार चक्र में चक्कर काटना अथवा इस आत्मभाव की प्रज्ञप्ति होती है।"

इस प्रकार विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप होते हैं और नामरूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है।

रूपस्कन्ध अपने स्थूलाकार से प्रगट है और उसका विश्लेषण किसी हद तक सरल है तथापि जो सूक्ष्म हैं, अरूप हैं, मानसिक अवस्था सम्बन्धी वेदना स्कन्ध, संज्ञा-स्कन्ध, संस्कार-स्कन्ध और विज्ञान-स्कन्ध हैं—इनका विवेचन बड़ा ही दुष्कर है। वे दुर्दृश्य हैं, केवल स्वभाव मात्र से जाने जा सकते हैं। राजा मिलिन्द ने भदन्त नागसेन से पूछा था—

"भन्ते, क्या एक में मिले हुए इन धर्मों को अलग अलग करके बतलाया जा सकता है कि यह स्पर्श है, यह वेदना है, यह संज्ञा है, यह चेतना है, यह विज्ञान है, यह वितर्क है, यह विचार है ?"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महाराज ! ऐसा नहीं किया जा सकता ।"

"उपमा द्वारा हमें समझायें ।" मिलिन्द ने कहा ।

'जैसे महाराज, बावरची राजा के लिए यूश तैयार करे अथवा रस । वह उसमें दही को भी डाले, नमक को भी डाले, अद्रा को भी डाले, जीरा को भी डाले, मीर्च को भी डाले तथा अन्य प्रकार की चीजों को भी डाले । तब राजा उसे ऐसा कहे—दही का रस ला, नमक का रस ला, अद्रा का रस ला, जीरे का रस ला, मीर्च का रस ला और सभी के लिले रस ला; तो क्या महाराज एक [illegible] मिले हुए उन रसों को वह अलग अ[illegible] है कि यह खट्टा है, यह नमकीन [illegible] में प्रतिष्ठित [illegible] कडुवा है, यह कसैला है अथवा यह [illegible] पाया [illegible]

"भन्ते, एक में मिले हुए रसों [illegible] बोधि-अ[illegible] करके नहीं ला सकता कि यह खट्टा है, यह [illegible] तीता है, यह कडु[illegible] है, यह कसैला है, अथवा [illegible] है अपितु वे अपने अपने लक्षण से जाने जा सकते हैं ।"

"ऐसे ही महाराज, इन एक में मिले हुए धर्मों [illegible] अलग अलग करके नहीं बतलाया जा सकता है कि [illegible] स्पर्श है, यह वेदना है, यह संज्ञा है, यह चेतना है, [illegible] विज्ञान है, यह वितर्क है, यह विचार है ।"

भगवान् ने इन्हें अलग अलग करके जो बतला[illegible] वह बड़ा ही दुष्कर कार्य किया । नाना प्रकार के जलों [illegible] अथवा नाना प्रकार के तेलों को एक बर्तन में डाल [illegible] दिन भर मथने के पश्चात् वर्ण, गन्ध, रस, का नाना[illegible] [illegible] सूँघकर अथवा चखकर यदि जाना भी जा स[illegible] दिखाई पड़ा वह दुष्कर कहा जायेगा, किन्तु तथागत ने तो इ[illegible] [illegible] हुए [illegible] वेदना आदि) धर्मों को अलग अलग कर[illegible] [illegible]मारे चा[illegible] कर दुष्करतम कार्य किया ।

[illegible] केवल अपने अपने स्वभाव और लक्ष्ण से पहचा[illegible] जाने वाले वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान एवं रू[illegible] स्कन्ध का विवेचन अगले अंक में क्रमशः किया जायेगा

——०——

धर्मदूत के ग्राहकों के लिए सुनहला अवसर

'धर्मदूत' के ग्राहक भलीभाँति जानते हैं कि हिन्दी पत्र-संसार में धर्मदूत का वार्षिक मूल[illegible] सब से कम है । इतने कम मूल्य पर "धर्मदूत" को जीवित रख सकना सम्भव नहीं । अतः निश्च[illegible] किया गया है कि नये वर्ष से 'धर्मदूत' का वार्षिक मूल्य २) के स्थान पर ३) कर दिय[illegible] जायेगा और पृष्ठ-संख्या में भी वृद्धि की जायगी । किन्तु जो ग्राहक वैशाख पूर्णिमा से पूर्व [illegible] भेज देंगे, उन्हें नये वर्ष का धर्मदूत भी दो रुपये में ही वर्ष भर मिलेगा । आशा है हमारे न[illegible] और पुराने ग्राहक इस सुनहले अवसर को हाथ से न जाने देंगे तथा अपना ग्राहक मूल्य वैशा[illegible] पूर्णिमा के पहले ही कार्यालय में भेज देंगे ।

व्यवस्थापक

"धर्मदूत", सारनाथ, बनारस ।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बर्मा का सामाजिक जीवन

(ले० सुमन वात्स्यायन)

बर्मा भारत का एक पड़ोसी देश है। यह धर्म, सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से गत बाइस सौ वर्षों से भारत का ही एक अंश है। साहित्य, कला आदि के ख्याल से भी बर्मा भारत का बहुत ऋणी है। इन्हीं सब कारणों से बर्मा के सामाजिक जीवन पर भी भारत [illegible] बहुत प्रभाव पड़ा है। उदारता, सरलता और धार्मिकता [illegible] में बर्मा का नम्बर सर्व प्रथम है। यदि दिन का भोजन तैयार हो, तो सबेरे ये रात को बिना चिन्ता किये ही [illegible] कुछ दान कर सकते हैं। दान देना, खासकर धर्म के लिये, इनके जीवन का एक अंग बन गया है।

भारत की तरह बर्मा के सामाजिक जीवन पर धर्म का बहुत असर है। प्रत्येक बर्मी अपने बच्चे को छोटे पन से ही धार्मिक शिक्षा देना शुरू करता है। आम तौर से बच्चे का नामकरण उसकी पैदाइश के १४-१५ दिन के बाद होता है। हिन्दुस्तान की तरह बर्मी लोग भी लड़का को लड़की से अधिक महत्व देते हैं। हाला कि बर्मी जीवन में पुरुष से स्त्री का महत्व कहीं अधिक है। यदि यह हास्यास्पद न समझा जाय तो हम कह सकते हैं कि घरेलू जीवन में पुरुषों का बर्मा में वही स्थान है जो हमारे घरों में स्त्रियों का-फिर भी कुछ अंशों में स्त्रियों की वहाँ भी काफी उपेक्षा है। पुत्र की पैदाइश के कुछ दिनों बाद एक निश्चित तिथि पर सभी कुटुम्बी तथा सम्बन्धी आते हैं और घेरकर बैठ जाते हैं। फिर उनमें से कोई व्यक्ति पुत्र का एक नाम रखता है और सभी कोई उसे मंजूर कर लेते हैं। दरसल उस आदमी को पहले ही माँ-बाप मनोनुकूल और राशि-क्रमानुसार नाम बता देते हैं। नाम करण का तरीका बहुत कुछ भारतीय राशि क्रम के ढंगपर ही होता है। वर्णमाला के व्यंजन भिन्न भिन्न दिनों में बाँट दिये गये हैं और सब स्वर रविवार के लिये हैं। साधारणतया, नाम, जिस दिन बालक पैदा हुआ था, उस दिन के किसी व्यंजन से शुरू होता है। इसलिये भारतीयों की तरह वहाँ कोई पैतृक नाम नहीं होता है। अगर संयोग से, जैसा कि अक्सर होता है, पिता और पुत्र एक ही दिन पैदा हुये हों तो दोनों का नाम एक सा मिलते जुलते भी हो सकते हैं। व्यंजनों और स्वरों का दिन के हिसाब से वर्गीकरण यूँ है—

[illegible] स्वर; सोमवार = क वर्ग; मंगलवार = [illegible] ल, व; बृहस्पतिवार = प वर्ग; [illegible] ार = ट वर्ग।

[illegible] का समय बहुत होशियारी से याद [illegible] उसकी 'ज़दा' (= जन्म कुंडली) [illegible]क। वे इस मामले में ज्योतिषी की राय लेते हैं जो आम तौर से बर्मी ब्राह्मण समझा जाता है।

जब बच्चे कुछ बड़े और समझने लायक हो जाते हैं, तब उन्हें माता-पिता बौद्ध कहानियाँ, खासकर जातक की कहानियां, सुनाया करते हैं। इसलिये बचपन से ही उनपर बौद्धधर्म की अमिट छाप गड़ जाती है।

बर्मा ही नहीं, प्रायः सभी बौद्ध देशों में बौद्ध मठ ही शिक्षण संस्था का काम देते रहे हैं। किन्तु अब भारत की तरह ही बर्मा में भी अंग्रेजी सरकार ने गुलाम तैयार करने के लिये तथा कथित 'आधुनिक शिक्षा प्रणाली' जारी कर रखी है। फिर भी अधिकांश बर्मी बालक अपनी प्रारंभिक शिक्षा मठ में ही समाप्त करते हैं।

साधारणतया जब लड़का सात आठ वर्ष का होता है तब उसे मठ के किसी स्कूल में भेज देते हैं। मठ के स्कूलों में सबको शिक्षा मुफ्त दी जाती है। पढ़ाई का मुख्य विषय बर्मी भाषा, पालि और लेखनकला एवं साधारण गणित, इतिहास, भूगोल आदि होते हैं। मठ की पढ़ाई से बालकों की नैतिक भावना पवित्र होती है—अपने देश, समाज और संस्कृति के प्रति अनुराग बढ़ता है। किन्तु दुख है कि अंग्रेजी शाशन इस शिक्षा की जड़ खोदने में लगा है और उसे इसमें काफी सफलता भी मिली है।

कुछ लिख-पढ़ लेने के बाद बच्चों को पालि भाषा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पढ़ाई जाती है। दर असल यह पालि भाषा की पढ़ाई नहीं कहला सकती, क्योंकि बच्चों को सिर्फ कुछ सूत्र और धार्मिक पूजा-पाठ की विधि, मंत्र आदि रटा दिये जाते हैं। बच्चे पालिभाषा के जिन सूत्रों को रटते हैं उनका अर्थ वे बड़े होने पर भी शायद ही जान पाते हों।

प्रत्येक बर्मी पुरुष, (क्योंकि अब स्त्रियों का भिक्षुणी संघ नहीं रहा) अपने जीवन में एक बार, चाहे वह थोड़े ही समय के लिये क्यों न हो, प्रव्रज्या (सन्यास) अवश्य ग्रहण करता है। अधिकांश लोग शादी के पहले ही संन्यासी बन जाते हैं और कुछ—एक स्तूरा [illegible] दिनों तक भिक्षु रहकर फिर गृहस्थ [illegible] में प्रतिष्ठित [illegible] से जिनको भिक्षु-जीवन पसन्द आता [illegible] शेष पाया [illegible] रहते हैं। बर्मा और उसका पड़ोसी [illegible] संघ बोधि—अर्हन्त [illegible] लेकर एक साधारण आदमी तक कुछ समय लीन [illegible] रहे, भिक्षु अवश्य बनता है।

गृहस्थों के दैनिक जीवन पर मठ के धार्मिक जीवन का कोई खास असर नहीं पड़ता है। उन्हें रोज पूजा के लिये मठ में नहीं जाना पड़ता है। किन्तु हर बर्मी औरत मर्द को दो अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को विहार (=मन्दिर) में जाकर पंचशील लेना चाहिये।

बरसात के चार मास बर्मी लोगों के लिये धार्मिक मास हैं। इन दिनों दोनों अष्टमी अमावस्या और पूर्णिमा को लोग व्रत रखते हैं। बरसात भर अधिकतर धार्मिक लोग मांस खाना छोड़ देते हैं। व्रत के दिन गृहस्थों में से बहुत से मठ या ज़या (धर्मशाला) में ही रह जाते हैं। यह ज़या बर्मा की एक खास चीज है। प्रायः करीब करीब हर गांव में धनी लोग यह ज़या बना देते हैं। इसमें ठहरने के लिये किसी को कुछ देना नहीं पड़ता। गाँव की औरतें खुद ही रोज इसमें पानी भरकर रख देती हैं, झाड़ू-बहारू कर जाती हैं। अतिथि-सत्कार में बर्मा का मुकाबला संसार का कोई देश नहीं कर सकता।

बर्मी लोगों के उत्सव भी बड़े मनोरंजक होते हैं। इनमें से कितने ही उत्सव धर्म-सम्बन्धी न होने पर भी साधारण जनता द्वारा धार्मिक ही समझे जाते हैं। इनमें सबसे बड़ा नववर्षोत्सव या जलोत्सव है जो आम तौर से अप्रेल महीने में पड़ता है। उस दिन सब लोग मठों में इकट्ठे होते हैं। निश्चित समय पर बड़े बड़े शहरों में तोपें दागी जाती हैं, घंटे बजते हैं। फिर लोग पूजा के लिये विहार में जाते हैं। पूजा खतम होते ही लोग एक-दूसरे को पानी से तर कर देते हैं। इसी प्रकार तीन दिनों तक सड़कों पर, घरों में सभी जगह लोग एक दूसरे पर पानी उछालते रहते हैं। दोपहर के बाद मर्द औरत और बच्चे सब अच्छे-अच्छे कपड़े पहन मन्दिरों में जाते हैं और नमस्कार कर भगवान् बुद्ध की मूर्ति पर भी पानी चढ़ाते हैं। वापस आनेपर सभी लोग भीगे रहते हैं; पर खास [illegible] यह है कि कोई भी गन्दे कपड़ेवालों पर पानी नहीं [illegible]ता। प्रेमी-प्रेमिका आज एक-दूसरे पर इत्र मिला [illegible] पानी डालते हैं।

अक्तूबर में वर्षा खतम होने पर फिर एक त्यौहार होता है। यह उत्सव बर्मा के बड़े बड़े शहरों में खूब धूम-धाम से मनाया जाता है। उत्सव के समय शहर की जन-संख्या दुगुनी तिगुनी हो जाती है। यह समारोह लगभग दो सप्ताह चलता है। रात को रोज नाटक होता है। इस नाटक में प्रायः टिकट आदि नहीं लगाते। शहर के बीच में एक भूल-भुलैया बनाई जाती है जिसके बीच में भगवान् बुद्ध की मूर्ति होती है। यह मूर्ति निर्वाण का प्रतीक समझी जाती है। सबलोग भूल-भुलैया से होकर निर्वाण तक पहुंचना चाहते हैं; किन्तु वहां तक पहुँचना आसान नहीं होता। कुछ लोग रात भर उसमें घूमते रहते हैं, पर मूर्ति तक नहीं पहुँच पाते हैं। पूर्णिमा के दिन भिक्षुओं को सामूहिक रूप से भोजन कराया जाता है। हर जगह थोड़ी थोड़ी दूरपर उपहारों से लदे नकली पेड़ होते हैं (जैसे विलायत में क्रिसमस ट्री)।

नवम्बर में एक और पर्व होता है—जो एक तरह की होड़ है। अनेक जगहों से कर्वे और बुनाई के सामान एकत्र किये जाते हैं जिनके द्वारा रूई और उनके वस्त्र बनाये जाते हैं। आठ बजे शाम से यह प्रतिद्वन्दिता शुरू होती है। प्रत्येक दल के लिये एक टोकरी रूई दी जाती है जिसे वह एक ही रात में कात-बुनकर कपड़ा तैयार कर लेता है। कुछ सुबह चार बजे ही अपना काम खतम कर देते हैं और कुछ लोगों को काफी देर हो जाती है। जो लोग

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पीछे पड़ जाते हैं वे दुःखी और बेचैन होते हैं। जो अपना काम पहले कर लेते हैं वे औरों की खिल्ली भी उड़ाते हैं। कपड़े के इन छोटे छोटे टुकड़ों को जोड़कर बड़ा-ओढ़ने लायक बना लिया जाता है और उसे काषाय रंग में रंगकर बुद्ध-प्रतिमा पर च [illegible] या जाता है।

बर्मा में भिक्षु के मरने [illegible]र भी एक प्रकार का उत्सव होता है। बड़े बड़े भिक्षुओं की लाश को तुरंत दफनाने की प्रथा नहीं है। लाश महीनों तक सुरक्षित रखी जाती है। फिर स्तूपाकार में एक चिता बनाई जाती है। इस चिता के निर्माण में सैकड़ों रूपये खर्च होते हैं। निश्चित तिथि पर लोग एकत्रित होते हैं और लाश को चिता में रखकर आग लगा दी जाती है। अन्त में शव की राख बटोरकर स्तूप के नजदीक गाड़ दी जाती है। कभी कभी उस राख पर दूसरा स्तू[illegible] भी बन जाता है। भिक्षुओं के मरने को लोग 'लौटना' कहते हैं।

वास्तव में बर्मा का सामाजिक जीवन धर्ममय है।

नवयुग [illegible]

श्री हरि शंकर [illegible]

युग मांग रहा वरदान विमल,
छाया है आज तिमिर नभ में
अवनी पर छाई है तमसा,
हिंसा के गुरुतम गर्जन से
रसहीन आज हो रही रसा ॥ १ ॥

रे, अपमानित मानवता की—
फरियाद सुनेगा कौन यहाँ?
द्रौपदी सभा में रोती, पर
पाँचों पाण्डव हैं मौन यहाँ ॥ २ ॥

जगती के इस कोलाहल में
यह नवयुग किसे बुलाता है,
लौटो हे बोधिसत्व युग का
यह है मंगल आह्वान अमल,
युग मांग रहा वरदान विमल ॥ ३ ॥

आलोकित करने यह आँगन
आओ प्रकाश ले चिर नूतन,
"उपचार लिये आओ"—कहता
मानव का तीर चुभा व्रण व्रण ॥ ४ ॥

हे धर्मदूत, अवनी तल पर
हिंसा की उठती है ज्वाला,
सो रही मनुजता है कब से
पी कर चिर निद्रा का प्याला ॥ ५ ॥

तप कर निदाघ की ज्वाला में
युग ढूँढ़ रहा मधुमय वसन्त
पर कवि पुकारता है तुम को
आओ गौतम, आओ अनन्त ॥ ६ ॥

अभिशापित मानव के उर में,
उठता न कभी अरमान नया,
प्राची के धूमिल आंगन में
उठ रहा एक तूफान नया ॥ ७ ॥

हैं टूट रहे ग्रह अम्बर से
दिन मान तुम्हारा जलता है,
लौटो दशबल इस ज्वाला में
वरदान हमारा जलता है ॥ ८ ॥

जलती है नवयुग की किस्मत
आधार हमारा जलता है,
तुम लौटो शीघ्र अहिंसा का
संसार तुम्हारा जलता है ॥ ९ ॥

आओ अनादि, झंकृत कर दो
माँ की इस मौन विपंची को,
भर दो मानव के अन्तर में
हे धर्मदूत, मधुगान नवल,
युग माँग रहा वरदान विमल ॥ १० ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गुरुवर की याद में

भिक्षु धर्म रक्षित

कहा गया है—

जीवितं व्याधि कालो च देहनिक्खेपनं गति।
पञ्चेते जीवलोकस्मिं अनिमित्ता न जायरे॥

जिन्दगी, रोग, मृत्यु-समय, शरीर-पतन का स्थान और मरने के पश्चात् गति— ये पांच जी[illegible] हैं, जाने नहीं जाते।

श्रीधम्मावास नायकथेर

लंका से मेरे पास पत्र आया था कि आचार्यमहापाद रुग्ण हैं और इस समय कोलम्बो की प्रधान आरोग्यशाला में दवा करा रहे हैं, किन्तु रोग इतना बढ़ गया है कि कब क्या होगा—नहीं कहा जा सकता। पूज्यपाद गुरुवर की भी उसके कुछ ही दिन पूर्व पत्र आया था, जिसमें आपने लि[illegible] था—"हमारा रोग प्रति दिन बढ़ रहा है, किन्तु इससे स्मर[illegible] करके तुम चिन्ता मत करना। संसार में संसरण करने [illegible] इन सब व्याधियों से किसी का पिण्ड नहीं छूटता।" मैं इ[illegible] [illegible]ता में था कि पुन: कब गुरुवर के दर्शन होंगे? य[illegible] निकट भविष्य में लंका हो आता तो अपना सौभाग[illegible] [illegible]नता। इसी बीच हमें सारनाथ से कुशीनगर जाना प[illegible] और कुछ दिन वहाँ रहना ही पड़ा। वहाँ रहते समय ए[illegible] दिन सायंकाल में इसी विचार में निमग्न था और दो ती[illegible] आदमियों के साथ बैठे हुए यही चर्चा चल रही थी [illegible] इतने में डाकिया आया और तार दिया। तार को पढ़[illegible] ही हृदय काँप गया। नेत्रों से आँसू बह चले। मैं अप[illegible] को न सम्हाल सका। तार में लिखा था—

"हाई प्रिस्ट एक्सपायर्ड, क्रिमेशन सण्डे" अर्थ[illegible] नायकमहापाद शान्त हो गये, अन्त्येष्टि क्रिया रविवार [illegible] होगी।*

गुरुवर के शान्त हो जाने के समाचार ने मेरे भाग्य [illegible] पलट दिया। हाय! मेरे धर्मगुरु एवं धर्मपिता के निरो[illegible] (बुझ जाना) ने उनके धर्मपुत्र को एक बहुत [illegible] आश्वास से वंचित कर दिया या यों कहें कि मैं अपने पर[illegible] आश्वास से वंचित हो गया। अब कौन मुझे सहस्रों मी[illegible] दूर से भी सदा उपदेश देगा? कौन लिख भेजेगा:—

"निच्चमेव सरितब्बा अम्हेहि दसधम्मसुत्तादयो चे[illegible] भगवतो सम्मासम्बुद्धस्स पच्छिमा वाचा च।……निच्चमे[illegible] वायमितब्बं भगवन्तं धम्मानुधम्मपटिपत्तिया पूजेतुं। विज[illegible] ति मञ्ञे'धुना तया कत्तब्बानि सासनकिच्चानि जम्बूदीपे तत्थ सुपट्ठितसतिना भवितब्बं धम्ममग्गमहापेन्तेनेव ता[illegible] कातुं। सततमेव मयं पत्थयाम कोसिनारको धम्मरक्खि[illegible] भिक्खु अत्तना च सुप्पटिपन्नो परं च सुप्पटिपत्तिया निबो[illegible] जेती'ति सोतुं।"

---

* गुरुवर का स्वर्गवास २८ दिसम्बर १९४९ को हुई थी।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जिन गुरुवर के श्री पाद पंकजों की सेवा करते हुए ढाई वर्ष तक त्रिपिटक बुद्धवचन का अध्ययन किया और सदा जिनका कृपाभाजन बना रहा। जो अपने रुग्ण होते हुए भी मुझे पढ़ाये एवं धर्म में प्रवृत्त किये। उन गुरुवर के प्रति अपनी अचल श्रद्धा एवं भक्ति को हृदय फाड़कर भी नहीं दिखा सकता। गुरुवर का वह मनोहर रूप और धर्म-रस से भरी हुई बातें आज भी मेरे नेत्रों और कानों के निकट जान पड़ती है। "दुक्खो खो अयं कायो" अर्थात् यह शरीर ही दुःख है—ये उनके मधुर और हृदय को शान्त कर देनेवाले शब्द आज भी मेरे मतिष्क में चक्कर काट रहे हैं।

गुरुवर का नाम धर्मकीर्ति श्री धम्मावास नायक महास्थविर था। आप का जन्म आज से ६१ वर्ष पूर्व दक्षिण लंका के मातर नगर के समीप बंबरेन्दे नामक गांव में हुआ था। आप के पिता का नाम श्री० डी० ए० डी० एस० मोहोट्टि हामु था। आपके एक और भाई थे, जिनका नाम श्री० जे० जी० एस० मोहोट्टि हामु था। आपने बचपन में ही अत्यन्तश्रद्धापूर्वक लंका के वादीभसिंह दक्षिण लंका के संघनायक महा कवि धर्मकीर्ति श्री रतनपाल महास्थविर के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उन्हीं के पास हुई। वे उस समय सारे लंका द्वीप के भिक्षुओं के नेता एवं प्रसिद्धिप्राप्त सम्मानित विद्वान् थे। वह समय लंका के भिक्षु-संघ के इतिहास में वाद का युग कहा जाता है। जहाँ कहीं भी धार्मिक वादविवाद उठ खड़ा होता, वे वहां अवश्य बुलाये जाते थे तथा उनके पहुँचने से पूर्व ही उनके नाम के श्रवण मात्र से विपक्षी अपनी हार मान लेते थे। गुरुवर ने उनके पास लंका में अपनी पढ़ाई समाप्त कर भारत की यात्रा की और कलकत्ता तथा पूना में बहुत दिनों तक संस्कृत का अध्ययन किया। आप पालि, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के महा पण्डित थे। सिंहल भाषा तो आप की मतृभाषा ही थी, जिसके आप मर्मज्ञ, वैयाकरणाचार्य कवि, लेखक तथा सफल समालोचक थे। आप अंग्रेजी अच्छी तरह जानते थे, किन्तु उसके प्रचार के विरोधी थे। हिन्दी से आपको विशेष रुचि थी। आप हिन्दी भी थोड़ी बहुत बोल लेते थे। आपने अनेक ग्रन्थ लिखा है, किन्तु आप उन्हें अपने जीवन में प्रकाशित हुआ नहीं देखना चाहते थे। जब गृहस्थ शिष्य उनको प्रकाशित करने के लिए माँगते थे, तब गुरुवर हँसते हुए कहते थे—'ग्रन्थ को प्रकाशित करना अपनी तृष्णा बढ़ानी है, यदि तुम लोग इन्हें प्रकाशित करना चाहते हो तो मेरे बाद करना।' इन शब्दों में कितनी अल्पेच्छता और सन्तुष्टि भरी हुई है! कितना धर्मरस झलक रहा है? उनके लिखे हुए ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ आज भी महामन्तिन्द परिवेण के पुस्तकालय में पड़ी हुई हैं। 'कथावत्थुप्पकरण' और 'पट्ठानमहाप्पकरण' का सम्पादन उन्होंने महान् विद्वत्ता पूर्ण [illegible] का सौभाग्य इन पंक्तियों के लेखक [illegible] ताब्दी में हुआ तथापि [illegible] काफी प्रसिद्धि थी। बड़े विद्वान् [illegible] विषयक सन्देह मिटाने तथा अपने ग्रन्थ शुद्ध [illegible] आया करते थे। आप बचपन से ही कुशाग्रबुद्धि और विद्याप्रेमी थे। यही कारण था कि गुरु श्री रतनपाल महास्थविर के दिवंगत होते ही आप मातर के सुप्रसिद्ध महामन्तिन्द परिवेण (विद्यापीठ) के कुलपति हुए और लंका के भिक्षु-संघ की ओर से आप छोटी अवस्था में ही दक्षिण-लंका के संघनायक बनाये गये।

आप में अनेक गुणों के साथ एक यह प्रधान गुण था कि आप विदेशी शिष्यों को बहुत प्यार करते थे। सत्कार तथा प्रेम से पढ़ाते एवं धर्मप्रतिपत्ति का उपदेश देते थे। वे धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाले किसी भी स्वदेशी या विदेशी शिष्य को देखना भी पसन्द न करते थे। विदेशी शिष्यों में भिक्षु महानाम 'कोविद' (नेपाली) भिक्षु अश्वघोष (नेपाली) और लेखक आपके ही शिष्य हैं। लंका में आप के शिष्यों की क्या गणना!

गुरुवर बड़े ही शान्त, धार्मिक और भावना प्रिय थे। आप नित्य प्रातःकाल साढ़े तीन बजे ही उठ जाते थे। मुँह हाथ धोकर रतन सुत्त का पाठ करना प्रारम्भ कर देते। सूत्रों के पाठ के उपरान्त चंक्रमण करते और ध्यान-भावना में समय बिताते थे। प्रातः सायं प्रतिदिन मन्दिर जाना और पुष्पादि के साथ पूजा करना उनका अभ्यस्त नियम था। वे उन शिष्यों को बहुत ही

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्यार करते थे, जो कि धर्म और प्रतिपत्ति के अनुसार आचरण करते थे। वे जिस सभा में जाते थे, वहाँ के सभापति वही होते थे। जनता उनके उपदेशों को सुनने के लिए तरसा करती थी। मेरे वहां रहते समय लंका के प्रधान मंत्री श्री सेनानायक भी कई बार उनके पास उपदेश सुनने के लिए आये थे।

गुरुवर किसी भी प्रश्न का उत्तर देने में इतने दक्ष और क्षिप्रप्रज्ञ थे कि कठिन-से-कठिन प्रश्नों का भी उत्तर पूछते ही पूछते हँसते हुए दे देते थे। मैंने स्वयं कई एक धार्मिक प्रश्नों को लंका के बड़े-बड़े अन्य विद्वानों से पूछा था, जिनके उत्तर नहीं-से मिले थे, किन्तु जब मैंने गुरुवर के पास जाकर पूछा और [illegible] में प्रतिष्ठित [illegible] [illegible] पाया [illegible] उत्तर दिया, तब मुझे स्वयं संकोच हो आया कि मैं इतने छोटे और सरल प्रश्न के लिए आचार्य जी को क्यों कष्ट दिया!

गुरुवर में जो-जो गुण थे, यदि मैं लिखूँ तो पार न पाऊँगा। अब तो इतना ही लिखकर उस करुणामूर्ति दयामय पूज्यवान गुरुवर की पुण्य स्मृति को बार-बार प्रणाम है।

> अनिच्चा वत संखारा उप्पादवय धम्मिनो।
> उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो॥

सभी संस्कार अनित्य हैं, उत्पत्ति और विनाश उनका स्वभाव है। उत्पन्न होकर वे बुझ जाते हैं, उनका शान्त [illegible] ना ही सुख है।

[illegible] बोधि-[illegible]

सरल-पालि-शिक्षा

पर

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की

सम्मति-

"पालि भाषा का ज्ञान हमारी संस्कृति के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक है, किन्तु उसके अध्ययन के लिए हिन्दी के साथ एक अति सरल पाठावलि का अभाव खटक रहा था। भिक्षु सद्धातिस्स पालि के योग्य पण्डित हैं, उन्होंने 'सरल-पालि-शिक्षा' लिखकर जिज्ञासुओं का बड़ा उपकार किया है। पुस्तक छोटी है, किन्तु इससे पालि भाषा के स्वतः या गुरुमुख से सीखने में बड़ा सुभीता होगा और विद्यार्थी आसानी से भगवान् बुद्ध के मूल उपदेशों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।"

मिलने का पता— महाबोधि पुस्तक-भण्डार, सारनाथ, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नेपाल का द्वितीय बुद्धगया

(श्रीनरेन्द्र नरसिंह शाक्य, सिक्किम)

नेपाल चैत्यों और विहारों का देश है। नेपाल में भारतवर्ष के प्रायः सभी तीर्थों के स्मारक हैं। काशी, बुद्धगया आदि, देवालय विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। यहाँ हम बुद्धगया के सम्बन्ध में लिख रहे हैं।

नेपाल का पाटन नगर शिल्पकला का केन्द्र समझा जाता है। उसे ही मञ्जुपट्टन और ललितपुर भी कहते हैं। पाटन का बुद्धगया विहार भारत के बुद्धगया की भाँति ही अत्यन्त सुन्दर बना है। उसके निर्माण में इस बात का ध्यान रखा गया है कि सारा विहार बुद्ध-मूर्तियों से सजा-सजाया जान पड़े। इस विहार में नव हजार बुद्ध-मूर्तियाँ बनी हैं। यही कारण है कि प्रतिवर्ष सहस्रों की संख्या में लोग इसका दर्शन करने बाहर से आते हैं। यह विहार चीन, जापान तिब्बत आदि के बौद्धों के लिए विशेष दर्शनीय है। तिब्बत और चीन देशवासी इसे 'शाक्य तुङ्गु' नाम से पुकारते हैं। नेपाल देशवासियों का तो यह महातीर्थ ही है।

इस मन्दिर के निर्माण क इतिहास इस प्रकार बतलाया जाता है—पहले पाटन में वकुली रुद्रवर्ण नामक विहार था। विहार के प्रधान संस्कार श्रीशिवदेव का पुत्र अभयराज को बुद्धगया-स्थित तथागत की चरण-पादुका में अचल श्रद्धा थी। वह अपनी स्त्री के साथ बुद्धगया गया और वहाँ कुछ दिनों तक रहकर भगवान् की एक मूर्ति के साथ नेपाल लौटा। उ के मन में बुद्धगया जैसा मन्दिर बनवाने का विचार हुआ। वह मन्दिर के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया किन्तु थोड़े ही दिनों में उसका देहान्त हो गया। तत्पश्चात् उसके पुत्रों ने उस कार्य को सम्हाला और उसकी समाप्ति के पूर्व ही वे भी स्वर्गवासी हो गये। अभयराज के पोत्रों ने इस कार्य को पूर्ण किया। उन्होंने मन्दिर में बुद्धगया से लाई हुई बुद्ध-मूर्ति का स्थापना की। उनके समय में मन्दिर को भारत के बुद्धगय[illegible] बनवाने में कुल तेरह वर्ष लगे थे। [illegible]ताब्दी में हुआ तथापि [illegible]र हो जाने पर अक्षय तृतीया के दि[illegible] की भी स्थापना की और एक विराट् [illegible]योजन कर वि० स० १६५८ में आषाढ़ शुक्ल ७ को नेपाल के वर्तमान महाराज श्रीशिव सिंह मल्ल को निमन्त्रित करके मन्दिर का उद्घाटन कराया। यह सारावर्णन अबतक मन्दिर में लिखा वंशावली में विद्यमान् है।

विक्रम सम्वत् १९९० में जब कि नेपाल में महाभूकम्प हुआ था, उक्त मन्दिर गिर पड़ा था और उसकी स्थापत्य-कला को काफी क्षति पहुँचती थी। किन्तु पुनः नेपाल के महाराणा श्री युद्धशम्सेर ने ३१००) की सहायता कर उसकी मरम्मत करायी। तब से नेपाल का द्वितीय बुद्धगया फिर अपने पूर्व के आकार में आ गया है। आजकल इसे "महाबुद्ध मन्दिर" कहते हैं। यह नेपाल का अद्भुत और दर्शनीय बुद्धगया है। इसे देखते हुए दर्शक का चित्त इसकी स्थापत्य-कला से इतना प्रभावित होता है कि वह थोड़ी देर के लिए भारत के बुद्धगया को भी भूल जाता है। भारत के बुद्धगया और इसमें तनिक भी अन्तर नहीं जान पड़ता है। नेपाल को अपने इस अमूल्य कीर्ति और स्थापत्य पर गर्व है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"आर्त्त अवनी हे तथागत ! बाट तेरी जोहती !!"

(श्री अमरनाथ उपाध्याय)

(१)

विकल रवि-शशि विकल उडुगण, विकल वसुधा हो रही।
हिंस्र-हिंसा-ग्रसित-संसृति, चेतना सब खो रही॥
वासना की [illegible] जितयें, जल रहीं सब ही कहीं।
स्वार्थ पर [illegible], दृष्टि अब आता नहीं॥

(२)

आधि [illegible] बन्धनों में, मुग्ध मानवता पड़ी।
राजनीतिक व्यालिनी सी, नाश पथ पर है खड़ी॥
उग्र अणु-बम-भित्तियों पर, युग नया बनने लगा।
नाश के कटु मंत्र से ही, सुप्त जग जगने लगा!!

(३)

छद्म-वेशिनि, कुटिला नीति शील का आधार है।
दीन-जन-हित-योजनाओं—का न वारा पार है॥
ग्रसित हैं निर्धन धनी क्या—सब परस्पर भीति से।
मिट सकेगी भी यह भीति, नेह की मञ्जु रीति से?

(४)

राज्य-लिप्सा बाड़वानल-सी बढ़ी है जा रही।
कपट की काली घटायें, आज नभ पर छा रहीं॥
दामिनी सी दमक जाती, पीड़ितों की पीड़ भी।
जल उठेगा कब न जाने, शान्ति का यह नीड़ भी॥

(५)

विगत होगी मोह-रजनी, भोर भी होगी कभी?
बुद्ध के शुभ तेज से कब, दीप्त फिर होगी मही?
पावनी प्राची पुनः तव—गीत गाती सोहती!
आर्त्त अवनी हे तथागत? बाट तेरी जोहती!!

—❀—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

साहित्य-समूह में पालि का स्थान

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। नदी के प्रवाह की भाँति उसका परिवर्तन नित्य है। ज्यों-ज्यों समाज बदलता जाता है। त्यों-त्यों साहित्य भी अपना नूतन रूप ग्रहण करता जाता है। भाषा से उसका पार्थक्य होता जाता है। काल-परिवर्तन के साथ भाषा बदलती जाती है और भाषा तथा समाज के परिवर्तन के साथ साहित्य बदलता जाता है। उस पर तत्कालीन समाज के प्रत्येक अङ्ग की छाप पड़ती जाती है।

भारत के प्राचीन साहित्यों के अध्ययन से विदित होता है कि जिस समय हमारे पूर्वज अपने भावों को व्यक्त करने के लिए प्राचीनतम भाषा (आदि प्राकृत) बोलते थे, उस समय भी उनका एक विशिष्ट साहित्य था। उस युग के हमारे पूर्वजों के भाव, जिसमें संकलित हैं, उसे हम वैदिक-साहित्य कहते हैं। वैदिक साहित्य की भाषा का नाम "छान्दस" है।

जिस समय "छान्दस्" भाषा ग्रन्थारूढ़ हुई और वैदिक साहित्य का निर्माण हुआ, उस समय साहित्य की भाषा का प्रवाह प्रायः रुक गया। वह ग्रन्थों की भाषा बना गई। उसमें वेदों पर लिखे गये ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचनायें हुईं, किन्तु जो भाषा जन-साधारण में बोली जाती थी, वह प्रगतिशील मानव-समाज के साथ अपने रूपरंग को बदलती गई। एक ओर जहाँ ब्राह्मण-साहित्य ने पाणिनी के समय में (ई० पूर्व चौथी शताब्दी) संस्कृत का नया जामा पहना, तो दूसरी ओर जन-साधारण की भाषा आदि-प्राकृत ने मागधी का रूप ग्रहण किया, जिसे हम बुद्धकाल की मागधी कहते हैं। यही पीछे पालि, मागधी, तन्ति और भारति भाषा के नाम से पुकारी जाने लगी। एक उसका विकृत रूप अर्धमागधी भी बन गई जिसे जैन-मागधी भी कहते हैं।

पुनः जब उक्त भाषाओं का साहित्य एकत्र किया गया और उसे जनसाधारण की भाषा से भरसक परिशुद्ध रखने का प्रयत्न किया गया, तब वह ढीली पड़ गई तथा देशी-मागधी ने भविष्य के साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान स्थापित किया। देशी मागधी के पश्चात् प्राकृत और अपभ्रंश के रूप में चलती हुई वह भाषा आज भी मगही, मैथिली, भोजपुरी, अवधी आदि प्रान्तीय बोलियों के रूप में वर्तमान है।

जिस प्रकार पाणिनीय संस्कृत का जन्म ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में हुआ तथापि वह पतञ्जलि के समय (ई० पूर्व दूसरी [illegible] तः सीमित रही, उसका बहुत कम प्रचार [illegible] शताब्दी से वह व्याप्त होने लगी; उसी प्रकार पालि का प्रादुर्भाव भगवान् बुद्ध से बहुत पहले हो चुका था, किन्तु वह जनसाधारण में बोली जाने के कारण साहित्य क्षेत्र में न आ सकी थी। जब भगवान् बुद्ध और महावीर स्वामी ने अपने उपदेश के लिये उसे अपनाया, तब साहित्य-क्षेत्र में अपना स्थान स्थापित किया और तब से लेकर क्रमशः अपने साहित्य-भण्डार को बढ़ाती ही गई। इस प्रकार पालि साहित्य का इतिहास बुद्धकाल से प्रारम्भ होता है और वह वर्तमान काल तक चला आता है। आये दिन लंका, बर्मा, स्याम आदि बौद्ध देशों में पालि में अनेक रचनायें होती रहती हैं। भारत भी इसका अपवाद नहीं।

पालि के शैशव-काल से लेकर आज तक के साहित्य के अनुसार काल-विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

(१) आदिकाल—ई० पू० ७०० से ५४३ तक

(२) मध्यकाल—ई० पूर्व० ५४३ से ३२५ तक

(३) स्वर्णकाल ई० पूर्व ३·५ से ई० सन् ६०० तक।

(४) वर्तमान काल—ई० सन् ६०० से आज तक।

आदिकाल में पालि-भाषा के प्रारम्भिक दिनों से लेकर भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण तक का समय आ जाता है तथा मध्यकाल में पालि-साहित्य के एकीकरण से लेकर अशोक-कालीन तृतीय संगीति तक का समय; स्वर्ण-काल में तृतीय संगीति से लेकर लंका में अट्ठकथा, टीका आदि

शेष पृष्ठ २६४ के नीचे

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

[इस स्तम्भ में बालक-बालिकाओं के बौद्ध-धर्म सम्बन्धी लेख, कविता, कथा-कहानी, पहेलियाँ आदि छपा करेंगी। बालक-बालिकाओं को अपनी रचनायें भेजते समय साफ-साफ अक्षरों में कागज के एक ही ओर हासिया छोड़कर लिखना चाहिये—सम्पादक]

चन्द्र-कलंक

श्री पञ्चमराम

चन्द्रमा में जो श्यामता दिखाई देती है, उसके सम्बन्ध में अनेक धारणाये हैं। तुलसीदास ने रामायण में इसके प्रति बहुत सी बातों का उल्लेख किया हैं। ज्योतिषियों ने कहा है कि चन्द्र की श्यामता जगत के लिए कल्याणकर है क्योंकि जब उसमें श्यामता न रहेगी तब हिम वृष्टि होगी। वैज्ञानिकों का कहना है कि चन्द्र में जो काला धब्बा है वह छोटे छोटे गड्ढों और पर्वतों का चिन्ह है जो बर्फ से ढके हुए हैं।

बौद्ध सहित्य में इस चन्द्र-कलंक के प्रति एक रोचक कहानी आई हुई है, उसमें कहा गया है कि—जिस समय काशी में ब्रह्मदत्त राजा राज कर रहे थे उसी समय बोधि-सत्त्व सस (खरगोश) योनि में पैदा हो कर बन में विचरण करते थे। उनके तीन मित्र थे उदविलाव, शृंगाल और बन्दर। ये तीनों दिन में इधर-उधर विचरण करते थे और संध्या समय धर्मोपदेश सुनने के लिये सस पण्डित के यहाँ जाते थे। जब सब इकट्ठे हो जाते तब खरगोश उपदेश देता कि व्रत रहना चाहिये, दान देना चाहिये। दान देने से महाफल होता है। एक दिन सोलहों कला से चन्द्र को गगन-मण्डल में उदित होते देख कर खरगोश ने कहा—कल हम लोगों का महापर्व है। व्रत रहना चाहिये और यदि कोई अतिथि आवे तो पहले उसे भोजन करा के फिर स्वयं भोजन करना चाहिये। अतिथि सत्कार हमारे यहाँ परम धर्म समझा जाता था और अब भी समझा जाता है। अतिथि गौरव से हमारा साहित्य भरा पड़ा है।

हमारे संचय में था दान,
अतिथि थे सदा हमारे देव।
वचन में सत्य हृदय में तेज,
प्रतीज्ञा में रहती थी टेक॥

खरगोश के मित्रों ने उसके धर्मोपदेशानुसार आचरण करने की प्रतिज्ञा की पर्व के प्रातः काल ही अतिथि सत्कार के लिये वस्तु को इकट्ठा करने में लग गये। प्रथम उदविलाव नदी के किनारे गया। वहाँ एक मछु

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मछली पकड़ एक कपड़े में रख बालू में ढक कर नदी मछली पकड़ने उतरा। उदविलाव जा कर मछली तत्काल तीन बार घोषणा की कि यह किसकी मछली जब कोई नहीं बोला तो वह उसे अपने स्थान पर ला रख दिया और सोचा कि समय आने पर खाऊँगा। गाला भी एक खेत रक्षक के यहाँ गया। वह रक्षक सो था। वहाँ से एक कसोरा मांस और एक कसोरा लाया। बन्दर भी सुन्दर पका हुआ आम का फल लाया। खरगोश रात्रि भर चिंता सागर में डुबकी लगाता ।। निद्रा देवी उसके ऊपर कृपा नहीं की। वह सोच था। "जब प्रातः काल मेरे यहाँ कोई अतिथि आवेगा मैं उसे खाने के लिए क्या दूँगा ? वह घास तो खावेगा । मेरे पास न तिल का एक दाना ही है और न चावल एक कण ही।" अन्त में उन्हों ने निर्णय किया कि मैं : काल ऐसा दान दूँगा जैसा आज तक विश्व में कोई किया होगा। मैं अपने आप को अतिथि को समर्पण कर ा और वह मेरा मांस खा कर अपने आत्मा को संतुष्ट ा।

खरगोश के इस त्यागमय विचार से देवताओं के राजा का कमलों से सुसज्जित सिंहासन गर्म हो उठा। भगवान कारणों को जान विचार किया कि चल कर गोश की दानशीलता की परीक्षा लूँ।

पाठक गण इस प्रकार के दान को केवल कपोल-कल्पित ही न समझें। प्राचीन युग में भारत वसुन्धरा ऐसे ऐसे दानी हुए जिन्हों ने परोपकारार्थ अपने आप अर्पण कर दिया था।

सुना है दधिचि का वह दान,
हमारी जातीयता विकास।
पुरन्दर ने है पवि से लिखा
हमारे अस्थि युग का इतिहास।

सर्व प्रथम इन्द्र ब्राह्मण का वेष धारण कर उद-विलाव के पास गया और कहा कि मैं भूख से तड़प रहा हूं। मुझे भोजन दो। उदविलाव ने कहा कि मेरे पास सात मछलियाँ हैं इन्हें खा कर विश्राम करो। ब्राह्मण ने कहा कि समझो कि मैं पा चुका। पीछे खा लूँगा। इसके बाद शृंगाल के पास गये उसने माँस और दही देने के लिये कहा। तदुपरान्त वह बन्दर के पास गया।

अन्त में ब्राह्मण खरगोश के पास गया और कहा कि मैं भूख से तड़प रहा हूं इस लिये श्रमण धर्म को न निभा सकूँगा। यह सुन खरगोश ने कहा कि हे ब्राह्मण! तुमने मेरे पास आकर बहुत ही अच्छा किया मेरे रहते तुम भूखे नहीं रह सकते। जाओ !! अग्नि लाओ। मैं अपने आप को अग्नि में छोड़ दूँगा और तुम मेरे माँस को खा कर अ[illegible] करना। ब्राह्मण अपने प्रभाव से दह[illegible] का अंगारा प्रकट किया। खरगोश अपने शरीर को तीन बार कपा दान के लिये तैयार कर जिस प्रकार हंस कमल समूह में प्रवेश करता है उसी प्रकार वह अपने को अग्नि में छोड़ दिया किन्तु खरगोश के जाते ही आग वर्फ के समान शीतल हो ही गई। तब खरगोश ने कहा कि ब्राह्मण ! तेरी आग अति शीतल है। यह तो मेरा रोम भी न जला सकी। ब्राह्मण ने कहा कि मैं इन्द्र हूँ। तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये आया हूं। तुम मेरी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

उसी समय इन्द्र ने पत्थर को दबा कर रस निकाला और उस रस से खरगोश के चेहरे को चन्द्रमा में अंकित कर दिया जिससे संसार के प्राणी जान सकें कि खरगोश अपने महान् दान और त्याग के बल पर सबसे ऊँचे स्थान को प्राप्त कर सका। सचमुच चन्द्र में जो श्यामता है वह खरगोश की छाया है जिसको आज भी दानी लोग देख कर दान देने और त्याग करने की प्रेरणा पाते हैं।

त्याग ही अमरता का सोपान है।

———

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

यशोधरा का विरहगान

श्री दया नारायण पाण्डेय

तुम छोड़ गये मुझको सोते
मेरे प्रियतम उर के अधार,
कितने दिन आये बीत गये
देखी न तुझे पर एक बार।
है दिन जाता कट ऐसे ही
पर रात नहीं जाती मेरी,
है चाह यही मेरे मन में
कर दो प्रियतम [illegible] निज फेरी।
जब विरह-व्यथा में रोती [illegible]
तब राहुल भी रो देता है,
आंखों के काले आँजन को
आँसू से वह धो देता है।
बहते बहते जब सूख गये
खारे आँसू के ये सोते,
क्या जीवन मेरा बीतेगा
दिन-रात सदा रोते-रोते?
ममता माया को त्याग नाथ
तुम आज बने हो बनवासी,
तब साथ रहेगी सेवा में
होकर वैरागिनि यह दासी।
है चाह नहीं इन महलों की
बस चाह तुम्हारे दर्शन की,
जिससे आँखें हर्षित होवें
हो शान्त पिपासा इस मन की।
अब शान्ति कहीं पाऊँगी मैं
पग-धूलि जहाँ होगी पावन,
महलों से भी बढ़कर होगा
हे नाथ! जहाँ तू ध्यान मगन।

—o—

(पृष्ठ २६१ कालम दो के आगे)

के लिखे जाने तक का समय और वर्तमान काल में लंका, वर्मा, स्याम आदि देशों में पालि-साहित्य की नवीन वृद्धि के साथ आजतक का समय।

इस प्रकार विदित है कि भारतीय साहित्य-समूह में पालि का अपना एक विशिष्ट स्थान है, जो कि इतने दीर्घकाल से अपने भण्डार को बढ़ाती आ रही है।

वैशाख पूर्णिमा को सार्वजनिक छुट्टी

हमें यह लिखते हुए विशेष प्रसन्नता हो रही है कि विहार तथा आसाम की प्रान्तीय सरकारों की भाँति युक्त प्रान्तीय सरकार ने भी इस वर्ष त्रिविध पवित्रतम वैशा[ख] पूर्णिमा के दिन सार्वजनिक छुट्टी की घोषणा कर दी। [illegible] बहुत दिनां से इस घोषणा को सुनने के लिए उत्सुक [illegible] और इसके लिए प्रार्थना करते आ रहे थे। हम मानन[ीय] पन्त जी को इसके लिए हृदय से धन्यवाद देते हैं, जिन्हों[ने] कि हमारी प्रार्थना सुनी और हमें आश्वासन देकर [illegible] महत्वपूर्ण कार्य को किया। आशा है अन्य प्रान्तों [की] सरकारें भी इसका अनुकरण करेंगी और अपने यहाँ [भी] वैशाख पूर्णिमा को सार्वजनिक छुट्टी घोषित करेंगी।

—o—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बौद्ध-जगत्

बुद्धगया में धार्मिक महोत्सव

बुद्धगया में गत ६ दिसम्बर से लेकर १४ दिसम्बर तक महाबोधि धर्मशाला के नवीन प्राकार के उद्घाटन के उपलक्ष में परित्राण पाठ हुआ। जिसमें सम्मिलित होने के लिए लंका और सारनाथ से भी भिक्षु लोग आये हुए थे। परित्राण-पाठ प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल होता था। अन्त में प्राकार का उद्घाटन बर्मा के श्री ऊ सान थिन ने किया। उन्हीं की अध्यक्षता में एक सभा भी हुई। सभा में श्री धम्मानन्द महास्थविर (लंका) का प्रभावशाली भाषण हुआ। उन्होंने प्राकार और द्वार के निर्माणार्थ ५०००) दान दिये थे। डाक्टर के० एम० पालित और श्री एम० बी० जी० दिसानायक के भी भाषण हुए। सभा के अन्त में श्री ऊ सान थिन ने स्वर्गीय धम्मपाल जी की सेवाओं और गुणों का वर्णन करते हुए उपस्थित सभी व्यक्तियों को धन्यवाद दिया।

अवतारी लामा की तीर्थ-यात्रा

लद्दाख के निकटवर्ती रुशो नामक गुम्बा (विहार) स्कूसूर ओदसल देछेन फुग के प्रधान अवतारी लामा कुशोग छोजेला कांगबा होते हुए बौद्ध तीर्थस्थानों की यात्रा करते हुए गत २१ दिसम्बर को सारनाथ आये। २२ दिसम्बर को उन्होंने मूलगन्ध कुटी विहार में भगवान् की प्रतिमा की पूजा की और तत्पश्चात् बुद्धगया की ओर प्रस्थान किया। आप के साथ यात्रा की सुविधा के लिए एक दुभाषिया भी था, जो हिन्दी भलीभाँति जानता था। १७ अनुगामी सदा आप के साथ रहते थे। आप तीर्थयात्रा करते हुए तिब्बत की राजधानी ल्हासा जाकर दलाई लामा से मिलेंगे।

कलकत्ता में तिब्बत उत्सव

गत [illegible] में कलकत्ता में तिब्बती बौद्धों का एक [illegible] उत्सव मनाया गया। उत्सव में सम्मिलित होनेवाले सभी स्त्री पुरुष तिब्बत के रेशमी वस्त्रों से अलंकृत थे। उत्सव कलकत्ता के प्रधान तिब्बती गुम्बा से प्रारम्भ हुआ और धर्मराजिक विहार तक आया। वहाँ महाबोधि सभा की ओर से उनका स्वागत किया गया। भिक्षु धम्मरतन ने उनके स्वागत में एक संक्षिप्त भाषण दिया। तत्पश्चात् जुलूस हिमालय बौद्ध गुम्बा (तिब्बत विहार) को लौटा।

लद्दाख के प्रधान लामा

लद्दाख के प्रधान लामा डेल्टन बकुल गत नवम्बर मास में सभा के प्रधान केन्द्र धर्मराजिक विहार कलकत्ता गये। और सभा के प्रधान मन्त्री श्री देवप्रिय वलिसिंहजी से विशेष रूप से मिले। उन्हें तथा उनकी मण्डली को प्रातःकाल सभा की ओर से जलपान कराया गया और उनका स्वागत किया गया।

सेठ युगलकिशोरजी बिड़ला द्वारा पूजा

सभा के संरक्षक सेठ श्री युगलकिशोरजी बिड़ला गत नवम्बर मास में कलकत्ता गये और धर्मराजिक विहार में जाकर सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन की पवित्र अस्थियों की पूजा किये। सेठजी के दीर्घजीवन के लिए भिक्षुओं ने सूत्रों का पाठ किया और उन्हें आशीर्वाद दिया। बिड़लाजी ने पवित्र अस्थियों का दर्शन कर विशेष शान्ति का अनुभव किया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

युगन्धर महास्थविर का स्वर्गवास

हमें यह लिखते हुए दुःख हो रहा है कि गत दूसरी दिसम्बर को कलकत्ता के बर्मा विहार और धर्मशाला के प्रधान भिक्षु युगन्धर महास्थविर का ७५ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। आप का जन्म बर्मा के लेतपादन में हुआ था। आप सन् १९११ से भारत में रह रहे थे। आप ने अपने जीवन में बर्मी यात्रियों को बड़ी भारी सेवा की थी। आप की अन्त्येष्टि क्रिया तीसरी दिसम्बर को बर्मा, चटगांव और सिंहल के भिक्षुओं द्वारा बड़ी धूमधाम से की गई।

धर्मकीर्ति श्रीधम्मावास नायक महास्थविर का देहावसान

दक्षिणी लंका के संघनायक पूज्य [illegible] कीर्ति श्रीधम्मावास नायक महास्थविर का गत २८ [illegible] को महामन्तिन्द परिवेण, मातर, में ६१ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया। आप लंका के सबसे बड़े विद्वान् और धर्मशास्त्र पारंगत थे। आप के देहावसान से सारा लंका शून्य हो गया। आप के अभाव से न केवल लंका को ही प्रत्युत भारत के बौद्धों को भी अपने एक बहुत बड़े सहायक से वंचित हो जाना पड़ा। जिस दिन आप का देहान्त हुआ उस दिन से लेकर पहली जनवरी तक सारे लंका के गृहस्थ तथा भिक्षु आप के मृतशरीर के दर्शनार्थ महामन्तिन्द परिवेण आते रहे। पहली जनवरी को मातर के सुप्रसिद्ध श्मशान भूमि में अत्यन्त समारोह के साथ आप का मृतशरीर जलाया गया। उस दिन लगभग दो मील लम्बा जुलूस निकला था, जिसमें लंका के हरेक प्रदेश के भिक्षु, गृहस्थ, विद्यार्थी सम्मिलित थे। केवल भिक्षुओं की ही संख्या एक सहस्र से अधिक थी।

लंका में अभिधर्म विद्यालय की स्थापना

बड़े प्रसन्नता की बात है कि गत मास में लंका में कोलम्बो के देमटगोड नामक भाग में एक अभिधम्म विद्यालय की स्थापना हुई। अभी तक लंका में अभिधम्म के लिए कोई विशेष रूप से विद्यालय नहीं था और दो चार महास्थविरों को छोड़कर अभिधम्म के ज्ञाता भी नहीं थे। अब उक्त विद्यालय की स्थापना से आशा है इस अभाव की पूर्ति होगी।

सुमात्रा के बौद्धों में प्रगति

सुमात्रा में कुछ समय पूर्व ही बौद्ध समिति की स्था[illegible] हुई थी, जिसकी अहर्निश उन्नति हो रही है। प्रति स[illegible] वहां के बौद्ध मेदन (Medan) के समिति-भवन [illegible] एकत्र होते तथा धार्मिक प्रगति पर विचार करते [illegible] समिति के प्रधान मन्त्री श्री डाक्टर कुमारस्वामी है।

इटली में बौद्ध प्रभाव

इटली के कोमो (Como) नगर के श्री एद्[illegible] पास्तो लिखते हैं कि वहां के बहुत से लोग बौद्धधर्म [illegible] प्रभावित हैं और उनका झुकाव बौद्धधर्म की ओर है [illegible] वे बौद्धधर्म का अध्ययन करना चाहते है और बौ[illegible] विद्वानों से धर्म-सम्बन्धी पत्रव्यवहार भी।

बंकाक के भिक्षु-विद्यापीठ का वार्षिकोत्सव

गत मास में बंकाक नगर के भिक्षु विद्यापीठ [illegible] वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया, जिसमें लगभ[illegible] एक हजार भिक्षु सम्मिलित हुए थे। यह विद्यापीठ प[illegible] बौद्ध समिति, बंकाक की ओर से स्थापित हुआ था, कि[illegible] अब उसे स्याम की सरकार चलाती है और सारा [illegible] वहन करती है।

बौद्ध-समिति, लन्दन की रजत जयन्ती

नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में लन्दन की बौद्ध-समि[illegible] की रजत जयन्ती मनायी गई। यह समिति पहले थिये[illegible] सोफिकल सोसाइटी के एक भवन में स्थापित हुई थी, [illegible] धीरे-धीरे अपने कार्य क्षेत्र को बढ़ा ली है। इसके अध्य[illegible] श्री क्रिस्मस हाम्फ्रेस है, जो बहुत ही योग्य बौद्ध विद्वान् हैं [illegible] उन्होंने इंगलैण्ड और यूरोप में बौद्ध धर्म के प्रचार के बहु[illegible] ही महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। उन्हीं की देखरेख में औ[illegible] उन्हीं के प्रयत्न से इस पच्चीसवें वर्ष समिति की र[illegible] जयन्ती मनायी गई है, जो हरेक प्रकार से सफल रही [illegible] जिसकी चर्चा बौद्ध-जगत् में अत्यन्त सम्मान के सा[illegible] हुई है।

चैत्य-शिखर से अद्भुत ज्योति

गत १३ सितम्बर को लंका के अगलवत्त प्रदेश [illegible] प्रतिराज परिवेण के पुराण चैत्य से रात्रि में एक विचि[illegible]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ज्योति निकली, जिसे सारी रात जनता एकत्र होकर देखती रही। कहते हैं ऐसी ज्योति उक्त चैत्य के शिखर से लगभग २०० वर्ष पहले दिखाई दी थी। उक्त ज्योति को देखकर सभी दर्शक आश्चर्य चकित हो गये और बुद्धगुण कहते हुए रात बिताये। ज्योति छः वर्ण की थी।

धर्मदूत की सहायता—दार्जिलिङ्ग के श्री डी० टी० लामा ने हैदराबाद से स्वकीय ६ वर्षीय पुत्री कुमारी पेम्पा डोलमा के पुण्यार्थ १०) धर्मदूत के लिए दान भेजा है। कुमारी पेम्पा डोलमा २६-११-४९ को दार्जिलिंग में ही स्वर्गवासिनी हो गई। हम श्री डी० टी० लामा के इस दान को सधन्यवाद स्वीकार करते हैं और स्वर्गीया डोलमा के शान्ति की प्रार्थना करते हैं।

श्रीअनन्तरामचन्द्र कुलकर्णी, श्री डी० टी० लामा और परमहंस श्रीटाट बाबा महाराज ने धर्मदूत के बहुत से नये ग्राहक को बनाया है। आप लोग सदा धर्मदूत की सहायता करते रहते हैं, हम धर्मदूत परिवार की ओर से आप लोगों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं और प्रार्थना करते हैं कि दूसरे भी सज्जन आप लोगों के उक्त कार्य का अनुकरण करेंगे।

श्री रामलाल मान्धर (नेपाल) ने धर्मदूत के लिये ५) की सहायता दी है। हम उसे सहर्ष स्वीकार करते हैं।

दैनिक 'संसार' और दैनिक 'सन्मार्ग' ने अपने पत्र हमें निःशुल्क भेजकर हमारी बड़ी सहायता की है। हम उक्त पत्रों के व्यवस्थापकों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं और उनसे सदा सहयोग चाहते हैं। आशा है वे हमें इसी प्रकार सदा अपने समाचार-पत्र भेजते रहेंगे। साथ हम दैनिक "आज" के व्यवस्थापक को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते, जो वर्षों से हमें अपना पत्र देते आ रहे हैं।

प्रव्रज्या संस्कार

गत जनवरी मास में कुशीनगर में नेपाल के एक नेपाली बालक ने श्रामणेर दीक्षा ली। बालक नेपाल के पाटन [illegible] वाला है। उसकी माँ उसे प्रव्रजित क[illegible] लेकर आई थी। प्रव्रज्या के बाद उसका नाम श्रामणेर सुदर्शन रखा गया।

बौद्ध धर्म में दीक्षा

मद्रास प्रान्त के श्री के० जानकीराम राय चौधरी ने दिसम्बर मास में सारनाथ में बौद्ध धर्म में दीक्षा ली और एक मास तक सारनाथ में रहकर बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया। साथ ही मिलिन्द प्रश्न का अँग्रेजी से आन्ध्र भाषा में अनुवाद भी कर दिया।

भगवान् बुद्ध को
पण्डित नेहरू की श्रद्धाञ्जलि

लंका यात्रा के अवसर पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने जो महत्वपूर्ण कार्य किये, उनमें से एक, लंका विश्व-विद्यालय के विशेष समावर्तन समारोह में भाषण भी था। इस विशेष समारोह के समय नेहरूजी को डाक्टर की उपाधि से विभूषित किया गया। पंडित नेहरू ने अपने भाषण में भगवान बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा:—

जब मैं यहाँ (लंका) आता हूं तब मुझे भारत के उस महान एवं तत्वज्ञानी सुपुत्र (भगवान् बुद्ध) का स्मरण हो आता है, जिन्हें आपलोग (लंकावासी) अत्यधिक आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से पूजते हैं। यद्यपि उनका आदर भारतीय एवं विश्व के अन्य लोग भी करते हैं। भगवान् बुद्ध ही हमको और आपको एक सूत्र में बांधे हुए हैं। भारत और लंका को परस्पर आबद्ध करने वाला यह, वह सूत्र है जिसे कोई भी विच्छिन्न नहीं कर सकता है। जब कभी हम भगवान् बुद्ध को स्मरण करते हैं, तो निश्चय ही हमारे समक्ष उनकी शिक्षाओं की आकृति उपस्थित हो जाती है कि हिंसा घृणा और द्वेष से दूर रहो।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अशुभ-भावना का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण

श्रीभरतसिंह उपाध्याय

अशुभ-भावना विकार को शान्त करने का एक साधन है। मार की सेना को छिन्न-भिन्न करने के लिये यह एक अमोघ शस्त्र है, जिसे मार-विजयी मुनि ने दिया है। आयुष्मान् राहुल को अशुभ-भावना का उपदेश देते हुए भगवान् ने कहा है "राहुल! अशुभ-भावना का अभ्यास कर। अशुभ-भावना का अभ्यास करते हुए जो तेरा राग है वह सब चला जायगा।" पातंजल-योग में जिसे "अभ्यास-वैराग्य" कहा है या गीता में "पुत्र-पत्नी-गृहादि में दुःख-दोषानुदर्शन" का जो बोधि-अर्जन या है वे सब अशुभ-भावना के ही रूप हैं। बौद्ध योग साधन में इन्हें एक व्यवस्थित और अधिक स्पष्ट रूप अवश्य मिल गया है। 'द्वत्तिसाकार' या शरीर की ३२ गन्दी वस्तुओं सम्बन्धी ध्यान पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है। काया और मन दोनों ही अशुभ-भावना के क्षेत्र हैं। दोनों की जगह उगी हुई राग रूपी झाड़ी को इस पैनी कुल्हाड़ी से साफ किया जा सकता है। यहाँ अशुभ-भावना का तात्त्विक विवेचन करना उद्देश्य नहीं है। अशुभ भावना क्या है, यह दिखाने के लिये यहाँ केवल एक संक्षिप्त उदाहरण का दिग्दर्शन करना आवश्यक है, जिसे आचार्य बुद्धघोष ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विसुद्धि-मग्गो' में दिया है। पालि बौद्ध साहित्य इस प्रकार के अनेक संस्कारमय एवं जीवन को ऊपर उठानेवाले उदाहरण से भरा पड़ा है, जिनका प्रकाशन आज अत्यन्त आवश्यक है।

चैत्य-पर्वत (लङ्का) पर महातिष्य नामक एक स्थविर रहते थे। एक दिन भिक्षा के लिये वे चैत्य-पर्वत से अनुराधपुर की ओर जा रहे थे। रास्ते मे उन्हें एक कुल-वधू मिली, जो अपने पति से झगड़ा कर अनुराधपुर से अपने जातिवालों (माता-पिता) के घर जा रही थी। वस्त्राभरणों से पूर्णतः अलंकृत थी। प्रसन्न-छवि महास्थविर को देखकर उनपर अनुरक्त हो गई। अनेक हाव-भाव दिखाकर उन्हें कामासक्त करने का प्रयत्न करने लगी। हँसी-मजाक भी किये। विजन स्थान था किन्तु स्थविर ध्यानी थे। अशुभ की भावना किये हुए थे। जैसे ही उस रमणी के हँसते हुए मुख से उसके चमकीले दाँत दिखाई पड़े, स्थविर की पूर्व-भावित अशुभ-भावना, जो उन्होंने हड्डी को ध्यान का आलम्बन मानकर की थी, जाग पड़ी। अरे, ये तो मांस में सटी हुई हड्डियाँ हैं! फिर शरीर का सारा अस्थि-पंजर उनकी ध्यान-वीथियों में होकर गुजर गया। अनित्य! दुःख! अनात्म! वहीं खड़े खड़े स्थविर की ताली लग गई। इतनी भारी पवित्रता कहाँ ठहरे। पूर्ण विशुद्धि ही पूर्ण विमुक्ति के रूप में फटकर निकलने लगी। बौद्ध पारिभाषिक शब्दों में स्थविर को अर्हत्त्व की प्राप्ति हो गई—

तस्सा दन्तट्ठिकं दिस्वा पुब्बसञ्जं अनुस्सरि।
तत्थेव सो ठितो थेरो अरहत्तं अपापुणि॥

अर्हत् महातिष्य वहीं खड़े खड़े ध्यान-सुख अनुभव कर रहे थे कि इतने में उस स्त्री का पति, उसकी खोज करते करते उसके पीछे आ निकला। स्थविर को देखकर उनसे पूछा "भन्ते क्या आपने इधर से जाती हुई किसी स्त्री को देखा है?" स्थविर ने उत्तर दिया—

नाभिजानामि इत्थी वा पुरिसो वा इतो गतो।
अपि च अट्ठिसङ्घाटो गच्छते स महापथे॥

"वत्स! मैं नहीं जानता कि इधर से स्त्री गई या पुरुष। हाँ, हड्डियों के एक भारी ढेर को मैंने इस महापथ से जाते अवश्य देखा है।

स्थविर महातिष्य की विजय ही सबसे बड़ी विजय है। इसके अलावा और कोई विजय संसार में नहीं है। स्थविर महातिष्य की स्मृति को हमारा प्रणाम है!

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नये प्रकाशन

नुग—लेखकः भिक्षु महानाम 'कोविद'। प्रकाशक
नौदय सभा, कालिम्पोंग, दार्जिलिंग। पृष्ठ १०७।
ल्य १)।

यह भाई महानामजी का नेवारी भाषा का प्रथम ग्रन्थ
। यह २८ प्रकरणों में विभक्त है। प्रकरण छोटे-छोटे
ौर आकर्षक हैं। ग्रन्थ में प्रारम्भ से अन्त तक भगवान्
द्ध का जीवनचरित्र उन्हीं के श्रीमुख से वर्णित है। जैसा
लेखक ने लिखा है, "नुग" क्या है! यह शाक्यसिंह
ी जीवनडायरी है। इसमें सिद्धार्थ कुमार के बचपन से
लेकर परिनिर्वाण पर्यन्त अत्यन्त सुन्दर ढङ्ग से संक्षेप में
तथागत का जीवनचरित्र प्रस्तुत किया गया है।

लेखक की भाषा सरल और बोधगम्य है। छपाई,
सफाई, सुन्दर है। कवर अत्यन्त ही आकर्षक है। नेवारी
साहित्य में ऐसे ग्रन्थ का बड़ा ही अभाव था। भाई महानाम
जी ने "नुग" को लिख कर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति
की है। [illegible] प्रयास स्तुत्य और श्लाघ्य है।
आशा है नेपाली जनता में इस ग्रन्थ का समुचित प्रचार
और आदर होगा।

—०—

लेखकों तथा विज्ञापन दाताओं से निवेदन

'धर्मदूत' का आगामी मई अंक बुद्ध जयन्ती विशेषाङ्क होगा। लेखकों से निवेदन है कि वे अपना-
अपना लेख अप्रेल के प्रथम सप्ताह तक भेजने की कृपा करें। विशेषाङ्क महत्त्वपूर्ण लेखों, कविताओं और
चित्रों से सुसज्जित प्रकाशित होगा।

विज्ञापनदाताओं को भी यह एक सुन्दर अवसर है। जो व्यक्ति इस विशेषाङ्क में विज्ञापन देकर
लाभ उठाना चाहें, वे भी विज्ञापन-दर आदि के लिए अप्रेल से पूर्व ही पूछताछ करें।

व्यावस्थापक

"धर्मदूत" कार्यालय

सारनाथ, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सबसे सस्ती — सबसे श्रेष्ठ

नवीन युग की — नवीन पत्रिका

नवीन ढंग की

शिक्षार्थी (द्वैमासिक)

छात्रों व जनसाधारण में नव चेतना, नवोत्साह और आत्मसंयम उत्पन्न कर उन्हें उचित मार्ग बताने वाली।

वार्षिक चन्दा इतना कम है कि प्रत्येक कुटुम्ब इसका लाभ उठा सके। जनहित राष्ट्र-हित ही इसका चरम लक्ष्य है।

केवल सुरुचिपूर्ण विज्ञापन ही इसमें छपेंगे। रेट:—३०) प्रति वार साधारण [illegible] वार्षिक मूल्य २) एक प्रति का ।≈)।

नमूने के लिए ।≈) टिकट भेजें।

"शिक्षार्थी", कुन्दनभवन, गोंदिया (सी. पी.)

हिन्दी संसार में एक दम नवीन उपयोगी अद्भुत पुस्तक

१०००) माहवार कमाइये

इस पुस्तक में २७५ हुनर ऐसे छपे हैं जिनसे लोग लखपति हो गये जो बेकार थे कोई रोजगार नजर नहीं आता था वह भी हजारों रुपया माहवार कमाने लगे हैं। किसी उस्ताद की जरूरत नहीं, हर तरह के तेल, साबुन बाल उड़ाने का साबुन अर्क बाल काले करने का, खिजाब हर तरह के, अचार, खानी, तम्बाकू आदि का मसाला, स्याही, रंगसाजी, हररोगों की पेटेन्ट औषधियाँ, कुलफी का बरफ बनाना, करामाती भूतों की अंगूठी, बाल उम्रभर न जमने की दवा, नकली सोना, काले से गोरा बनाने वाली दवा आदि हुनर छपे हैं जिन्हें लोग हजारों खुशामद करने पर मरते वक्त तक नहीं बतलाते। कीमत फी पुस्तक २ डाक खर्च ।।=)

पता:—श्री इन्द्र पुस्तक भण्डार
४९०५, मोंगलपुरा स्ट्रीट, सब्जीमण्डी, देहली

घोषणा

केवल वाचनालयों के लिए बम्बई में खा[illegible] बिक्री की सलाह देने वाली संख्या एजन्सी द्वा[illegible] घोड बन्दर रोड, मलाड ने हमें २००१ रुपया [illegible] पूर्वक इसलिए भेजा है कि हम हिन्दुस्तान के १०[illegible] वाचनालयों को सुप्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय साप्ताहिक

जनवाणी

७ सालाना के बजाय ५ रुपये में दें। वाचना[illegible]लय के पदाधिकारी के दस्तखत का पत्र आ[illegible] जरूरी है।

देश के सबसे बड़े अखबार
अमृत बाजार पत्रिका द्वारा प्रशंसित
जनवाणी
(सम्पादक—सूर्यनारायण शर्मा)
२, गोराकुण्ड, इन्दौर सिटी फोन ६०२५

माला

गृहविज्ञान का सचित्र सिरोज

सम्पादिका

कलावतीदेवी 'बच्ची'

शिल्प शिक्षा, सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, खिलौ[illegible] बनाना, घर की सफाई, पाकशिक्षा, संगीत, स्वास्[illegible] और सौन्दर्य आदि पर चित्र और उनके सीखने [illegible] नियम प्रकाशित होते हैं।

प्रति पुष्प ।।) — बारह पुष्प ६)

पता:— कलामन्दिर, दारागंज, इलाहाबा[illegible]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"हमारी बात" का

गांधी संदेश अंक

पुस्तक रूप में

महात्माजी की विचार-धारा का अभूतपूर्व संकलन

यू० पी०, मध्यप्रांत तथा मद्रास के शिक्षा-विभागों द्वारा स्वीकृत तथा अन्य प्रांतों में भी स्वीकृत विचाराधीन

मूल्य १) अपनी कापी आज ही मँगा लीजिये

यदि आप वर्तमान भारत की राजनैतिक समस्याओं को वैज्ञानिक ढंग से समझना चाहते हों तो पढ़िये

'हमारी बात-लेखक मण्डल' के द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला

दो महत्वपूर्ण पुस्तकें—

भारतीय समाजवादी पार्टी स्वर्ग या नर्क की ओर

और

यदि आज मार्क्स जीवित होते,

(लेखक श्रीगोपीनाथ दीक्षित)

प्रत्येक पुस्तक की पृष्ठ संख्या १०० और मूल्य १) सुन्दर और मोटे कागज पर छप रहे, और दोनों कई व्यंग तथा कलात्मक ढंग से बने हुए रेखा-चित्रों से परिपूर्ण हैं।

मिलने का पता—व्यवस्थापक, 'हमारीबात'
हजरतगंज, लखनऊ

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

श्री वीरेन्द्रकुमार के कलामय कृतित्व का अनुपम प्रतीक

मुक्तिदूत ४॥)

❀ उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है··· मर्मज्ञोंने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। ····

उर्दू-काव्य के महान् मर्मज्ञ श्रीअयोध्याप्रसाद गोयलीय की दीर्घकालव्यापी साधना:—

शेर-ओ-शायरी ८)

❀संग्रहकी पंक्ति-पंक्तिसे संकलयिताकी अंतर्दृष्टि और गंभीर अध्ययनका परिचय मिलता है हिंदीमें यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है।

[illegible] विलक्षण साहित्यकार श्री- द्विवेद की जीवन-झाँकी:—

पथचिन्ह [illegible])

❀ मनोरम भाषा, मर्मस्पर्शी शैली·· लेखक ने पंक्तिपंक्ति में अपना हृदय उजेड़ दिया है

प्रबुद्ध विद्वान् और ओजस्वी ग्रन्थकार डॉ० जगदीशचन्द्र जैन की प्रासादिक कृति:—

दोहजार वर्ष पुरानी कहानियाँ ३)

❀ जनपरम्परा के मनोरंजक उपाख्यान··· शैली सरल और सुबोध···

जैन शासन ४।)

* जैनधर्मका परिचय तथा विवेचन करानेवाली सुन्दर कलाकृति।

कुन्दकुंदाचार्य के तीन रत्न २)

* कुन्दकुन्द स्वामीके पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार इन तीन महान् आध्यात्मिक ग्रन्थों का हिंदी में विषय-परिचय।

अन्य पुस्तकों के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगाइये

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड,
बनारस नं० ४

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारतवर्ष का प्रमुख हिन्दी साप्ताहिक---

युगधर्म

प्रति रविवार को प्रकाशि

भारतीय संस्कृति का संदेशवाहक

राष्ट्रीय समृद्धि एवं एकात्मता का पुरष्कर्ता

श्रेष्ठ कलात्मक साहित्य से भरपूर

राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनुपम प्रयास

आज ही मंगावें--
वार्षिक शुल्क— ६ मा०
अर्धवार्षिक ,,—
१ प्रति—३ आने

व्यवस्थापक—'युगधर्म'

वाकर रोड—नागपुर २.

भारतीय जनतन्त्र के शुभ मूहूर्त पर प्रकाशित होने वाला २६ जनवरी का विशे 'जनतंत्र' अंक अवश्य पढ़िये।

तिरंगे कवर और अनेक चित्रों से सुसज्जित

रंगमंच

सिने—प्रधान—मासिक—पत्र

मूल्य एक प्रति।≈) वार्षिक—मूल्य ४)

जिसमें पढ़िये—

* समाज की करतूतों का पर्दाफाश करनेवाली कहानियाँ
* वेदना भरे गीत, नये फिल्मों की आलोचनाएँ
* फिल्मी परियों से मुलाकातों की बातें
* सम्पादकीय डाक और चटपटे उत्तर
* फिल्म-जगत की नई २ घटनाओं का पूर्ण विवरण
* सिने टेकनीक-पूर्ण और व्यंग-पूर्ण लेख

अपने नगर के न्यूज एजेंट से खरीदिये न मिलने पर कार्यालय से मंगाइये।

पता—रंगमंच कार्यालय, हाथरस यू. पी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हिन्दी में बौद्ध साहित्य

पंचशील और बुद्ध वंदना — ,, मूल्य =)।
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—ले० देवमित्र धर्मपाल मूल्य ।)
पालि महाव्याकरण—ले० भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० मूल्य ५।।)
सरल पालि शिक्षा—ले० पंडित भिक्षु सद्धातिस्स मूल्य १।।)
बुद्ध-कीर्तन (बुद्ध-चरित्र, भजन और गान)—ले० प्रेमसिंह चौहान मूल्य १।।)
बौद्ध-शिशुबोध—अनु० त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित मूल्य ।)
तेलकटाहगाथा— ,, ,, मूल्य ।)
तथागत के अग्रश्रावक—ले० पं० विश्वनाथ शास्त्री—मूल्य ।।।)
बोधि-द्रुम (कविता संग्रह) सम्पादक—सुमन वात्स्यायन मूल्य ।=)
अमिताभ (बुद्धचरितोपन्यास)—ले० गोविन्द वल्लभ पन्त मूल्य ४।।)
बुद्धदेव (जीवनी तथा उपदेश) ले० शरत कुमार राय मूल्य १।।।)
बुद्ध-चरित (अश्वघोष कृत)—अनु० सूर्यनारायण चौधरी मूल्य ४)
सौन्दरानन्द काव्य—अनु० ,, ,, मूल्य,३)
जातक (भाग, १. २. ३.)—अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन मूल्य २५)
महावंस ,, ,, मूल्य ४)
बुद्ध चर्य्या—ले० राहुल सांस्कृत्यायन मूल्य ७)
शाक्य मुनि (बालकोपयोगी) ले०—गंगाप्रसाद मूल्य ।।।=)
बौद्ध कहानियाँ—ले० व्यथित-हृदय मूल्य १।।)
बुद्ध हृदय ले० सत्यभक मूल्य ।।)

बौद्ध-दर्शन—ले० पं० बलदेव उपाध्याय मू० ६)
यशोधरा काव्य ले० मैथिलीशरण गुप्त मूल्य १।।=)
जातिभेद और बुद्ध—ले० त्रिपिटिकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित मूल्य ।=)
महापरिनिर्वाण सुत्त—(भगवान् बुद्ध की अन्तिम-जीवनी और उपदेश)—सम्पादक—भिक्षु ऊ कित्तिमा मूल्य १।)
ब्रह्मजाल सुत्त (मतों का जंजाल) मूल्य =)
सिगालोवाद सुत्त (गृहस्थ के कर्तव्य) मू० =)
अम्बट्ठ सुत्त—(वर्ण-व्यवस्था का खण्डन) मूल्य =)
[illegible] ले० भदन्त आनन्द कौसल्यायन मू० १।।)
कहाँ क्या देखा ,, ,, मूल्य २)
जो लिखना पड़ा ,, ,, मूल्य १)
जो न भूल सका ,, ,, मूल्य १)
भारतीय संस्कृति और अहिंसा ले० धर्मानन्द कौशाम्बी मूल्य २)
बौद्ध कालीन भारत ले० जनार्दन भट्ट मूल्य ३।।)
ब्राह्मण धम्मिय सुत्त—भिक्षु धर्मरक्षित मूल्य =)
हर्ष चरित्र (उत्तरार्द्ध) अनु० सूर्यनारायण चौधरी मूल्य ।।)
भगवान् बुद्ध ने कहा था—(बच्चों के लिए जातक कथाएँ) ले० सुमन वात्स्यायन मूल्य ।=)
बौद्ध-मनोविज्ञान अनु० (भिक्षु वरसम्बोधि) मूल्य २।)
कुशीनगर का इतिहास—ले० त्रिपिटिकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित मूल्य २)

अन्यान्य बौद्ध प्रकाशनों के लिए दो आने का डाक टिकट भेजकर विस्तृत परिचयात्मक सूची मँगाइये।

महाबोधि—पुस्तक-भंडार,
सारनाथ, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विषय-सूची

"धर्मदूत"
का

"अखिल विश्व बौद्ध संस्कृति अंक"

हम बुद्धाब्द २५०० (सन् १९५६) के शुभावसर पर "धर्मदूत" का एक सुन्दर और विशाल अंक प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं जिसमें विश्व के सभी देशों के बौद्धों का हर एक पहलुओं से परिचय रहेगा। ऐसे अवसर पर क्या आपने हमारे इस महान् कार्य में थोड़ी भी सहायता करने का संकल्प किया है? यदि किया है तो शीघ्र अपनी सहायता हमें प्रदान करें। इस कार्य के लिए कम से कम एक लाख रुपये की आवश्यकता है। यदि आप अपने नित्य के व्ययों में से एक एक पैसा भी रख छोड़ें तो भी आप एक बहुत बड़ी सहायता कर सकेंगे। हम यह शीघ्र देखना चाहते हैं कि आप किस उत्साह से हमारी सहायता कर रहे हैं। थोड़ी या बहुत जो भी रकम सहर्ष स्वीकार की जायेगी।

निवेदक:—
व्यवस्थापक "धर्मदूत"

प्राप्त-दान

"अखिल विश्व बौद्ध संस्कृति अंक" के लिए निम्नलिखित सज्जनों ने दान भेजा है। हम इ हार्दिक धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि अ सज्जन भी इस महान कार्य को सफल बनाने में स योग करेंगे—

१. श्री डी० टी० लामा,
मिरियालगुडा, हैदराबाद
(अपनी स्व० पुत्री पेम्पा डोलमा के पुण्यार्थ)

२. श्री विन्देश्वरी प्रसाद, चिरईगांव,
सारनाथ

३. श्री श्रीप्रत्येकमान तुलाधर,
११/३८५, तंलाछी टोल,
काठमाण्डू, नेपाल

४. श्री धीरेन्द्र वज्र
धुलाटोल, भक्तपुर इलाका
साखु, नेपाल।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोकपर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिए विचरण करो। भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १५ } सारनाथ, नवम्बर-दिसम्बर बु० सं० २४९४ / ई० सं० १९५० { अङ्क ८-९

बुद्ध-वचनामृत

शील की सुगन्ध

"भन्ते ! किसकी गन्ध ऐसी है जो सीधी-हवा भी जाती है, उल्टी-हवा भी जाती है और सीधी तथा उल्टी-हवा भी जाती है ?"

"यहाँ आनन्द ! इस गाँव या निगम में जो स्त्री या पुरुष बुद्ध, धर्म, संघ की शरण गया होता है। हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ-वचन और शराब आदि नशीली चीज़ों के सेवन से विरत होता है, सदाचारी तथा पुण्यात्मा होता है, मल-मात्सर्य से रहित चित्त वाला हो घर में वास करता है। त्यागी, दानी और माँगने वाले को दान देने में संविभाग-रत होता है। इस प्रकार के व्यक्ति की श्रमण-ब्राह्मण प्रशंसा करते हैं-'अमुक गाँव या निगम में अमुक स्त्री या पुरुष बुद्ध, धर्म, संघ की शरण गया है।' देवता और मनुष्य भी उसकी प्रशंसा करते हैं। आनन्द ! यह गन्ध है जो सीधी-हवा भी जाती है, उल्टी-हवा भी जाती है और सीधी तथा उल्टी-हवा भी जाती है।" यह कहकर भगवान् ने यह गाथा कही—

न पुप्फगन्धो पटिवातमेति, न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति, सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति॥

फूल की सुगन्ध हवा से उल्टी ओर नहीं जाती, न चन्दन, तगर या चमेली की गन्ध ही; किन्तु सत्पुरुषों की सुगन्ध हवा से उल्टी ओर जाती है। सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध बहाते हैं।

चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी, एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो।

चन्दन या तगर, कमल या जूही—इन सभी की सुगन्धों से शील की सुगन्ध उत्तम है।

अप्पमत्तो अयं गन्धो यायं तगरचन्दनी, यो च सीलवतं गन्धो वाति देवेसु उत्तमो।

तगर और चन्दन की जो यह गन्ध फैलती है, वह अल्पमात्र है और जो यह शीलवानों की गन्ध है, वह उत्तम गन्ध देवताओं में फैलती है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्राचीन भारत में बौद्ध विहारों की मुद्रायें

श्री जे० एफ० वोगल

[इस लेख के लेखक इतिहास और पुरातत्त्व के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त अनुभवी विद्वान् हैं। आपकी ही अध्यक्षता में कुशीनगर और श्रावस्ती के बौद्ध-विहारों की खोदाइयाँ हुई थीं। आपने अपने इस लेख में मुद्राओं के सम्बन्ध में अच्छा प्रकाश डाला है। आपने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि बौद्ध-विहारों की पुनः खोदाई होनी चाहिए। कुशीनगर, सारनाथ, पावा, देवदह, कपिलवस्तु, संकास्य, कौशाम्बी, वैशाली आदि किसी भी स्थान की आज तक पूर्ण खोदाई नहीं हुई है। इस समय जबकि हमारा देश स्वतन्त्र है, इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए, जिससे कि हम अपने अतीत-इतिहास को पूर्णरूप से जानकर उससे प्रेरणा प्राप्त कर सकें। भारतीय पुरातत्त्व-विभाग को समुचित है कि वह न केवल पुरातत्त्व-वस्तुओं का संरक्षण करे, प्रत्युत प्रतिवर्ष प्राचीन स्थानों के खनन-कार्य की ओर ध्यान दे—सम्पादक।]

महान् भारतीय पुरातत्त्ववेत्ता सर अलेक्सण्डर कनिंगहम् ने सन् १८६१ से १८६२ तक सारनाथ की खोदाई की थी। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में महत्त्वपूर्ण एक छोटी वस्तु का उल्लेख किया है। हाँ, वह कनिंगहम् को नहीं बल्कि प्रो० हाल को सारनाथ की खोदाई में मिली थी और क्वीन्स कालेज के संग्रहालय में सुरक्षित थी। कनिंगहम् उसका वर्णन इस प्रकार करते हैं, "वह पकी हुई मिट्टी की बनी डेढ़ इञ्च की परिधि की मुद्रा है। उस पर संस्कृत में दो पंक्तियाँ हैं, उन पंक्तियों के ऊपर एक चक्र-चिह्न है और उसके नीचे दोनों ओर दो मृग। मृग-चिह्न बड़े महत्त्व के हैं, क्योंकि इनसे पता लगता है कि वह मुद्रा मृगदाव विहार के अन्तर्गत किसी संस्था या वहाँ के किसी व्यक्ति की रही होगी। संस्कृत-लेख अपूर्ण है।"

कनिंगहम का निर्णय सत्य सिद्ध हुआ है। बाद को सन् १९०६ से १९०७ तक सर० जोन मारशल ने जो खोदाई की थी, उसी में तीन पंक्तियों से पूर्ण लेख सहित मुद्रायें मिलीं। लेख प्रकार है—"श्री सद्धर्मचक्रे मूलगन्ध कुटियां भगवतः" अर्थात् 'श्री सद्धर्म-चक्र में भगवान् की मूलगन्ध कुटी में।' मालूम होता है कि सद्धर्मचक्र उस सारी भूमि का नाम पड़ा था, जहाँ पर भगवान् ने सर्व प्रथम धर्मचक्र का प्रवर्तन किया था। यह सद्धर्मचक्र प्रवर्तन का संक्षिप्त रूप हो सकता है। आरम्भ में मूलगन्ध कुटी श्रावस्ती के उस जेतवन विहार का नाम था जहाँ भगवान् विराजते थे। बाद को वह उनकी मूर्ति-स्थापित मन्दिर को सूचित करने लगी। तदनुसार मूलगन्धकुटी तथागत द्वारा प्रथम उपदेश दिये गये स्थान पर निर्मित प्रधान विहार रहा होगा। लेख के ऊपर अङ्कित चक्र-चिह्न उस महान् घटना का प्रतीक है, क्योंकि चक्र की दोनों ओर दो मृग हैं जो कि प्रायः मूर्तियों पर प्रथम उपदेश को सूचित करते हैं।

प्रस्तुत लेख का विशेष सम्बन्ध उन चीजों से है जो कि गोरखपुर जिले के अन्तर्गत कसया नामक स्थान से प्राप्त हुई थीं। सन् १९०५, १९०६ और १९०७ के शीत काल में मेरे निरीक्षण में उस स्थान की खोदाई हुई थी। उस खोदाई का मुख्य उद्देश्य मल्लों का शालोद्यान अर्थात् महा परिनिर्वाण भूमि का पता लगाना था जिसका निश्चय कनिंगहम् ने किया था।

कुछ समय पहले कनिंगहम् ने माथाकुँवर-कोट को परिनिर्वाण भूमि बताई थी। मेरी खोदाई का मुख्य उद्देश्य इस बातका पता लगाना था कि उनका कथन कहाँ तक ठीक है। खोदाई में कोई ऐसी चीज नहीं मिली जिससे स्थान के निश्चित करने में प्रकाश मिल सके। लेकिन हाँ, काफी ऐसी वस्तुएँ मिलीं जिनसे यह पता लगता था कि वह एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। सन् १९१० से १९११ तक डा० हीरानन्द शास्त्री के निरीक्षण में फिर खोदाई का कार्य आरम्भ हुआ जिसके फलस्वरूप प्रधान

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

स्तूप में ताम्र-पत्र-लेख मिला। उस ताम्रपत्र पर संस्कृत में निदान सूत्र तथा प्रतीत्यसमुत्पाद लिखे थे। समर्पण वाक्य के बाद 'परिनिर्वाण चैत्य' खोदा था। ताम्रपत्र पाँचवीं शताब्दीके उत्तरार्द्ध का है। इससे यह बात साबित हो गई है कि पाँचवीं शताब्दी में वह स्तूप परिनिर्वाण भूमि को सूचित करता था।

खोदाई में बहुत सी लिखित मुद्राएँ भी मिलीं जिनमें कुछ व्यक्तियों की हैं और कुछ संघ की। दूसरे ढंग की सभी मुद्राएँ महापरिनिर्वाण विहार के भिक्षुसंघ की हैं। इनमें सबसे पुरानी दो मुद्राएँ चौथी शताब्दी की हैं। एक पर दो साल वृक्षों के बीच भगवान् बुद्ध के मृत-शरीर रखने का सम्पुट है जिसका नाम पालि ग्रन्थों में तेल-द्रोणी आया है। उसके नीचे यह लेख है—"महापरिनिर्वाणे चातुर्दिशो भिक्षुसंघः"। अर्थात् 'महापरिनिर्वाण के अवसर पर चतुर्दिशाओं से एकत्रित भिक्षुसंघ। दूसरी मुद्रा पर जलती चिता है जिसके बगल में एक व्यक्ति घुटनों के बल पर बैठा है और उसके नीचे लिखा है—"श्री मकुटबन्धे संघः"। अर्थात् 'श्री मकुटबन्ध में एकत्रित संघ'। यहाँ पर इस बात को याद रखना चाहिये कि भगवान् के देह का दाह-संस्कार मुकुटबन्धन नामक स्थान पर किया गया था। मैंने इसका जो अनुवाद अन्यत्र अभिषेक मण्डप किया था उसे छोड़ना चाहिए। मालूम होता है कि वह शब्द अभिषेक.मंगल को सूचित करता है। हाँ, महापरिनिब्बान सुत्त में केवल "मल्लानं चेतियं" अर्थात् मल्लों का चैत्य आया है जिससे स्थान का पूज्यभाव सूचित होता है।

युवान च्वांग के वृत्तान्तों से मालूम हो जाता है कि भगवान् के दाह संस्कार स्थल पर एक दूसरा स्तूप रहा, जो कि आजकल गिरी हुई अवस्था में है और रामाभार के नाम से प्रसिद्ध है। वह रामाभार नामक ताल के किनारे है जो कि कसया से लगभग एक मील दक्षिण-पश्चिम है। उस स्थान की खोज डा० हीरानन्द शास्त्री ने की थी और उन्हें वहाँ पर बहुत पुराने कई छोटे स्तूप भी मिले थे। वहाँ छठीं शताब्दी की एक मुद्रा मिली थी जिसपर धर्मचक्र तथा मृगचिह्न अंकित हैं और यह लेख है—"श्री बन्धन महाविहारे आर्य भिक्षुसंघस्य"। अर्थात् 'श्री बन्धन विहार के आर्य भिक्षु संघ का।' इस नाम के संक्षिप्त रूप का प्रयोग इत्सिंग ने भी किया है। वह लिखता है—"मैं एक बार पुन्दन् विहार के दर्शनार्थ गया था जहाँ पर भगवान् ने परिनिर्वाण का उपदेश दिया था।"

कुशीनगर से प्राप्त कुछ मुद्रायें

गुप्तकालीन इन लिखित मुद्राओं के विषय में दो ध्यान देने योग्य बातें हैं। वह पवित्र भूमि, जहाँ पर वे मिली हैं, एक ऐसे नाम से सूचित है जिसका सम्बन्ध उस स्थल पर घटित घटना से है। हम ऊपर देख चुके हैं सारनाथ की मुद्रा की भी यही बात है जिसका वर्णन कनिंगहम् ने किया है। और फिर वह घटना जिससे वह भूमि पुनीत हुई है, एक प्रतीक से सूचित है। महापरिनिर्वाण दो साल वृक्षों के बीच भगवान् के मृत-शरीर के रखनेवाले सम्पुट तथा जलती चिता से और धर्मचक्र प्रवर्तन-चक्र तथा मृगचिह्नों से।

कसया की खोदाई में पिछले समय की बहुत सी मुद्राएँ मिलीं। सन् १९०७ में महापरिनिर्वाण विहार की ५११ मुद्राएँ मिलीं। इनमें पाँच ढंग की मुद्राएँ हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
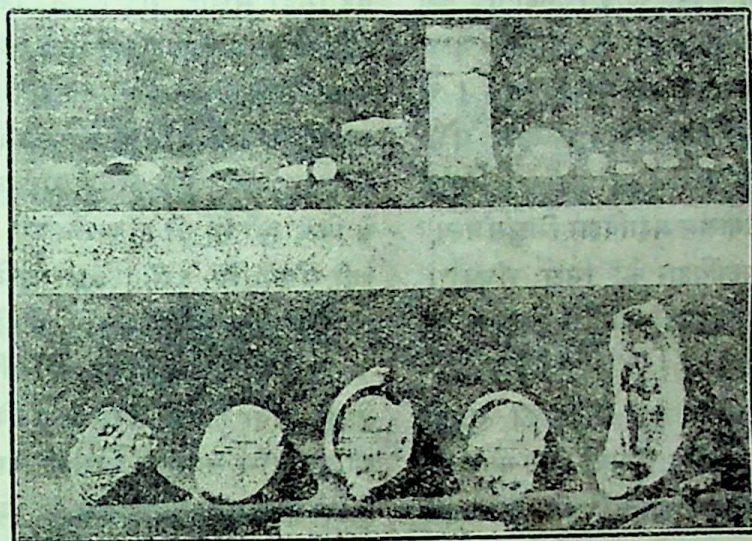
जिनका समय सन् ६०० से ९०० तक है। यह आश्चर्य की बात है कि इन पर गुप्तकाल के चिह्न नहीं हैं। इनपर धर्मचक्र तथा मृग हैं जो कि आरम्भ में मृगदाव विहार का चिह्न रहा, लेकिन बाद में वह आम बौद्धचिह्न बन गया। इन मुद्राओं पर कई ढंग के लेख हैं। सबसे लम्बा लेख सन् ७५० की एक मुद्रा पर है जिसके चालीस नमूने मिले हैं और दो सौ टुकड़े। लेख इस प्रकार है—"श्री महापरिनिर्वाण-महाविहारीयार्य भिक्षुसंघस्य" अर्थात् 'श्री महापरिनिर्वाण महाविहार के आर्य भिक्षुसंघ की'। सारा लेख एक समास के रूप में है।

एक पूर्ण मुद्रा और आठ खण्डित मुद्राएँ भी मिली हैं जिन पर यह लेख है—"श्रीमद्-एरण्ड-महाविहारीयार्य-संघस्य" अर्थात् श्री मद्एरण्ड महा विहार के [illegible] भिक्षु संघका। समय सन् ७५० का है। जहाँ तक मुझे मालूम है इस नाम के विहार का उल्लेख कहीं नहीं आया है। एरण्ड नदी, संगम और तीर्थ के लिए आया है। मैं इनमें से किसी का पता नहीं लगा सका। लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित एक मुद्रा पर भी यही प्रतीक है जिसके नीचे यह लेख है "श्री द्वैतवनाराम महाविहार भिक्षुसंघस्य" अर्थात् श्री द्वैतवनाराम महाविहार के भिक्षु संघका।' अक्षर साफ न होने से पाठ निश्चित नहीं है। लिपि से वह गुप्तकालीन मालूम होता है।

सन् १९७७ में कसया में पकी मिट्टी की मुद्रायें मिली थीं जिनमें एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। उनमें एक छेद है जिससे मालूम होता है कि वे पहनी जाती थीं। वे आकार और प्रकार में महापरिनिर्वाण तथा मुकुट बन्धन विहारों में प्राप्त गुप्तकालीन मुद्राओं से मिलती हैं। उनका समय भी प्रायः चौथी शताब्दी का है। उन पर ये दृश्य अङ्कित हैं—एक प्रकार के टीले पर बीच में एक वृक्ष। उन पर यह लेख है, "विष्णुद्वीप विहारे भिक्षु संघस्य" अर्थात् 'श्री विष्णुद्वीप विहार के भिक्षु संघ का।' इसमें कोई संदेह नहीं है कि विष्णुद्वीप पालि वेठद्वीप का संस्कृत रूप है। जहां तक मुझे मालूम है यह शब्द संस्कृत साहित्य में नहीं आया है, लेकिन तिब्बती महा परिनिर्वाण सूत्र में वेठ द्वीप की जगह ख्यब् जुल् लिं आया है जिसे तिब्बती विद्वान् संस्कृत विष्णु द्वीप का शब्दानुवाद मानते हैं।

महा परिनिब्बान सुत्त के अन्त में इस बात का उल्[illegible] आया है कि भगवान् बुद्ध के देह-संस्कार के बाद उन[illegible] अनुयायी आठ राजाओं ने पवित्र अवशेषों की माँग [illegible] थीं। उनमें वेठदीप का एक ब्राह्मण भी था, लेकिन इस[illegible] अधिक उस व्यक्ति का कोई जिक्र नहीं आया है। माल[illegible] होता है कि विष्णुद्वीप विहार उस स्थान पर था ज[illegible] वेठदीप के ब्राह्मणने आठ धातु स्तूपों में से एक की स्थापन[illegible] की थी। इस स्थान का अब तक पता नहीं लगा है।

सन् ६०० तथा ९०० के बीच की लिखित मुद्राओं से मालूम होता है कि वे पारसलों तथा पत्रों की सुरक्[illegible] के लिए थीं। उनमें से बहुतों में पीछे की तरफ निशान हैं और कई एक पर तो तागों के निशान साफ दिखा[illegible] देते हैं। रसायनिक प्रयोग से यह मालूम हो गया है कि वह मिट्टी सुखाई गई है न कि पकाई गई है। आ[illegible] पर्यैषणों से मालूम हो गया है कि मोहर रस्सी के टुकड़े [illegible] गाँठ पर बनाई गई है। इन मुद्राओं के विषय में एक औ[illegible] अस्पष्ट बात है। यदि ये मुद्रायें महापरिनिर्वाण विहा[illegible] से बाहर भेजे जाने वाले पारसलों तथा पत्रों की सुरक्[illegible] के लिए रही हों तो यह आश्चर्य की बात है कि ये इतन[illegible] बड़ी संख्या में उसी विहार-भूमि में ही पाई गई हैं ज[illegible] कि दूसरे विहारों की मुद्रायें थोड़ी संख्या में मिली हैं।

इन लिखित मुद्राओं का ऐतिहासिक महत्त्व इस बा[illegible] से बढ़ जाता है कि इनसे उस विहार के नाम और सम[illegible] का पता लग जाता है जिसके नष्टावशेषों के बीच वे मिल[illegible] हैं। कसया तथा सारनाथ में प्राप्त गुप्त कालीन लिखि[illegible] मुद्राओं की भी यही बात है। हाँ, उनकी उलटी तर[illegible] बराबर होने से वे उपरोक्त मुद्राओं की तरह पारसल[illegible] तथा पत्रों पर मोहर लगाने के काम में नहीं आयी होंगी। इस विषय में स्वर्गीय श्री दयाराम सहानी का मत ठी[illegible] मालूम होता है। उनके मतानुसार तीर्थयात्री उन्हें स्मृ[illegible] चिह्नों के रूप में अपने घर ले जाते थे। उनका कह[illegible] है कि इसी कारण वे मुद्रायें न केवल सुखाई जाती [illegible] बल्कि पकाई भी जाती थीं।

यह लेख समाप्त करने के पहले मैं एक प्राचीन व[illegible] की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ जो कि प्रस्तु[illegible] विषय के लिए बड़ा महत्त्व रखती है। वह काफी [illegible]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पत्थर पर खोदा हुआ एक दृश्य है जो कि बहुत साल पहले डा० आर० डी० वईट्हेड् को रावल पिण्डी में मिला था। यह कौतुक-वस्तु भारत के उत्तर-पश्चिम के किसी बौद्ध विहार की मुद्रा रही होगी। यह बात प्लास्टर् के नमूने से मालूम होती है जो कि मुझे डा० वाईट्हेड् की कृपा से मिली है। उस पर एक वृक्ष के पास पद्मासन लगाकर बैठा हुआ एक चीवरधारी व्यक्ति है। उसके सामने कद में छोटा एक दूसरा व्यक्ति अञ्जलिबद्ध बैठा है। पोशाक से मालूम होता है कि वह शक जाति का एक उपासक है। मूर्ति में रश्मिमाला नहीं है, इससे मालूम होता है कि वह भगवान् बुद्ध की नहीं है और फिर वृक्ष के पत्तों से वह पीपल मालूम नहीं होता। इसलिए वह मूर्ति किसी बौद्ध भिक्षु की हो सकती है।

उसके नीचे चौदह अक्षरों का एक खरोष्ट्री लेख है। प्रो० बेलि ने उससे पता लगाया है कि वह किसी विहार के भिक्षुसंघ की मुद्रा रही है। किसी अज्ञात संघाराम की यह मुद्रा मध्यदेश में प्राप्त प्राचीनतम मुद्राओं से भी पुरानी है। हम डा० वाईट्हेड् के अत्यन्त ऋणी हैं कि उन्होंने उसका उल्लेख इस लेख में करने की आज्ञा दी है।

यह आश्चर्य की बात है कि गंगा की उपत्यका के अन्य बौद्ध संघारामों में इस प्रकार की मुद्राएँ प्रकाश में नहीं आयी हैं। लेकिन यह सम्भव है कि आरम्भ की खोदाइयों में ऐसी छोटी वस्तुओं की उपेक्षा की गई हो। सतत निगरानी और मजदूरों को इनाम का वचन देकर ही ऐसी छोटी चीजों की प्राप्ति कर सकते हैं जो कि मिट्टी के साथ ही मिली रहती हैं।

वर्तमान् में भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं में प्राग्-ऐतिहासिक वस्तुओं की खोज में उत्साह उत्पन्न हो गया है। हम प्राग्-ऐतिहासिक युग के महत्व को कम नहीं समझते, लेकिन यह ध्यान में रखने की बात है कि भारत के ऐतिहासिक युग की अनेक समस्याओं के हल करने में पुरातत्व और विशेष रूपसे शिलालेख परमावश्यक हैं। इसलिए आशा की जाती है कि बौद्ध स्थानों की खोदाई फिर से आरम्भ की जायेगी और वह परिश्रम और सावधानी के साथ की जायेगी, जिससे कि सफलता प्राप्त हो सकेगी।

बौद्धधर्म और विज्ञान

श्री ए० राण्ट

आज के एक साधारण मनुष्य का यह प्रश्न हो सकता है कि इस बीसवीं सदी में ढाई हजार वर्ष पूर्व बनाये गये सिद्धान्तों को हम क्यों मानें? प्राचीन काल के वे दर्शन, धार्मिक-सिद्धान्त आज अवश्य ही पुराने पड़ गये हैं। हमको यह स्वीकार करना होगा कि इसकी विचार-धारा तर्क पूर्ण है। हम केवल उन बहुत से दार्शनिक सिद्धान्तों को ही स्मरण करते हैं, जिनका प्रचार भगवान् बुद्ध के पहले के दार्शनिकों ने किया जो आज के आविष्कारों के सामने फीके पड़ गये हैं। किन्तु बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में बात कुछ और ही है। हम यह देखते हैं कि पाश्चात्य विज्ञान उन्हीं कुछ विचारों को बतलाने का प्रयत्न कर रहा है। जिसे भगवान् बुद्ध ने ढाई हजार वर्ष पूर्व घोषित कर दिया था। आधुनिक विज्ञान की उन्नति पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है। भगवान् बुद्ध ने कहा था कि सभी पदार्थों में गति और गुण है जो कि सतत् प्रयत्न-शील है। आज का वैज्ञानिक इसे दूसरे प्रकार से कहेगा। आज जिन पदार्थों को हम देखते हैं वे सब परमाणु से बने हैं। ये परमाणु विद्युत-कण से बनते हैं। उनमें से एक भी स्थिर नहीं है। सब चलते रहते हैं। जिसे भगवान् बुद्ध ने अपने समय के पारिभाषिक शब्दों में वायु को गतिमान-तत्व, आपो (=जल) पठवी (पृथ्वी) को विस्तार तत्व, तेज (अग्नि) को ऊष्ण-तत्व कहा था, उन्हें आज हम संघर्षण, लचीली और तापक शक्तियाँ कहते हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

एलबर्ट इन्सटीन का सम्पर्क सिद्धान्त बताता है कि मात्रा और शक्ति बराबर है। पदार्थ ही शक्ति है। जिस समय हम सूर्य और नक्षत्रों को देखते हैं जो करोड़ों वर्ष से प्रकाश, गर्मी और ऊष्णता देते आ रहे हैं तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सभी पदार्थों में एक शक्ति है। जो निरन्तर संचालित होती रहती है। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व बुद्ध ने वही बात बताई थी, जिसको आज पाश्चात्य विद्वान् बताते हैं। भगवान् बुद्ध के अनुसार मस्तिष्क सतत् प्रवाहित मनो-भावों का संयुक्त सिश्रण है। यह इतनी गति से चलते रहते हैं कि पता लगाना कठिन है। उन्नीस सौ में मैक्सप्लैंक ने क्वान्टस् थ्योरी (मात्रा सिद्धान्त) निकाली, उनका वह सिद्धान्त इस आधार पर था कि शक्ति अटूट धारा से नहीं नि[illegible] किन्तु विच्छिन्न टुकड़ों या भागों से। जिसे क्वांटा कहते हैं। इन्सटीन ने एक कदम आगे बढ़कर कहा—नहीं, जितनी भी गत्यात्मक शक्तियाँ हैं, वे सब विच्छिन्न मात्रा से गुजरती हैं। उनके मतानुसार प्रकाश-शक्ति की निरंतर धारा नहीं है किन्तु पृथक् कणों से बना है। यहाँ इस बात की समता बौद्ध सिद्धान्त से की जाती है, जो कहता है कि मस्तिष्क विच्छिन्न चेतना की मात्राओं से संगठित है। आज की भाषा में मात्रा को चेतना कह सकते हैं। आधुनिक विज्ञान ने यह पता नहीं लगाया कि मस्तिष्क क्या है। लिंकोलन वर्नट ने 'दी यूनिवर्स एण्ड डाक्टर इन्सटीन' नामक पुस्तक के अठाइसवें पृष्ठ पर लिखा है कि मस्तिष्क संभवतः मस्तिष्क मात्रा का समूह है। क्या हम यह कह सकते हैं कि मस्तिष्क सतत् प्रवाहित रूप है। यह बात भगवान् बुद्ध की उस उक्ति का समर्थन करती है, जिसे आज से बहुत पहले वह कह गये हैं। जब हम यह विचार करते हैं तो हमारे सामने वही निष्कर्ष निकलता है, जो श्रान्त पथिक पंचवर्गीय भिक्षुओं ने इसिपतन के मृगदाव में धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त को सुनकर निकाला है। आज जो विज्ञान अग्रसर हो रहा है वह भगवान् बुद्ध के कथनों का पूर्णरूप से समर्थन करता है। अतएव हम उन्हीं बातों को स्वीकार कर सकते हैं जिन्हें भगवान् बुद्ध ने हमारे दैनिक जीवन के लिए बनाया था। उन्होंने उन सर्वज्ञ नेत्रों से देखा है जिन्हें हम देखने में असमर्थ हैं। जब हम उनके पथ से विमुख होकर चलते हैं, तो हमारी दशा उस बच्चे के समान है, जो अपनी माता के मना करने पर भी आग में हाथ डालता है। हम अज्ञानी होते हुए भी ज्ञानी बन सकते हैं। भगवान् बुद्ध के बताये हुए मार्ग पर चलकर हम बुद्धिमत्ता के साथ मोक्ष पा सकते हैं और सभी युगों के लिए वैज्ञानिक और विचारक भगवान् बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित कर सकते हैं। नमो बुद्धाय।

डॉ० अम्बेडकर और बौद्ध-धर्म

श्रीअनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी, मंत्री, बुद्ध-सोसाइटी, नागपुर

[हमारे पाठक कुलकर्णीजी से भली प्रकार परिचित हैं। आपने अपने इस महत्वपूर्ण लेख में बतलाया है कि डा० अम्बेडकर की इस घोषणा से कि 'अस्पृश्यों का कल्याण बौद्ध-धर्म को ग्रहण करने में ही है' प्रायः हिन्दू लोग भड़क उठते हैं और इसे बाहर की वस्तु तथा धर्मान्तर समझते हैं, किन्तु ऐसा समझना सर्वथा भूल है। भगवान् बुद्ध अपने हैं, बौद्ध धर्म अपना है, इन्हीं से भारत का गौरव बढ़ा है और इन्हें न केवल अस्पृश्यों को, प्रत्युत सारे भारतवासियों को ग्रहण करना चाहिए, इसमें केवल हमारा ही नहीं, समस्त विश्व का कल्याण निहित है—सम्पादक।]

पिछले मई मास में जब डॉ० अम्बेडकर ने अपने बान्धवों से बौद्धधर्म को स्वीकार करने की घोषणा की, तब समस्त हिन्दू समाज में खलबली मच गई। इस खलबली का स्वरूप कैसा था, इस पर हम विचार करेंगे।

हिन्दू-समाज का कोई एक रूप न होने के कारण इस बात पर विचार करने के लिए हम हिन्दू-समाज के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तीन वर्ग करेंगे। पहला वर्ग अस्पृश्यों का, दूसरा वर्ग ब्राह्मण और तत्सम लोगों का, जो अपने को सनातनी कहते हैं और तीसरा वर्ग अन्य हिन्दुओं अर्थात् बहुजन समाज का। इन तीनों वर्गों पर डॉ॰ अम्बेडकर के घोषणा का क्या प्रभाव पड़ा?

अस्पृश्य लोगों ने तो प्रायः इस घोषणा का हार्दिक स्वागत ही किया। इस स्वागत के दो कारण हैं—पहला कारण है डॉ॰ अम्बेडकर का व्यक्तित्व और दूसरा कारण स्पृश्यों द्वारा अस्पृश्य समाज पर किये गये अन्यायों के प्रतिकार करने की प्रवृत्ति। अस्पृश्य लोग डॉ॰ अम्बेडकर साहब को कितना श्रेष्ठ मानते हैं, इसकी यथार्थ कल्पना सम्भवतः पाठकगण को होगी ही। कम से कम महाराष्ट्र के बारे में मैं कह सकता हूँ कि वहाँ के अस्पृश्य डॉ॰ अम्बेडकर साहब को अपने जीवन में बहुत आदरणीय स्थान देते हैं। साधारणतः प्रत्येक स्पृश्य के घर में आपको डॉ॰ अम्बेडकर साहब का चित्र टँगा हुआ मिलेगा, जिसकी कुछ रोज पुष्प-गन्ध चढ़ाकर देवताओं की तरह पूजा करते हैं। इस एक ही बात से हम जान सकते हैं कि डॉ॰ अम्बेडकर साहब का स्थान अस्पृश्यों में क्या है? जब ऐसी विभूति अस्पृश्यों को बौद्धधर्म को स्वीकार करने की प्रेरणा देती है, तो अस्पृश्य लोगों को इसका हार्दिक स्वागत करना बिल्कुल स्वाभाविक है। इस घोषणा के स्वागत का दूसरा कारण भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। स्पृश्य हिन्दुओं द्वारा अस्पृश्यों पर जो अन्याय किये गये हैं उनका प्रतिकार करने के लिए अस्पृश्यों को डॉ॰ अम्बेडकर साहब के नेतृत्व में मौका मिला है। स्वाभिमानी अस्पृश्यों का कहना है—'हममें कुछ भी दोष न होने पर भी हम अस्पृश्य क्यों कहे जाते हैं? क्या मनुष्य जन्म से ही अस्पृश्य हो सकता है? अतः अब हम अस्पृश्य नहीं रहेंगे और जिन भगवान् बुद्ध ने मानवता एवं समता का बिगुल बजाया है उनकी शिक्षाओं को स्वीकार कर हम स्पृश्यों को सच्चे रास्ते पर लायेंगे। ऐसा विचार उनमें आना बिलकुल स्वाभाविक है।

ब्राह्मणों में प्रतिक्रिया की भावना

अब हम विचार करेंगे कि इस घोषणा के प्रति ब्राह्मणी दृष्टिकोण कैसा है? इस घोषणा से ब्राह्मणों में तीव्र असंतोष उत्पन्न हुआ है और जहाँ तक धर्मान्तर का प्रश्न उनकी राय पर निर्भर है, वे उसका तीव्र विरोध ही करेंगे और यह बिल्कुल स्वाभाविक भी है। महात्मा गांधी ने जैसे साम्राज्यशाही नष्ट की, भगवान् बुद्ध ने ब्राह्मणशाही नष्ट की। मनुष्य जन्म से ही ब्राह्मण होता है, इस परम्परा को मैं ब्राह्मणशाही कहता हूँ। भगवान् बुद्ध ने ब्राह्मणशाही नष्ट की—यह बिल्कुल स्पष्ट सत्य है। तो फिर ब्राह्मण लोग बुद्ध का या बौद्ध-धर्म का विरोध क्यों न करेंगे? उनका विरोध न होना ही अस्वाभाविक है। परन्तु यह विरोध स्वार्थ-प्रेरित है, इसको हम नहीं भूल सकते। इसमें संकीर्णता भरी है। अतः यह विरोध प्रामाणिक नहीं है। मुझे विश्वास है कि अगर ब्राह्मण लोग प्रामाणिकता से विचार करेंगे तो उनको भी यह घोषणा स्वागत-करणीय ही जान पड़ेगी। भगवान् बुद्ध ने ब्राह्मणशाही मिटाई, इसका तात्पर्य पहले जान लेना आवश्यक है? जैसे सच्चा वैद्य बीमार की बीमारी मिटाता है और बीमार मनुष्य को सुधारता है, उसी तरह बुद्ध ने पाप का नाश किया परन्तु पापी मनुष्य को नहीं सताया। बुद्ध ने पापी मनुष्य का उत्थान ही किया। महात्मा गांधी ने साम्राज्यशाही नष्ट की, परन्तु बृटिश लोगों के केश को भी धक्का नहीं लगाया। वैसा ही कार्य भगवान् बुद्ध ने हमारे समाज में किया है। भगवान् बुद्ध ने जातीयता नष्ट कर हमारे समाज में समता का बीज बोया। मनुष्य की श्रेष्ठता जब उसके जन्म पर निर्भर रहती है, तो समाज में विषमता वास करती है और जब उसकी श्रेष्ठता उसके कर्म पर या गुण पर निर्भर रहती है, तब समाज में समता वास करती है। सिंहनाद कर बुद्ध ने कहा मनुष्य में जातियाँ नहीं हैं। 'मनुष्य' एक जाति का है। जातियाँ आप को पशु-पक्षियों में दिखाई देंगी। आप चींटी की तरफ देखिये, साँप की तरफ देखिये, हाथी की तरफ देखिये, ये सब भिन्न जाति के प्राणी हैं। परन्तु संसारके दो किसी भी मनुष्य को आप लीजिये, उनकी शरीर-रचना में आप को ऐसी भिन्नता नहीं दीखेगी, जैसी साँप और हाथी की शरीर-रचना में दीखती है; तो फिर मनुष्य एक जाति का है—यह स्पष्ट है। फिर मनुष्यों में क्यों भिन्नता दीखती है? इस भिन्नता के कारण हैं मनुष्य के भिन्न-भिन्न कर्म। तो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

फिर ब्राह्मण कौन ? जिस मनुष्य ने काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर को जीता है और जो शुद्ध स्फटिक की तरह निर्मल बन गया है, वह ब्राह्मण है, ऐसी विभूति कहीं पर भी हो पुजनीय है, वंदनीय है। इस दृष्टि से देखा जाय, तो 'ब्राह्मण' एक पद है, वह एक पदवी है। अगर ब्राह्मण एक पदवी है, तो संत-श्रेष्ठ तुकाराम ब्राह्मण हैं, क्योंकि उन्होंने काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद और मत्सर को जीता था—यह कोई भी कबूल करेगा। तो फिर तुकाराम को ब्राह्मण लोग ब्राह्मण कहने के लिये तैयार हैं क्या ? नहीं। कुछ ब्राह्मण तो ऐसा कहते हैं कि तुकाराम ब्राह्मण के परे थे। ऐसा उनका कथन अप्रामाणिक है, क्योंकि हमारे धर्म-ग्रंथों में चार ही वर्ण बताये गये हैं। पाँचवाँ वर्ण नहीं है। अर्थात् साधु-संतों का अलग वर्ण नहीं है और ब्राह्मण से श्रेष्ठ इस संसार में कोई भी नहीं है, ऐसा हमारा शास्त्र कहता है। 'ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति' अर्थात् ब्रह्म या सार जाननेवाला स्वयं ब्रह्म ही है। ऐसा हमारा शास्त्र कहता है। तो फिर ब्राह्मण से परे कौन हो सकता है ? अतः जब तक इस चातुर्वर्ण्य में संत-श्रेष्ठ तुकाराम को हम ब्राह्मण का स्थान नहीं देते, तब तक यह चातुर्वर्ण्य की कल्पना केवल भ्रम और ढोंग है–ऐसा ही हमको कहना पड़ेगा। जैसे 'ब्राह्मण' एक पद है वैसे ही शूद्र यह गाली है। जो हिंसक है, चोर है, व्यभिचारी है, झूठा है, लुटेरा है, शराबी है, वह शूद्र है। इस दृष्टि से महात्मा गांधी का खूनी नाथूराम गोडसे शूद्र है। परन्तु न तो ब्राह्मण और न तो अब्राह्मण ही गोडसे को शूद्र कहने के लिये तैयार हैं। हिन्दू-समाज तो गोडसे को ब्राह्मण ही कहता है। परन्तु भगवान् बुद्ध की शिक्षा हमें बताती है कि गोडसे शूद्र और तुकाराम ब्राह्मण थे–ऐसा चातुर्वर्ण्य ही हमें मान्य है। इस दृष्टि से भगवान् बुद्ध ने चातुर्वर्ण्य-शुद्धि की यह बात स्पष्ट की है।

इसपर कुछ ब्राह्मण ऐसा कहेंगे कि वे तो 'मनुष्य केवल जन्म से ही ब्राह्मण होता है' इस परम्परा को मानते हैं। मनुष्य केवल जन्म से ही ब्राह्मण होता है—यह रूढ़ि शास्त्रानुमोदित बिलकुल ही नहीं है। क्योंकि "चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः" अर्थात् चातुर्वर्ण्य गुण और कर्माधिष्ठित हैं—ऐसा ही गीता कहती है। इसपर कुछ ब्राह्मण कहेंगे "शास्त्रात् रूढिर्बलियसी" अर्थात् शास्त्र से रूढि बलवान होती है। यह सत्-शास्त्र नहीं है, यह है गुंडों का शास्त्र। चोरी करना पाप है, यह शास्त्र मानने पर अगर चोर कहे कि चोरी का धंधा परम्परा से चला आ रहा है, तो उसका यह कथन क्या प्रामाणिक हो सकता है ? अतः मनुष्य जन्म से ही ब्राह्मण होता है—ऐसी रूढि किसी बुद्धिमान् मनुष्य को प्रमाण नहीं हो सकती। इस अन्यायी रूढ़ि को अगर किसी ने मिटाया, तो बुद्ध ने और इसी कारण स्वार्थी ब्राह्मण भगवान् बुद्ध का तीव्र विरोध करते हैं। परन्तु जो बुद्धिमान् ब्राह्मण हैं, वे भगवान् बुद्ध को राम और कृष्ण की तरह विष्णु का अवतार मानते हैं। भगवान् बुद्ध ने कहा है:—

न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुचि सो च ब्राह्मणो॥

अर्थ—'न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से मनुष्य ब्राह्मण होता है, किन्तु जिसमें सत्य और धर्म है, वही पवित्र है और वही ब्राह्मण है। मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है। यह विचारधारा ही सच्ची विचारधारा है और इसी से हम समाज का कल्याण कर सकते हैं।

तटस्थ-भावना

अब हम तीसरे दृष्टिकोण पर विचार करेंगे—अन्य लोग (बहुजन-समाज) न तो इस घोषणा का स्वागत करते हैं, न तो विरोध। उनकी प्रवृत्ति साधारणतः तटस्थ सी है। ब्राह्मणशाही का विरोध करते हुए भी ये लोग ज्यादातर परम्परा-प्रिय ही हैं। ऐसा मानना अनुचित न होगा। ऐसे लोगों को यहीं छोड़कर, हम अपने प्रश्न का विचार आगे बढ़कर करेंगे।

क्या यह धर्मान्तर है ?

अब हम, 'क्या यह धर्मान्तर है ?' इस प्रश्न का विचार करेंगे। धर्मान्तर का अर्थ होता है एक धर्म से दूसरे धर्म में जाना, अर्थात् एक धर्म का त्याग और दूसरे धर्म का स्वीकार। इसका स्पष्ट अर्थ यह होता है कि हिंदू धर्म को छोड़ बौद्ध धर्म का स्वीकार। हमें हिन्दू-धर्म क्या है ? इसका यहाँ पहले विचार करना होगा। हमें यहाँ स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि 'हिन्दू' धर्म-सूचक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शब्द नहीं है। यह तो एक प्रदेश सूचक अर्थात् प्रादेशिक शब्द है। सिंधु नदी के परे रहनेवाले लोगों को बाहर के लोग हिंदू कहते थे। हिंदुस्थान का रहनेवाला हिन्दू है—यही हिन्दू शब्द की व्युत्पत्ति है। जैसे अफगानिस्तान का रहनेवाला 'अफगान' कहलाता है, वैसे ही हिंदुस्थान का रहनेवाला 'हिंदू' कहलाता है। अफगानिस्तान में मुस्लिम भी रह सकता है, ईसाई भी रह सकता है और यहूदी भी रह सकता है। अतः 'अफगान' धर्म-सूचक शब्द नहीं हो सकता। वैसे ही 'हिंदू' धर्म-सूचक शब्द नहीं है। तो फिर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हिंदुओं का धर्म कौन सा है? साधारणतः हम कह सकते हैं कि भारत का सनातन धर्म 'आर्यधर्म' है और इस धर्म का प्रमाण ग्रंथ है वेद। आर्य-धर्म का प्रमाण-ग्रंथ वेद होने से इस धर्म के लोग अपने को वैदिक भी कहते हैं। वैदिक लोग ऐसा मानते हैं कि वेद अपौरुषेय है।

'वेद' का क्या अर्थ होता है? अब इस पर हम विचार करेंगे। 'वेद' शब्द के दो अर्थ होते हैं—पहला अर्थ है जानने योग्य अर्थात् ज्ञान या प्रकाश। यह ज्ञान या प्रकाश अपौरुषेय है—ऐसा मानने में कोई दिक्कत नहीं है। परन्तु वेद का दूसरा अर्थ होता है वेद-ग्रन्थ। जैसे ब्राह्मण शब्द के दो अर्थ होते हैं, वैसे ही वेद शब्द के दो अर्थ हैं। 'ब्राह्मण' का पहला अर्थ होता है 'शुद्ध मनुष्य और यही ब्राह्मण शब्द का सच्चा अर्थ है। ब्राह्मण शब्द का दूसरा अर्थ होता है 'ब्राह्मण-वंश' में पैदा हुआ मनुष्य। ब्राह्मण लोग तो ब्राह्मण शब्द का प्रयोजन दूसरे अर्थ में ही करते हैं, पहला अर्थ उन्हें बिल्कुल मान्य नहीं है। वैसे ही 'वेद' शब्द का सच्चा अ[illegible] वैदिक लोगों को मान्य नहीं है। वे तो उसके दूसरे अर्थ पर ही निर्भर रहते हैं। वैदिक लोग वेद ग्रन्थों को ही प्रमाण मानते हैं।

ग्रन्थ प्रमाण नहीं

वास्तव में मनुष्य को कोई भी ग्रन्थ प्रमाण नहीं हो सकता। ग्रन्थ तो निर्जीव वस्तु है। मनुष्य को प्रमाण होता है, चैतन्यमय सम्पूर्ण ज्ञानी पुरुष। ग्रन्थ-प्रमाण में दूसरी दिक्कत यह है कि जबतक उपदेश देनेवाला स्वयं शुद्ध नहीं होता, तबतक शुद्ध होने का उपदेश देने का उसको कुछ भी अधिकार नहीं है। जो तैरना नहीं जानता उसको तैरने का उपदेश देने का बिल्कुल अधिकार नहीं होता और ऐसे उपदेश की कीमत भी शून्य होती है। मानो किसी ग्रन्थ में लिखा है 'हिंसा करना पाप है, चोरी करना पाप है, झूठ बोलना पाप है' इत्यादि। परन्तु उपदेश देनेवाले के आचरण में अगर ये बातें न आयी हों तो यह उपदेश कोई मनुष्य नहीं मानेगा। अतः धर्म-ग्रन्थों में जो कुछ भी लिखा है, वह किस पुरुष के बारे में लिखा है और उस पुरुष के आचरण में यह उपदेश कहाँ तक उतरा था, हम नहीं जानते तबतक वह ग्रन्थ हमें प्रमाण नहीं हो सकता। वास्तव में मनुष्य को आदर्श होता है किसी ग्रन्थ का चरित्र-नायक। तो फिर वेदों का चरित्र-नायक कौन है? कोई भी पुरुष वेदों का चरित्र-नायक नहीं दीखता। कुछ लोग कहेंगे कि उसका चरित्र-नायक है 'ईश्वर'। अगर ईश्वर का अर्थ आप ज्ञान या प्रकाश करते हैं, तो 'ईश्वर' एक पद या मनुष्य के विकास की उच्चतम अवस्था होने से कोई ग्रंथ का चरित्र-नायक नहीं हो सकता। तो जिस मनुष्य ने यह पद प्राप्त किया है वह मनुष्य ही वेदों का चरित्र-नायक हो सकता है। मनुष्य का मार्ग दर्शन ज्ञानी पुरुष ही कर सकता है न कि ज्ञान। इस दृष्टि से वेद में चरित्र-नायक न होने से वेद मनुष्य को प्रमाण नहीं हो सकते। जो हिंसा नहीं करता—ऐसा मनुष्य ही हमें बता सकता है कि हिंसा करना पाप है। हिंसक मनुष्य अगर हमें कहे कि हिंसा करना पाप है, तो ऐसा उपदेश कौन मानेगा? अतः मनुष्य के लिए वेद ग्रंथ स्वयं प्रमाण नहीं हो सकते।

सृष्टिकर्त्ता का अभाव

अगर ईश्वर का अर्थ वैदिक लोग इस विश्व को निर्माण करनेवाली कोई शक्ति या व्यक्ति करते हों, तो हम और भी भ्रम में पड़ जाते हैं। अगर ईश्वर ने ही इस विश्व का निर्माण किया है और वही उसका नियंत्रण करता है, तो मनुष्य ऐसे ईश्वर के हाथ की एक कठपुतली बन जाता है। ऐसी विचारधारा से मनुष्य अपनी जिम्मेदारी दूसरों पर फेंक स्वयं निरंकुश और बेरास्ता चलने के लिए मुक्त होता है। ज्यादा लोग तो ऐसा ही मानते हैं कि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ईश्वर ने ही यह विश्व निर्माण किया है और वही उसका नियंत्रण करता है। अगर यह सत्य है तो इस विश्व में हमारा कर्तव्य कुछ भी नहीं होता। पाप या पुण्य, सत्य या असत्य, धर्म या अधर्म ये सब कल्पना मात्र हैं। इनको हमारे जीवन में कुछ भी स्थान नहीं होता। तो ऐसे ईश्वर को हमारे जीवन में स्थान देने से हमें क्या लाभ है? 'नर करणी करे तो नर का नारायण होत,' यही शिक्षा आज संसार को तार सकती है। ईश्वर ही अगर एटम् बम की वर्षा करता है या करवाता है, ईश्वर ही अगर महात्मा गांधी की हत्या करता है, तो फिर इस संसार में सत्य, अहिंसा और न्याय को स्थान ही नहीं है। ऐसी विचारधारा तो संसार में गुँडों को प्रोत्साहन देती है, अतः वह त्याज्य है।

परिशुद्ध आर्य-धर्म

इन सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक धर्म केवल ग्रंथ प्रामाण्य की नींव पर निर्भर होने से और वह नायक रहित होने से आदर्श धर्म नहीं कहा जा सकता। अतः हमें जोर देना चाहिए आर्य-धर्म पर। आर्य-धर्म अर्थात् श्रेष्ठ लोगों का धर्म। भगवान् गौतम बुद्ध ने तो आर्य धर्म पर ही जोर दिया है। वे अपने सत्यों को 'आर्य-सत्य' और अष्टांगिक मार्ग को 'आर्य-अष्टांगिक-मार्ग' ही कहते थे। तो फिर यह बात स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध ने भारत की सनातन परम्परा को चलाया, क्योंकि वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं "एस धम्मो सनन्तनो।"

कम से कम इतनी बात स्पष्ट है कि 'हिन्दू' प्रादेशिक शब्द है, इस दृष्टि से भगवान् गौतम बुद्ध तो हिन्दू ही थे। जिस क्षत्रिय वंश में श्री रामचन्द्र प्रभु का जन्म हुआ उसी इक्ष्वाकु वंश में बुद्ध का भी जन्म हुआ। जो हिन्दू अवतार की कल्पना मानते हैं, वे गौतम बुद्ध को विष्णु का नवाँ अवतार मानते हैं। हिन्दू शास्त्रों में लिखा है :—

नमो वेद रहस्याय नमस्ते वेद योनये।
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञान रूपिणे॥

प्रत्येक ब्राह्मण पूजा के समय "बौद्धावतारे' मंत्र कहकर प्रगट करता है कि आज हम बुद्ध के युग में रहते हैं। इतना सब होने पर भी बुद्ध अहिन्दू या अवैदिक कैसे हैं? इसपर कुछ ब्राह्मण ऐसा कहेंगे कि गौतम बुद्ध को विष्णु का अवतार नहीं मानते। ऐसा कहना तो केवल पागलपन है, क्योंकि हिन्दू-शास्त्रों में स्पष्ट कहा है :—

शुद्धोदनस्य बुद्धोऽभूत स्वयं पुत्रो जनार्दनः।
त्यक्त्वा राज्यं श्रियं सोऽथ गतिं परमकागतः॥

हिन्दू लोग गौतम बुद्ध को राम और कृष्ण की तरह विष्णु का अवतार मानते हैं—यह निर्विवाद है। 'कृण्वन्तो विश्वं आर्यं' इस वेदोक्ति को अगर किसी ने यथार्थ किया है, तो वह शाक्य सिंह गौतम् बुद्ध ने। अतः गौतम बुद्ध सर्वश्रेष्ठ हिंदू और आर्यधर्मी हैं—ऐसा कौन नहीं मानेगा? क्योंकि उन्होंने भारत की आर्य संस्कृति संसार भर में फैलाई। तो फिर उनका धर्म ग्रहण करने से धर्मान्तर कैसे होता है? आर्य-धर्म वेदोक्त धर्म है। और गौतम बुद्ध ने भी तो आर्य धर्म पर ही जोर दिया। इसमें दोनों तो आर्य धर्म ही हैं। हाँ, एक है आर्य धर्म का अशुद्ध स्वरूप और दूसरा है उसका शुद्ध स्वरूप। तो हम ऐसा कह सकते हैं कि बुद्ध ने अशुद्ध आर्य-धर्म की शुद्धि कर उसका निर्मल स्वरूप संसार को दिखाया। तो बौद्ध-धर्म को स्वीकार करने से धर्मान्तर का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता। यह तो स्वार्थी और दुराग्रही ब्राह्मणों का कथन है कि बौद्ध धर्म भिन्न धर्म है। ऐसा कहने में उनका स्वार्थ है। बुद्ध को अपने समाज के बाहर फेंक देने से ऐसे लोगों को अपना नंगा नाच चलाने के लिए पूरा अवसर मिलता है।

नेक-सलाह

जिन ब्राह्मणों से हम मार्ग-प्रदर्शन की अपेक्षा करते हैं, वे ब्राह्मण ही अगर बौद्ध-धर्म को भिन्न धर्म मानते हैं, तो डॉ॰ अम्बेडकर साहब ऐसे ब्राह्मणों को यथार्थ जवाब देते हैं और कहते हैं कि 'ठीक है अगर आप बौद्ध-धर्म को भिन्न मानते हैं, तो हम बौद्ध-धर्म को स्वीकार करते हैं। जो वातावरण जातीयता, संकीर्णता, विषमता और अस्पृश्यता से गंदा हो गया है, उसमें हम क्षण भर भी नहीं रहना चाहते और आप भी उसमें न रहिये,—ऐसी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उचित सलाह वे समस्त हिन्दुओं को देते हैं और जिसमें मानवता की, सत्य की, न्याय की और नीति की सुगंध आती है, ऐसे क्षेमकर वातावरण में जाने के लिए वे सब हिंदुओं को प्रेरणा देते हैं।

बुद्ध-शरण से ही कल्याण

अगर हम मुट्ठीभर स्वार्थान्ध और दुराग्रही ब्राह्मणों को छोड़ भी दें, तो ब्राह्मणों में विचारवान लोगों का अभाव है—ऐसा हम नहीं मानते। अतः ऐसे विचारवान ब्राह्मणों से और अन्य स्पृश्य हिन्दुओं से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वे इस प्रश्न का निष्पक्ष दृष्टि से विचार करें और सोचें कि आज हमारे समाज का कल्याण किस बात में है? ऐसा विचार करने पर उन्हें मालूम होगा कि 'बुद्ध' ही भारत के गौरवस्थान हैं। वे हमारे अभिमान हैं, क्योंकि उन्हीं के जरिये भारत को संसार में पहला स्थान मिलता है। वे भारत के सर्वश्रेष्ठ सुपुत्र हैं। बुद्ध के बिना भारत बिल्कुल बल-हीन है। आज संसार में करीब ७० करोड़ बौद्ध हैं, ६५ करोड़ ईसाई हैं, २५ करोड़ मुस्लिम हैं और ३० करोड़ हिन्दू हैं। तो यह स्पष्ट है कि बुद्ध बिना हिन्दू लोग संख्याबल में सबसे कनिष्ठ हैं। अगर हिन्दू और बौद्ध ये दोनों एक ही हैं—ऐसा जब हम प्रामाणिकता से कहेंगे तो हिन्दू लोग १०० करोड़ हो जाते हैं और संख्या-बल में उनका पहला नम्बर आता है। अतः बुद्ध भारत के सरताज हैं। और इसी कारण हमारे राष्ट्र ने भगवान् बुद्ध द्वारा प्रवर्तित "धर्मचक्र" जिसे हम 'अशोक-चक्र' कहते हैं, अपने राष्ट्र-ध्वज में ग्रहण किया है। आज भारत में प्रजातंत्र अर्थात् गणराज्य का निर्माण हुआ है और उस गणराज्य के अधिष्ठित देवता बुद्ध हैं—यह निर्विवाद है। अर्थात् बुद्ध आज हमारे 'गण-पति' हैं—ऐसा हम अभिमान से कह सकते हैं। तो हमारे गणराज्य की नींव अमर करने के लिये जिन बुद्ध ने हमें यह धर्मचक्र दिया है, उन भगवान् गौतम बुद्ध की पूजा का भारत में होना अत्यावश्यक है और इसी से हम अपना राष्ट्र अमर कर सकते हैं अन्यथा नहीं। इसलिये हम समस्त राष्ट्र प्रेमी भारतवासियों से प्रार्थना करते हैं कि वे सब एक मुख से और एक स्वर से कहें :—

बुद्धं सरणं गच्छामि।
धम्मं सरणं गच्छामि।
संघं सरणं गच्छामि।

और, इसमें केवल हमारा ही नहीं, प्रत्युत समस्त विश्व का कल्याण है।

इन्दोनेसिया में भारतीय संस्कृति

महापण्डित श्रीराहुल सांकृत्यायन

प्राचीन नाम

भारतीय व्यापारी ईसा से पहले भी इन्दोनेसिया के द्वीपों से परिचित थे, यद्यपि उनके विस्तृत विवरण के लिए उनकी लेखनी तैयार न थी, मंजुश्री मूलकल्प (२१३२२) में इनमें से कई द्वीपों का नाम उल्लिखित है—

"कर्मरंगाख्यद्वीपेषु नाडिकेरसमुद्भवे।
द्वीपे वारुषके चैव नग्न-बलिसमुद्भवे,
यवद्वीपे वा सत्वेषु तदन्यद्वीपसमुद्भवाः।
वाचा रकारबहुला तु वाचा अस्फुटतां गता।"

डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने संस्कृत साहित्य में उल्लिखित द्वीप-नामों को आधुनिक नामों से निम्न प्रकार मिलाया है—

कर्मरंग—लिगर समीप
नग्नद्वीप—निकोबार (निक्कवर)
वारुषक—वरुस (सुमात्रा)
बलि द्वीप—बालि द्वीप
यव द्वीप—जावा
सुवर्ण द्वीप—सुमात्रा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मलय द्वीप—मलाया
कटाह द्वीप—केडा (कडार)
वारुण द्वीप—बोर्नियो

भूगोल

प्राचीनकाल में सुवर्णभूमि दक्षिणी बर्मा और मलाया तक को कहा जाता था, किन्तु आज भाषा और जाति की दृष्टि से बर्मा और मलाया अलग-अलग हैं, मलय लोग सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, बाली, आदि द्वीपों के निवासियों से सम्बन्ध रखते हैं, जिनके भिन्न-भिन्न भागों का नाम प्राचीन काल में सुवर्णभूमि, सुवर्णद्वीप, यवद्वीप आदि थे। आजकल इन्हें इन्दोनेसिया कहते हैं। किन्तु उनके साथ मलायाको भी मिला लेना होगा। मलाया के चरणों में सिंगापुर द्वीप है, जिसे सुमात्रा से अलग करनेवाला मलाया का जलडमरूमध्य है, सुमात्रा और जावा को अलग करने वाली सुन्दा की पतली सी खाड़ी है। आगे लगे ही लगे बोर्नियो, सेलेबीज, बाली, लंबक, सुन्दा के छोटे-बड़े द्वीप न्यूगिनी तक चले जाते हैं। जावा से पूरब बोर्नियो भी कई गुना बड़ा द्वीप है, इन्दोनेसिया में सब मिलकर छः हजार छोटे बड़े (द्वीप) हैं और वे एक दूसरे के इतने नजदीक हैं कि पुराने समय के काष्ठा-पोतों का भी भिन्नभिन्न द्वीपों में जाना कठिन न था, भारतीय पोतवाही एक द्वीप से दूसरे द्वीप पर पाँव रखते आस्ट्रेलिया और फिलीपीन तक जा सकते थे, यदि वहां जाने के लिए कोई आकर्षण होता। यह भी स्मरण रखने की बात है कि लंका से एक ओर भारतीय नाविक सुवर्णद्वीप और यवद्वीप जाया करते थे, दूसरी ओर वहीं से वह मालद्वीप (महिलाद्वीप), लक्कद्वीप (लक्षद्वीप) और मादागास्कर पहुँचते थे।

मलाया का सुवर्णभूमि और सुमात्रा का सुवर्णद्वीप नाम यही बतलाता है कि उस समय के भारतीय इन्हें सुवर्ण की खान समझते थे। था भी वहां का व्यापार ऐसा ही लाभ का और इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि काफी संख्या में भारतीयों ने वहाँ पहुँच कर इन देशों को दूसरा हिन्द या हिन्द के द्वीप-समूह का रूप दे दिया।

लोग

इन्दोनेसिया के पुराने निवासी उसी वंश के थे, जिनकी संतान अब भी आस्ट्रेलिया और न्यूगिनी में बच रही है, किन्तु पीछे वह लोगों में इतने घुलमिल गये कि पहचानने में नहीं आते। उनके अतिरिक्त एक दूसरे वंश के लोग भी थे, जिनका सम्बन्ध चम्पा (हिन्दोचीन) के चाम लोगों से था। तीसरी जाति जो इन्दोनेसिया जाति के निर्माण में सहभागिनी हुई, वह थी मोन-खमेर। मोन बर्मा के तलैंग (करेन) लोग हैं, और खमेर थाई लोगों का ही दूसरा नाम है। थाई पुराने गंधार (पूर्वी) और आज के युन्नान के निवासी थे जो तेरहवीं शदी के बाद दक्खिन की ओर बढ़े और मलाया तक पहुँच गये। इनके बाद कितने ही परिमाण में रक्त में और संस्कृति में और भी अधिक, दक्षिण तथा उत्तर के भारतीयों का हाथ रहा है। आज इन्दोनेसिया या मलयू जाति के मुख्यतः चार विभाग हैं—

(१) मलयू—जो मलाया प्रायद्वीप तथा सुमात्रा और बोर्नियो के तट-भागों पर बसते हैं,

(२) जावी—जो जावा, मदुरा (मथुरा), बाली तथा लंका और सुमात्रा के कितने ही भागों में रहते हैं।

(३) सेलेबीज द्वीप के गूगी,

(४) और फिलीपाइन द्वीप के निवासी तगला।

यह भी मानने के कारण हैं कि इन्दोनेसिया में पहले से बसनेवाली बहुत सी जातियों का उद्गम स्थान भारत था, इन बातों का पता उनकी भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से चलता है। मलाया जावा उसी भाषा-वंश से सम्बन्ध रखती है जिससे छोटा नागपुर के मुंडा, आसाम के खासी, हिमाचल के नेवार, कनौर, हिन्दोचीन के मोन-खमेर आदि की भाषायें संबंधित हैं।

समुद्र यात्रा

जैसा कि पहले बतलाया गया, भारत से इन द्वीपों में जाने के बहुत छोटे-छोटे समुद्र-मार्ग हैं, इसीलिए वहां भारतीयों का पहुँचना पहले भी मुश्किल न था। जातकों में इस तरह की कई कथाएँ आती हैं, जिनसे ऐसा मालूम होता है कि भारत से इन द्वीपों का यातायात बहुत अधिक था। विदेह (मिथिला) का राजा लड़ाई में मारा जाता है, रानी चम्पा (भागलपुर) भाग जाती है। बड़ा होने पर लड़का मां से कहता—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"अपने कोश का आधा मुझे दे दे, मैं सुवर्णभूमि जाऊँगा और खूब धन कमाऊँगा तथा फिर बाप-दादा के वैभव धन को लौटा लूंगा।" दूसरी जगह बनारस के पास के एक बढ़ई-गांव की कथा आई है। स्वर्णभूमि का आकर्षण उन्हें इतना आया कि उनके हजार परिवारों ने जंगल काट कर बड़े-बड़े पोत बनाये और अपने परिवार सहित उनमें बैठ गंगा के रास्ते समुद्र होते उस द्वीप में चले गये, जहां विचित्र तरह के फल-फूलवाले वृक्ष, जंगल में धान, गन्ना, केला, आम, कटहल और फूल पैदा होते थे।

सुवर्ण-द्वीप जाने के बहुत से तीर्थ (बंदरगाह) थे। उत्तरी भारत विहार और बंगाल से सबसे नज़दीक का तीर्थ ताम्रलिप्ति (तमलुक, जिला मेदिनीपुर) था, जहां से सुवर्ण-द्वीप के लिए पोत बराबर जाया करते थे। उनमें से कुछ बर्मा के तट से होकर आगे बढ़ते थे और कुछ सीधे भी। एक दूसरा तीर्थ पलरा (गोपालपुर, जिला गंजाम) था। आधुनिक मछलीपट्टम के आसपास तीन तीर्थ थे। ताम्रलिप्ति से सिंहल की भी यात्रा हुआ करती थी। पाटलिपुत्र देशाभूयन्तरिक पुटभेदन तीर्थ था, जहां से सिंहल, सुवर्ण-द्वीप आदिको पोत जाया करते थे। यहीं से एक पोत में बैठ कर अशोक-कन्या भिक्षुणी संघमित्रा सिंहल गयी थी। ईचिंग ने लिखा है कि ताम्रलिप्ति से श्री विजय (पलेम्बंग सुमात्रा) जाते समय पोत के मार्ग में निकोबार, केदा और मलय के तीर्थ (बंदरगाह) पड़ते थे।
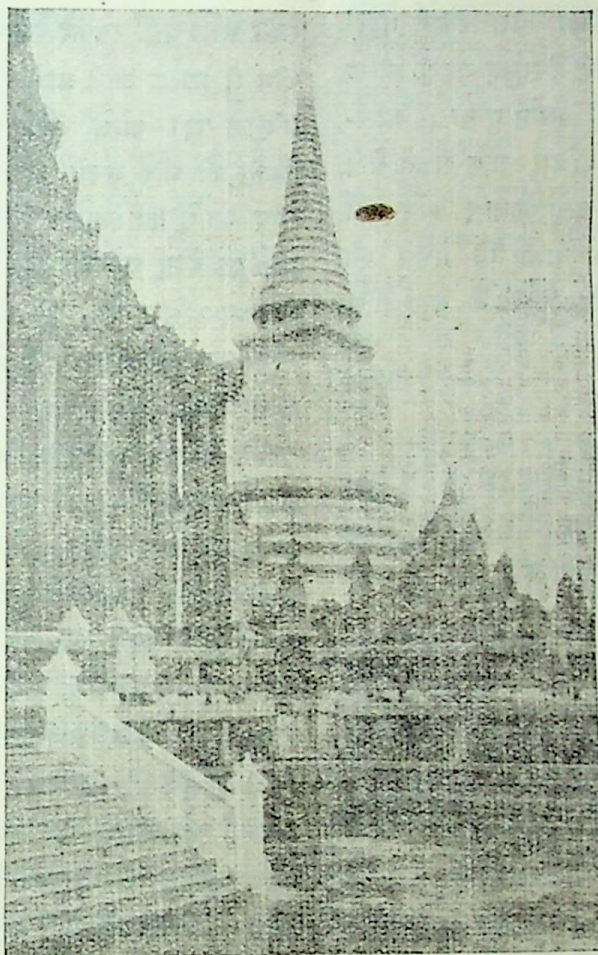
इन्दोनेसिया का एक स्तूप

ईसा की चौथी शताब्दी में ऐसे ही एक यात्री रक्तमृत्तिका-निवासी नाविक बुद्धगुप्त ने मलाया के वेल्जी जिले में अपना एक शिलालेख छोड़ा था।

समुद्र-यात्रा उस समय कितनी कठिन थी, इसके कहने की आवश्यकता नहीं। किंतु साहसी भारतीय नाविक उस की कोई परवाह नहीं करते थे। ईसा के आरम्भ की पांचवीं सदी में जावा जाते समय अपनी यात्रा का वर्णन चीनी पर्यटक फ-शियन ने निम्नप्रकार किया है:—

"फ-शियन ने एक व्यापारी पोत पर यात्रा की। पोत पर दो सौ से अधिक नौकर ही थे। संकट के कारण बड़े जहाजके डूबने या क्षतिग्रस्त होने के समय काम आने के लिए साथ में एक दूसरी नौका भी बांधी हुई थी। वायु अनुकूल थी, वह तीन दिन सिंहल से पूरब की ओर चलते गये, फिर तूफान से भेंट हुई। पोत में छेद हो गया और पानी भरने लगा। व्यापारियों ने छोटे पोत पर जाना चाहा, किंतु उसके आरोहियों ने बहुत अधिक हो जाने के डर से रस्से को काट दिया। व्यापारी बहुत घबड़ा गये। उन्हें मौत सिरपर मँडराती मालूम हुई। पोत के पानी से भर जाने का डर मालूम होने लगा। लोगों ने भारी माल को पानी में फेंक दिया।"

"इसी प्रकार तूफान रात दिन चलता रहा। तेरह दिन बाद जहाज एक द्वीप के किनारे लगा। पोत में पानी भरने की जगह मालूम हो गई, जिसे बंदकर दिया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गया और यात्रा फिर आरम्भ हुई। समुद्र में जहाँ-तहाँ बहुत से डाकू थे, जिनसे भेंट करने का मतलब मौत था। चारों ओर अनन्त समुद्र फैला हुआ था। वहाँ पूरब पश्चिम का कोई ज्ञान नहीं। केवल सूरज, चाँद और तारों के सहारे आगे बढ़ा जा सकता था। यदि बादल छा जाता, तो हवा अनजान पथपर पोत को बहा ले जाती अँधेरी रात में बड़ी बड़ी लहरें एक दूसरे से टकरातीं, चमकीली ज्वाला जैसी निकालती थीं। विशाल कछुए या समुद्र के दूसरे भीमाकार जन्तु दिखाई पड़ते थे। व्यापारियों का होश ठिकाने नहीं था। वह नहीं जानते थे कहाँ जा रहे हैं समुद्र गहरा अतल था। लंगर गिराकर ठहरने का कहीं स्थान न था। आसमान साफ हो गया, फिर वे पूरब पश्चिम जान सकते थे। अब जहाज ठीक दिशा की ओर चलने लगा। यदि कहीं कोई छिपी चट्टान रास्ते में आ जाती तो बचने की आशा नहीं थी। इस तरह ९० दिन चलने के बाद लोग यवद्वीप नामक देश में पहुँचे।"

सुमात्रा में

सुमात्रा बोर्नियो के बाद इन्डोनेसिया का सबसे बड़ा द्वीप है। यह दोनों सिरोंपर पतला और बीच में मोटा है। भूमध्य-रेखा इसके बीच से जाती और इसे दो सम-भागों में विभक्त करती है।

द्वीप की लंबाई १०६० मील, चौड़ाई २४८ मील और क्षेत्रफल १६७४८० वर्गमील है। यह द्वीप पहाड़ी है, किन्तु हरियाली से लदा हुआ है। जावा से तीन गुना बड़ा होने पर भी इसकी जनसंख्या केवल ६२,१९००४ अर्थात् जावा का पंचमांश है।

श्रीविजय

लंका और दक्षिणी भारत से बंगाल की खाड़ी पार करनेवाले जहाजों के मार्ग में पड़ने से सामुद्रिक व्यापार में सुमात्रा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा। सुमात्रा में सबसे पुराना राजनैतिक केन्द्र श्रीविजय था, जो पलेम्बंग के नाम से कंपर नदी के तट पर मौजूद है। यह नगर चौथी शताब्दी से पहले ही स्थापित हो चुका था। सातवीं शताब्दी में इसकी शक्ति और भी बढ़ी, जब इसने दक्षिण में हरी नदी के तट पर अवस्थित मलयू (आधुनिक यंबी) पर अधिकार कर लिया और साथ ही पास के लंका द्वीप को भी ले लिया। ६८४ ई० में उसने जावा विजय के लिए सेना भेजी। गुप्तकाल में सुमात्रा बौद्ध धर्म का केन्द्र बन चुका था।

श्रीविजय में बौद्ध धर्म

पीछे तो श्रीविजय हिन्द द्वीप-समूह में संस्कृति और विद्या का केन्द्र बन गया। चीनी यात्री ईत्सिंग ६८८-९५ में सात साल यहाँ रहकर पढ़ता रहा। उसके लिखे अनुसार चीन से भारत जाने वाले भिक्षु श्रीविजय में ठहर कर संस्कृत पढ़ा करते थे। इसी श्रीविजय ने पीछे जावा-विजय की और अपने शैलेन्द्रवंश की अद्भुत कृतियों—बरोबुदेर आदि का निर्माण किया। श्री विजय महायान बौद्ध धर्म का केन्द्र था और वह ग्यारहवीं सदी तक अपनी विद्या के लिए प्रसिद्ध था। सुवर्ण-द्वीपीय धर्मकीर्ति के पांडित्य की कीर्ति सुन कर भविष्य में तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रचार करने वाले विक्रमशिला के आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान (९८१-१०५४ई०) बारह वर्ष वहाँ जाकर पढ़ते रहे। उस समय उत्तरी भारत में वज्रयान या घोर-तांत्रिक बौद्ध धर्म का प्रचार था। बौद्ध धर्म, जान पड़ता है, प्रत्येक देश में अपने विनाश से पहिले इसी रूप को धारण करता रहा। वह मृत्यु से वहीं बच पाया, जहाँ वज्रयान का स्थान अधिक बुद्धिवादी बौद्ध धर्म ने स्वीकार किया, जैसा कि कंबुज, स्याम और बर्मा में हुआ। शकाब्द १२६९ (१३४७ ई०) के एक शिलालेख में राजा आदित्यवर्मा की प्रेरणा से आचार्य धर्मशेखर ने अमोघपाश (अवलोकितेश्वर) की मूर्ति स्थापित की थी, उसके लेख में उदयवर्मा की तांत्रिक सिद्धि का भी वर्णन है। लेख इस प्रकार है:—

"सद्धर्मश्च सुवर्णनाम्ममहिमा सौभाग्यवान् शीलवान्। शास्त्रज्ञाय विशुद्ध योगलहरी शोभा प्रवृद्धा सते॥
सौन्दर्य गिरिकन्दरान्वितगजे सन्दोहवाणी प्रभा।
माया वैरि तमिस्त्र धिक्कृतमहानादित्यवर्मोदयः॥
तदनुगुणसमृद्धिः शस्त्र-शास्त्र प्रवृद्धि।
जिन समय-गुणाब्धिः कार्यसंरम्भ बुद्धिः।
तनुमदन-विशुद्धिः सत्त्यतासर्व्वसिद्धिः
धनकनकसमाप्तिः देवतूर्यैन् प्रपातिः॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रतिष्ठेय सौगतानां आचार्यधर्म्मशेखरः ।
नाम्ना गगनगंजस्य मञ्जु श्रीरिव सौहृदि ।।
प्रतिष्ठेयं हितत्वाय सर्वसत्त्वसुखाश्रयः ।
देवैरमोघपाशेशः श्रीमदादित्यवर्म्मणः ।।
मूलद्वांशरणे पतंगचरणे नंदांत शाके शुभे
भास्वत्कुक्कर्कटके दिनेऽपि पुर्णेन्दु योगायतेः
तारे सत्तरसिद्धियोगघटिका कारुण्यमूर्तस्वरात् ।
जीर्णेरुद्धरिता समाहितलसत् सम्बोधमार्गार्थिभिः ।।
स्वस्ति समस्तभुवनाधार हाटकः भावाश्रम-गृह-विशारदः ।
अपारमहायानयोगविज्ञान विनोदः अपि च धराधिप-प्रतिराज विकट संकट किरीट कोटि संघनीतक मणि-द्वय नाटक कारणः । श्रीमत् श्री उदयादित्यवर्मा प्रतापविक्रम राजेन्द्रमौलि मणि वर्मदेव महाराजाधिराजः ।
स्वविज्ञया आज्ञा करोति ।
विहंग मातंग बिलास शौभिते
कांतारसौगंधिसुरद्रुमाकुले ।
सुरांगना लेखित कांचनालये
मातंगिनीश सुरदीधिकागते ।।
अनुभवधिविशेषोन्माद सन्दोहाहा ।
अखिल दितिसुतानां देवविद्याधरेशः
अपि मधुकरगीतैर्नर्त्यभोगासिनीनाम्
अचलति चलतिर्तस तस्य शोभामातंमिशः
हाहा-हूहू गणेन संभ्रम लसत् लोकार्थ भूम्यागतः
सौन्दर्यशशिपूर्णवत् कुशल हृत्शोभनालंकृते ।
नाम्ना उदयवर्मगुप्त सकल क्षोणीपतिनायकः
त्यक्त्वा जिनरूपसंभ्रमगतो मातंगिनी शून्यः ।
तन्त्रः क्षयता वसुन्धरमिदं मातंगिनी पात्रय
चेत् संत्रियवैरिमार्गचरिता सर्वस्वसंहाकृत् ।
सच्छेत् त्रातिवला बिलासिदमने संभ्रान्त कुलसंसदा,
पातिः पत्यदलालने प्रकटित क्रूरैः पलाशयती ।
वज्रप्राकार मध्यस्ता प्रतिमायां जिनालयः
श्रीमान् अमोघपाशेशः हरिः उदयसुन्दर ।
सुरतरुदितपाणी सत्यसंगीतवाणी
रिपुनृपजितकीर्तिः पुष्प धन्वास्त्रमूर्ति ।
मलयपुरहितार्थः सर्वकार्यसमर्थः,
गुणरसिल विभातिः देवतूहन्नपातिः ।
उदयपर्वत शोभितरुपति उदयद्भूतिः नरेश्वर नायकः ।
उदयवैरिबलोन्नत मृधूयते उदय सुन्दर कीर्तिमहीतले ।"

इस महा अशुद्ध संस्कृत शिलालेख में राजा उदयवर्मा को बौद्ध सिद्धान्तों में निष्णात ही नहीं बल्कि सारी सिद्धियों का स्वामी बतलाया गया है। किंतु उदयवर्मा के मन्त्रशास्त्र निष्णात होने से पहिले ही सुमात्रा पर इस्लामका आक्रमण हो चुका था। मारकोपोलो १२९२ में इस द्वीप में आया था। वह इसे लघुजावा लिखता है। उस समय वहाँ आठ राज्य थे, जिसमें से छः अर्थात् पेरलक (उत्तरपूर्व), लमूरी अचे (उत्तर-पश्चिम) पसे तथा आदि में फिर समुद्रको गया था। उसने लिखा है :—

"इस राज्य में इतने अधिक मुसलमान व्यापारी आते हैं कि उन्होंने यहां के निवासियों को मुहम्मद के धर्म का अनुयायी बना लिया है।"

मारकोपोलो के समय इस्लामी राज्य केवल पेरलक में था, किन्तु कुछ समय बाद समुद्र में एक दूसरा इस्लामी राज्य तैयार हो गया। इसी छोटे राज्य ने सारे द्वीप को सुमात्रा का नाम दिया। १३४५-४६ में अरब पर्यटक इब्नबतूता का "समुद्र के" शासक सुल्तान मलिक जाहिरने स्वागत किया था। बतूताने राज्य का नाम समुतर लिखा है, जिसे यूरोपियनों ने सुमात्रा बना दिया। बतूता के कथनानुसार सुल्तान को अपने पड़ोसी काफिर (हिन्दू) राजाओं से लड़ते रहना पड़ता था। व्यापार में मलाया के केदा का स्थान अबपसे (सुमात्रा) ने लिया था और वही तब तक भारी व्यापारिक बन्दरगाह रहा, जब तक कि मलक्का की स्थापना नहीं हो गई। पसे, समुद्र, पेरलक जैसे प्रधान बन्दरगाहों के धनाढ्य ईरानी तथा गुजराती मुसलमान व्यापारियों ने सुमात्रा में इस्लाम का प्रचार किया।

———

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मुक्ति का सच्चा मार्ग

आई० बी० हार्नर

"आरम्भ करो ! निकल पड़ो !! बुद्ध की आज्ञा के पालन में भिड़ जाओ !!!" आदि नारों से समस्त पालि-साहित्य का भण्डार भरा पड़ा हुआ है। आलस्य और शिथिलता की निन्दा और सतर्कता, कर्मनिष्ठा, शक्ति और अध्यवसाय की पालि-साहित्य में सर्वत्र प्रशंसा की गयी है। भगवान् बुद्ध ने अनुपम कर्म-शक्ति को "अनोमवीर्य" की संज्ञा दी है। अपने समस्त जीवन में उन्होंने शक्तिशाली बनने और अध्यवसाय करते रहने की प्रेरणा दी है। उनका जन्म सूर्यवंशी क्षत्रिय के शाक्य वंश में, जो उस समय अपनी वीरता के लिये प्रख्यात थे, हुआ था। इस वंश परम्परागत वीरता ने उन्हें शक्ति का चिन्तन करने की प्रेरणा दी तथा शक्ति का चिन्तन करने में उन्हें बहुत आनन्द आता था। नेरञ्जरा के अविरल धारा-प्रवाह और प्राकृतिक दृश्य ने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया और यह सोचते हुए कि एक युवक को प्रयास और अध्यवसाय की प्रेरणा देने के लिये यही सर्वोत्कृष्ट स्थान है, वे उसके तट पर शक्ति का मनन-चिन्तन करने के लिये ध्यान मग्न हो गये। अपने निरन्तर अविरल प्रयास और अध्यवसाय करते रहने के बाद जब उन्होंने पूर्व बुद्धों की भाँति सम्यक् सम्बोधि (ज्ञान) प्राप्त किया, उन्होंने एक आत्म-ज्ञान और आत्म-विश्वास का अनुभव किया—"मेरी स्वतन्त्रता में कोई विघ्न-बाधा नहीं पहुँचा सकता, यही मेरा अन्तिम जन्म है तथा अब मैं पुनः जन्म नहीं लूँगा।" अपने प्रथम पाँचों शिष्यों की भाँति उन्होंने प्रयास और अध्यवसाय के मार्ग को कभी नहीं छोड़ा और अन्त में निर्वाण प्राप्त किया। निर्वाण—अजन्मा, अजर, अमर, दुःख रहित एवं निष्कलङ्क का अन्वेषण करने के पश्चात् उन्होंने अपने को पूर्ण शान्त पाया।

गौतम बुद्ध का प्रारम्भिक इतिहास और कुछ नहीं, प्रत्युत सम्यक ज्ञान तथा सम्यक दृष्टि प्राप्त करने के लिये प्रयास तथा संघर्ष का इतिहास है। विजय किसकी हुई, यह सभी जानते हैं। इस विजय से उन्होंने सांसारिक बन्धनों पर विजय प्राप्त की। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और जरा मृत्यु आदि पर उन्होंने विजय प्राप्त की। इस तरह विजयी होने के बाद वे 'बुद्ध' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

डा० कुमार स्वामी के मतानुसार वे इन्द्र के समान वीर थे। जिस तरह इन्द्र ने अज्ञानी एवं दुष्ट राक्षस 'वृत्रासुर' का वध कर मानव-समाज का कल्याण किया था, उसी तरह गौतम बुद्ध ने सभी सांसारिक दुःखों के मूल कारण अज्ञानता और राग-द्वेष आदि का नाश कर समस्त मानव-समाज का अपूर्व कल्याण किया था। इसके अतिरिक्त उन्हें 'नेत्रवधु' (उड़ने वाले सर्प का वध करने वाला) की उपाधि भी मिली है। आर्यों ने भी इस प्रकार के दुष्टों और बुरे विचारों के दमन करने के कार्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और यह ध्रुव सत्य है कि एक सच्चा और पवित्र मनुष्य सदैव ही सतर्क और कर्मनिष्ठ बना रहता है। मार ने भगवान् बुद्ध को पथभ्रष्ट और उत्तेजित करने के उद्देश्य से अपने नाना प्रकार के कौशल, प्रलोभन और चातुर्य का उन पर प्रयोग किया, परन्तु उनकी सजगता, आलस्यहीनता के फलस्वरूप उसे मुँह की खानी पड़ी। इसलिये अपने प्रारम्भिक उपदेशों से लेकर महापरिनिर्वाण प्राप्त करने तक उन्होंने जिस आदर्श को लक्ष्य कर उपदेश दिया—उनके भक्तों के लिये अनुकरणीय है। महापरिनिर्वाण प्राप्त करने के समय भी उन्होंने प्रयास और अध्यवसाय करते रहने का ही उपदेश दिया—'अदम्य उत्साह एवं लगन के साथ जीवन के उद्देश्य की पूर्ति करो—अप्पमादेन सम्पादेथ।' सतर्क रहने की आवश्यकता पर बारम्बार जोर देते हुए उन्होंने कहा था—"जागो, इसलिये नहीं कि हार कर बैठ जाओ, प्रत्युत जो अब तक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

न जीता गया हो उसे जीतो, जो अब तक न प्राप्त किया गया हो उसे प्राप्त करो और अब तक नहीं जाना गया हो, उसे जानो।''

दुःशील बनकर १०० वर्ष जीने से शील के साथ एक दिन जीना कहीं श्रेयष्कर है। ''हममें असीम शक्ति और साहस का सञ्चार हो,'' उनके शिष्यों के इन शब्दों से हम उनकी महत्वाकांक्षा और अभिलाषा का कुछ आभास पा सकते हैं। शिथिलता और निश्चेष्टता मनुष्य को उसकी उन्नति के पथ में रोड़े अटकाती हैं, ये चरित्र पर कलङ्क सदृश हैं। अपनी आत्मशक्ति को नियंत्रित कर तथा अपने कार्यों, सम्भाषणों तथा विचारों में जो बुरे हों उन्हें त्याग कर अच्छे को प्रोत्साहित करना चाहिए। यद्यपि ये तीनों गुण मानव-समाज के कल्याण के लिये हैं, तथापि मनुष्य को अपनी इच्छाशक्ति एवं शारीरिक तथा मानसिक प्रयास द्वारा इनसे त्राण प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। ये कर्म ही मनुष्य के कर्मों का नाश एवं सृष्टि करते हैं। निर्वाण प्राप्त करने के लिये जिस रास्ते को तय करना पड़ता है, उसे अपनाकर, हम अपने सभी दुःखों के मूल कारण अज्ञानता एवं राग-द्वेष को दूर कर इस संसार में सुख और शान्ति का अनुभव कर सकते हैं।

तदनन्तर अपनी शक्ति से अधिक या शारीरिक या मानसिक शक्ति का अति प्रयोग भी श्रेयष्कर नहीं होता। किसी कार्य के पीछे शक्ति का अति प्रयोग भी 'अति' मार्ग का अवलम्बन करना है और बौद्धधर्म किसी भी प्रकार के 'अति' के मार्ग को निन्दनीय समझता है। शक्ति के प्रयोग में मनुष्य को वीणा के समान होना चाहिए, यदि वीणा के तारों को आवश्यकता से अधिक कड़ा या ढीला कर दिया जाय तो वह बेसुरा हो जायेगी। मधुर ध्वनि निकालने के लिये उसके तारों को संतुलित तौर पर ही कड़ा करना चाहिए। उन्हें इतना ही कड़ा किया जाना चाहिए, जिसमें उनसे मधुर ध्वनि निकल सके—''इसलिये अपनी शक्ति के संतुलित प्रयोग पर दृढ़ रहो।'' इसी भाँति मनुष्य को अपने प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में मध्यम मार्ग का अवलम्बन करना चाहिए। उसे एक निरर्थक वीणा के तारों की भाँति अधिक कड़ा या अत्यधिक शिथिल नहीं होना चाहिए। उसे तो उस मधुर ध्वनि निकालनेवाली वीणा के तारों की भाँति न तो अधिक कड़ा न अधिक शिथिल ही होना चाहिए।

भगवान् बुद्ध के मध्यम मार्ग का निर्देश जीवन के सभी पहलुओं को ध्यान में रखकर किया गया था, जैसे—'समचरिया' कहने से सम-आचरण और कुशल कार्य तथा कार्य-दक्षता का भी बोध होता है और इन्हीं के द्वारा धर्माचरण सम्भव है। दक्षता के साथ सम-आचरण और कुशल कार्य करने से धर्माचरण प्राप्त होता है और इन्हीं के द्वारा तथागत का आदर्श एवं सर्वोत्कृष्ट निर्वाण की प्राप्ति सम्भव है। संयुक्त निकाय में यह स्पष्ट रूप से समझाया गया है कि तथागत वही पुरुष हैं जिन्होंने 'धर्मभूत' तथा 'ब्रह्मभूत' लाभ किया है। जिसने धर्माचरण या ब्रह्माचरण का मार्ग अपनाकर ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लिया है वह सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है और अन्त में 'अमृत' (निर्वाण) प्राप्त कर (दुःख, शोक, जरा, मृत्यु आदि पर विजय प्राप्त कर) अमरत्व की संज्ञा धारण करता है। संयुक्त निकाय में कहा गया है कि गो-शकट के दो बैलों की भाँति प्रयास और अध्यवसाय हम लोगों को संसार रूपी दुःख-शोक के असीम सागर से खींचकर निर्वाण की संज्ञा प्रदान करता है। 'आर्य पर्येषण सूत्र' से जाना जाता है कि निर्वाण हम लोगों को भी सांसारिक दुःखों के मूल कारण अज्ञानता, तृष्णा, इन्द्रिय-भोग विलास की विनाशकारी अभिलाषाओं से मुक्ति प्रदान करता है। अर्थात् अपने प्रयास या चेष्टा तथा अध्यवसाय के द्वारा हम निर्वाण प्राप्त करने में समर्थ हैं एवं यह निर्वाण ही हम लोगों को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि पर अधिकार करने में समर्थ बनाता है।

वीणा के तार को आवश्यकतानुसार खींच या ढीला कर जिस प्रकार से सुर-संयोग यानी अपूर्व ध्वनि की सृष्टि की जाती है, अर्थात् अपने प्रयास द्वारा फल प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकार 'अमृत-फल' या निर्वाण' की प्राप्ति एकमात्र अपने प्रयास द्वारा ही सम्भव है। इन सब में प्रधान दुःखों से निवृत्ति ही है। अर्हन्त होने से पहले उन्होंने जितना प्रयास और अध्यवसाय किया था, वह इस अनित्य संसार की परिवर्तनशीलता से मुक्त होने के प्रयास के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। इसीलिये कहा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

गया है—"प्रयास करो, अध्यवसाय करने की चेष्टा करो ताकि जो अब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता है, वह मानवीय शक्ति, मानवीय प्रयास और मानवीय अध्यवसाय के द्वारा प्राप्त हो सके।" शिष्यों को पथ-प्रदर्शक द्वारा पथ प्रदर्शन मात्र किया जाता है, परन्तु यात्रा की मंजिल—निर्वाण या अमृत-फल की प्राप्ति व्यक्ति विशेष की निष्ठा और प्रयास पर निर्भर करता है। "कार्य तो तुम्हें ही करना है, तथागत केवल बतला देने वाले हैं।" यद्यपि सम्यक्-सम्बोधि सहज सुलभ नहीं है, तथापि यह क्रमशः शील-पालन, उचित कर्त्तव्य और अभ्यास द्वारा निश्चय ही प्राप्त किया जा सकता है। विश्वास रखने वाला मनुष्य धर्म में आस्था रखकर उसे श्रवण तथा कण्ठ करता है, तत्पश्चात् उसका मनन चिन्तन करता है और अच्छी तरह विचार-कसौटी पर कसने के पश्चात् उसके अनुसार आचरण करता है, कठिनाइयों से संघर्ष करता है। दृढ़प्रतिज्ञ होने के कारण इस नश्वर काया को धारण करते हुए भी अपने प्रयास के द्वारा वह सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त करता है। इससे ज्ञान पड़ता है कि सत्य ही धर्म और इसका ज्ञान ही निर्वाण है। इसीलिये कहा गया है "बुद्ध ही धर्म और धर्म ही बुद्ध है" और जिन्होंने धर्म की उपलब्धि की है, वे बुद्ध को प्राप्त कर चुके हैं। तथागत का अर्थ 'ब्रह्मभूत' अर्थात् निर्वाण प्राप्त कहा जाता है। हम अपने एक दिन के या एक बार के प्रयत्न और अध्यवसाय से निर्वाण या मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकते, प्रत्युत हमें तो क्रमशः और पग-पग करके ही उसे प्राप्त करना होगा हम उसे सत्य, निर्वाण, धर्म, या ब्रह्म जो भी नाम दें, एक ही है। इसीलिये भगवान् बुद्धने भिक्षु संघ को लक्ष्य कर आनन्द से कहा था—'हे आनन्द, इसी नीति द्वारा तुम लोग अपने को शिक्षित करोगे—एक शक्ति से नित्य नवीन शक्ति की उपलब्धि और एक शिखर पर पहुँच कर ही उससे उच्चतर शिखर पर जाने का प्रयास करोगे। इसी क्रमानुसार अपने प्रयास द्वारा तुम निर्वाण प्राप्त कर सकोगे।"

भारत और लंका का प्राचीन सम्बन्ध

श्री सुमन वात्स्यायन

लंका का पुराना नाम लंका, सिंहल, ताम्रपर्णी आदि है। दूसरी सदी में ग्रीक ज्योतिषी टॉलेमी ने, जो मिश्र में रहता था, लंका का एक नकशा तैयार किया। उसने इस द्वीप को सुमात्रा या मेडागास्कर के बराबर अंकित किया। १२९२ ई० में मार्कोपोलो ने इसका घेराव २४०० मील बताया। किन्तु यथार्थ में लंका द्वीप उत्तर से दक्षिण २७१ मील लम्बा और पूर्व से पश्चिम १४० मील चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल २५३३२ वर्गमील है जो करीब-करीब हालैंड और बेलजियम के बराबर है या वेल्स को छोड़कर आधे इंगलैण्ड के बराबर है। आकार और आबादी में यह मैसूर राज्य के ही बराबर है। चारों ओर समुद्र है और इसके पहाड़ों की ऊँचाई समुद्र की सतह से अधिक से अधिक ७ हजार फुट है।

डा० मेंडिस के कथनानुसार, "भारत में होनेवाले प्रत्येक महान परिवर्तन—राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक या आर्थिक का प्रभाव इस टापूपर पड़ता है। १५ वीं सदी तक भारतीय सभ्यता की हर एक लहर ने इस द्वीप को अपना रास्ता बनाया और यहाँ के निवासियों के जीवन और विचारों पर अपना चिन्ह छोड़ गयी"। भूगर्भ-शास्त्रियोंके मतानुसार लंकाका सारा टापू ही किसी समय दक्षिण प्रायद्वीप के साथ मिला हुआ था।

प्राचीन बौद्धों का जम्बूद्वीप ज्ञात जगत का ही एक हिस्सा था। महाकाव्य और पुराणों की अपेक्षा पालि-कथाओं का जम्बूद्वीप ज्यादा बड़ा था। इसमें केवल भारत ही नहीं बल्कि सुदूर दक्षिण में ताम्रपर्णी, भारत से लगे दक्षिणी एशिया और पश्चिम में भूमध्य के पाँच देश भी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शामिल थे। लंका का टापू, जम्बूद्वीप के आठ उपद्वीपों में से था। चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार का ग्रीक राजदूत मेगस्थनिज ताम्रपर्णी नहीं गया था। उसका वर्णन पाटलिपुत्र (पटना) की स्थानीय जानकारी पर ही निर्भर है। उसने अपनी इन्डिका में इसका वर्णन तप्रोवने नाम से किया है। इसके अनुसार लंका समुद्र में एक बड़ा पहाड़ी टापू था और जो मुख्य भूमि से सिर्फ एक नदी द्वारा पृथक था। वहाँ जंगली जानवरों और बड़े बड़े कछुओं की भरमार थी। बाल्मीकि रामायण के अनुसार लंका समुद्र के दूसरे पार है—स्थिते पार समुद्रस्य।

को मिलाती हुई प्रतिष्ठान तक सड़कों के जाल बिछे थे। इसी तरह तक्षशिला, पुष्करावती, पुरुषपुर आदि शहर एक-दूसरे से सड़कों द्वारा मिले थे। कुछ सड़कें दक्षिण-पूर्व में बंग से कलिंग तक और कुछ राजपुताने के रेगिस्तान को पार कर सिन्ध तक जाती थीं। प्रायः सभी सड़कों का सम्बन्ध समुद्री किनारे के बन्दरगाहों से होता था।

समुद्र-तटवर्ती व्यापार सबसे उन्नत और सुरक्षित था। भिन्न भिन्न आकार-प्रकार के जहाज पूर्व के बन्दरगाह ताम्रलिप्ति (बंग) दक्षिण में ताम्रपर्णी और पश्चिम में सुप्पारक, भरुकच्छ और सौराष्ट्र तक माल ले जाते थे। यह
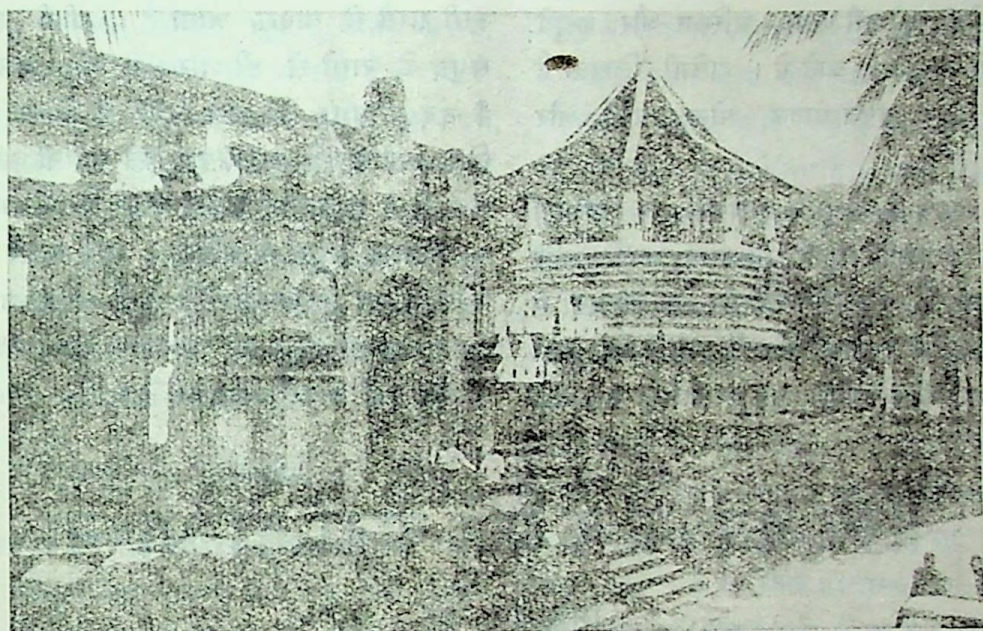
कैण्डी का दन्त-धातु-मन्दिर

भारत और लंका का व्यापार-सम्बन्ध बहुत पुराना है। प्राचीनकाल में भारत का व्यापार बहुत उन्नत था। भारतीय व्यापारी मध्य एशिया, दक्षिण-पूर्वी एशिया और सुदूर पूर्व में चीन तक अपना माल पहुँचाते थे। देशके अन्दर जिन नदियों में नाव चल सकती थी, वहाँ नाव द्वारा और बाकी सड़कों द्वारा व्यापारिक सामान आता-जाता था। देश के बड़े बड़े शहर सड़कों द्वारा संबंधित थे। मगध की पुरानी राजधानी राजगृह-से लेकर पाटलिपुत्र, वैशाली, कपिलवस्तु, श्रावस्ती, कौशाम्बी, विदिसा, उज्जैनी आदि

तटवर्ती व्यापार इतना बढ़ा-चढ़ा था कि अक्सर व्यापारी जहाज किनारे किनारे चीन तक पहुँच जाते थे। तक्कोल, सुवन्नकुड्ड, स्वर्णभूमि, वेसुंग और जावा तक ये दौड़ लगाते थे।

भारत और चीन का व्यापार ताम्रलिप्ति से लंका, जावा होकर होता था। भरुकच्छ और सोपारा से बैबीलोन और भूमध्यसागर तक भारतीय जहाज पहुँचते थे। वहाँ से भारतीय माल यूरोप तक जाता था। सिकियांग अथवा तिब्बत होकर भी भारत और चीन का व्यापार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

होता था। भारत, लंका और फारस से व्यापार करनेवालों की जानकारी के लिये पुस्तकें भी लिखी गई थीं भारत और लंका के बीच व्यापारिक संबंध की जानकारी के लिये मेगस्थनिज की इंडिका, टालेमी का भूगोल कौटिल्य का अर्थशास्त्र, जातक, महावंश आदि ग्रंथ महत्वपूर्ण हैं। इंडिका के अनुसार लंका भारत के दक्षिण में समुद्र से घिरा एक टापू है। यहाँ अच्छी जातिका हाथी बहुतायत से पाया जाता था और ये जहाजों में भरकर कलिंग लाये जाते थे। भारत की अपेक्षा यहाँ अधिक सोना और अच्छे किस्म का मोती मिलता था। अर्थशास्त्र के अनुसार पार समुद्र (लंका) मणिमुक्ता के लिये प्रसिद्ध था। पेरिप्लस के अनुसार—मोती, कीमती पत्थर, मस्लिन और कछुये की पीठ लंका से बाहर भेजे जाते थे। टालेमी लिखता है कि लंका की प्रधान उपज चावल, सोना, चाँदी और हाथी थी।

वलाहस्स जातक के अनुसार ताम्रपर्णी द्वीप (लंका) का सिरीसवस्तु बन्दरगाह बहुत धन-धान्य सम्पन्न शहर था। उत्तरी भारत के पाँच सौ व्यापारी कल्याणी नदी से नागद्वीप में जा लगे थे। उनकी नौकायें टूट गई थीं। वहाँ के मूल निवासियों की स्त्रियों ने इन व्यापारियों का बड़ा स्वागत किया और पति की तरह व्यवहार करना चाहती थीं। क्योंकि इन स्त्रियों के पति भी इन्हीं व्यापारियों की तरह कहाँ गये इसका पता नहीं था। इन व्यापारियों में से आधे तो उन्हीं स्त्रियों के प्रेमपाश में आबद्ध रहे और आधे भाग कर अपने देश लौट आये। जो व्यापारी वहाँ रहे वे निश्चय ही सदा के लिये वहीं बस गये होंगे। इस कहानी से लंका के उपनिवेशीकरण पर भी प्रकाश पड़ता है। संस्कृत संस्करण (?) बताता है कि किस प्रकार एक व्यापारी सारे द्वीप का शासक बन बैठा।

लंका का राजा देवानांपियतिस्स का राजदूत ताम्रलिप्ति बन्दरगाह होकर पाटलिपुत्र (पटना) जाता है और फिर उसी रास्ते से वापस आता है। चीनी यात्री फाहियान समुद्र के रास्ते से ही भारत से लंका गया था। बंगाल के चंद सौदागर की और हिन्दी के प्रथम महाकाव्य रचयिता जायसी के पद्मावत की कहानी का सम्बन्ध भी लंका से है। इस तरह हम देखते हैं कि भारत और लंका का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। ढाई हजार वर्ष पूर्व, जब संगठित रूप से भारतीयों ने वहाँ अपना उपनिवेश कायम किया, उससे पहले भी भारत से व्यापारी वहाँ जाते रहे हैं और वहाँ जाकर बसते रहे हैं।

पवित्र अस्थियों के प्रति बौद्धों की भावना

भिक्षु धर्मरक्षित

बौद्धों के लिये पवित्र अस्थियों का बहुत बड़ा महत्व है। प्रत्येक बौद्ध पवित्र अस्थियों की पूजा—अर्चना कर अपने को स्वर्गसुख का भागी समझता है। बौद्ध धर्म के अनुसार चार प्रकार के व्यक्तियों की अस्थियाँ पवित्र मानी जाती हैं—(१) बुद्ध (२) प्रत्येक बुद्ध (३) अर्हत् और (४) चक्रवर्ती राजा। इन चार व्यक्तियों की अस्थियों के पवित्र होने और उनकी पूजा-अर्चना करने की भावना उस समय उत्पन्न हुई, जब भगवान् बुद्ध ने कुशीनगर में परिनिर्वाण-मंच पर लेटे हुए आयुष्मान् आनन्द के प्रश्नों का उत्तर देते हुए स्तूपार्ह व्यक्तियों को बतलाया था। उसके पूर्व भी स्तूपों के निर्माण की व्यवस्था थी। भगवान् बुद्ध ने स्वयं अपने कर-कमलों द्वारा अर्हत् सारिपुत्र तथा अर्हत् मौद्गल्यायन आदि जैसे महास्थविरों की पवित्र अस्थियों का स्तूपों में निधान किया था। यद्यपि भगवान् बुद्ध ने चार ही व्यक्तियों की अस्थियों पर स्तूप-निर्माण की आज्ञा दी थी किन्तु पीछे सभी भिक्षुओं और सद्गृहस्थों की भी अस्थियों पर स्तूपों का निर्माण होने लगा।

आये दिन बर्मा, लंका, स्याम आदि देशों में मृत-भिक्षुओं का विशेष उत्सव के साथ दाहकर्म होता है और उनकी अस्थियाँ लेकर छोटे या बड़े स्तूपों में निहित की जाती हैं। जैसे उत्तर भारत में घर के वृद्ध लोगों की

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अस्थियाँ समाधिस्थ की जाती हैं, वैसे ही बौद्धों में भी सद्गृहस्थों और वृद्धों की अस्थियाँ स्तूपों में रखी जाती हैं। किन्तु एक सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत में मृत-व्यक्तियों की अस्थियाँ प्रायः सरिताओं में प्रवाहित कर दी जाती हैं, ऐसा बौद्ध देशों में नहीं होता। जिस प्रकार भारतवासी गंगा आदि पवित्र नदियों में अस्थियों का प्रवाह करने में अपना तथा मृत व्यक्ति का कल्याण समझते हैं, ठीक इसके विपरीत, बौद्ध लोग अस्थियों को प्रवाहित करने में उनका अनादर समझते हैं। वे उनकी अस्थियों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि जिस प्रकार सदा अर्पित कर सकें, वैसा ही यत्नपूर्वक स्तूप बनवाकर उन्हें निहित करते हैं। नेपाल, तिब्बत, सिकिम, भूटान, चीन, जापान, आदि बौद्ध देशों के बौद्धों की भी यही भावना है। 'चैत्यों का देश' कहलाने वाले नेपाल की यात्रा करते समय हमें हिमालय की तीसरी उच्च पर्वतमाला धवलगिरि के पास से लेकर मुक्तिनाथ तक के सारे प्रदेश में ऐसे स्तूपों की कतार-सी लगी मिली थी, जिनपर "ओम् मणि पद्मे हुं" के मंत्र लिखे थे और जिन्हें मार्ग चलते समय सदा दाहिने हाथ करके चलना पड़ता था। जो कभी भूल करता था, वह अशिक्षित और अविनीत समझा जाता था।

तथागत की अस्थियाँ

जिस समय (ई० पूर्व ५४३) तथागत का परिनिर्वाण हुआ और सप्ताह भर उत्सव के बाद जब उनका मृत-शरीर जलाया गया तथा अस्थियाँ एकत्र की गईं, तब भारत के सभी बौद्ध राजा उनकी पवित्र अस्थियों के लिए कुशीनगर में मल्लों के पास दूत भेजे थे और अपने लिये अस्थियों के भाग लेकर अपनी-अपनी राजधानियों में उनपर स्तूप बनवाये थे। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के तीन-चार मास के भीतर ही सारे उत्तरी भारत में दस स्तूप केवल तथागत की पवित्र अस्थियों पर निर्मित हो गये थे। अशोक-काल में उनका और भी विस्तार हुआ था। पालि अट्ठकथा ग्रंथों तथा दिव्यावदान आदि संस्कृत-ग्रंथों का कथन है कि चौरासी हजार स्तूपों का निर्माण उस समय हुआ था। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया, स्तूपों की संख्या बढ़ती गई। कनिष्क के समय में तो स्तूपों का इतना महत्व बढ़ा कि जब अस्थियों का मिलना दुर्लभ हो गया, तब मूर्तियाँ, धार्मिक ग्रंथ आदि रखकर स्तूपों का निर्माण होने लगा। कनिष्क ने सारा त्रिपिटक ताम्रपत्रों पर लिखाकर एक स्तूप में निधान कराया था।

मध्यकाल में कुछ अस्थियाँ लंका, बर्मा, स्याम आदि देशों में भी पहुँचायी गईं और उन-उन देशों में भी स्तूपों का निर्माण हुआ। सम्प्रति लंका के अनुराधपुर का स्वर्णमाली और तिस्समहाराम आदि चैत्य, बर्मा का श्वेदगौं पगोडा आदि चैत्य, स्याम के बंकाक नगर का महान् चैत्य, नेपाल का स्वयम्भू और खास्ति (बोधा) चैत्य आदि पीछे बने, जिनमें कुछ तो अस्थियों पर निर्मित हैं और कुछ धर्म-धातु के नाम पर पवित्र वस्तुओं को रखकर बनाये गये हैं। इसी प्रकार अन्य बौद्ध देशों में भी जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, मलाया आदि द्वीपों के साथ मध्येशिया का सारा भू-भाग स्तूपों से सुशोभित है। यद्यपि वे इस समय भग्न हैं, फिर भी उनके अतीत का इतिहास हमें आज भी उनके गौरव को बतला रहा है।

यद्यपि तथागत ने आमिष-पूजा को उतना महत्व नहीं दिया था, धर्माचरण को ही उन्होंने सात्विक पूजा बतलायी थी, किन्तु समय के परिवर्तन के साथ उसमें भी परिवर्तन हुआ और बौद्ध लोग बुद्ध-प्रतिमा, धातुस्तूप (वह स्तूप जिसमें भगवान् बुद्ध की अस्थियाँ निहित हों) तथा बोधि-वृक्ष को बुद्ध-सदृश पूजने लगे। बौद्धों में यह पक्का विश्वास है कि जिस भी समय पूजा की जाय, श्रद्धा की समता पर समान फल होता है। भगवान् बुद्ध यदि जीवित हों या परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये हों, समान चित्त होने पर समान ही फल होता है—

"तिट्ठन्ते निब्बुते चापि,
समं चित्तं समं फलं।"

लंका व बर्मा में भव्य-स्वागत

यही कारण है कि आज सारा बौद्ध-जगत् तथागत और तथागत के अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों की पूजा करने में महाकल्याण का अनुभव करता है। जब सन् १९४७ में सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की पवित्र अस्थियाँ लंका पहुँची, तब लंका देश-वासियों का हृदय इस प्रकार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अपार श्रद्धा से उमड़ पड़ा, मानो उन्हें तथागत ही मिल गये हों। बर्मा की भी ऐसी ही दशा थी। जिस दिन पवित्र अस्थियाँ रंगून पहुँची, उस दिन सारा बर्मा देश आह्लाद का अनुभव करने लगा था। यद्यपि भारत में बौद्धों का अभाव है, बहुत थोड़े से बौद्ध भारत में रहते हैं, तथापि वह दिन भारतवासियों के लिये अत्यन्त ही गौरवपूर्ण था, जिस दिन की १३ जनवरी '४९ को अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ कलकत्ता पहुँची थीं। बौद्धों ने ही नहीं, भारत के प्रत्येक धर्म, संस्कृति और इतिहास-प्रेमी व्यक्ति ने प्रेम और भक्ति के साथ उन पवित्र अस्थियों के स्वागत समारोह में भाग लिया था। पटना तथा उत्तर प्रदेश की सरकार और जनता ने जो श्रद्धा और भक्ति उन अस्थियों के प्रति प्रदर्शित की है, वह इस युग के भारतीय बौद्धों के लिए अभूतपूर्व घटना सिद्ध हुई है। काशी जैसी नगरी ने अस्थियों के स्वागत के लिए अपूर्व उत्साह दिखाई है।

कल्याण की भावना

यदि सत्य रूप से देखा जाय तो उन पवित्र अस्थियों का स्वागत उनके महान् त्याग, तपस्या आदि का स्वागत है। बौद्ध इसी हेतु अस्थियों को सुरक्षित रखते हैं। जिस प्रकार महात्मा गान्धी की अस्थियाँ नदियों, सरोवरों और समुद्रों में प्रवाहित कर दी गईं, उस प्रकार बौद्ध उन्हें प्रवाहित करके उनके महत्त्व को खो देना नहीं चाहते। वे तो उन्हें अपने सिर पर पुष्पवत् रखने में अपना गौरव समझते हैं और स्तूपों में निधान कर उनकी पूजा से अपने कल्याण की कामना करते हैं तथा वे सदा यह कह कर उनकी वन्दना करते हैं—

> "वन्दामि चेतियं सब्बं,
> सब्बठानेसु पतिट्ठितं।
> सारीरिक-धातु महाबोधिं,
> बुद्धरूपं सकलं सदा॥"

अर्थात् सब स्थानों में प्रतिष्ठित शारीरिक धातु (अस्थि), बोधि-वृक्ष और बुद्ध-प्रतिमा—इन सब चैत्यों की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

बौद्धों की इस भावना ने संसार के बहुत से लुप्तप्राय इतिहास की रक्षा की है। तिब्बत में बौद्ध धर्म की महान् सेवा करनेवाले आचार्य शान्ति-रक्षित की अस्थियाँ तिब्बत के समये-विहार में इसी भावना के फलस्वरूप सुरक्षित हैं, जो भारतीय कुलपुत्रों के नसों में कुछ क्षणों के लिए भारतीय संस्कृति के प्रसार की स्फूर्ति उत्पन्न कर देती हैं। साँची के स्तूपों से नेपाल, कश्मीर, चम्बा आदि हिमवन्त प्रदेश में बौद्ध-धर्म के प्रचारकों की पवित्र अस्थियों को सुरक्षित पाकर भारत के इतिहास में भारतीय संस्कृति के दिग्विजय की एक नयी कड़ी जुट गई है। तक्षशिला, नागार्जुनी कुण्ड आदि स्थानों में पाई गई अस्थियों से भी हमारा इतिहास गौरवान्वित हुआ है। साँची से प्राप्त सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की अस्थियों ने क्या भारत में सांस्कृतिक नव-चेतना का संचार नहीं किया है? मैं तो समझता हूँ कि इन अस्थियों ने एशियायी ही नहीं, प्रत्युत विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री और सद्भावना की स्थापना का सृजन किया है।

अशोक और मौर्य साम्राज्य

श्री देवव्रत सेन गुप्त

बीच में अशोक चक्र के साथ उस तिरङ्गे राष्ट्रिय-ध्वज को फहराते हुए देखकर किस भारतीय का हृदय गर्व और आनन्द से नहीं नाच उठेगा? ब्रिटिश राजमुकुट के स्थान पर अशोक राज-चिह्न सिंह चतुर्मूर्ति को देखकर किस भारतीय की छाती गज भर चौड़ी नहीं हो जायगी? ये चिह्न हमें एक बार उन महान् अशोक की स्मृति दिला देते हैं जिनके विषय में प्रसिद्ध अँग्रेजी विद्वान् लेखक एच० जी० वेल्स लिखते हैं—विश्व के इतिहास में हजारों-लाखों राजा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महाराजाओं और चक्रवर्ती राजाओं के बीच सम्राट् अशोक का नाम सूर्य की भाँति अकेला चमक रहा है।

निस्सन्देह अशोक इसी प्रसिद्धि के योग्य थे। हमने उनके चक्र को राष्ट्रिय ध्वज और सिंह चतुर्मूर्ति को राज-चिह्न का गौरव प्रदान कर उनका उचित सम्मान किया है, परन्तु हमारे लिये इतना ही पर्याप्त नहीं है। हमें तो उनकी विलक्षण बुद्धि, विचार, लक्ष्य और कार्यपद्धति को भी अपनाना होगा। और तभी हम एक उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं। श्री वेल्स ने एक स्थान में लिखा है, 'अशोक की स्मृति दिनोदिन बढ़ती जाती है और आज जनता अशोक को इतना अधिक याद करती है जितना कभी कौंस्टैन्टाइन या चार्ल मेंगे को।"

धार्मिक संविधान

प्रश्न उठता है कि अशोक की इतनी अधिक प्रसिद्धि का क्या कारण था? इसके विषय में सर्वप्रथम उल्लेखनीय कारण उनके धार्मिक संविधान या धर्म को बतलाया जा सकता है। साथ ही साथ धर्म प्रचार के लिये उन्होंने जितनी निष्कपटता और अदम्य उत्साह दिखलाया, वह उल्लेखनीय है। बौद्ध अशोक के धर्म-प्रचार का उद्देश्य अपने व्यक्तिगत राजधर्म का प्रचार करना नहीं था। धर्ममङ्गल नामक धार्मिक अनुशासन पर लिखी गयी पुस्तक के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था—"इस पुस्तक में वर्णित धार्मिक अनुशासन का पालन करने से इस जन्म में ही नहीं, परलोक में भी मनुष्य असीम सुख का भागी होता है। उनके
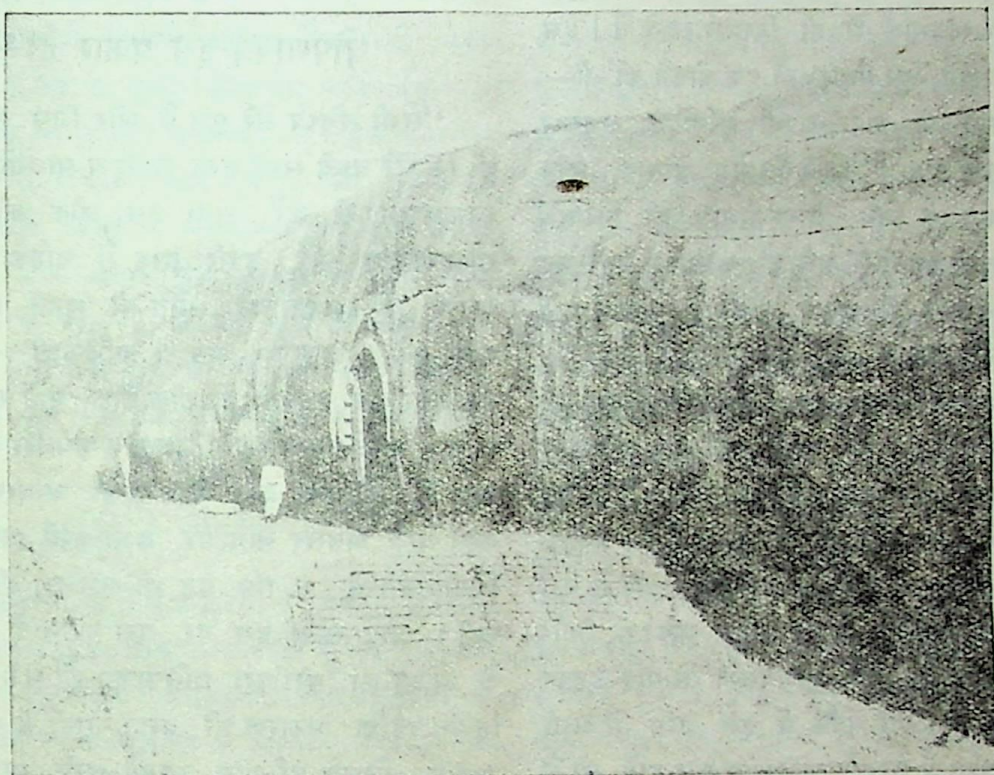
बराबर पहाड़ी की लोमश ऋषि और सुदामा गुफायें

इस प्रचार का जनता पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ा। लोग अपने सामाजिक जीवन का उत्तरदायित्व समझने लगे, जो किसी भी उन्नतशील राष्ट्र के शासन-प्रबन्ध के लिये किसी भी काल या स्थान में एक महत्त्वपूर्ण विषय है।

'धर्म' के उद्देश्यों को जनता के व्यक्ति गत सामाजिक जीवन में प्रयोग करने के लिये, अशोक ने जितनी चेष्टा और अध्यवसाय किया—जनता को हर समय अपनी ओर आकर्षित करती रहेगी। जनता जिसमें धर्म को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ठीक-ठीक समझे और तद्नुसार आचरण कर सके उस महान् सम्राट् अशोक ने पार्वतीय चट्टानों शिला-स्तम्भों आदि पर पालिभाषा में धर्म के मुख्य उपदेशों को खुदवाकर अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों में गड़वा दिया था। उन्होंने अपने साम्राज्य के दुर्गम स्थानों एवं सीमान्त प्रदेशों को भी इन पुनीत-उपदेशों से वञ्चित नहीं रखा। अशोक ने जनता में धर्म-प्रचार के लिये राज्य की ओर से विशेष अधिकारियों को नियुक्त किया। सम्राट् स्वयं प्रचण्ड अध्यवसायी थे और दूसरे व्यक्तियों के अध्यवसाय में ही विश्वास रखते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने इस प्रकार की एक घोषण की थी—"छोटे-बड़े सभी को अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार अध्यवसाय करना होगा।" अपने असीम उत्साह, लगन और अध्यवसाय के साथ मानव-समाज की निस्वार्थ सेवा कर, उन्होंने जनता के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित किया। इस सम्बन्ध में अपनी चौथी (शिला लेख) घोषणा में उन्होंने कहा है—

"अपने कर्त्तव्यों का सम्पादन करने में मैं जितना भी अध्यवसाय करता हूँ—संतोष जनक नहीं है। मेरे ऊपर विश्व का कल्याण करने का महान् उत्तरदायित्व है। यह कठिन परिश्रम और उद्योग से ही सम्भव है। विश्व-कल्याण से उत्तम दूसरा कोई भी कार्य इस संसार में नहीं है। प्राणिमात्र का मैं एक-बहुत--बड़ा ऋणी हूँ, और अपनी थोड़ी बहुत चेष्टा और अध्यवसाय से यदि उनका थोड़ा भी उपकार कर सकूँ ताकि वे इस जन्म में अच्छे कर्म कर उस जन्म में भी उसका अच्छा फल पावें, तो मैं अपने को अपने ऋण से मुक्त कर सकूँगा। परन्तु यह एक अत्यन्त ही कठिन कार्य है और बिना कठिन अध्यवसाय के सम्भव नहीं।"

जनता की सुरक्षा और उसकी उन्नति

यदि सम्राट् अपने कुशल शासन-प्रबन्ध से, देश की बाहरी शत्रुओं से सुरक्षा, चिरकाल तक देश में बनी रहने वाली शान्ति, प्रत्येक देशवासी के साथ बिना किसी वर्ण या लिङ्ग-भेद के समान व्यवहार, सर्वसाधारण के लिये भी उचित न्याय का प्रबन्ध न किया होता एवं अन्य कार्यों द्वारा जनता को समृद्धिशाली एवं सुखी नहीं बनाया होता तो शायद उस महान् अशोक का 'धर्म' इतनी अधिक ख्याति नहीं प्राप्त कर सकता। इसके सम्बन्ध में अशोक द्वारा किये गये कार्य और उनकी सफलता से अधिकांश मनुष्य परिचित हैं, इसलिये उन्हें यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। यहाँ मैं अशोक के कलिङ्ग के सम्बन्ध में दिये गये राजाज्ञा का उल्लेख करूँगा जिससे उनकी न्यायप्रियता और जनता के प्रति उनके विचार का कुछ पता चलता है।

घोषणापत्र इस प्रकार है:—

"सभी मनुष्य मेरे पुत्र हैं और जिस तरह मैं चाहता हूँ कि मेरे बच्चे सभी तरह के सुख-साधनों का उपभोग स्वच्छन्दता से करें, तथा इस लोक और परलोक में सौभाग्यवान् बनें, उसी तरह मैं चाहता हूँ कि सभी मनुष्य मेरे बच्चों की भाँति ही सुखी और सौभाग्यवान् बनें। तथापि आप (अधिकारी) लोग इसकी यथार्थता और सत्यता को ठीक-ठीक नहीं समझते। कुछ व्यक्ति (अशोक यहाँ उन प्रान्तीय गवर्नरों की ओर इङ्गित करते हैं, जो कभी कभी अत्यन्त ही अत्याचारी बन जाया करते थे) अवसर आने पर कभी-कभी इसका मनोयोग किया करते थे, तथापि वह भी अशंतः ही पूर्ण रूप से नहीं। आप लोग इस पर पूरा ध्यान दें ताकि सरकार के उद्देश्य का पूरा-पूरा प्रतिपालन हो सके। कभी कभी निर्दोष व्यक्ति अकारण ही बन्दी गृहों में बन्द कर दिये जाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप अन्य व्यक्तियों को भी बहुत कष्ट होता है। इनके प्रति न्याय करना आपका कर्त्तव्य है और इसके लिये मैं प्रति पाँचवें वर्ष धार्मिक अनुशासन के अनुसार वैसे व्यक्तियों को भेजूँगा। [धर्म-महामात्त जिन्हें सम्राट् की ओर से एक ही साथ दो कार्यों के लिये नियुक्त किया जाता था; (१) धर्म का प्रचार करना तथा (२) कर्मचारियों के कार्य का निरीक्षण करना, विशेषतया प्रान्तीय विचार विभाग (न्याय विभाग) का निरीक्षण करना। इन्हें, प्रान्तीय शासन-प्रबन्ध की बुराइयों को दूर करने के लिये, शासन-प्रबन्ध में उचित हस्तक्षेप एवं अधिकारियों से परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के अधिकार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भी प्राप्त थे। इसके अतिरिक्त शासन प्रबन्ध एवं प्रजा की गतिविधि का निरीक्षण कर सम्राट् को सूचित करना भी इनका ही कार्य होता था] जो मृदु और संयमशील स्वभाव के हैं तथा अपने पवित्र जीवन के लिये प्रसिद्ध और आदरणीय हैं; वे मेरे इन मनोभावों को जानकर मेरी सम्मति के अनुसार ही कार्य करेंगे।"

अपने कर्त्तव्य तथा उसके सम्पादन के विषय में अशोक के ये ही विचार और निष्कपट प्रयास थे। राज-घोषणा के दूसरे भाग पर विचार करने से हम देखते हैं कि अशोक अपने शासन-प्रबन्ध में कितना अधिक दिलचस्पी लिया करते थे। घोषणा-पत्र का दूसरा भाग इस प्रकार है:—

"एक लम्बा अरसा बीत गया जब से दिन के अधिकांश भाग में कोई राजकार्य नहीं होता। अतः अब से मैं जहाँ कहीं भी होऊँ, किसी भी समय—भोजन करते समय अथवा अन्तःपुर में, या भीतरी सम्मेलन-गृह अथवा राजकीय अस्तबल या घोड़े की पीठ पर, मैं जहाँ कहीं भी जिस किसी भी समय होऊँ, प्रजा के दुःख का या और कोई समाचार लाने वाला दूत मेरे पास तक बिना रोक-टोक आ सकता है।"

प्रान्तों में विद्रोह

उन अधिकारियों के नियुक्त करने से अशोक के और भी कई अभिप्राय थे—प्रान्तीय राज्य-पालों (गवर्नरों) की गतिविधि पर कड़ी नजर रखना तथा पीड़ित व्यक्तियों को तात्काल ही उचित न्याय दिलाना। प्रान्तीय राज्यपालों के पापी एवं दुष्ट व्यवहार से विद्रोह का अविर्भाव हो सकता है। जैसा तक्षशिला आदि में देखने को मिल चुका था। इस महत्वपूर्ण एवं समस्यामूलक प्रान्त के निवासी प्रान्तीय शासक के अत्याचार से पीड़ित होकर दो बार विद्रोह कर चुके थे—एक बार बिन्दुसार के राजत्वकाल में तथा दूसरी बार स्वयं अशोक के राजत्वकाल में। बिन्दुसार ने विद्रोह को दबाने तथा परिस्थिति को सम्भालने के लिये अशोक को भेजा था, जिसने बिना किसी बलप्रयोग के ही स्थिति पर नियंत्रण प्राप्त कर शान्ति स्थापित कर दी थी। अपने पिता की तरह अशोक ने भी तक्षशिला के विद्रोह को दबाने तथा स्थिति संभालकर शान्ति स्थापित करने के लिये अपने राजकुमार कुणाल को भेजा था। दोनों ही बार जनता की इच्छानुसार प्रान्तीय अधिकारियों को पदच्युत कर उनके स्थान पर राजकुमारों को नियुक्त किया गया।

अतः इससे (इन दोनों घटनाओं से) दो महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं, जिनसे हम लोग कुछ सीख सकते हैं। प्रथम, मौर्य शासन-प्रबन्ध यद्यपि शासन का प्रबन्ध एक राजा द्वारा ही किया जाता था [और उस धारणा के अनुसार—"राजा और प्रजा में पिता और पुत्र की निर्भरता थी," प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० डी० आर० भण्डारकर के कथन को, जो कौटल्यान से पहिले के दिनों की धारणा (अर्थात् राजा प्रजा का सेवक मात्र समझा जाता था) के विपरीत है, यदि स्वीकार कर लिया जाय] वे (राजा) जनमत की उपेक्षा कभी नहीं करते थे, यहाँ तक कि तक्षशिला जैसे सुदूरवर्ती प्रदेश के शासकों को पदच्युत करने में भी उन्हें हिचकिचाहट नहीं होती थी। द्वितीय, इस प्रान्त की जनता के अन्तिम कार्य पर दृष्टिपात करने पर हम देखते हैं कि उस समय भारतीय जनता में एक उच्चकोटि का नागरिक उत्तरदायित्व फैला हुआ था। वह अपने नागरिक उत्तरदायित्व को भली भाँति समझती थी। इस पीड़ित क्षेत्र में (तक्षशिला) जब कभी भी राजकुमारों ने प्रजा से शांति स्थापना के लिये अनुरोध किया, प्रजा ने साफ शब्दों में उनसे कहा "केन्द्र से उन्हें कोई झगड़ा नहीं है। उनकी शिकायत केवल प्रान्तीय शासकों के सम्बन्ध में है और उनकी शिकायतों को जब दूर कर दिया गया, उन्होंने पूर्ववत् ही सम्राट् के प्रति भक्ति एवं अपनी आज्ञाकारिता प्रदर्शित की। उन्होंने इन बातों को लेकर व्यर्थ का वितण्डावाद नहीं खड़ा किया। उनके (प्रजा के) इस व्यवहार से यह साफ पता चलता है कि प्राचीन भारतीय एक सुदृढ़ एवं मजबूत केन्द्रीय शासन के अन्दर रहने के सर्वदा इच्छुक थे।

पड़ोसी एवं परराष्ट्र नीति

अब अशोक की परराष्ट्र-नीति और उनके सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। हमें यह व्यक्त करते हर्ष होता है कि हमारे वर्तमान् प्रधान सचिव श्री जवाहरलाल नेहरू ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में (गत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अक्टूबर में) निम्न भाव व्यक्त कर अपनी परराष्ट्र-नीति का सुन्दर आदर्श रखा है। उन्होंने कहा—"सम्बन्ध-विच्छेद (किसी शक्तिशाली दल विशेष में योगदान न देना) से हमारा मतलब पृथक्करण या तटस्थता या विच्छेद से नहीं है और न तो स्वतन्त्रता और विश्व-शान्ति के खतरे के समय हम तटस्थ रह ही सकते हैं। जब मानव की स्वतन्त्रता और शान्ति पर विपत्ति आयेगी, हम अपने को तटस्थ नहीं रख सकते और नहीं रखेंगे। उस समय की तटस्थता का अर्थ होगा—हम लोगों ने जिस आदर्श और लक्ष्य को ध्यान में रखकर आज तक संघर्ष किया है और जिस लक्ष्य को सामने रखकर हम आज भी आगे बढ़ रहे हैं, उन आदर्शों का गला घोटना।"

अशोक की परराष्ट्र नीति को विशेषतः जो नीति उन्होंने अपने निकटवर्ती देशों के सम्बन्ध में अपनायी थी— उसे 'प्रत्यक्ष' नीति कहा जा सकता है न कि अप्रत्यक्ष, अवास्तविक या अमानवीय।

अशोक का साम्राज्य उत्तर-पश्चिम में काबुल और काश्मीर तक, उत्तर में हिमालय तक, पूरब में बंगाल तथा दक्षिण में आधुनिक मैसूर (कुछ छोटे-छोटे स्वतन्त्र तामिल राज्य–चोल, पांड्य, सतीयपुत्र, केरलपुत्र को छोड़कर) तक फैला हुआ था। भारत की तत्कालीन सीमा के बाहर सीरिया का ग्रीक राजा एन्टीशस द्वितीय थेयोज़, अशोक का पड़ोसी था। उनके समकालीन ग्रीक भाषा-भाषी प्रदेशों के राजा 'पोलेमी द्वितीय फिलाडेल्फस' मिस्र के सिंहासन पर, राजा 'मगाज़' उत्तरी अफ्रीका के साईरेने प्रदेश के सिंहासन पर अधिष्ठित थे। ताम्रपर्णी और सिंहल भी विदेशी राष्ट्र थे। मौर्य नीति के एक सच्चे अनुयायी और धर्म को लक्ष्य मानकर अशोक ने उन राजाओं के साथ परस्पर मित्रता एवं सम्बन्ध बनाये रखा। कलिङ्ग युद्ध की दुःखद स्मृति ने अशोक की विचारधारा एवं मानसिक प्रकृति को आमूल परिवर्तित कर दिया, साथ ही साथ उनकी वैदेशिक और आन्तरिक नीति भी परिवर्तित हो गयी। उसी समय से सम्राट ने धर्म विजय अर्थात् दिग्विजय या भूमि विजय के स्थान पर धार्मिक अनुशासन का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। अपने चतुर्थ शिला-घोषणा में उन्होंने कहा था—"रणभेरी" और 'युद्धघोष' का स्थान अब धार्मिक अनुशासन की घोषणा अर्थात् 'धर्मघोष' ने ले लिया है।"

प्रश्न उठ सकता है कि अशोक का अपने समकालीन निकटवर्ती देशों के साथ कैसा सम्बन्ध था। क्या वे उन (निकटवर्ती) राजाओं से निम्न स्तर पर थे या उनसे उच्चतर स्थान पर थे? मैं समझता हूँ तथा इस विषय पर विचार वैषम्य का तनिक भी स्थान नहीं दिखायी पड़ता है कि यदि अशोक ने धर्म-विजय की नीति नहीं अपनायी होती तो वे सहज में ही उन तामिल राज्यों पर अधिकार कर, उन्हें अपने साम्राज्य में मिला लेते।

ग्रीकों ने मौर्य-शक्ति का लोहा माना

उनके समकालीन ग्रीक पड़ोसी के सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि चन्द्रगुप्त के समय में मौर्यों ने उन्हें हराकर भारत से निकालकर केवल काबुल पर अधिकार करके ही दम नहीं लिया प्रत्युत सेल्युकस को हराने के बाद अन्यान्य निकटवर्ती देशों पर अधिकार कर ग्रीकों को भारतीयों के साथ एक अत्यन्त ही अपमानजनक संधि करने पर बाध्य किया। क्या ग्रीक अपने इस अपमान को इसी तरह भूल गये? यद्यपि भारत के साथ उनका मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बना हुआ था, पर क्या उन्होंने किसी भी उपयुक्त अवसर पर भारत पर आक्रमण करने के विचार को छोड़ दिया था? नहीं, कदापि नहीं! अशोक की मृत्यु के पश्चात् भारत की राजनीतिक परिस्थिति से लाभ उठा कर ग्रीकों ने जो कितनी ही बार भारत पर आक्रमण किये— इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। तब किस परिस्थिति ने ग्रीकों को भारत के साथ मित्रता बनाये रखने के लिये बाध्य किया था? इतना ही नहीं, सब से आश्चर्यजनक तो अशोक को ग्रीकों द्वारा उनके (ग्रीक) साम्राज्य के भीतरी भागों में भी धर्मप्रचार की अनुमति का मिलना था। क्या किसी व्यक्तिविशेष या आदर्श के प्रति प्रेम या आदर के परिणाम स्वरूप ही ऐसा हुआ था? डा० एच० सी० राय चौधरी ने अपनी पुस्तक "प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास" में ठीक ही लिखा है— "ग्रीक लोग 'अहिंसा' की शिक्षा और आदर्श से नहीं प्रभावित हुए थे। अशोक की शक्तिशाली सैन्य वाहिनियाँ—जिनके पास आवश्यकता पड़ने पर पश्चाताप करने के बदले दण्ड

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

देने की शक्ति थी—के हट जाने के पश्चात् यवनों ने एक बार फिर काबुल की घाटी में एकत्रित होना आरम्भ किया और इस तरह पञ्जाब, मध्यदेश एवं अन्य प्रदेशों को चकित एवं किंकर्त्तव्य विमूढ़ बना दिया।"

अतएव, अशोक की मृत्यु तक मौर्यों की शक्तिशाली सैन्यवाहिनी ने विदेशी आक्रमणों एवं आन्तरिक उथल पुथल (गड़बड़ी) से भारत की रक्षा की थी। यद्यपि अशोक ने सभी प्रकार के हिंसात्मक कार्यवाइयों का त्याग कर दिया था तथापि उनके पास देश की रक्षा एवं शासन-प्रबन्ध के लिये यथेष्ट सैन्य शक्ति थी। कुछ विद्वानों के मतानुसार अशोक ने पड़ोसी देशों में धर्म का प्रचार करते हुए कुछ शर्त रखी थी और वे कहा करते थे—"हमारे पड़ोसियों को भी इससे शिक्षा लेनी चाहिए," और इस तरह मानव समाज का दुःख दूर करने के लिये उन राष्ट्रों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने से भी नहीं चूकते थे। इस तरह अशोक की नीति को 'प्रत्यक्ष नीति' कहा जा सकता है।

मौर्य साम्राज्य के नाश का कारण

अशोक की मृत्यु के पश्चात् मौर्य साम्राज्य के तुरत विघटन और उसके लिये अशोक के उत्तरदायित्व पर विद्वानों के कई मत हैं। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री जैसे विद्वानों के मतानुसार 'ब्राह्मणों का उत्थान ही मौर्य साम्राज्य के विघटन का मुख्य कारण था। परन्तु अशोक की, बिना किसी वर्ण या रंग विभेद के, साम्य नीति के पूर्ण प्रमाण रहते हुए, दूसरे विद्वान इसे स्वीकार नहीं करते। इसके अतिरिक्त अशोक के समय या उनकी मृत्यु के बाद भी किसी प्रकार का साम्प्रदायिक असंतोष या विद्रोह का प्रमाण नहीं मिलता।

अशोक की अहिंसात्मक नीति पर दोषारोपण करते हुए यह कहा जाता है कि उनकी इसी नीति के कारण यहाँ की जनता एवं सेना अपाहिज हो गयी और बाहरी शत्रुओं तथा आक्रमणकारियों ने सहज में ही इन्हें (भारत के राजाओं) धर दबाया, इसके विषय में मैं कह सकता हूँ कि फ्रांस के राजा १४ वें लूई की भाँति अशोक अपने ५० वर्ष के राजत्वकाल में कभी भी सशंकित नहीं हुआ कि "मेरे बाद ही प्रलय या नाश होगा।" उन्होंने ४५ वर्ष तक अपने देश एवं प्रजा में अमन-चैन बनाये रखा। यदि उन्होंने एक शक्तिशाली और पर्याप्त सेना नहीं रखी होती तो यह सब कभी भी सम्भव नहीं होता। अटविका (जंगल के राजा और वहाँ के निवासियों) के भेजे गये संदेश—"मेरे पास पश्चाताप करने के बदले दण्ड देने की शक्ति विद्यमान है," तथा प्राचीन ग्रीक इतिहासज्ञ एरियन के इस वक्तव्य से—"न्याय-परायणता की नीति ने किसी भी भारतीय राजा (अशोक) को अपनी सीमा के बाहर आक्रमण या अधिकार करने से रोक रखा था,' ऊपर के कथन की पूर्ण पुष्टि होती है। इसलिये यदि हम अशोक को ही, उनके अहिंसात्मक नीति के प्रचार करने के कारण, मौर्य साम्राज्य के पतन का उत्तरदायी ठहरावें तो यह उनके प्रति अन्याय होगा। केवल सैन्य शक्ति से ही साम्राज्य या राज्य की रक्षा सम्भव नहीं। यदि ऐसा ही होता तो अलाउद्दीन खिलजी, औरङ्गजेब, नेपोलियन और हिटलर के साम्राज्यों का विशाल सैन्य शक्ति का अभ्यास करते रहने पर भी, उनके मृत्यु के तुरत बाद या जीवन काल में क्यों पतन हो गया ?

इसका प्रधान कारण कहीं दूसरी ही जगह मिल सकता है। अशोक के उत्तराधिकारियों की योग्यता और अयोग्यता के साथ-साथ विशाल साम्राज्य के केन्द्रीय शक्ति के लिये वादविवाद एवं झगड़ा होने के फलस्वरूप तथा केन्द्रीय शक्ति की कमजोरी से लाभ उठाकर विभिन्न प्रान्तीय शासकों तथा केन्द्र के मंत्रियों तक ने विद्रोह कर दिया। इसी संकटमय परिस्थिति में ग्रीकों की चढ़ाई, इसके अधःपतन के लिये आखिरी आघात सिद्ध हुआ।

यदि अशोक के ऊपर कोई उत्तरदायित्व दिया जा सकता है तो यही कि सम्राट् अपना कोई योग्य उत्तराधिकारी नहीं छोड़ सके। और अशोक चक्र के साथ तिरंगे राष्ट्रिय ध्वज को नमस्कार करते समय हम उनके 'सिंह' को राष्ट्रिय-चिह्न मानकर आदर करते हैं। साथही साथ हमें इतिहास के उस विशेष काल से (अशोक की मृत्यु के बाद भारत की दुर्दशा) शिक्षा लेकर पूर्ण विवेक तथा बुद्धिमानी और दूरदर्शिता के साथ आगे बढ़ना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

चाहिए ताकि उन घटनाओं की पुनरावृत्ति हमारे जीवन में फिर कभी न हो। हम लोगों को अशोक कालीन भारत की स्थापना करने की चेष्टा करनी चाहिए। उनके विचारों और कार्य-पद्धति को अपनाकर हमें मानवमात्र के भौतिक और आध्यात्मिक कष्ट को दूरने का प्रयास करना चाहिए।

शील

श्री चंद्रिकाप्रसाद

बौद्ध धर्म का आरम्भ शील से होता है। शील का अर्थ है सदाचार या संयम। बौद्ध धर्म में किसी जाति, कुल या वर्ण विशेष में जन्म लेने से छोटाई-बड़ाई या नीचता-उच्चता नहीं होती; वरन् शील या सदाचार के नियमों के पालन-प्रतिज्ञा में न्यूनाधिकता के तारतम्य से बड़ाई-छोटाई मानी जाती है। बौद्ध धर्म में प्रवेश करते ही उपासक को पंच शीलों के ग्रहण की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है; साधारण उपासक जब और आगे बढ़ता है तो उसे पांच के स्थान पर अष्टशीलों के ग्रहण की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है; इसी प्रकार और आगे बढ़ने पर दशशील, तथा भिक्षुओं को २२७ शीलों के ग्रहण व पालन की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है।

अहिंसा, सत्य, चोरी-त्याग, नशात्याग, व्यभिचार-त्याग—ये पंचशील है। त्रिशरण, अर्थात् बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लेते ही प्रतिज्ञा करनी पड़ती है—मैं हिंसा न करूंगा, झूठ न बोलूँगा, चोरी न करूंगा, नशा सेवन न करूंगा, और व्यभिचार न करूंगा। अष्टशील ग्रहण करने पर अहिंसा, सत्य, चोरी-त्याग, नशा-त्याग ये चार शील तो पहले वाले रहते हैं, और व्यभिचार न करने के स्थान पर 'ब्रह्मचर्य पालन' आ जाता है। तब अपनी निजी स्त्री से भी संभोग त्याग करना पड़ता है। इनके अतिरिक्त विकाल-भोजन-त्याग, नाच-गाना बजाना, मेला-तमाशा, गंधलेपन, आभूषण-धारण-श्रृङ्गार त्याग तथा ऊंची गुलगुली, बहुत तकियेदार विलासिता बढ़ानेवाली शय्या और आसन के त्याग की भी प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। इसी प्रकार दश शील शील में संयम के नियम क्रमशः और बढ़ते जाते हैं, और भिक्षु-जीवन में शीलों की संख्या २२७ हो जाती है।

बुद्ध के धर्म के तीन स्कंध हैं—शील, समाधि और प्रज्ञा। शील के बाद समाधि अर्थात् भावना और ध्यान है, ध्यान और समाधि द्वारा चित्त के एकाग्र होने पर प्रज्ञा प्रस्फुटित होती है। वस्तुतः समाधि और प्रज्ञा का अन्योन्याश्रय संबंध है, क्योंकि चित्त के स्थिर और एकाग्र होने पर ही प्रज्ञा उत्पन्न होती है और मनुष्य के प्रज्ञावान् होने पर उसका चित्त स्थिर हो जाता है। इसीलिए ऐसे पुरुष को 'स्थित-प्रज्ञ' कहा जाता है। ये स्थित-प्रज्ञ पुरुष ही अर्हंत, संत, तथागत, जिन व बुद्ध पद लाभ करते हैं।

समाधि और प्रज्ञा के मार्ग पर अग्रसर होने की पहली सीढ़ी 'शील' है। क्योंकि शील और भावना अर्थात् ध्यान-समाधि द्वारा ही प्रज्ञा का विकास होता है। इतना ही नहीं, मानव-जीवन और मानव-समाज को सुसंकृत एवं सुखी बनाने के लिए भी शील अत्यंत आवश्यक है। क्योंकि समाधि और प्रज्ञा के बिना मानव-जीवन संभव भी हो सकता है, किन्तु शील के बिना तो जीवन ही संभव नहीं। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि बौद्ध धर्म का परम आधार आचरण और चित्त की शुद्धि है। इसीलिए वह "विशुद्धि-मार्ग" कहलाता है।

महात्मा गांधी का लक्ष्य भी 'आत्मशुद्धि' था। अहिंसा, सत्य, नशा-निषेध, अस्पृश्यतानिवारण, स्वनिर्मित खादी-परिधान तथा अपने मल को स्वयं साफ करने का उनका आदेश आत्मशुद्धि के निमित्त था। राष्ट्रपिता की दलील थी, सेवा-कर्म को नीच समझ कर सेवक को स्पृश्य व नीच समझने का मलिन संस्कार जो हमारे भीतर जम गया है, उसे उपर्युक्त कार्यों द्वारा निवारण करके 'आत्मशुद्धि' करना प्रत्येक देशभक्त का प्राथमिक कर्तव्य है। अतएव वह अपने आंदोलन को 'आत्मशुद्धि का आंदोलन'

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कहते थे, 'अछूतोद्धार' व 'दलितोद्धार'-जैसे अहंकार-गर्भित शब्दों का वह कभी प्रयोग न करते थे। यह 'आत्मशुद्धि' राष्ट्रपिता को भगवान् 'बुद्ध' की अमर शिक्षाओं से प्राप्त हुई थी।

विशुद्धि-मार्ग में कहा है, असली शुद्धि शील-पालन से होती है, प्राणियों के असली मल को शील-रूपी जल से ही धोया जा सकता है; उसे गंगा, यमुना, सरयू, सरस्वती, अचिरवती, नर्मदा एवं महानदी का जल नहीं धो सकता। जिसमें विशाल तृष्णा और आकांक्षा रूपी मल भरा है, वह चाहे नंगा रहे, चाहे, जटा बढ़ाये, चाहे कीचड़ लपेटे, चाहे उपवास करे, चाहे भूमिशयन करे, चाहे भस्म लपेटे, चाहे उकड़ूं बैठे, चाहे कैसे ही क्रिया विशेष-बहुल कर्म करे, पर उसकी शुद्धि नहीं होती। किन्तु जो शील-संपन्न है, उसे निन्दा-प्रशंसा की परवाह नहीं होती, उसे यश और आनन्द स्वतः मिलता है, क्योंकि शील गुणों का मूल और दोषों का बल क्षीण करनेवाला है। यह शील का महात्म्य है।

वैर का मूल दुःशीलता है; वैराग्नि का शमन शील से होता है। उत्तम शील अत्यंत शीतल होता है। प्राणियों के जिस ताप को वह शांत करता है, उसे ठंढी हवा, हरिचन्दन, हार, मणि और चंद्रमा की किरणें भी शांत नहीं कर सकतीं।

पूजा, पाठ, वंदना, भजन, कीर्तन, दान, पर्वोत्सव, तीर्थयात्रा, योग और तप का संबंध शील से है। यदि शील है तो ये सब क्रियाएँ सार्थक हैं; अन्यथा सब व्यर्थ और ढोंग मात्र। उनका वास्तविक मूल्य नहीं के बराबर है। भगवान् बुद्ध ने यहां तक कहा है—

सेय्यो अयोगुलोभुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो;
यं चे भुंजेय्य दुस्सीलो रट्ठपिंडं असञ्ञतो।

अर्थ—दुःशील और असंयमी होकर राष्ट्र का अन्न खाने से आग की लपट के समान तपे हुए लोहे के गोले को खा लेना अच्छा है।

एक बार पाटलि ग्राम के गृहस्थों को उपदेश करते हुए भगवान् बुद्ध ने शील-पालन के पांच महालाभ बताये थेः—

१. शीलवान पाप-विषय में अलिप्त और अप्रमादी हो जब अपने कर्तव्य का पालन करता है, तो उसे अपार भोग-वस्तुओं की प्राप्ति होती है।

२. शीलवान का सुयश सब ओर फैल जाता है।

३. शीलवान जिस सभा में जाता है, निर्भय रहता है। उसे किसी का भय नहीं होता।

४. शीलवान का मरते समय होश कायम रहता है।

५. शीलवान पुरुष देह त्याग करने पर स्वर्गलोक को जाता है।

और, हमारे राष्ट्रपिता ने भी इन्हीं से प्रभावित प्रतिज्ञा-बद्ध होकर घोषणा की, "तुम मेरे बताये शीलों का पालन करो, मैं तुम्हें एक साल में स्वराज्य दिला दूंगा। यदि न दिला सका, तो हिमालय में जाकर गल जाऊँगा।" और उनके मार्ग पर चलकर देश ने न केवल स्वाधीनता प्राप्त की, वरन् समस्त संसार में एक महत्वपूर्ण सम्मान का स्थान लाभ किया। आज उसी शील में ढील होने से हमारी स्वाधीनता हिल रही है—खतरे में है। अस्तु।

शील के भौतिक लाभ को युगपुरुष गांधी ने प्रत्यक्ष दिखा दिया; पर शील का मुख्य लाभ वह आध्यात्मिकता है, जिस पर हमें नाज़ और गर्व है। वस्तुतः शीलवान को ही आत्मस्थिरता एवं आत्मशक्ति लाभ होती है, दुःशील को नहीं। क्योंकि शील समस्त धर्मों का मूलधन और मूल संबल है। इतिहास-प्रसिद्ध ग्रीक राजा 'मिनान्डर' को धर्मोपदेश करते हुए स्थविर नागसेन ने शील के संबंध में कहा थाः—

"शील समस्त धर्मों का आधार है। शील की भूमि पर ही इंद्रिय, बल, संबोधि, अष्टांगमार्ग, स्मृति, विशुद्ध, ऋद्धि, ध्यान, समाधि, प्रज्ञा और निर्वाण की साधना हो सकती है। शील के आधार पर खड़ा धर्म कभी डिगता नहीं।"

'जिस प्रकार जीवधारी और पौधे पृथ्वी के आधार पर जन्मते और बढ़ते हैं, ऐसे ही योगिजन शील के आधार पर दृढ़ हो श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा की भावना करते हैं।"

"जिस प्रकार नगर-निर्माता नगर बसाने से पूर्व झाड़ी और कांटों को दूर कर भूमि को समतल करा, साफ-सुथरा करा लेते हैं, तब उस पर सड़कों और चौराहों का नक्शा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

खींचकर नगर बसाते हैं, उसी भाँति योगी शील के आधार पर दृढ़ हो श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, और प्रज्ञा की भावना करते हैं।''

''शील पृथ्वी की भांति साधनाओं का आधार, मंगल और अभिवृद्धि का मूल, मोक्ष का उत्तम मार्ग तथा सभी बुद्धों के शासन का सुख है।''

लाहुल में बौद्ध संस्कृति

लाम अङ्गरूप केलाङ्ग

लाहुल जिला कांगड़े का एक छोटा पहाड़ी प्रदेश है। यहाँ की जनसंख्या लगभग बारह हजार है। इस प्रदेश में प्रायः दो ही धर्म के मानने वाले निवास करते हैं— बौद्ध एवं हिन्दू। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि बौद्धों में राजपूत और हिन्दुओं में ब्राह्मण सम्मिलित हैं। राजपूत बौद्ध धर्मावलम्बी हैं तथा ब्राह्मण हिन्दू-धर्मावलम्बी।

तिब्बत का एक बौद्ध विहार

लाहुल के लोगों की बौद्ध धर्म में अचल श्रद्धा है। महाराज अशोक के समय जिन महाप्रतापी धर्मदूतों ने यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार किया, वह आज भी लाहुल वासियों के नस-नस में व्याप्त है, किन्तु सत्रहवीं शताब्दी में हुए हब्शियों के आक्रमण से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक लाहुल में बौद्ध धर्म का कुछ ह्रास-सा रहा। बौद्ध लोग भी विहारों में हिन्दू देवी-देवताओं की प्रतिमायें रखने लगे थे और उनकी पूजा तथागत के साथ-साथ होती थी। इस प्रकार के विहार लाहुल में आज भी हैं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जिनमें वज्रयान के वज्रवाराही की प्रतिमा और एक राक्षस की मूर्ति साथ साथ रखी जाती हैं। जहाँ हिन्दू और बौद्ध दोनों जाकर पूजा करते हैं तथा वर्ष में लगभग तीन सौ भेड़-बकरियों का बलिदान देते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में खम (=मंगोलिया के निकटवर्ती) प्रदेश के ऊटाकुशोक नामक एक अवतारी लामा भारत के बौद्ध तीर्थस्थानों की यात्रा करते हुए यहाँ पहुँचे। उन्होंने यहाँ पर बौद्ध धर्म के ह्रास को देखकर पुनः अपने प्रवचनों द्वारा जनता में नवीन स्फूर्ति लाया और धार्मिक नवचेतना का संचार कर दिया।

आजकल लाहुल प्रदेश के लामा लोग दो परम्परा के हैं। एक ल्हासा परम्परा के और दूसरे भूटान परम्परा के। अतः अध्ययनार्थ किसी को भूटान जाना पड़ता है तो किसी को ल्हासा। इन दोनों परम्पराओं में केवल पूजा-पाठ मात्र की विभिन्नता है, कास में दोनों की समानता है।

लाहुल के गाँव-गाँव में विहार बने हुए हैं। लामा लोग अपने मठों में रहकर ध्यान-भावना में लगे रहते हैं, वे धर्म-प्रचार की ओर विशेष ध्यान नहीं देते हैं। गृहस्थ प्रति मास दो या तीन बार इन्हें निमंत्रित कर अपने घर भोजन दान देते तथा पूजा-पाठ एवं परित्रसूत्र का पाठ कराते हैं। बहुधा लामा लोगों के माता-पिता, भाई-बन्धु आदि अपने सम्बन्धी ही भोजन देते हैं। जिन्हें ऐसे अपने सम्बन्धियों से भोजन प्राप्त नहीं होता है, वे भिक्षाटन करते हैं। भिक्षाटन भी सितम्बर मास में ही किया जाता है। अन्य समय भिक्षाटन करने की प्रथा नहीं है। लामा लोग इसी मास में घर-घर तथा गाँव-गाँव में जाकर भिक्षाटन करते हैं। यदि इस मास में राष्ट्रपति भी द्वार पर खड़ा हो तो उसकी बात न सुनकर सर्वप्रथम लामा को भिक्षा देने का नियम है। लामा अपने साल भर के भोजन के लिए भिक्षान्न संचय कर किसी गृहस्थ के घर रख देते हैं। चूँकि लाहुल में धान की फसल नहीं होती है, अतः भिक्षान्न में गेहूँ, जौ और काठु ही मिलता है। गृहस्थ इन्हें पीस कर मास-मास भर के लिए विहार (गुम्बा) में पहुँचाते रहते हैं। इस प्रकार लामा लोगों के शेष दिन भोजन आदि की झंझटों से रहित ध्यान भावना में व्यतीत होते हैं।

धर्म और अधर्म

श्री "जिज्ञासु"

एक बार भगवान् बुद्ध अपने भिक्षुसंघ के साथ कोसल-देश (घाघरा और सरयू के बीच के देश) में विचरण करते हुए ब्राह्मणों के शाला-ग्राम में पहुँचे। यह सुनकर कि भगवान् अर्हत हैं, शाला ग्राम-निवासी ब्राह्मण गृहस्थ जहां भगवान् थे वहां उनका दर्शन करने गये और कोई भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये, कोई भगवान् से कुशल-क्षेम पूछ एक ओर बैठ गये, कोई भगवान् की ओर हाथ जोड़ बैठ गये, कोई अपना नाम गोत्र सुनाकर बैठ गये तथा कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये।

इस प्रकार बैठे हुए उन ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान् से पूछा—"हे श्रमण गौतम ! किन कर्मों से मनुष्य सुगति प्राप्त करके स्वर्गलोक जाता है, और किन कर्मों से दुर्गति प्राप्त करके नरक में पड़ता है?"

भगवान् ने कहा—"गृहपतियो ! धर्माचरण से प्राणी सुगति को प्राप्त करके स्वर्गलोक जाता है और अधर्माचरण से दुर्गति प्राप्त करके नरक को।"

ब्राह्मणों ने कहा—"हे गौतम ! आपके इस संक्षिप्त भाषण का तात्पर्य हम नहीं समझ रहे हैं। कृपया विस्तार से विभाजन कीजिये, वे धर्माचरण क्या हैं और अधर्माचरण क्या हैं?"

"तो गृहपतियो ! सुनो। अच्छी तरह समझो। कहता हूँ।"

"अच्छा ! हम मन लगाकर सुन रहे हैं। कहिए।"

भगवान् ने कहना आरंभ किया—"गृहपतियो !

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कायिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकार का अधर्माचरण है और तीन प्रकार का धर्माचरण ।"

"गृहपतियो ! तीन प्रकार का कायिक अधर्माचरण होता है : (१) प्राणातिपात अर्थात् प्राणियों के प्रति निर्दयी होकर हिंसा करना, मार-काट करना, क्रूरता करना और पीड़ित करना ; (२) अदिन्नादान अथवा चोरी अर्थात् बिना दिये दूसरों का गांव या वन में रखा हुआ धन ले लेना; (३) मिथ्या कामाचार अर्थात् ऐसी स्त्री के साथ संभोग करना जो माता-पिता द्वारा रक्षित है, भगिनी-भाई द्वारा रक्षित है, जातिवालों द्वारा रक्षित है, गोत्रवालों द्वारा रक्षित है, जिस पर विवाह-माला पड़ चुकी है, जो पति द्वारा रक्षित है, धर्म द्वारा रक्षित है, जो रोग के कारण अभोग्य है, अवस्था के कारण अभोग्य है, काल के कारण अभोग्य है, और जो स्वभाव से अनुद्यत, अनुत्सुक एवं असंप्रहर्षित है । ये तीन प्रकार के कायिक अधर्माचरण हैं । गृहपतियो ! अधर्माचरण करनेवाला मनुष्य दुर्गति को प्राप्त होता और नरक में पड़ता है ।"

"गृहपतियो ! चार प्रकार का वाचिक अधर्माचरण होता है : (१) मृषावचन अर्थात् सभा में, संसद में, जाति के मध्य, राजदरबार में, साक्षी के समय झूठ बोलना —देखे हुए कहना कि मैंने नहीं देखा, जानते हुए कहना कि मैं नहीं जानता, न देखे हुए कहना कि मैंने देखा है, देखे हुए कहना कि मैंने नहीं देखा—अपने लिए, पराये लिए या थोड़े-से धन के लिए जान-बूझकर झूठ बोलना; (२) पिशुनवचन अर्थात् इनमें फूट डालने के लिए यहां सुनकर वहां कहना, उनमें फूट डालने के लिए वहां सुनकर यहां कहना, मेल-जोलवालों में फूट करना, फूटे हुए को और फोड़ना, वर्गवाद (पार्टीबाजी) में रत और आनंदित हो वर्गकरणी (पार्टीबंदीवाली) वाणी बोलना, अपने या अपने पक्षवालों के सदोष होते हुए निर्दोष कहना, दूसरों के निर्दोष होते हुए सदोष कहना; (३) परुष वचन अर्थात् तीक्ष्ण, कर्कश, दूसरों को कड़वी लगनेवाली, पीड़ित करनेवाली क्रोधपूर्ण एवं अशांति पैदा करनेवाली वाणी बोलना; (४) प्रलाप अर्थात् असमय की अतथ्य व अयथार्थ बात बोलना, अधर्म्य-अविनय्य-अनुद्देश्य-अतात्पर्य्य-असार-अनर्गल-अतिशय्य (डींग-सटांग, जीट-काफिया, गप्प-सप्प) वचन बोलना । ये चार प्रकार के वाचिक अधर्माचरण हैं । गृहपतियो ! वाचिक अधर्माचरण करनेवाला मनुष्य दुर्गति को प्राप्त होता और नरक में पड़ता है ।"

"गृहपतियो ! तीन प्रकार का मानसिक अधर्माचरण होता है : (१) लोभ अर्थात् दूसरों का धन, संपत्ति, सामान व कोई उत्तम वस्तु देखकर मन में लालच की भावना करना कि यह धन संपत्ति सामान वस्तु किसी प्रकार मेरा हो जाय; (२) क्रोध अर्थात् द्वेषपूर्ण चित्त से ऐसी भावनाएँ करना कि ये प्राणी मारे जायँ, ये दीन-दरिद्र और दास हो जाँय; (३) मिथ्या दृष्टि अर्थात् झूठी धारणाएँ जैसे रस्सी को साँप और साँप को रस्सी समझना, शाश्वतवाद या उच्छेदवाद में रत रहना अथवा दया, दान, योग, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म, कर्मविपाक-परमार्थ सबको ढोंग और मिथ्या मान लेना । इत्यादि । ये तीन प्रकार के मानसिक अधर्माचरण हैं । गृहपतियो ! मानसिक ! अधर्माचरण करनेवाला दुर्गति को प्राप्त होता और नरक में पड़ता है ।"

"गृहपतियो ! इसी भांति कायिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकार का धर्माचरण या समाचरण भी होता है । सो सुनो ।"

"कायिक धर्माचरण तीन प्रकार का होता है : (१) प्राणातिपात से विरत अर्थात् अहिंसाव्रती हो निःशस्त्र होना तथा दयालु, लज्जालु, सारे प्राणियों का हितैषी एवं अनुकंपा-युक्त हो विहरना; (२) अदिन्नादान से विरत अर्थात् चोरी का त्यागकर स्वेच्छा से दिये बिना किसी की कोई वस्तु न लेना; (३) मिथ्या कामाचार से विरत होना अर्थात् रक्षित, वर्जित, अनुपयुक्त, असमुद्यत स्त्रियों के साथ अवैध कामाचार नहीं करना । ये तीन प्रकार के कायिक धर्माचरण हैं । गृहपतियो ! कायिक धर्माचरण करनेवाला मनुष्य सुगति को प्राप्त हो स्वर्गलोक जाता है ।"

"गृहपतियो ! चार प्रकार का वाचिक धर्माचरण होता है : (१) मृषावाद से विरत होना अर्थात् सभा में, संसद में, परिषद में, जाति के मध्य, पंचायत के मध्य, राजदरबार में, साक्षी के समय, अपने लिए, पराये लिए या थोड़े धन के लिए जान-बूझकर झूठ नहीं बोलना; (२) पिशुनवचन से विरत होना अर्थात् चुगली, निंदा नहीं

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करना, फूट डालने के लिए इधर की उधर और उधर की इधर नहीं लगाना, वर्गीकरण (पार्टीबंदी) वाली वाणी नहीं बोलना तथा मेल में रत और मेल में आनंदित हो मेल-करणी वाणी बोलना; (३) परुष वचन से विरत हो उद्वेग-रहित, कर्णसुखद, प्रेमणीय, हृदयंगम, सभ्य, बहुजनकांता (लोकप्रिय) वाणी बोलना; (४) प्रलापवचन से विरत होना अर्थात् सदा तथ्य, यथार्थ, सारवती, मित, निरतिशय्य (डींग-रहित), धर्मयुक्त, वाणी बोलना। ये चार प्रकार के वाचिक धर्माचरण हैं। गृहपतियो! वाचिक धर्माचरण करनेवाला मनुष्य सुगति को प्राप्त हो स्वर्गलोक जाता है।"

"गृहपतियो! तीन प्रकार का मानसिक धर्माचरण होता है: (१) लोभ-रहित होना अर्थात् दूसरों का धन, संपत्ति, वैभव देखकर मन में लालच नहीं करना; (२) क्रोधरहित होना अर्थात् मन को सदा द्वेष और वैर-विरोध-भाव से विमुक्त रखकर सब सुखी हों, सब निरुज हों, सब का क्षेम हो, किसी को कोई दुःख न हो, ऐसी भावना रखना; (३) सम्यक्‌दर्शी अर्थात् ठीक धारणावाला होना। ये तीन प्रकार के मानसिक धर्माचरण हैं। गृहपतियो! मानलिक धर्माचरण करनेवाला मनुष्य सुगति को प्राप्त हो स्वर्गलोक को जाता है।"

"गृहपतियो! इस प्रकार धर्माचरण करनेवाला, शील-संपन्न, सम्यक्‌चरित्र मनुष्य यदि इच्छा करे कि अहो! मैं काया छोड़ मरने के बाद देवताओं में उत्पन्न होऊँ अथवा इसी जन्म में आश्रवों (मलों) से रहित हो चित्त की विशुद्धि और प्रज्ञा का लाभ कर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, संबुद्ध हो विहरूँ, तो यह संभव है, ऐसा हो सकता है।"

यह पवित्र उपदेश सुन शाला-निवासी ब्राह्मण गृहस्थ पुलकित व संप्रहर्षित हो बोले—"आश्चर्य हे गौतम! आश्चर्य हे गौतम! जैसे कोई औंधे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे, भूले को राह दिखा दे, अंधकार में प्रदीप जला दे, ऐसे ही, श्रमण गौतम! आपने यथार्थ धर्म को प्रकाशित किया है। हम सब बुद्ध की शरण जाते हैं, धर्म की शरण जाते हैं, संघ की शरण जाते हैं। आज से आप, गौतम! हमें अंजलिबद्ध उपासक' स्वीकार कीजिए।

बौद्धयुग का शिल्प-वाणिज्य

श्रीअनन्त

प्राचीन भारत के शिल्प वाणिज्य का धारावाही वृत्तान्त नहीं मिलता। भारत के अधिकांश प्राचीन ग्रन्थों में धर्म, नीति, साहित्य आदि विषय और उपाख्यान मिलते हैं। उपाख्यानों में कहीं-कहीं किसी-किसी शिल्प-वाणिज्य का उल्लेख भी देख पड़ता है। उससे यह मालूम पड़ता है कि इस देश के लोग शिल्प-वाणिज्य से अपरिचित नहीं थे। यहाँ अनेक प्रकार के शिल्प प्रचलित थे और उनमें शिल्पियों ने असाधारण उन्नति भी की थी। किन्तु कब किस शिल्प का आविष्कार या सूत्रपात हुआ अथवा किस तरह उसका प्रचार और प्रसार हुआ, इसके जानने का कोई उपाय नहीं है। प्रोफेसर जिम्मर (Zimmor) पेकिन, डाक्टर फ्रिक आदि पाश्चात्य पंडितों ने भारतीय वेद, रामायण, महाभारत और जातक आदि ग्रन्थों की आलोचना के प्रसंग में अवश्य भारत के प्राचीन शिल्प-वाणिज्य की अवस्था पर थोड़ा बहुत प्रकाश डाला है। इन सब विदेशी विद्वानों की रचनाओं और अन्य कई प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ने से ऐसा अनुमान होता है कि उस समय के अधिकांश लोग धर्म-कर्म में ही जीवन का अधिक हिस्सा लगा देते थे; धन प्राप्त करने के मार्ग ढूँढ़ने की ओर अधिक ध्यान नहीं देते थे। जातक ग्रन्थों में १८ प्रकार के शिल्पियों का उल्लेख है, पर उनके नाम नहीं दिये हैं। बहुतों की राय में शिल्पी निम्नलिखित थे—

१. **काष्ठव्यवसायी**—ये वर्तमानकाल के साधारण बढ़इयों के समान नहीं थे। ये बड़े-बड़े महल, जहाज

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और तरह-तरह के यान इत्यादि की लकड़ी लाते और बनाते थे।

२. कर्मकार या लोहार—ये लोहे की सब चीजें, सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, हल, कुल्हाड़ी, छुरी, कैंची, उस्तरे आदि बनाते थे। सोने-चाँदी का सामान भी ये बनाते थे।

३. पत्थर के कारीगर—ये पत्थर के अनेक प्रकार के महीन काम करते थे। साँची के स्तूप आदि में इनकी कारीगरी आज भी देखी जा सकती है।

४. तन्तुवाय या जुलाहे—ये केवल साधारण पहनने के वस्त्र ही नहीं बनाते थे। विदेशों में भेजने के लिये सुन्दर मूल्यवान मसलिन और रेशमी वस्त्र, कम्बल, गलीचा, धुस्सा, टसर, बिछौने की चादर और शाल-दुशाले भी ये बनाते थे।

५. चर्मकार—ये अनेक प्रकार के जूते और जाड़ों में पहनने के लिये एक प्रकार की काष्ठपादुकाएँ भी बनाते थे। राजा-रईस लोगों के लिए सोने-चाँदी के काम से अलंकृत रत्नजटित जूते, पादुका आदि भी बनाते थे।

६. कुंभकार—साधारण व्यवहार के उपयोगी अनेक प्रकार के मिट्टी के पात्र और खिलौने ये बनाते थे। कभी-कभी ये अपनी चीजों को लेकर फेरी भी लगाते थे।

७. हाथी-दाँत के कारीगर—ये हाथी-दाँत की तरह-तरह की सामग्री बनाते थे, जिसके लिए भारत आज भी प्रसिद्ध है। कीमती हाथी दाँत पर खुदाई और जड़ाई का काम भी इन्हीं लोगों का आविष्कार था।

८. रंगरेज—ये तरह-तरह के रंगों से कपड़े रंगते थे।

९. जौहरी—इनके हाथ के बने अनेक प्रकार के रत्नालंकार लोगों को आश्चर्य में डाल देते थे।

१०. मछुए—ये नदीमें मछलियाँ पकड़ते और बेचते थे। समुद्र में मछली पकड़नेका कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

११. कसाई—ये मांस बेचते थे।

१२. शिकारी - ये जंगल में अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओं का शिकार करते और कन्द-मूल फल आदि भी लाते थे। मृगों के बच्चे पकड़ लाकर शहर में दिखाते फिरते थे और ग्राहक मिलने पर बेच भी डालते थे। यह प्राचीनकालका एक प्रयोजनीय धंधा था। योजनों तक फैला हुआ जंगल सबके लिए खुला था। कोई रोक-टोक नहीं थी। कसाईखाने के लिए पशु पकड़कर पालने की रीति नहीं थी। वनमें उत्पन्न अनेक प्रकार के लोम, पशम, हड्डी, हाथीदाँत आदि वस्तुओं का अत्यन्त आदर था। प्राचीनकाल में भिन्न-भिन्न वर्णों अथवा जातियों का अलग-अलग रोजगार धन्धा निर्दिष्ट रहने के कारण शिकारीके सिवा और कोई जाति अगर वह धन्धा अपनाती थी तो लोकसमाजमें उसकी निन्दा होती थी। पीढ़ी दर पीढ़ी के जो शिकारी होते थे, उन्हें उत्साहित किया जाता था। हाँ, राजा-महाराजा अवश्य शौकिया शिकार करते थे।

१३. पाचक और हलवाई—इनकी संख्या बहुत अधिक थी। सम्भवतः इनका संघ (Guild) था।

१४. नाई और भृत्यश्रेणी—चम्पी और मालिश करनेवालों का भी एक संघ था। वहाँ इस श्रेणी के बहुत से लोग जमा रहते थे। ये सुगन्ध पदार्थ भी बेचते थे। इस प्रकारके लोग आज भी नदी-तट पर देख पड़ते हैं।

१५. माली—ये फूल और माला बेचते थे।

१६. नाविक—ये बड़ी नदी या सागर में नाव और जहाज चलाते थे। किसी-किसी प्राचीन ग्रन्थ में समुद्र-यात्रा का भी उल्लेख मिलता है। जाड़ों में समुद्र की यात्रा एक तरह से बन्द रहती थी। जातक आदि ग्रन्थों में तो समुद्रयात्रा का बहुत उल्लेख है। ईसा की तीसरी शताब्दी में काशी के नीचे बहनेवाली गंगा से भारतसागर के उस पार और बर्मा के दूसरे तट तक जलयात्राका वर्णन मिलता है। इस समय में कैपकूमोरिन घूमकर मरुकंका (वर्तमान ब्रोच) जाने-आने का मार्ग भी भारतीय नाविक जानते थे।

१७. डलिया, मोढ़ा आदि बेंत और बाँस की बुनाई का काम करने वाले।

१८. चित्रकार—ये धनाढ्य लोगों के घरों को चित्रित करते थे। फ्रेस्को नामक चित्रविशेष के चित्रण में भी ये सुदक्ष थे। मगध और कोशल राज्य के प्रमोद-काननों में इस प्रकार के चित्र बहुतायत से देखे जाते थे। ये फ्रेस्को चित्र सातवीं-आठवीं शताब्दी के सिगूरी पहाड़

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के ऊपर बने हुए फ्रेस्को चित्रों के अनुरूप नहीं थे। ये उनसे भी प्राचीन ढंग के थे।

इन शिल्पियों और व्यवसायिकों के अतिरिक्त बहुत से लोग खेती का काम करते थे। ये यूरोप के माध्यमिक संघ के अनुरूप अवश्य नहीं थे, किन्तु उनकी अधिकांश श्रेणियों के संघ थे। प्रयोजन के समय देश का राजा इन संघों से लोग लेता था। विभिन्न संघों के मुखिया लोग अत्यन्त प्रतिष्ठित, धनाढ्य और राजा के प्रिय पात्र होते थे। हर एक संघ अपने मेम्बरों के निजी या पारिवारिक झगड़ों का खुद निपटारा कर लेता था। लेकिन अगर दो विभिन्न संघों में कोई झगड़ा उठ खड़ा होता था तो उसका फैसला महाश्रेष्ठी करता था।

भिक्षु मैत्तेय्य का आदर्शमय जीवन

भिक्षु धर्मालोक

आधुनिक युग में स्वर्गीय भिक्षु मैत्तेय्य जैसे व्यक्तियों का होना प्रायः दुर्लभ है। उनके जैसे गुणवान, शीलवान तथा अपने सार्थक नाम से दर्शित, मैत्री से पूर्ण व्यक्ति को पाना असम्भव-सा है। वे सचमुच ही भाग्यवान हैं, जिन्होंने उनका दर्शन किया है। जो उनके सम्पर्क में आये थे उनका फिर क्या कहना? बाल्यावस्था से ही उन का झुकाव धार्मिक प्रवृत्ति की ओर था। जो कुछ भी उन्होंने किया, वह धर्म से प्रभावित होकर ही किया। वे आदि से लेकर अन्त तक जिस एक मार्ग को अपनाये, उस पर अविचलित रूप से चले। उनके सम्पर्क में न आये, उनके महत्त्व को समझना कठिन है, क्योंकि उनके जीवन को सुनकर—जो अब एक कहानी मात्र है, यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि ऐसे लोगों का जन्म इस युग में हो सकता है। लेकिन भिक्षु मैत्तेय्य ने इस धारणा को गलत सिद्ध कर दिया। उनकी हर एक क्रिया, हर एक बात से यह परिलक्षित था कि वे असाधारण व्यक्तियों की गणना में थे। आजकल का विश्व ऐसा विषम हो गया है कि उसमें रहने वाले लोग भी विषमता से परे नहीं हो सकते। जिस तरह के वातावरण में हम पाले जाते हैं, हमारा व्यवहार भी उसी तरह का हो जाता है। जो कोई इससे पृथक् होकर कीचड़ में उत्पन्न हुए कमल के समान स्वच्छ तथा सुन्दर हो सकता है, उसकी गणना असाधारण व्यक्तियों की संख्या में की जाय तो उसमें कोई भूल नहीं है। निस्सन्देह हम भिक्षु मैत्तेय्य को उसी संख्या में रख सकते हैं।

भिक्षु मैत्तेय्य का जन्म सन् १९१० में दक्षिण लंका के पम्बुरन नाम के ग्राम में हुआ था। उनका पहला नाम चार्लस अभयगुणरत्न था। विद्याध्ययन के लिए उन्हें सेन्ट थोमस विद्यालय में भरती किया गया। पढ़ने में वे सबसे तेज थे। उस विद्यालय के सबसे बड़े "डेनईम पारितोषिक" को भी उन्होंने जीत लिया और एस. एस. सी. परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो गये। उस बीच लिखी गयी उनकी एक रचना के अन्त में यह इच्छा प्रकट की गई थी कि "इसी जन्म में ही लेखक बनकर विश्व का कल्याण करने के लिए मुझे शक्ति प्राप्त हो"। यह देखकर विद्यालयाध्यक्ष ने खुशी के मारे अन्य सब विद्यार्थियों को भी बुलाया और उस रचना को उनके सम्मुख पढ़कर सुनाया। इसकी स्मृति में विद्यालय में छुट्टी भी घोषित कर दी गई। उस रचना के लिए जो पारितोषिक मिला उसे उन्होंने विद्यालय को ही भेंट कर दिया। उन दिनों 'लाइट आफ एशिया' नामक पुस्तक को भी वे बड़े चाव से पढ़ते थे। जैसी उन्होंने इच्छा प्रकट की थी, लेखन-कला को ही पीछे उन्होंने अपनाया।

उन दिनों "सिलुमिण" साप्ताहिक के लिए एक सहायक सम्पादक की आवश्यकता थी और इस आशय का एक विज्ञापन उनको देखने को मिला। सन् १९३० के फरवरी महीने में वह "सिलुमिण" साप्ताहिक कार्यालय में भरती हो गये और वहाँ के कार्य में लग गये। अधिकारी लोग भी उनसे बड़े प्रभावित हुए।

वेतन मात्र के लिए ही काम करना उनका स्वभाव न

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

था। लेखनी से जनता की सेवा करना उनका मुख्य ध्येय था। अपनी मातृभाषा, सिंहली एवं अंग्रेजी

लौरियानन्दनगढ़ का अशोक-स्तम्भ

पर उनका समान रूप से अधिकार था। लेख लिखना उनके लिए बड़ा ही सहज काम था।

इसी बीच लंका के बड़े प्रभावशाली एवं विद्वान् पेलैन वज्रयान नामक महास्थाविर के सम्पर्क में आने के लिए तरुण अभयगुणरत्न को शुभावसर प्राप्त हुआ। जब कभी वे छुट्टी पाते थे, उनके पास जाकर धर्मसम्बन्धी चर्चा करते थे। जो शिक्षा उन्होंने वहाँ पाई थी, उसका लाभ उन्होंने अंत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तक उठाया । इसके फलस्वरूप उनका जीवन-उद्देश्य बदलता गया ।

"लेक हाउस" के एक संवाददाता की हैसियत से जो ख्याति उन्होंने प्राप्त की, वह अद्वितीय है । भारत की एक उच्चकोटि की लेखिका, श्रीमती कमलादेवी इनसे बड़ी ही प्रभावित हुई थीं । भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू भी इनसे बड़े प्रभावित हुए थे और उन्होंने कहा था कि वे थे उनके देखे हुए विश्व के सबसे कम उम्र के संवाददाता । अभयगुणरत्न का स्वभाव बड़ा ही सरल था और उतना ही वे विनीत भी थे ।

"सिलुमिण" का सबसे जनप्रिय स्तम्भ था 'सीया की चिट्ठी' जो इनकी कलम से लिखा जाता था । बालक इसे बड़े चाव से पढ़ते थे और वे बड़ी उत्सुकता से रविवार की प्रतीक्षा में रहते थे ।

इसी तरह कुछ समय तक इनकी "चिट्ठी" "सिलुमिण" के पत्रों को अलंकृत करती रही, जिनके कारण साप्ताहिक की ख्याति दिन-प्रति-दिन बढ़ती गई । किन्तु उनके मन का झुकाव दूसरी ओर था । इसी बीच पूज्य वज्रज्ञान महास्थविर से दीक्षा ग्रहण करने के लिए कई एक असफल प्रयत्न भी किये । किन्तु वे उससे हताश नहीं हुए । उनकी अन्तिम "चिट्ठी" सन् १९३४ की पहली जुलाई को प्रकाशित हुई थी । जिसमें संसार को त्यागकर जनता के कल्याण के लिए विचरण करने की महिमा दर्शायी गयी थी । यह था साप्ताहिक पत्र द्वारा दिया गया उनका अन्तिम सन्देश !

इसके अतिरिक्त "अभयराज" "सिंहमामा" "कमलका" आदि उपनामों से भी वे लेख लिखते थे जो उसी तरह जनप्रिय तथा रसभरे थे । 'डेलि न्यूज़', अंग्रेजी दैनिक का अग्रलेख भी वे लिखते थे और उस दैनिक के "ब्लू पेज" नामक स्तम्भ के लेखक "नेसटलटन" भी यह अभयगुणरत्न ही थे ।

"दिनमिण" नामक सिंहली दैनिक लंका का सर्वश्रेष्ठ पत्र है । बुद्ध जयन्ती के अवसर पर विशेषांक निकालना अन्य पत्रों की भाँति इसकी भी विशेषता है । किन्तु इसका प्रारम्भ अभयगुणरत्न द्वारा ही हुआ । प्रथम अंक इतने सुन्दर ढंग से निकला कि बहुत से लोगों ने दैनिक के मालिक को अनेक बधाई के पत्र भेजे ।

यद्यपि वे गृहस्थ-वेश में रहते थे किन्तु उनकी रहन-सहन एक भिक्षु-तुल्य थी । इसलिए लोग उनको गृहस्थ वेष धारण किये हुए भिक्षु ही कहते थे । सन् १९३२ से रात्रि-भोजन भी सदा के लिए छोड़ दिये ।

'दिनमिण' समुदाय की पत्रिकाओं के अधिकारी चाहते थे कि अभयगुणरत्न उस दैनिक के प्रधान सम्पादक हो जायँ, किन्तु उन्होंने उस पदवी को अस्वीकार किया और चाहा कि किसी अन्य योग्य व्यक्ति को वह सौंपा जाय । वेतन पाते ही धनुषकोटि तक के लिए गाड़ी-भारा अपने साथ लेकर उन्होंने भारत की ओर प्रस्थान किया । जब वह धनुषकोटि पहुँचे तो उनके पास केवल दो सेंट बचे थे जो वहाँ के एक याचक को दान कर दिये । तत्पश्चात्, गेरुआ वस्त्र धारण कर उत्तरी भारत की ओर पैदल ही चल पड़े ।

अब वे सन्यासी के वेष में थे । मिट्टी का पात्र लिये भिक्षा करते हुए, आगे बढ़े । कभी भोजन मिलता था और कभी नहीं । इस प्रकार वे ३०० मील पैदल ही चले । रेल विभाग के एक कर्मचारी ने जहाँ वे जाना चाहते थे वहाँ तक पहुँचाने के लिए अपनी इच्छा प्रकट की, किन्तु बिना किराया दिये रेल में सफर करना नीति-विरोधी है, यह कहकर उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिये ।

माता-पिता से आज्ञा बिना लिए कोई बौद्ध भिक्षु नहीं बन सकता, इसलिए उन्हें अपनी माता से आज्ञा लेना अनिवार्य था । अन्य उपाय न देखकर अन्त में माता को अपने पुत्र की माँग को मान लेना पड़ा । आज्ञा माँगकर जो पत्र उन्होंने अपनी माता को लिखा था, वह इस प्रकार है–'मेरा प्रव्रज्या ग्रहण करना बन्धु, मित्र, पड़ोसी, देशवासी सबके लिए हितकर होगा । यदि प्रव्रज्या नहीं मिलती तो निश्चय ही मरण होगा ।' इस तरह के पत्र देखकर किसका हृदय पिघल न उठता ! आखिर उनकी जीत हुई । आज्ञा पाकर प्रव्रज्या पाने के लिए बर्मा की ओर चल पड़े ।

बर्मा में अक्याब तक गये, और वहाँ प्रव्रज्या तथा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उपसम्पदा भी ग्रहण किये। अब वे पञ्ञा मेत्तेय्य के नाम से पुकारे जाने लगे। कुछ समय तक ध्यान भावना करते हुए अक्याब में ही रहे। तत्पश्चात् फिर भारत लौट आये।

कुछ समय के लिए सारनाथ उनका केन्द्र बना। इन पंक्तियों के लेखक को भी उनसे परिचय करने का शुभ अवसर वहाँ मिला था। यदि छपी हुई बातों को पढ़ने मात्र से उनका परिचय हुआ होता तो इन पंक्तियों को लिखने के लिए शायद ही प्रोत्साहन मिलता। जो कोई भी उनके सम्पर्क में आते, उनके स्वभाव को देखते और समय पाकर बातचीत करते, वे विना प्रभावित हुए न रहते। उनके मुँह से निकलने वाली हरएक बात और उनके द्वारा किये जाने वाले हर-एक कार्य से यह भली भाँति जान पड़ता था कि वे किस प्रकार के व्यक्ति थे। यदि ऐसे भिक्षु इस युग में हैं, जो भगवान् बुद्ध के सच्चे अनुयायी कहे जा सकते हैं तो भिक्षु मेत्तेय्य निस्सन्देह उनमें से एक थे। वे थे मैत्री के प्रतिमूर्ति और वे थे ऐसे असाधारण पुरुषों में एक जिनका मन अतीव परिशुद्ध होता है। उनकी अनेक रचनाओं में यह बात स्पष्ट रूप से अंकित है। यदि कोई उनको समझना चाहते हैं तो उन्हें उनकी कृतियों को अवश्य पढ़ना चाहिये। इसके अतिरिक्त ऐसी अनेक घटनाएँ भी हैं जिनको देखकर कोई यह सन्देह नहीं कर सकता है कि वे उन सब को किसी अन्य मतलब से किये थे। यदि व्यक्तिगत अन्य किसी प्रकार की कपटता उनके मन में रही होती, तो दूसरी बात है किन्तु उस तरह के विचार उनमें नहीं थे।

उनकी उपस्थिति से जो वातावरण पैदा होता था, वह एक चुम्बक का कार्य करता था। न इच्छा करते हुए भी उनके प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक था। जहाँ तक हो सकता था, जब वे सारनाथ में रहते थे, अन्य लोगों से परे रहना ही पसन्द करते थे। शाम, सुबह मन्दिर के सिवाय और कहीं उनको नहीं पाया जा सकता था। भोजन भी वे अपने कमरे में लेजाकर करते थे। इसलिए कि दूसरों की संगति से एक क्षण भी व्यर्थ न जाय।

सारनाथ में रहते समय भिक्षाटन का व्रत धारण किये हुए थे। महाबोधि सभा के मंत्री के आग्रहानुसार वे सभा के भोजनालय से भोजन पाते थे। किन्तु भोजनालय तक भिक्षा के लिए जाना उनका नियम था। एक बार की घटना है, कि वे भिक्षा कर के अपने स्थान पर आ रहे थे। एक भिखारिन रास्ते में दिखाई दी, वे सब भोजन उसी को देकर अपने पात्र को धो नियमित कार्य में लग गये। पूछने पर उनका उत्तर था कि वह भूखी थी। लोगों का दुःख देखकर उनका हृदय कम्पित होता था। पशुओं के प्रति भी उनकी दया उतनी ही थी जितनी कि लोगों के प्रति। सम्राट् अशोक के प्रति उनमें बड़ा ही प्रेम था। वह इसलिए कि प्राणी मात्र के दुःख निवारण के लिए उसने अनेक कल्याण कार्य किया था।

यद्यपि वे भारत में रहकर महाबोधि सभाके धार्मिक कार्यों में हाथ बँटाना चाहते थे, किन्तु अस्वस्थ होने के कारण उनको लंका लौट जाना पड़ा। स्वस्थ होकर फिर से भारत लौट आने की उनकी प्रबल इच्छा थी लेकिन अभाग्यवश वह इच्छा अपूर्ण ही रह गई। रोगग्रस्त रहने पर भी उनके कार्यों में जरा भी शिथिलता न आई। लिखना-पढ़ना उनके नित्य कार्य थे। और उन कार्यों में वे यथाशक्ति लगे रहे। सिंहली और अंग्रेजी भाषाओं में कई एक ग्रंथ लिखे जिनसे यह स्पष्ट है कि उनमें धर्म भावना कहाँ तक बढ़ी हुई थी। उनकी कवितायें बड़ी ही रोचक हैं, जो सरल और सरस हैं।

वे केवल धर्म-दान ही न करते थे; जो कुछ भी उनके पास आता था, उससे अल्प मात्र भी दान करना, उनका स्वभाव था। दवा भी क्यों न हो उसको भी दान देते थे। मालिश के लिए बहुत कठिनाई से एक बहुमूल्य तेल की शीशी उनके लिये भारत से मँगाई गई थी, उसे तक उन्होंने एक अगन्तुक भिक्षु को दान कर दिया। यदि देने के लिए अन्य कोई वस्तु उनके पास न होती, तो चारपाई की चादर तक उठाकर दे देते थे। इस तरह का था उनका त्याग-भाव।

४ फरवरी, सन् १९५० के दिन लंका अपना स्वतंत्रता दिवस मना रहा था। एक परिचित व्यक्ति उनसे मिलने के लिए आया था। कोई भी उनसे मिलने आता, तो थोड़ा भी धर्मोपदेश देना उनका सदा का कार्य था। उस

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दिन अपने मित्र को मित्रता पर ही उपदेश दिये। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की मित्रता कैसे हुई और मित्रता बढ़ाते-बढ़ाते कैसे वे भगवान् बुद्ध के दो प्रधान शिष्य बन गये और उनके परिनिर्वाण के बाद भी किस तरह उनकी अस्थियाँ एक साथ हैं, और लोग उनकी पूजा किस उत्सुकता से करते हैं। इस आशय का उपदेश उस दिन उन्होंने दिया था। मित्र से यह भी कहा था कि श्रद्धा, मैत्री आदि गुणधर्मों को बढ़ाकर धर्म की सेवा करने में तत्पर होना चाहिये। यह था भिक्षु मेत्तेय्य का अन्तिम उपदेश। उससे थोड़ी देर बाद रोग ने अपना भीषण रूप धारण कर लिया और वे गहरी नींद में सोने के सदृश पड़ गये। तीन दिन तक उसी अवस्था में रहकर ७ फरवरी को उन्होंने अपने शरीर को त्याग दिया। यद्यपि वे आज जीवित नहीं हैं, किन्तु आज भी उनकी कृतियाँ अमर हैं और वे सदा के लिए हमें मैत्री, प्रेम, त्याग एवं सदाचार की ओर प्रेरित करती रहेंगी।

अहिंसा: बौद्धों की दृष्टि में

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

आप रेल में चले जा रहे हैं। अपने ध्यान में मग्न हैं। किसी से बात करना नहीं चाहते। यह सब होने पर भी यदि किसी को पता लग जाय कि आप बौद्ध हैं, तो वह तुरन्त यह प्रश्न पूछेगा—'क्योंजी, भगवान् बुद्ध ने तो अहिंसा परमोधर्मः सिखाया था, यह कैसी बात है कि सुनते हैं कि बौद्ध लोग भी मांसाहारी होते हैं.? कितनी ही आश्चर्य की बात लगे, किन्तु जो सबसे पहले जान लेने की बात है, वह यह कि सारे बौद्ध वाङ्मय में यह 'अहिंसा परमोधर्मः' कहीं आता ही नहीं। सुनते हैं कि यह महाभारत का वचन है। बौद्ध धर्म में अहिंसा का स्थान कम या बेश वही है, जो बाद में मनुस्मृतिकार ने अपने धर्म के दस लक्षणों में दिया है। यूँ स्थान-विशेष पर सिद्धान्त-विशेष का महात्म्य रहता ही है। बौद्ध ग्रन्थों में भी है ही।

एक दूसरा आक्षेप जो ऊपर के प्रश्न की ही तरह बहुधा किया जाता है, वह यह है कि भगवान् बुद्ध की अहिंसा ने ही देश को असैनिक वृत्तिका बना दिया और इसी से वह पराधीन हुआ। सिंहल बौद्ध देश है। वह १८१५ तक अपनी स्वतन्त्रता के लिए लड़ता रहा। बर्मा भी बौद्ध देश है। वह १८८५ में कहीं जाकर पराधीन हुआ था। थाइलैण्ड (स्याम) भी बौद्ध देश है। वह कभी पराधीन नहीं हुआ। जापान भी बौद्ध है। एटम-बम के आगे निरस्त्र होने से पहले न केवल वह स्वाधीन था, किन्तु उसके मारे दूसरों की स्वाधीनता खतरे में थी। वह जब अमरीका के अधीन हुआ, तो वह कुछ अहिंसक बने रहने के कारण पराधीन नहीं हुआ। समझ में नहीं आता कि भारत के ही हक में भगवान् बुद्ध की अहिंसा को जहर-हलाहल समझा और कहा जाता है। जिस समय भारत पराधीन हुआ, उस समय बौद्ध धर्म यहाँ था कहाँ? एक बर्मी भिक्षु का कहना था कि भारत इसलिये पराधीन हुआ; क्योंकि यहाँ बौद्ध धर्म नहीं था। हम देश की पराधीनता और अस्वाधीनता के कारणों को एक-दो स्वीकार कर लें। किन्तु जो लोग आधुनिक राजनीति के हित में बड़ी ही गैर-जिम्मेदारी से यह कहते आये हैं कि बौद्धों की अहिंसा ने देश को पराधीन बनाया, वैसे लोगों के लिए बर्मी भिक्षु का उत्तर ही सही उत्तर है कि देश में बौद्धों का न रहना ही उसकी पराधीनता का कारण हुआ।

अहिंसा और वानस्पतिक जीवन

यह एक धार्मिक और वैज्ञानिक चर्चा का पुराना प्रश्न है कि पेड़-पौधों में भी जीव होता है या नहीं? जीवन अर्थात् हरियाली होना एक बात है और जीव होना दूसरी। वैज्ञानिक दार्शनिकों के सामने तो आज यह भी प्रश्न है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कि आदमियों में भी जीव होता है या नहीं ? हम मान लेते हैं कि आदमियों में होता ही है, तो प्रश्न उठता है कि पेड़-पौधों में होता है या नहीं ? अर्थात् पेड़-पौधों के काटने-छाटने में 'हिंसा' है अथवा नहीं ? बौद्ध धर्म पेड़-पौधों को काटने-छाटने मे हिंसा' नहीं मानता। पालि-व्याकरण का एक सूत्र है—भक्खस्साहिंसायं (मोग्गल्लान व्याकरण ७–८) इसका अर्थ है, अहिंसार्थ में भक्ख धातु के साथ द्वितीया का निषेध होता है। प्रति उदाहरण है—किं भक्खयति बलिवद्दे सस्सं। यहाँ शस्य (सस्स) के साथ द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई, क्यों ? क्योंकि यहाँ 'खेती की हिंसा' हुई। इस 'खेती की हिंसा' की व्याख्या करते हुए आचार्य कहते हैं कि मिथ्या दृष्टि वालों के मत में तो खेती की हिंसा इस लिए हुई, क्योंकि वे खेत में जीव मानते हैं और सम्यक् दृष्टि के हिसाब से 'खेती की हिंसा' इसलिए हुई, क्योंकि खेत की हानि हुई। इससे स्पष्ट है कि बौद्धों की सम्यक् दृष्टि ने पेड़-पौधों के काटने-छाटने में कभी हिंसा को स्वीकार नहीं किया।

तो क्या बौद्ध भिक्षु यदि चाहे, तो किसी पेड़-पौधों को काट सकते हैं ? उनकी 'विनय' उन्हें आज्ञा नहीं देती। यह इसलिए कि बुद्ध के समय के बहुत से लोग साधुओं का पेड़ पौधों का काटना बुरा समझते थे। शाक्य-पुत्र श्रमणों की व्यर्थ में आलोचना होती थीं। भगवान् अकारण जनता का विरोध मोल लेने के पक्षपाती न थे। उन्होंने भिक्षुओं के लिए नियम बना दिया कि वनस्पति नष्ट करने में प्रायश्चितकरणीय है।

अहिंसा और जीव-रक्षा

वनस्पति में जीव हो अथवा नहीं, किन्तु प्राणियों में—चाहे छोटे हों अथवा बड़े—तो प्राण हैं ही। बुद्ध-धर्म किसी छोटे से छोटे प्राणी की भी हत्या की अनुमति नहीं देता। प्रश्न पैदा होता है कि प्राणियों की जीवन-रक्षा तो असम्भव है। हम सांस लेते हैं, तो भी कहा जाता है कि प्राणघात होता है; पानी पीते हैं, तो उसमें भी कीटाणु मारे ही जाते हैं और कृषि आदि कर्मों में सहस्रों जीवों की हत्या होती ही है, तो क्या साँस लेना बन्द कर दें, पानी पीना छोड़ें और कोई भी खेती का काम न करें ? नहीं। बौद्ध धर्म उसी हिंसा के लिए व्यक्ति को दोषी ठहराता है, जो वह जान-बूझकर करता है। जो हिंसा व्यक्ति से अनायास होती है, उसकी जिम्मेदारी बौद्ध धर्म व्यक्ति पर नहीं डालता। किसी व्यक्ति को हिंसा का अपराधी सिद्ध करने के लिए यह सिद्ध करना आवश्यक है कि उसने द्वेषबुद्धि से जान-बूझकर हिंसा की है। धम्मपद की पहली ही गाथा पर अट्ठकथा में चक्षुपाल स्थविर की जो कथा दी गई है, वह बड़ी ही शिक्षाप्रद है। चक्षुपाल स्थविर योगाभ्यास द्वारा जीवन-मुक्त हो गए थे। किन्तु इस साधना में अपनी आँखें गँवा बैठे। जिस समय वे एक अन्धे का जीवन व्यतीत कर रहे थे, वर्षा-ऋतु में उनके पाँव के नीचे आकर कुछ बीर बहूटियाँ (लाल-लाल छोटे कीड़े) मर गईं। भगवान् बुद्ध के पास शिकायत पहुँची। भगवान् ने शिकायत करने वालों को फटकारा—'मूर्खों, एक तो चक्षुपाल स्थविर अन्धे हैं, जिन्हें दिखाई नहीं देता। दूसरे वे अर्हत् (जीवन-मुक्त) हैं, जिनके हृदय में द्वेष-भाव पैदा नहीं होता। उनसे हिंसा कैसे हुई ? अहिंसा सम्बन्धी जैन मान्यताओं और और बौद्ध मान्यताओं में यह एक बड़ा अन्तर प्रतीत होता है। जैन मुनि संध्या समय प्रदीप पर जल मरने वाले पतंगों की प्राण रक्षा के लिए अँधेरे में बैठे रहना पसन्द कर सकते हैं। बौद्ध श्रमण को इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं। पतंगे मरते हैं, तो अपने-आप मरते हैं। बौद्ध श्रमण कुछ उन्हें मारने के लिए प्रदीप नहीं जलाता।

अहिंसा और अहिंसक हिंसा

एक और तरह की हिंसा है, जिसे किसी दूसरे व्यक्त शब्द के अभाव में हमने 'अहिंसक हिंसा' कहा है। डाक्टर की हिंसा अहिंसक हिंसा है और ठीक है। मैत्री-पूर्ण चित्त से जो कुछ कहा और किया जाता है, उसका बाह्य रूप यदि कष्टकर हो, तो यह भी अहिंसा ही है। किन्तु इसी अहिंसक हिंसा का एक दूसरा रूप भी है। किसी प्राणी को कोई आघात लग गया है। वह दुख–दर्द से बेचैन है। न आप ही उस दुख–दर्द को सहन कर सकते हैं और न स्वयं वह प्राणी। आप सोचते हैं कि यह प्राणी किसी हालत में भी उस दर्द से मुक्त नहीं हो

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सकता। आप उसके दर्द के साथ उस प्राणी को भी शान्त कर देने के लिए अफीम की सुई दिला देते हैं। प्राणी ठंडा हो जाता है। यही है अहिंसक हिंसा का दूसरा रूप। अपने जीवन काल में गांधीजी ने जो बछड़े की हत्या करवा दी थी, वह इसी प्रकार की अहिंसक हिंसा थी। इस तरह की अहिंसक हिंसा में हम दो बातें मानकर चलते हैं। प्रथम तो यह कि दुख-दर्द से कराहते हुए किसी प्राणी को मार डालना उसे दुःख से मुक्त करना है। क्या हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि प्राणी की व्याधि-जनीन वेदना और मरण-वेदना में कौन अधिक कष्टकर होती है? जो कहता है, उसे मरण-वेदना नहीं हुई, और जिसे मरण-वेदना हुई है, वह कभी कहने नहीं आया। तब ऐसी निराधार मान्यता का क्या विश्वास? दूसरी बात यह मान ली गई है कि यदि डाक्टर ने कहीं कह दिया कि अमुक प्राणी नहीं बचेगा, तो उसका वह कथन ब्रह्मवाक्य है। डाक्टरों के भी अनेक फतवें रोज़ मिथ्या सिद्ध होते देखे जाते हैं। मेरी विनम्र सम्मति में जीवन-नाश की सीमा तक जा सकने वाली अहिंसक हिंसा बहुत खतरनाक है। जो जीवन हम किसी को दे नहीं सकते, वह हमें उससे लेने का क्या अधिकार है?

अहिंसा और मांसाहार

आज समाज में जो प्राणि-हत्या होती है, उसमें से एक बड़ी हद तक होती है भोजन के लिए। प्राणी-हत्या पाप ही है—चाहे भोजन के लिए हो, चाहे अन्य किसी प्रायोजन के लिए। प्राणी-हत्या की प्रेरणा करना भी पाप है। विनयपिटक में एक पापी भिक्षु की कथा है, जिसने बछड़े की हत्या की प्रेरणा की। कथा इस प्रकार है :—

"उस समय एक दुराचारी भिक्षु, एक दुराचारी उपासक के घर में आने-जानेवाला था। तब वह दुराचारी भिक्षु पुर्वाह्ण के समय (वस्त्र) पहनकर, पात्र-चीवर ले जहाँ उस दुराचारी उपासक का घर था, वहाँ गया। जाकर बिछे आसन पर बैठा। तब वह दुराचारी उपासक जहाँ वह दुराचारी भिक्षु था, वहाँ गया। जाकर उसे अभिवादन कर एक ओर बैठा। उस समय उस दुराचारी उपासक के पास एक तरुण, सुन्दर, दर्शनीय, (चित्त को) प्रसन्न करने वाला, चीते के बच्चे की तरह का चितकबरा बछड़ा था। तब वह पापी भिक्षु उस बछड़े को बड़े चाव से निहारता था। तब उस पापी उपासक ने उस पापी भिक्षु से कहा—'भन्ते, आर्य क्यों मेरे बछड़े को इतने चाव से निहार रहे हो?'

'आवुस, मुझे उस बछड़े के चमड़े से काम है।'

तब उस पापी उपासक ने उस बछड़े को मारकर चमड़े को धुनकर उस पापी भिक्षु को दिया। तब वह पापी भिक्षु उस चमड़े को लेकर संघाटी (चीवर) से ढाँक कर चला गया। तब उस बछड़े पर स्नेह रखनेवाली गाय ने उस पापी भिक्षु का पीछा किया। भिक्षुओं ने पूछा—'आवुस, क्यों यह गाय तेरा पीछा कर रही है?'

'आवुसो, मैं भी नहीं जानता कि क्यों यह गाय मेरा पीछा कर रही है?'

उस समय उस पापी भिक्षु की संघाटी खून से सनी हुई थी। यह देख भिक्षुओं ने कहा—'किन्तु आवुस, यह तेरी संघाटी को क्या हुआ?'

तब उस पापी भिक्षु ने भिक्षुओं से यह बात कह दी। सुनकर सब बोल उठे—'आवुस, तो क्या तूने प्राणि-हिंसा की प्रेरणा की?'

'हाँ आवुस।'

तब उन भिक्षुओं ने भगवान् से यह बात कही। भगवान् ने फटकारा—'निकम्मे आदमी! मोघ पुरुष, कैसे तूने प्राण-हिंसा की प्रेरणा की!...भिक्षुओ, प्राण-हिंसा की प्रेरणा नहीं करनी चाहिए।"

इससे स्पष्ट है कि कोई भी हो—श्रमण हो अथवा उपासक—यदि वह स्वयं प्राण-हिंसा करता है, तो भी वह दोषी है, और यदि वह प्राण-हिंसा की प्रेरणा करता है, तो भी वह दोषी है। तब स्वभावतः प्रश्न उठता है कि क्या मांसाहार करनेवाला निर्विवाद रूप से प्राणि-हिंसा का प्रेरक होता है? होता भी है और नहीं भी। इसलिए यदि किसी भिक्षु को बिना प्राण-हिंसा किए अथवा उसकी प्रेरणा किए मांस खाने को मिल जाता है, तो वह दोषी नहीं है। दोष हिंसा में है, मांस खाने में नहीं। भिक्षाजीवी भिक्षुओं के लिए भगवान् बुद्ध का क्या ही सुन्दर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

व्यावहारिक नियम है—'भिक्षुओ, मैं त्रिकोटि परिशुद्ध मत्स्य-मांस की अनुज्ञा देता हूँ'। त्रिकोटि परिशुद्ध का मतलब है ऐसे पशु का मांस, जिसे खानेवाले ने देखा न हो कि उसके लिए मारा गया है और जिसके बारे में खानेवाले के मन में सन्देह भी पैदा न हो कि उसके लिए मारा गया है। ऐसा त्रिकोटि परिशुद्ध मत्स्य-मांस भिक्षु के लिए ग्राह्य है। पूछनेवाले पूछ सकते हैं कि क्या ऐसा मछली-मांस वास्तव में होता है? हाँ, होता है और यदि नहीं होता, तो वह अग्राह्य है।

अहिंसा और मृत गो-मांस

आज तो मुर्दार मांस खाना अधिकांश लोगों की दृष्टि में एक अत्यन्त घृणित कार्य है। एक समय था, जब भारत में यज्ञों की धूम थी। गो-वध होता था। गो-मांस लोभी ब्राह्मण पुरोहित स्वयं गो-वध करते और बलि चढ़ाये गये पशु का मांस ग्रहण करते थे। उस समय अहिंसा-प्रधान बौद्ध धर्म की प्रेरणा से ही शायद समाज के एक हिस्से ने मांस के लिए गौओं को न मारने की शपथ ग्रहण की। उन लोगों ने स्वयं मरी हुई गौओं के मांस से ही संतोष किया। जिस प्रकार इस युग में गांधीजी ने जूते आदि बनवाने के लिए 'अहिंसक चमड़े' का प्रचार किया उसी प्रकार मैं समझता हूँ कि उन लोगों ने उस समय केवल अहिंसक मांस ग्रहण करना स्वीकार किया होगा। अहिंसा तत्व की दृष्टि से उन लोगों की गिनती सचमुच प्रगतिशील लोगों में की जानी चाहिए। आज 'अछूत' कहलानेवाली जितनी जातियाँ मुर्दार मांस ग्रहण करती हैं, वे समाज की उसी परम्परा को जारी रखे हुए हैं, जिसने किसी समय अहिंसक मांस-मात्र ग्रहण करना ही अपना धर्म स्वीकार किया था।

हमारे पूर्वज यज्ञ करते थे। वे पशु-वध करते थे, इसमें किसी भी तरह के विवाद की गुंजाइश नहीं है। यज्ञ का अर्थ ही था मिलजुलकर किया जानेवाला कोई भी कार्य। ब्राह्मण-ग्रन्थों को पढ़ें, तो ऐसा लगता है कि आप किसी कसाईखाने में ही बैठे हैं। यज्ञ में पशु की हत्या हो चुकने के बाद उसके बटवारे के बारे में ऐतरेय-ब्राह्मण कहता है—"अब बलि-पशु के भिन्न-भिन्न अंगों के (पुरोहितों में) बाँटे जाने का प्रश्न उपस्थित होता है। हम इसका वर्णन करेंगे। जबड़े की दोनों हड्डियाँ और जिह्वा प्रस्तोता को दी जानी चाहिएँ, बाज की शक्ल में छाती उद्‌गाता को, गला और तालु प्रतिहर्ता को, कमर के नीचे का दाहिनी ओर का हिस्सा होतृ को, बायाँ ब्रह्मा को, दाईं जाँघ मैत्रावरुण को, बाईं ब्रह्मणाच्छसी को, कन्धे के साथ की दाईं ओर का अध्वर्यु को, बाईं मन्त्रोच्चारण में साथ देने वालों (उपगाताओं) को, बायाँ कन्धा प्रतिप्रस्थाता को, दाएँ बाजू का निचला हिस्सा नेष्टा (नेष्ट्र) को, बाएँ बाजू का निचला हिस्सा पोता (पोतृ) को, दाहिने जाँघ का ऊपर का हिस्सा अच्छावाक को, बाईं जाँघ का ऊपर का हिस्सा अग्निधर को, दाएँ बाजू का ऊपर का हिस्सा आत्रेय को, बाएँ बाजू का ऊपर का हिस्सा सदस्य को, पीछे की हड्डी और अण्डकोष (यज्ञ करने वाले) गृहस्थ को, दायाँ पाँव भोज देनेवाले गृहपति को, बायाँ पाँव भोज देनेवाले की भार्या को, ऊपर का होंठ गृहपति और उसकी भार्या के समानाधिकार में हैं, जिसका बँटवारा गृहपति करेगा। पशु की पूँछ वे भार्याओं को देते हैं, किन्तु यह उन्हें किसी ब्राह्मण को ही देनी चाहिए। गर्दन पर मणिक और तीन कीकस ग्रावस्तुत को, तीनों कीकस और पीठ के मांसल हिस्से का अर्धांश (वैकर्त) उन्नेता को, गर्दन पर के मांसल हिस्से (क्लोम) का आधा हिस्सा वध करनेवाले को। यदि वध करनेवाला स्वयं ब्राह्मण न हो, तो किसी ब्राह्मण को दे दे। सिर सुब्रह्मण्य को देना चाहिए, जो कल सोम-यज्ञ के समय (स्वः सुत्यां) बोला। सोम यज्ञ में यज्ञ की बलि बने पशु का वह हिस्सा जो यज्ञ-भोज का है, वह सब पुरोहितों का है। केवल होतृ के लिए ऐच्छिक है।"

अहिंसा और दण्ड-विधान

अहिंसा का तात्विक दर्शन तो ठीक ही है। किन्तु समाज में जहाँ दुष्ट हैं, क्या उनके प्रति भी दण्ड-रहित रहना ही कर्त्तव्य है? यदि हाँ, तो ऐसी अहिंसा किस काम की, जिसमें दुष्ट और दुराचारी निर्बाध घूम सकें, यदि नहीं, तो वैसी हालत में अहिंसा और दण्ड-विधान की संगति कैसे बैठती है? प्रश्न पुराना है। मिलिन्द-नरेश ने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भी आज से बाईस सौ वर्ष पहले स्थविर नागसेन से यही प्रश्न पूछा था। हम मिलिन्द-प्रश्न से ही उस प्रश्न और उत्तर को यहाँ उद्धृत करते हैं :—

"भन्ते नागसेन, भगवान् ने यह कहा है कि किसी की हिंसा न करते हुए प्यार से आपस में मिलकर रहो। जो दण्ड दिए जाने के योग्य हैं, उन्हें दण्ड दो; जो साथ दिए जाने योग्य हों, उनका साथ दो। भन्ते, दण्ड देने का अर्थ है हाथ काट देना, पैर काट देना, मार डालना, जल में डाल देना, मारना, पीटना या देश-निकाला देना। भगवान् ने ऐसी बातें कैसे कहीं ?"

स्थविर नागसेन का उत्तर था—'महाराज, भगवान् ने दोनों बातें ठीक ही कही हैं। महाराज, सभी बुद्धों का यह उद्देश है, यह धर्मदेशना है, अहिंसा धर्म का प्रधान लक्षण है। बुद्ध के ये स्वाभाविक वचन हैं। महाराज, और जो उन्होंने यह कहा है कि 'जो दण्ड देने योग्य है, उसे दण्ड देना चाहिए,' उसका मतलब है......बुरों को दबाना चाहिए, भलों को बचाना चाहिए, चोर को दबाना चाहिए, साधु को बनाए रखना चाहिए।"

"महाराज, चोर को इस तरह दबाना चाहिए—यदि उसे डाँट-डपट करना उचित हो, तो डाँट-डपट करना चाहिए; दण्ड देना उचित हो, तो देश से निकाल देना चाहिए और यदि फाँसी दे देना उचित हो तो फाँसी दे देनी चाहिए।"

"भन्ते, चोरों को जो फाँसी देने की बात है, क्या वह बुद्ध-धर्म के अनुकूल है ?"

"नहीं, महाराज।"

"तो बुद्ध-धर्म के अनुकूल चोरों को कैसे दबाना चाहिए ?"

"महाराज, जो चोरों को फाँसी दी जाती है, वह बुद्ध-धर्म के आदेश करने से नहीं, बल्कि उनकी अपनी करनी से। महाराज, क्या धर्म ऐसा आदेश करता है कि बुद्धिमान किसी बेकसूर आदमी को बेवजह सड़क पर जाते हुए पकड़ कर जान से मार दे ?"

"नहीं, भन्ते।"

"क्यों नहीं ?"

"भन्ते, क्योंकि उसने कोई कसूर ही नहीं किया है।"

"महाराज, इसी तरह बुद्ध-धर्म के आदेश करने से चोरों को फाँसी नहीं दी जाती, किन्तु उनकी अपनी करनी से। क्या इससे बुद्ध को कोई दोष लगा सकता है ?"

"नहीं भन्ते! देखते हैं, बुद्धों के उपदेश सदा उपयुक्त ही होते हैं।"

इसका सार इतना ही है कि समाज में कुछ लोग 'बात' मान लेने वाले होते हैं, जिन्हें लात की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु जो लात के ही भूत हैं, वे 'बात' नहीं ही मानते। उनके लिए लात की भी व्यवस्था रखनी ही पड़ती है, रखनी उचित है। क्या यह सच नहीं है कि 'बात' (= उपदेश) और लात (= दण्ड) दोनों की भरपूर व्यवस्था होने पर भी समाज में अपराधों की कमी नहीं ही दिखाई देती ? इसका क्या कारण है ? समाज के विकास और उसके इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टि से अध्ययन ही इस विषय पर नया प्रकाश डाल सकता है।

अहिंसा और मैत्री

'अहिंसा' शब्द को यदि हम संकुचित अर्थ में ग्रहण करते हों, तो 'मैत्री' शब्द के प्रयोग से उसका मार्जन हो सकता है। बुद्ध-धर्म का मूल मन्त्र मन की मैत्री है। कायिक तथा वाचिक कर्म का बाह्य रूप कठोर ही नहीं, रौद्र तक हो सकता है। किन्तु वास्तविक प्रश्न है कि उसके पीछे जो भाव है, वह द्वेषपूर्ण है अथवा मैत्रीपूर्ण ? एक बार अभय राजकुमार भगवान् बुद्ध के पास एक 'उभयकोटि' प्रश्न लेकर गया। ऐसा प्रश्न, जिसका किसी भी ओर उत्तर देने से उत्तर देनेवाला पराजित हो जाय, 'उभयकोटि' प्रश्न कहलाता है। उसका प्रश्न था। क्या तथागत कभी अप्रिय बचन बोलते हैं ? यदि वे कहें—'नहीं, तो उसके पास तथागत के कुछ ऐसे वचन थे, जब उन्होंने किसी को 'निकम्मा आदमी' अथवा 'नरक में जाने वाला' कहा था। ऐसे शब्द किसे प्रिय हो सकते थे ? यदि तथागत उत्तर दें कि 'हाँ, अप्रिय वचन बोलता हूँ,' तो वह पूछना चाहता था—तब दूसरों को प्रियभाषी बनने को क्यों कहते हैं ? जिस समय अभय राजकुमार ने तथागत के पास पहुँचकर यह प्रश्न पूछा, उस समय उसकी गोद में एक बहुत ही छोटा बच्चा था। भगवान्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ने कहा—"तुम्हारे या दाई के प्रमाद से यह राजकुमार यदि मुख में काठ या कंकड़ डाल ले, तो तुम क्या करोगे ?"

"निकाल लूँगा, भन्ते ! यदि मैं पहले ही न निकाल सका, तो बाएँ हाथ से सिर पकड़कर दाहिने हाथ से अँगुली टेढ़ीकर खून-सहित ही निकाल लूँगा।

"सो किस लिए ?"

"क्योंकि मुझे कुमार पर दया है, भन्ते।"

"ऐसे ही राजकुमार, तथागत जिस वचन को असत्य, अनर्थकर और दूसरों को अप्रिय जानते हैं, उस वचन को तथागत नहीं बोलते। तथागत जिस वचन को सत्य, किन्तु अनर्थकर और दूसरों को अप्रिय जानते हैं, उस वचन को भी तथागत नहीं बोलते। तथागत जिस वचन को सत्य तथा अर्थकारी जानते हैं, उसे तथागत अप्रिय होने पर भी समय देखकर बोलते हैं। तथागत जिस वचन को असत्य तथा अनर्थकर जानते हैं, वह दूसरों को प्रिय होने पर भी नहीं बोलते। तथागत जिस वचन को सत्य और अर्थकर जानते हैं और यदि वह दूसरों को प्रिय भी है, तो कालज्ञ तथागत उस वचन को बोलते हैं। सो किस लिए ? राजकुमार, तथागतों को प्राणियों पर दया है।"

इस युग में हिंसा का अर्थ रह गया है रक्तदर्शन और अहिंसा का रह गया है, रक्तदर्शन से विरति। अहिंसा कायिक कर्म ही नहीं है, उससे कहीं बढ़कर वाचिक तथा मानसिक है। यदि मन में मैत्री है, तो वाणी तथा कर्म स्वयं अपनी सुध आप ले लेते हैं। हमें उनकी चिन्ता नहीं ही करनी पड़ती।

कांक्षा-वितरण-विशुद्धि

(विशुद्धिमार्ग से)

'नामरूप' के प्रत्यय के परिग्रह से तीनों कालों में कांक्षा (=सन्देह) को मिटाकर प्राप्त हुआ ज्ञान कांक्षा-वितरण विशुद्धि है।

नामरूप का मनन

उसे पूर्ण करने की इच्छावाला भिक्षु जैसे दक्ष वैद्य रोग को देखकर उसके कारण को ढूँढ़ता है अथवा जैसे दयालु पुरुष छोटे नन्हें उतान सोनेवाले बच्चे को गली में सोया हुआ देखकर 'यह किसका पुत्र है ?' उसके माँ-बाप का विचार करता है। ऐसे ही इस नामरूप के हेतु-प्रत्यय को ढूँढ़ता है।

वह प्रारम्भ से ही इस प्रकार सोचता है—'यह नामरूप बिना हेतु के नहीं है, क्योंकि (यदि हेतु न हो तो) सब जगह, सर्वदा और सब एक सदृश हों। ईश्वर आदि हेतु से भी नहीं है, क्योंकि नाम के आगे ईश्वर आदि का अभाव है। जो लोग नामरूप मात्र को ही ईश्वर आदि कहते हैं, तो उनका ईश्वर आदि कहा जानेवाला नामरूप अहेतुक नहीं है, इसलिए इसके हेतु-प्रत्यय होने चाहिए। वे कौन से हैं ?

वह इस प्रकार नामरूप के हेतु-प्रत्ययों का विचार कर, इस रूप-काय के हेतु प्रत्ययों का ऐसे परिग्रह करता है—"यह काया उत्पन्न होती हुई उत्पल, पद्म, पुण्डरीक, कुमुदनी आदि के भीतर नहीं उत्पन्न होती है। न मणि, मोती के आकर आदि के भीतर। प्रत्युत आमाशय और पक्वाशय के बीच उदर-पटल को पीछे और पीठ के काँटों को आगे करके आँत तथा छोटी आँत से घिरी स्वयं भी दुर्गन्ध, घृणित, प्रतिकूल, होती हुई दुर्गन्ध, घृणित, प्रतिकूल अत्यन्त संकरे स्थान में सड़ी मछली, सड़े मुर्दे, सड़ी दाल, गड़हा, गड़ही, आदि में कीड़ों के समान उत्पन्न होती है। उस ऐसे उत्पन्न हुई (काया) के अविद्या, तृष्णा, उपादान, कर्म,—ये चार धर्म उत्पन्न करने से हेतु हैं और आहार सम्हालने से प्रत्यय है—ऐसे पाँच धर्म हेतु-प्रत्यय होते हैं। उनमें भी अविद्या आदि तीन काय का बच्चे के लिए माता के समान उपनिश्रय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

होते हैं। कर्म पुत्र के लिए पिता के समान जनक होता है। आहार बच्चे के लिए धायी के समान धारण करने वाला होता है।"

इस प्रकार रूप-काय के प्रत्यय का परिग्रह (=विचार) करके, फिर—"चक्षु और रूप के कारण चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है।" आदि प्रकार से नामकाय का परिग्रह करता है। वह ऐसे प्रत्यय से नामरूप की प्रवर्ति को देखकर, जैसा यह इस समय है, ऐसा ही अतीत काल में भी प्रत्यय से प्रवर्तित हुआ था और भविष्य में भी प्रवर्तित होगा—देखता है।

सोलह प्रकार के सन्देहों का दूरीकरण

उस ऐसे देखने वाले को, जो वह पूर्वान्त के प्रति—"मैं अतीत-काल में हुआ था? मैं अतीत काल में हुआ था न? मैं अतीत काल में क्या हुआ था? कैसा मैं अतीत काल में हुआ था? अतीत काल में मैं क्या होकर क्या हुआ था?" पाँच प्रकार की विचिकित्सा (सन्देह) कही गई हैं। जो भी अपरान्त के प्रति "मैं भविष्य काल में होऊँगा? क्या मैं भविष्य काल में होऊँगा न? मैं भविष्य में क्या होऊँगा? कैसा भविष्य काल में होऊँगा? भविष्य काल में क्या होकर क्या होऊँगा?" पाँच प्रकार की विचिकित्सा कही गई है और जो वर्तमान् काल के प्रति "अथवा इस समय वर्तमान् काल के प्रति आध्यात्मक की शंका करने वाला होता है—मैं हूँ? मैं नहीं हूँ? मैं क्या हूँ? मैं कैसा हूँ? यह सत्त्व कहाँ से आया है? वह कहाँ जाने वाला होगा?" छः प्रकार की विचिकित्सा कही गई है। वह सभी दूर हो जाती है।

दूसरा साधारण और असाधारण के अनुसार दो प्रकार के नाम के प्रत्यय को देखता है तथा कर्म आदि के अनुसार चार प्रकार के रूप के। नाम के साधारण और असाधारण दो प्रत्यय होते हैं। चक्षु आदि छः द्वार और रूप आदि छः आलम्बन नाम के साधारण प्रत्यय हैं। कुशल आदि के भेद से सब प्रकार की भी उससे प्रवर्तित होने से मनस्कार आदि असाधारण है। योनिशः (ठीक तौर पर) मनस्कार, सद्धर्म-श्रवण आदि कुशल का ही होता है, विपरीत से अकुशल का, कर्म आदि विपाक का, भवाङ्ग आदि क्रिया का।

रूप का कर्म, चित्त, ऋतु, आहार—यह कर्म आदि चार प्रकार का प्रत्यय है। उनमें अतीत काल का ही कर्म कर्म से उत्पन्न रूप का प्रत्यय होता है। चित्त, चित्त से उत्पन्न होने वाले रूप का उत्पन्न होते हुए ऋतु, आहार, ऋतु-आहार से उत्पन्न होने वाले का स्थिति के क्षण प्रत्यय होते हैं। ऐसे नामरूप के प्रत्यय का मनन करता है।

वह इस प्रकार प्रत्यय से नामरूप की प्रवर्ति को देखकर जैसा यह इस समय है, ऐसा ही अतीत काल में भी प्रत्यय से प्रवर्तित हुआ था, भविष्य काल में भी प्रत्यय से प्रवर्तित होगा—ऐसा देखता है। उस ऐसे देखने वाले को उक्त प्रकार से ही तीनों कालों में विचिकित्सा दूर हो जाती है।

दूसरा, उन्हीं नामरूप कहे जाने वाले संस्कारों के बूढ़े होने और बूढ़े हुए के विनष्ट होने को देखकर, यह संस्कारों का बूढ़ा होना और मरना जन्म होने पर होता है। जन्म भव के होने पर, भव उपादान तृष्णा के होने पर, तृष्णा वेदना के होने पर, वेदना स्पर्श के होने पर, स्पर्श छः आयतनों के होने पर, छः आयतन नामरूप के होने पर, नामरूप विज्ञान के होने पर, विज्ञान संस्कारों के होने पर, संस्कार अविद्या के होने पर—ऐसे प्रतिलोम-प्रतीत्य-समुत्पाद के अनुसार नामरूप के प्रत्यय का मनन करता है। तब कहे गये प्रकार से उसकी विचिकित्सा दूर हो जाती है।

दूसरा, "इस प्रकार···अविद्या के प्रत्यय से संस्कार" पहले विस्तार पूर्वक दिखलाये गये अनुलोम-प्रतीत्य-समुत्पाद के अनुसार ही नामरूप के प्रत्यय का परिग्रह करता है। तब उक्त प्रकार से ही उसकी विचिकित्सा दूर हो जाती है।

दूसरा, "पहले के कर्म-भव में मोह अविद्या है, राशिकरण संस्कार है, चाह तृष्णा है, दृढ़ता पूर्वक ग्रहण करना उपादान है, चेतना भव है—इस प्रकार ये पाँच धर्म पहले के कर्म-भव में यहाँ प्रतिसन्धि के प्रत्यय हैं। यहाँ प्रतिसन्धि विज्ञान है, माँ के पेट में उतरना नामरूप है, प्रसाद आयतन है, छूना स्पर्श है, अनुभव करना वेदना है—इस प्रकार ये पांच धर्म यहाँ उत्पत्ति-भव में पहले किये कर्म के प्रत्यय हैं। यहाँ आयतनों के परिपक्व होने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से मोह अविद्या है...चेतना भव है। इस प्रकार ये पाँच धर्म यहाँ कर्म-भव में आगे प्रतिसन्धि के प्रत्यय हैं।" ऐसे कर्म-वर्त्त और विपाक-वर्त्त के अनुसार नामरूप के प्रत्यय का मनन करता है।

चार प्रकार के कर्म

चार प्रकार के कर्म हैं—(१) दृष्ट-धर्म वेदनीय (२) उपपद्य-वेदनीय (३) अपरापर्य वेदनीय और (४) अहोसि कर्म। उनमें एक जवन की वीथी में सातों चित्तों में कुशल या अकुशल चेतना दृष्ट धर्म वेदनीय कर्म है। वह इसी आत्म-भाव (जीवन काल) में विपाक देती है। वैसा नहीं कर सकते हुए कर्म हुआ, किन्तु कर्म-विपाक नहीं हुआ, कर्म विपाक नहीं होगा, कर्म-विपाक नहीं है—इस त्रिक् के अनुसार अहोसि कर्म होता है। अर्थ को सिद्ध करने वाली सातवीं जवन-चेतना उपपद्य वेदनीय कर्म है। वह ठीक बाद वाले आत्म-भाव में विपाक देती है। वैसा नहीं कर सकते हुए उक्त प्रकार से ही अहोसि कर्म हो जाता है। दोनों के बीच की पाँच जवन-चेतनायें अपरापर्य-वेदनीय कर्म हैं। वह भविष्य में जब अवसर पाती हैं, तब विपाक देती हैं। संसार की प्रवर्ति के होने पर अहोसि कर्म नहीं होती हैं।

दूसरे भी चार प्रकार के कर्म हैं—(१) यद्गरुक (२) यद्बहुल (३) यदासन्न और (४) कृतत्वात् कर्म। कुशल हो या अकुशल, गरू और अ-गरू कर्मों में जो गरू मातृ-घात आदि कर्म या महद्गत कर्म होता है, वही पहले विपाक देता है। वैसे बहुल, अ-बहुल कर्मों में जो बहुल होता है, सुशीलता या दुःशीलता; वही पहले विपाक देता है। मरने के समय में अनुस्मरण किया हुआ कर्म यदासन्न कहा जाता है। मृत्यु के समीप होने वाला व्यक्ति जिस कर्म का अनुस्मरण कर सकता है, उसी से उत्पन्न होता है। इन से रहित पुनः पुनः सेवित कृतत्वात् कर्म होता है। उनके अभाव में वह प्रतिसन्धि को खींच लाता है।

दूसरे भी चार प्रकार के कर्म हैं—(१) जनक (२) उपस्तम्भक (३) उपपीड़क और (४) उपघातक। जनक कुशल भी होता है, अकुशल भी। वह प्रतिसन्धि में भी, प्रवर्ति (=जीवन-काल) में भी रूप-अरूप विपाक-स्कन्धों को उत्पन्न करता है। उपस्तम्भक विपाक उत्पन्न नहीं कर सकता है। अन्य कर्म से दी गई प्रतिसन्धि से विपाक के उत्पन्न होने पर उत्पन्न होने वाले सुख-दुःख को अवलम्ब देता है, बहुत दिनों तक प्रवर्तित करता है। उपपीड़क अन्य कर्म से दी गई प्रतिसन्धि से विपाक के उत्पन्न होने पर, उत्पन्न होने वाले सुख-दुःख को पीड़ित करता है, बाधा डालता है, बहुत दिनों तक प्रवर्तित होने नहीं देता है। उपघातक स्वयं कुशल, अकुशल होते हुए भी अन्य दुर्बल कर्म की हिंसा कर उसके विपाक को हटा कर अपने विपाक के लिए अवकाश करता है। ऐसे कर्म से अवकाश किये जाने पर वह विपाक उत्पन्न हुआ कहा जाता है।

इस प्रकार इन बारह कर्मों के कर्मान्तर और विपाकान्तर बुद्धों के कर्म-विपाक-ज्ञान को ही यथार्थ रूप से प्रगट होते हैं। श्रावकों को असाधारण हैं। किन्तु विपश्यना करने वाले (योगी) को कर्मान्तर और विपाक के एक भाग को जानना चाहिए। इसलिए यह द्वार मात्र के दर्शन से कर्म की विशेषता बतलाई गई है। इस प्रकार इस बारह प्रकार के कर्म को कर्म-वर्त्त में डालकर, ऐसे एक कर्म-वर्त्त और विपाक-वर्त्त के अनुसार नामरूप के प्रत्यय का मनन करता है।

वह इस प्रकार कर्म-वर्त्त और विपाक-वर्त्त के अनुसार प्रत्यय से नामरूप की प्रवर्ति को देखकर, जैसा यह इस समय है, ऐसा अतीत काल में भी कर्म-वर्त्त के अनुसार प्रत्यय से प्रवर्तित हुआ था। भविष्य में भी कर्म-वर्त्त और विपाक-वर्त्त के अनुसार प्रत्यय से प्रवर्तित होगा। इस तरह कर्म और विपाक, कर्म-वर्त्त और विपाक-वर्त्त, कर्म की प्रवर्ति और विपाक की प्रवर्ति, कर्म की सन्तति एवं क्रिया और क्रिया का फल है।

कम्मा विपाका वत्तन्ति, विपाको कम्मसम्भवो।
कम्मा पुनब्भवो होति, एवं लोको पवत्तति॥

कर्म और विपाक विद्यमान् हैं, विपाक कर्म से सम्भूत है और कर्म से पुनर्भव होता है—ऐसे संसार प्रवर्तित हो रहा है।

इस प्रकार देखता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कर्म का कोई कर्त्ता नहीं

उस ऐसे देखने वाले (योगी) की जो वह पूर्वान्त आदि के प्रति "मैं हुआ था ?" आदि प्रकार से कही सोलह तरह की विचिकित्सा है, वह सब दूर हो जाती है। सब भव, योनि, गति, स्थिति, निवास में हेतु-फल के सम्बन्ध के अनुसार प्रवर्तित होता हुआ नामरूप मात्र ही जान पड़ता है। वह कारण से आगे कर्त्ता को नहीं देखता है, न विपाक की प्रवर्ति से आगे विपाक भोगने वाले को। किन्तु कारण के होने पर कर्त्ता है और विपाक की प्रवर्ति के होने पर भोगने वाला है—ऐसे व्यवहार मात्र से पण्डित लोग कहते हैं—इस प्रकार वह भलीभाँति प्रज्ञा से देखता है। इसलिए पुराने लोगों ने कहा है—

कम्मस्स कारको नत्थि, विपाकस्स च वेदको।
सुद्धधम्मा पवत्तन्ति, एवेतं सम्मदस्सनं॥

कर्म का कर्त्ता नहीं है और न विपाक को भोगने वाला। शुद्ध धर्म (संस्कार) मात्र प्रवर्तित होते हैं—इस प्रकार जानना सम्यक् दर्शन है।

एवं कम्मे विपाके च वत्तमाने सहेतुके।
बीजरुक्खादिकानं व पुब्बा कोटि न ञायति॥

ऐसे सहेतुक कर्म और विपाक के प्रवर्तित होने पर बीज, वृक्ष आदि के समान पूर्व छोर नहीं जान पड़ता।

अनागतेपि संसारे अप्पवत्तिं न दिस्सति।
एतमत्थं अनञ्ञाय तित्थिया असयंवसी॥

भविष्यत् काल में भी संसार में अ-प्रवर्ति नहीं दिखाई देती है, इस बात को नहीं जानकर तीर्थक (अन्य मतावलम्बी) परवश हैं।

सत्तसञ्ञं गहेत्वान सस्सतुच्छेददस्सिनो।
द्वासट्ठिदिट्ठिं गण्हन्ति अञ्ञमञ्ञविरोधिता॥

सत्त्व होने की संज्ञा (ख्याल) को ग्रहण करके शाश्वत और उच्छेद दर्शन को मानने वाले परस्पर विरोधी बासठ प्रकार की दृष्टियों को ग्रहण करते हैं।

दिट्ठिबन्धनबन्धा ते तण्हासोतेन वुय्हरे।
तण्हासोतेन वुय्हन्ता न ते दुक्खा पमुच्चरे॥

वे दृष्टि के बन्धन से बँधे हुए, तृष्णा के स्रोत से बह रहे हैं और वे तृष्णा के स्रोत से बहते हुए दुःख से नहीं छुटकारा पाते हैं।

एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खु बुद्धस्स सावको।
गम्भीरं निपुणं सुञ्ञं पच्चयं पटिविज्झति॥

ऐसे इसे जानकर बुद्ध का श्रावक भिक्षु गम्भीर, निपुण, शून्य प्रत्ययका ज्ञान प्राप्त करता है।

कम्मं नत्थि विपाकम्हि, पाको कम्मे न विज्जति।
अञ्ञमञ्ञं उभो सुञ्ञा, न च कम्मं विनाफलं॥

विपाक में कर्म नहीं है, कर्म में विपाक नहीं है, एक दूसरे से दोनों शून्य हैं, और कर्म के बिना फल नहीं है।

यथा न सुरिये अग्गि, न मणिम्हि न गोमये।
न तेसं बहि सो अत्थि, सम्भारेहि च जायति॥

जैसे सूर्य में अग्नि नहीं है, न मणि में, न गोबर में है और वह उनके बाहर भी नहीं है, प्रत्युत कारणों से उत्पन्न होता है।

तथा न अन्तो कम्मस्स विपाको उपलब्भति।
बहिद्धापि न कम्मस्स न कम्मं तत्थ विज्जति॥

वैसे कर्म के भीतर विपाक नहीं है, कर्म के बाहर भी नहीं होता है और उसमें कर्म नहीं है।

फलेन सुञ्ञं तं कम्मं, फलं कम्मे न विज्जति।
कम्मञ्च खो उपादाय ततो निब्बत्तती फलं॥

वह कर्म फल से शून्य है, फल कर्म में नहीं है, किन्तु कर्म के कारण उससे फल उत्पन्न होता है।

सृष्टिकर्त्ता का अभाव

न हेत्थ देवो ब्रह्मा वा संसारस्सत्थि कारको।
सुद्धधम्मा पवत्तन्ति हेतुसम्भार पच्चया॥

कोई संसार का कर्त्ता देव या ब्रह्मा नहीं है, हेतु-प्रत्यय के कारण शुद्ध-धर्म मात्र प्रवर्तित हो रहे हैं।

उस ऐसे कार्य-वर्त्त और विपाक-वर्त्त के अनुसार नामरूप के प्रत्यय का मनन करके तीनों कालों में दूर हुई विचिकित्सा वाले को सारे अतीत, भविष्यत्, वर्तमान के धर्म च्युति-प्रतिसन्धि के अनुसार विदित होते हैं। वह उसकी ज्ञानवती-प्रज्ञा होती है। वह ऐसा जानता है—जो अतीत में कर्म के प्रत्यय से उत्पन्न स्कन्ध थे वे ही निरुद्ध हो गये, किन्तु अतीत कर्म के प्रत्यय से इस भव में अन्य स्कन्ध उत्पन्न हुए। अतीत भव से इस भव में आया हुआ एक भी धर्म नहीं है। इस भव में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भी कर्म के प्रत्यय से उत्पन्न हुए स्कन्ध निरुद्ध हो जायेंगे। दूसरे भव में अन्य उत्पन्न होंगे। इस भव से दूसरे भव में एक धर्म भी नहीं जायेगा। जैसे आचार्य के मुख से निकलकर पाठ शिष्य के मुख में नहीं घुस जाता है और उसके कारण उसके मुख में पाठ नहीं होता है—ऐसा भी नहीं है। दूत द्वारा पिया गया मन्त्र-जल रोगी के पेट में नहीं घुसता है और उसका इस कारण से रोग नहीं शान्त हो जाता है—ऐसा भी नहीं है। मुख के ऊपर किया हुआ मण्डन-विधान दर्पण-तल आदि पर पड़ा हुआ मुख-निमित्त नहीं जाता है, और इस कारण से मण्डन-विधान नहीं दिखाई देता है—ऐसा भी नहीं है। एक बत्ती की दीप-शिखा दूसरी बत्ती में नहीं चली जाती है और वहाँ उस कारण से दीप-शिखा नहीं उत्पन्न होती है—ऐसा भी नहीं है। ऐसे ही अतीत-भव से इस भव में या यहाँ से पुनर्भव में कोई धर्म नहीं जाता है और अतीत-भव में स्कन्ध, आयतन, धातु के प्रत्यय से यहाँ या यहाँ स्कन्ध, आयतन धातु के प्रत्यय से पुनर्भव में स्कन्ध, आयतन, धातु में नहीं उत्पन्न होती है—ऐसा भी नहीं है।

यथेव चक्खुविञ्ञाणं मनोधातु अनन्तरं।
न चेव आगतं नापि न निब्बत्तं अनन्तरं॥
तथेव पटिसन्धिम्हि वत्तते चित्तसन्तति।
पुरिमं भिज्जति चित्तं, पच्छिमं जायति ततो॥
तेसं अन्तरिका नत्थि, वीचि तेसं न विज्जति।
न चितो गच्छति किञ्चि, पटिसंधि च जायति॥

जैसे मनोधातु के अनन्तर चक्षुविज्ञान नहीं आया है और उसके अनन्तर नहीं उत्पन्न हुआ है—ऐसा नहीं है। वैसे ही प्रतिसन्धि में चित्त-सन्तति प्रवर्तित होती है, पूर्व का चित्त नाश हो जाता है, उसके बाद पिछला चित्त उत्पन्न होता है। उनके बीच अन्तर नहीं है। उनकी वीचि नहीं है। यहाँ से कुछ जाता नहीं है और प्रतिसन्धि उत्पन्न हो जाती है।

ऐसे च्युति और प्रतिसन्धिके अनुसार जानने योग्य धर्म का सब प्रकार से नामरूप के मनन का ज्ञान बलवान होता है। सोलह प्रकार की विचिकित्सा भली भाँति दूर हो जाती है और न केवल वही—"शास्ता में कांक्षा (=सन्देह) करता है" आदि प्रकार से प्रवर्तित होनेवाली आठ प्रकार की भी विचिकित्सायें दूर हो ही जाती हैं, बासठ (प्रकार की) दृष्टियाँ दब जाती हैं।

ऐसे नाना प्रकार से नामरूप के प्रत्यय के परिग्रह (=विचार) से तीनों कालों में कांक्षा को मिटाकर प्राप्त हुआ ज्ञान "कांक्षावितरण-विशुद्धि" है—ऐसा जानना चाहिए। धर्म-स्थिति-ज्ञान। यथाभूत-ज्ञान और सम्यक्-दर्शन इसी का नाम है।......इस ज्ञान से युक्त विपश्यना करनेवाला (भिक्षु) बुद्ध शासन में आश्वासन पाया, प्रतिष्ठा पाया, नियत-गति वाला छोटा स्रोतापन्न होता है।

तस्मा भिक्खु सदा सतो नामरूपस्स सब्बसो।
पच्चये परिगण्हेय्य कङ्खावितरणत्थिको॥

इसलिए कांक्षा-वितरण की इच्छावाला भिक्षु सर्वदा स्मृतिमान् हो सब प्रकार से नामरूप के प्रत्ययों का मनन करे।

ध्यान-निकाय के संस्थापक

भदन्त बोधिधर्म की चीन-यात्रा

श्री डब्ल्यू० पाचोउ, पी-एच० डी०

चीन में ध्यान निकाय के संस्थापक बोधिधर्म के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें प्रचलित हैं। निःसन्देह वह भारत के एक प्रमुख बौद्ध अनुयायी थे। जो चीन में बौद्ध-धर्म के प्रचारार्थ गये। बौद्धधर्म वास्तव में एक असाधारण और क्रान्तिकारी धर्म है। चीन में लोगों का विश्वास था कि उनके पास एक दैवी शक्ति थी। इसका कारण यही था कि उनका व्यक्तित्व महान् था। जो कुछ भी हो हमें तो उनकी ऐतिहासिक महत्ता पर विचार करना है। हमें

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

इतिहास की दृष्टि से उनकी महत्ता की छान-बीन करनी है।

चीन पहुँचने की तिथि

नवीं सदी के बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि वह लैंग के उ० ती० सम्राट् पूत्तं ग के राज्यकाल के आठवें वर्ष में कैन्टन पहुँचे। लैंग सम्राट् बौद्धधर्म का कट्टर अनुयायी था। वह बहुत से विहार बनवाया था। यहाँ तक कि उसने दान देते समय अपने को भी दान दे दिया था। चूँकि वह सम्राट् था इस कारण मन्त्रियों ने कोष से बहुत-सा धन दिया था। ऐसा कहा जाता है कि उससे बोधिधर्म की भेंट हुई थी और दोनों में निम्नांकित बातें हुई थीं:—

सम्राट्—मैंने जो बहुत से लोगों को भिक्षु बनने का आदेश दिया, विहार बनवाये हैं और ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करायी हैं, क्या उसकी कोई गणना है?

बोधिधर्म—यह कुछ भी नहीं है। और है अस्थायी। यह शरीर की छाया के सदृश है। वास्तव में यह सब कुछ होते हुए भी अस्तित्व-हीन है।

सम्राट्—वास्तव में फिर क्या है?

बोधिधर्म—वास्तविकता की पहचान कठिन है?

सम्राट्—आर्यसत्य का ऊँचा आदर्श क्या है?

बोधिधर्म—वास्तव में 'आर्य' का ज्ञाता ही नहीं है।

सम्राट्—तब मेरे सामने कौन है?

बोधिधर्म—मैं नहीं जानता।

बोधिधर्म ने सोचा ध्यान सिद्धान्त की शिक्षा देने का अभी उचित समय नहीं है। इसलिए उन्होंने घास की कुछ पत्तियों को तोड़ लिया और उसके सहारे नदी को पार करके सुनसान पहाड़ पर जाकर तपस्या की। ऊपर की बातचीत से पता चलता है कि उन्होंने लैंग-वंश के सम्राट् यू० ती० से ५२७ ई० में भेंट की थी। इतिहास के अध्ययन कर्त्ता के नाते हमें यह कहने में संकोच होता है कि उपर्युक्त बातें सुदृढ और साधार हैं। अधिक छान-बीन करने से उनके चीन पहुँचने के बारे में बहुत सी बातों का पता चला है। यांगशांसी ने अपने बौद्ध विहारों के वर्णन में लिखा है कि बोधिधर्म ने यूनित्स विहार की नक्काशी को देखा था और उसकी बहुत ही प्रशंसा की थी। उनका कथन था कि उनकी अवस्था १५० वर्ष की थी। उन्होंने बहुत से देशों का भ्रमण किया, किन्तु उनका कहना था कि जम्बूद्वीप में ऐसा कोई सुन्दर विहार नहीं था। उन्होंने कई दिन तक हाथ जोड़कर विहार में प्रार्थना की। यह सुन्दर विहार ५३५ ई० में अग्नि से जलकर भस्म हो गया। यह आग तीन मास तक जलती रही। इससे हमें यह पता चलता है कि बोधिधर्म ने इस विहार को उसके पूर्ण होने के कुछ ही वर्ष बाद देखा था। इस तथ्य के आधार पर यह कहना ठीक नहीं है कि वे ५२७ ई० में कैन्टन पहुँचे। एक दूसरा आधार भी हमारे पक्ष में है, ताऊसेन ने बोधिधर्म की जीवनी में लिखा है कि वे शुंग वंश के राज्य काल से पहले आये। शुंग-वंश का राज्य-काल ४२० से ४७८ ई० तक रहा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि बोधिधर्म ४७८ ई० से पहले आये। हम कह सकते हैं कि वे ४७९ ई० से पहले कैन्टन पहुँचे और उन्होंने अपना अधिक समय नानकिन में बिताया।

वंश और योग्यता

यद्यपि लो-यांग चिया लान-ची का कहना है कि वे फारस के रहने वाले थे। किन्तु सब एक मत से बताते हैं कि वे भारतीय थे। उनकी जाति और वंश के बारे में मतभेद है। कुछ ग्रन्थों में यह पाया जाता है कि वे क्षत्रिय थे और दक्षिण भारत के राजा सुगंध के तीसरे लड़के थे। उनके गुरु का नाम प्रज्ञातर था। इनके कहने पर वे चीन गए थे। इस यात्रा में तीन वर्ष लगे थे। ताऊयूसान ने उनकी जीवनी में लिखा है कि वे दक्षिणी भारत के ब्राह्मण थे। इस कथन में सत्यता मालूम होती है। बोधिधर्म भारत नहीं लौटे। किन्तु उनका निर्वाण लो-यांग में हुआ। ताऊस्यांग का कहना है कि उन्होंने विषपान करके शरीर त्याग किया था। तांग वंश के पुराने कागजातों से पता चलता है कि उनकी मृत्यु विष से हुई। उनके चेलों को इस सम्बन्ध में सन्देह हुआ, तो उनकी कब्र को खोद डाला। तो केवल उनके जूते और कपड़ा मिले। यह विवरण ९३६-४० ई० का है। हो सकता है कि ध्यान सम्प्रदाय की उन्नति के प्रभाव के कारण लोग उन्हें देवता मानने लगे हों।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उनके सिद्धान्त

बोधिधर्म भारतीय उन दार्शनिकोंमें अपना स्थान रखते थे, जो चीन गये। चीन जानेवाले अन्य लोग सूत्रों के अनुवाद आदि करते थे। किन्तु उन्होंने लोगों को वास्तविक ज्ञान प्राप्ति की ओर उत्साहित किया। उनके धर्म का सिद्धांत अभ्यास और विश्वास था। अभ्यास चार वर्गों में विभक्त हैं। (१) जीव को सभी कठिनाइयों को सहन करना चाहिए। (२) उसे सुख-दुःख में समान रहना चाहिए। (३) उसे किसी चीज़ के पीछे नहीं पड़ना चाहिए। (४) उसे धर्म के अनुसार चलना चाहिए।

यह सम्प्रदाय लंकावतार सूत्र को छोड़कर बौद्ध धर्म के अन्य ग्रंथों में विश्वास नहीं करता। इस सूत्र में ध्यान की प्रधानता है। इस सम्प्रदाय के भिक्षु कठिन जीवन बिताते थे। उन्हें दिन में एक बार खाने का आदेश था। वे अपने साथ एक भिक्षा-पात्र, तीन वस्त्र, दो सूइयाँ रख सकते थे। उनके ये कठिन कार्य सराहनीय थे।

वास्तव में बोधिधर्म ५२७ ई० में चीन नहीं पहुँच कर ४१७ ई० में ही पहुँचे होंगे। उनके सम्बन्ध में जो दन्तकथायें प्रचलित हैं, वे बाद में फैलाई गई हैं, जिनसे उनके धर्म का अधिक प्रचार हो, यही युक्तियुक्त है।

बौद्ध धर्म का प्रकाश सारे विश्व में व्याप्त हो

भिक्षु ऊ जागर

[मूलगन्ध कुटी विहार के १९वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर अखिल बर्मा भिक्षु महासंघ के मन्त्री ऊ जागर द्वारा दिया गया अभिभाषण।]

आज अनागारिक धर्मपाल द्वारा स्थापित मूलगन्ध कुटी विहार के १९वें वार्षिकोत्सव एवं धातु-पूजोत्सव में सम्मिलित होकर मैं आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। इस मूलगन्ध कुटी विहार में स्थापित भगवान् बुद्ध की पवित्र अस्थियों को आदरपूर्वक हाथ जोड़ते हुए मैं अपने महासंघ की ओर से प्रतिनिधि के रूप में यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। महाबोधि सभा के अध्यक्ष एवं कार्यकर्त्ताओं को इस अवसर पर धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने मुझे निमन्त्रण भेज कर कृतार्थ किया है।

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनकी पवित्र अस्थियों को प्राप्त करने के लिए तत्कालीन भारत के सात महाराजाओं ने संग्राम करने की तैयारी कर ली थी, किंतु द्रोण के सत्परामर्श से शान्तिवादी तथागत की अस्थियाँ परस्पर बाँट ली गई थीं। कुछ दिनों बाद शासन की चिरस्थिति की कामना से महाकाश्यप स्थविर ने मगध नरेश अजातशत्रु के साथ परामर्श कर राजगृह में एक स्तूप में उनको निहित करवा दिया था।

दो सौ वर्ष बाद सम्राट् अशोक ने पुनः उक्त पवित्र अस्थियों को ग्रहण कर देश-विदेशों में विभक्त किया एवं सद्धर्म का प्रचार किया। उसी समय बुद्धाब्द २३५ में भारतीय बौद्ध धर्म बर्मा में भी पहुँचा। ठीक उसी समय सारे विश्व में बौद्ध संस्कृति और सभ्यता का प्रकाश फैला। कुछ शताब्दियों तक यह बौद्ध धर्म भारत से लुप्त-सा हो गया था, किन्तु अब श्रद्धावान विभिन्न प्रचारकों के उद्योग से फिर बड़े वेग से फैलता हुआ जान पड़ रहा है। मूलगन्ध कुटी विहार का यह उन्नीसवाँ वार्षिकोत्सव उसका द्योतक है। इस बात को देखते हुये दृढ़तापूर्वक यह कह सकते हैं कि भारत पुनः संसार में सभ्यता को फैलानेवाला महान् केन्द्र बनने जा रहा है। इस महान् उत्सव को सफल बनानेवाली इस महाबोधि सभा के सदस्यों को मैं बुद्ध धर्म का संरक्षक कह सकता हूँ। इनके महान् कार्यों की प्रशंसा करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।

मेरा यह अन्तिम निवेदन है कि इस उत्सव में आये हुए देश-विदेश के हमारे बौद्ध भाई अपने अपने देश में वापस जाकर भगवान् बुद्ध के शान्तिवाद का प्रचार करते हुए संसार की शान्ति के लिए प्रयत्न करें। मेरी प्रार्थना है कि बौद्ध धर्म का प्रकाश सारे विश्व में व्याप्त हो और सभी प्राणी सुखी हों।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वार्षिक-विवरण

[मूलगन्ध कुटी विहार के उन्नीसवें वार्षिकोत्सव के अवसर पर महाबोधि सभा के उपमंत्री भिक्षु संघरत्न द्वारा पढ़ा गया वार्षिक-विवरण]

माननीय सभापति जी, भिक्षुसंघ,
भाइयो तथा बहिनो!

आप सभी देश-विदेश के अतिथियों के स्वागत करने तथा आपके सामने सारनाथ की उन्नसवीं वार्षिक रिपोर्ट को आज उपस्थित करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। सारनाथ भगवान् बुद्ध के बताये हुए चार पवित्र स्थानों में से एक है। यहीं वह दीप प्रज्वलित हुआ, जिसने विश्व के कोने-कोने को आलोकित कर दिया। कई शताब्दियों तक सारनाथ बौद्धधर्म तथा संस्कृति का केन्द्र बना रहा। फिर एक ऐसा समय आया कि लोग सारनाथ को भूल गये तथा वह खँडहर हो गया। बहुत दिनों के बाद अनागारिक धर्मपाल जी ने उसके महत्व को समझा तथा अपना जीवन उसके पुनरुत्थान में लगा दिया। सारनाथ को पुनः एक बार बौद्ध केन्द्र के रूप में देखने का उनका स्वप्न सन् १९३१ में मूलगन्ध कुटी विहार के रूप में साकार हुआ, तब से सारनाथ महाबोधि सभा का प्रधान केन्द्र बन गया। मूलगन्ध कुटी विहार हजारों यात्रियों के लिए आकर्षण बना रहा। लंका के श्री एल० पिसिन्नों महाशय ने अस्थियों के लिये पाँच हजार रुपये की एक मजूंषा दान की है। लद्दाख के बौद्धों ने एक गलीचा, स्याम से एक पेट्रोमेक्स तथा लंका से एक गलीचा भी प्राप्त हुआ है। पौराणिक शिल्प-कला से युक्त मञ्जूषा सहित बुद्ध-मूर्ति लंका से दान मिली है। इन सब देशों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। गत वर्ष अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ यहाँ आई थीं, जिनके स्वागत समारोह के सम्बन्ध में आप सब लोग जानते ही हैं।

उसके बाद ही बर्मा सरकार के विशेष आग्रह पर भगवान् बुद्ध की वह पवित्र अस्थियाँ, जो मूलगन्ध कुटी विहार में हैं बर्मा ले जाई गईं, उनके साथ के श्रीनिवास नायक स्थविर तथा भिक्षु-संघरत्न सारनाथ से गये। बर्मा में उनका बड़ा उत्साह पूर्वक स्वागत किया गया। वहाँ से वापस आने पर अस्थियाँ आसाम गईं, उनके साथ सारनाथ से भिक्षु धम्मालोक जी गये। मई महीने में अस्थियों के साथ महास्थविर शासन श्री जी लद्दाख गये, वहाँ भी उनका स्वागत बड़े समारोह से हुआ। वैशाख पूर्णिमा, धर्मचक्र-प्रवर्तन-उत्सव तथा धर्मपाल जन्मदिवस प्रतिवर्ष की तरह समारोह पूर्वक मनाये गये।

शिक्षा

लाहुल के लामा कुंगा आनन्द, तथा अंगरूप निर्मलचन्द्र बुधिष्ट इन्स्टीच्यूट में श्री पंडित एच० सद्धातिस्स जी तथा श्री पंडित के० सीवली जी से अंग्रेजी तथा पालि का अध्ययन करते रहे। स्याम देश के दो भिक्षुओं और एक छात्र ने भी हिन्दी तथा अंग्रेजी का अध्ययन किया। महाबोधि विद्यालय गत जुलाई से इन्टर कक्षा के लिये स्वीकृत हो गया। हाई स्कूल का परीक्षा फल ६६% रहा। विद्यालय बढ़ता जा रहा है, पर धनाभाव से उसके अनुरूप भवन नहीं बढ़ रहा है। मैं सभी से अपील करता हूँ कि विद्यालय के भवन-निर्माण में आप मेरा हाथ बटावें। विद्यालय के मैनेजर भिक्षु धर्मजोति जी लंका चले गये। उन्होंने विद्यालय के लिये बहुत कुछ किया था। उनके जाने के बाद से श्री भिक्षु शासनश्री जी मैनेजर का काम कर रहे हैं। उनके परिपक्व अनुभव से स्कूल को लाभ होगा, ऐसी आशा है। बनारस के शिक्षा-अधिकारियों का मैं आभारी हूँ। वे सभी हमारे स्कूल के प्रति सहानुभूति रखते हैं। मैं उत्तर प्रदेश की सरकार का भी बहुत आभारी हूँ कि जिसने कृपा करके पालि को इन्टरमीडियट के लिये स्वीकृति दी है। लेकिन हम सभी बौद्ध धर्मावलम्बियों को सन्तोष होगा, जब हमारी यह प्रान्तीय सरकार अपने इन्टरमिडियट कालेज

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में इसके पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था करेगी। मुझे विश्वास है कि सरकार इस ओर अवश्य अग्रसर होगी। विद्यालय के प्रिंसिपल श्री के० के० राय तथा प्राइमरी स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री पाठक एवं सभी सहायक अध्यापकों को मैं धन्यवाद देता हूँ।

पुस्तकालय तथा वाचनालय

हमारे पुस्तकालय में बौद्ध धर्म तथा बौद्ध संस्कृति सम्बन्धी पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। भारत के प्राचीन काल के इतिहास पर भी अच्छी पुस्तकें हैं। इस वर्ष १५० नई पुस्तकें ली गईं। वाचनालय में हिन्दी अंग्रेजी, सिंहली, बर्मी तथा स्यामी भाषाओं के समाचार पत्र तथा पत्रिकायें आती हैं, पुस्तकालय को उत्तर प्रदेश की सरकार से ९० रु० वार्षिक सहायता मिलती है। इसके लिये मैं सरकार का आभारी हूँ। मैं श्री राहुल सांकृत्यायनजी का भी आभारी हूँ, जिन्होंने अपनी सभी पुस्तकों की एक-एक प्रति पुस्तकालय को भेंट की है। बनारस के हिन्दी दैनिक पत्र "आज" तथा 'सन्मार्ग' हमारे वाचनालय को निःशुल्क प्राप्त हो रहे हैं। उनके व्यवस्थापकों का आभारी हूँ। पुस्तकालय का भार भिक्षु धम्माधारजी पर रहा, उनके दिल्ली जाने के बाद से भिक्षु धम्मालोक जी पुस्तकालयाध्यक्ष हैं। उन्होंने पुस्तकालय की पुस्तकों का नवीन वर्गीकरण प्रारम्भ किया है। इस काम में स्थानीय संग्रहालय के अध्यक्ष श्रीअद्रीक्षचन्द्र बनर्जी पूरा सहयोग दे रहे हैं, उनका मैं आभारी हूँ।

धर्मदूत

हिन्दी के एक मात्र बौद्ध पत्रिका धर्मदूत को प्रकाशित होते १५ वर्ष हो गये। धर्मदूत ने बौद्ध धर्म तथा संस्कृति के प्रचार में काफी सहयोग किया है। सम्पादक त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षितजी तथा व्यवस्थापक भिक्षु धम्मालोक जी के उत्साह तथा लगन से पत्रिका ने काफी उन्नति की है। मैं उन लोगों का तथा सभी लेखकों का आभारी हूँ।

औषधालय

हमारे दातव्य औषधालय का उपयोग बढ़ता जा रहा है। ५ मील के घेरे में यही एक औषधालय है। वर्ष में ३५,००० रोगियों की चिकित्सा हुई। उत्तर प्रदेश की सरकार तथा बनारस डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से क्रमशः १००० रु० तथा २०० रु० वार्षिक सहायता मिली। हम लोगों ने कम्पाउण्डर के लिये निवासंस्थान बनाया है। उत्तर प्रदेश की सरकार से उसके लिये १०,००० रु० मिले थे। डा० अदालत सिंह जी तथा कम्पाउण्डर श्री शिवचरण लाल जी को और अन्य सभी सहायकों का मैं आभारी हूँ।

महाबोधि पुस्तक एजेन्सी सदा लोगों की बौद्ध पुस्तकों की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति करती रही है। यहाँ बौद्ध-धर्म सम्बन्धी सभी भाषाओं की पुस्तकें प्राप्य हैं। पुस्तक-बिक्री का काम श्री टाशी ने सुचारुरूप से किया। उन्होंने धर्मदूत की ग्राहक-संख्या बढ़ाने में अच्छा प्रयत्न किया। इस वर्ष हिन्दी, पालि, अंग्रेजी में बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। बुद्धचर्या, संयुत्त निकाय और सुत्तनिपात अभी प्रेस में हैं। इस अवसर पर दाताओं तथा अपने साथ सहानुभूति रखने वालों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हूँ। आज कल के अनाथपिण्डिक श्रीजुगल किशोर जी बिडला सर्वदा सहयोग के लिए प्रस्तुत रहते हैं। उनसे एक प्रेरणा-सी मिलती रहती है। महाबोधि सभा के दूसरे केन्द्रों के व्यवस्थापकों का उनके सहयोग के लिये मैं ऋणी हूँ। वे सभी हर कार्य में हमारे साथ सहयोग करते रहे हैं। भारतीय महाबोधि सभा के सभापति श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी तथा ब्रह्मचारी देवप्रिय वलिसिंह प्रधान मन्त्री, महाबोधि सभा का मैं उनके सहयोग के लिये ऋणी हूँ। आज के उत्सव की सफलता के लिये मैं अपने साथियों, सहयोगियों तथा सभी विद्यालय के अध्यापकों तथा छात्रों का आभारी हूँ। आजकल विश्व में सर्वत्र अशान्ति ही दिखाई पड़ रही है। ऐसे समय में भगवान् बुद्ध के शान्ति तथा प्रेम के सन्देहों की बड़ी आवश्यकता प्रतीत हो रही है। तथागत के देश भारत में शान्ति स्थापित करने का उज्ज्वल भविष्य दिखाई दे रहा है। मुझे आशा है कि भारत पुनः भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं को अपनायेगा तथा उनके प्रेम, दया, एवं सेवा के सन्देश का प्रचार करेगा। त्रिरत्न के अनुभाव से हम इस योग्य बनें कि हम सभी अपना कर्त्तव्य-पालन कर सकें। सभी प्राणी सुखी हों।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शुभ-सन्देश

[मूलगन्ध कुटी विहार सारनाथ के १९ वें वार्षिकोत्सव के शुभावसर पर भारत, बर्मा, चीन, लंका, स्याम, कम्बोज, सोवियत रूस, जर्मन आदि देशों से अनेक शुभ-सन्देश भारतीय महाबोधि-सभा को प्राप्त हुए हैं, उनमें 'से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं'—सम्पादक]

भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने अपने सन्देश में कहा है :—

"मूलगन्ध कुटी विहार के उन्नीसवें वार्षिकोत्सव के शुभावसर पर मैं भिक्षुसंघ को अभिवादन करता हूँ। महाबोधि-सभा ने अपने ढंग से हमारे देश के लोगों की सेवा करते हुए प्रशंसनीय कार्य किया है। मुझे आशा है कि महाबोधि-सभा के सदस्य हमारे महान् उपदेशक भगवान् बुद्ध के बतलाये हुए मार्ग का अनुसरण करते हुए इस देश के कोने-कोने तथा संसार में प्रेम, दया और सेवा का सन्देश पहुँचायेंगे।"

'नेदर लैण्ड बुद्धिष्ट सर्किल आफ फ्रेण्डस्' के मंत्री ने मूलगन्ध कुटी विहार के १९ वें वार्षिकोत्सव की सफलता के लिए अपनी शुभकामना भेजते हुए लिखा है—'हम शरीर से ही दूर हैं, किन्तु हमारे विचार आपके साथ ही हैं। हमारी शुभ-कामना स्वीकार करें।"

इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पन्त, मध्य प्रदेश के राज्यपाल, राजकुमारी अमृत कौर, भारत स्थित अमेरिकी राजदूत, बम्बई के राज्यपाल, श्री हाफिज मुहम्मद इब्राहिम, बुद्ध-सासनानुग्गह समिति बर्मा के अध्यक्ष श्री ऊ-खिन, भारत के रेलवे तथा यातायात के मंत्री श्री के० सन्तानम्, श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी, आसाम के मुख्य मंत्री श्री बी० आर० मेधी, बुद्धिष्ट सोसाइटी के प्रधान मंत्री श्री जोन् ए० डपे, बम्बई के मुख्य मंत्री श्री बी० जी० खेर, पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल श्री कैलाशनाथ काटजू, पश्चिमी बंगाल के मुख्य मंत्री श्री बी० सी० राय, भारत सरकार के कृषि मंत्री श्री के० एम० मुंशी, दिल्ली-स्थित आस्ट्रेलिया के राजदूत श्री एच० आर० गोलान, इण्डियन बुद्धिष्ट एशोसियेशन के मंत्री श्री डी० कुमारस्वामी, शान्ति-निकेतन के प्रो० तानयूनशान, विहार के मुख्य मंत्री, भारतीय संसद के स्पीकर श्री जी० वी० मावलंकर, सिकिम के महाराजा, लंका के खाद्य मंत्री श्री ए० रत्नायक, तरुण बौद्ध समिति हवाई के मंत्री श्री सनवोमियाबार, बुद्धिष्ट एशोसियेशन थाइलैण्ड के अध्यक्ष श्री फ्या भारत राजौपिच, भारत स्थित बर्मी राजदूत, पंजाब के मुख्य मंत्री श्री गोपीचन्द भार्गव, मलाया के वर्ल्ड फेलोशिप आफ बुद्धिस्ट्स के अध्यक्ष श्री खूसूजिएन, श्री गिरधारी लाल, श्री हरेकृष्ण मेहताब आदि व्यक्तियों के भी शुभ-कामना के सन्देश प्राप्त हुए हैं।

सम्पादक के नाम पत्र

हिन्दू-संस्कृति और संघी

श्रीमान् सम्पादक जी,

'वीर अर्जुन' (देहली) का विजया दशमी अङ्क देख रहा था। श्री गुरुदत्तजी अपनी संस्कृति के विनाश से अत्यन्त विक्षुब्ध हैं, परन्तु आवेश में उन्होंने ऐसी बातें कह डाली हैं जो एक संस्कृत व्यक्ति का मस्तक ग्लानि से नत करने के लिए पर्याप्त हैं तथा जो गुरुदत्त जी की संस्कृति की जड़ पर ही कुठाराघात करती हैं। उसी अङ्क में अन्यत्र एक चित्र के नीचे लिखा है—'भारतीय संस्कृति

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के गौरव म० बुद्ध'। कोई कल्पना नहीं कर सकता कि एक प्रतिष्ठित पत्र के सम्पादक इतने लापरवाह होंगे कि उन्हीं 'भारतीय संस्कृति के गौरव' (सम्पादक के शब्द) के विषय में इस प्रकार की बेहूदी बातें छपने दें।

श्री गुरुदत्तजी ने संस्कृति-विरोधी प्रयासों का पूरा इतिहास लिखने की चेष्टा की है। 'गांधी हत्या के पश्चात्' उप-शीर्षक के अंश को यहाँ अविकल दिया जा रहा है :—

'महात्मा जी की हत्या के पश्चात् तो हिन्दुओं के विरुद्ध जो तूफ़ान बदतमीज़ी सरकारी ग़ैर सरकारी कांग्रेसियों ने उठाया वह इतिहास के पन्नों को काला करता है।

'हिन्दी के विरुद्ध जो युद्ध किया गया वह एक लम्बी कहानी है और अब भी जो अड़चनें पैदा की जा रही हैं वह कम नहीं हैं।

"बौद्ध देश में उँगलियों पर गिने जा सकते हैं, परन्तु हमारे सैक्युलर देवता महात्मा बुद्ध के चेले-चाँटों की अस्थियों पर पुष्प चढ़ाने के लिये हजारों मील तक हवाई जहाज़ में चक्कर लगा सकते हैं। और वही देवता हिन्दुओं की निन्दा करते नहीं थकते।"

मैं चित्त को संयत करके इन धर्मध्वजी बन्धु से केवल ये प्रश्न पूछना चाहता हूँ—

क्या बुद्ध और उनका धर्म भारतीय संस्कृति के घोर शत्रु हैं और उनके आदर्शों के प्रचार से भारतीय राष्ट्र मृत्यु को प्राप्त होगा? तो यह ढोंग क्यों कि बुद्ध हिन्दुओं के अवतार हैं? वर्ण-व्यवस्था की बुराइयों, पाखण्ड, कर्मकाण्ड, अनाचार का विरोध करने वाले बुद्ध ने क्या 'हिन्दुओं' (गुरुदत्त जी के शब्दों में) का कल्याण नहीं किया?

क्या बुद्ध के 'चेले-चाँटों' (श्री सारिपुत्त और महा मोग्गलान) की अस्थियों को विलायत से अपने देश में लाना ऐसी बात है जिस पर आप आग-बबूला हों? जिन पवित्र अस्थियों का स्वागत कलकत्ता में अपार जन-समूह ने किया, पटना तथा काशी जैसे नगरों में जिनके दर्शन के लिए कई-कई लाख जनता एकत्रित हुई, लद्दाख से ले कर आसाम तक लाखों नर-नारियों ने जिनका दर्शन तथा तथागत एवं उनके मुख्य शिष्यों का स्मरण कर आत्म सन्तोष प्राप्त किया, उन पवित्र अस्थियों का लाना क्या गौरव की बात नहीं? यदि पूर्णतया पुरातत्व की दृष्टि से देखा जाय तो भी क्या भारत सरकार इस कार्य के लिए बधाई की पात्रा नहीं?

रही बौद्धों (सम्भवतः आपका आशय भिक्षुओं से ही है) के हवाई जहाज में चलने की बात। सो संघ के कारख़ाने में निर्मित पुण्यक विमान की प्रतीक्षा कब तक करते, बेचारों को इस घोर देशीयता तथा संस्कृति विरोधी साधन की शरण लेनी पड़ी।

अन्त में मुझे दो और प्रश्न करने हैं—

क्या हममें—आप में इतनी क्षमता है कि बुद्ध का मजाक 'सैक्युलर देवता' कह कर उड़ा सकें? क्या आप ने बुद्ध को रफी अहमद किदवई के बराबर समझ रखा है!

फिर क्या हम आप से इतनी सहिष्णुता की आशा न रखें कि एक इतनी महान् विभूति (यदि आप भगवान् न भी मानें) के विषय में लिखते समय आप संयत भाषा का प्रयोग तो करेंगे?

यदि इस संस्कृति द्रोही जन के प्रश्नों का उत्तर देने का निश्चय हमारे संस्कृतिपोषक बन्धु करें तो मैं चाहूँगा कि उसके पूर्व किसी पोप, गुरु अथवा दण्डी से परामर्श कर लें। भवतु सब्ब मंगल।

—चन्द्रभाल त्रिपाठी

आज से मुझे बौद्ध समझें

श्रीमान् सम्पादक जी,

एक समय एक विद्वान् प्रो० महाशय ने मुझसे पूछा—'क्यों जी कुलकर्णी, आप तो बौद्ध धर्म का प्रचार करते हैं, आपने अभी तक कुछ बौद्ध बनाये या नहीं?" मैंने कहा—"भगवान् बुद्ध हिन्दुओं के भी तो भगवान् हैं—मेरे उपदेश की यही भूमिका होती है। भगवान् बुद्ध के प्रति श्रद्धा और आदर-निर्माण करने का ही मैं प्रयत्न करता हूँ, जिससे वे समझ जायँ कि किस तरह पथ-भ्रष्ट होकर अपने भगवान् को ही भूल गये हैं और उन्हें पुनः अपनाने की जिज्ञासा करें। मैं कुछ लोगों को बौद्ध-धर्म की 'टीका' नहीं लगाता—जैसा कि लोग प्रायः समझते

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हैं कि बौद्ध होने का मतलब एक नये जामे में आ जाना है, नहीं, कदापि नहीं। भगवान् बुद्ध में श्रद्धा करना, उनके बतलाये हुए कल्याणकारी धर्मोंका आचरण करना ही अपने को सच्चा बौद्ध बनाना है। यहाँ हिन्दू-मुसलमानों की शिखा रखाई और कटाई जैसा भी कोई वाह्य चिह्न नहीं है, यहाँ तो अपने हृदय को ही परिवर्तित करना है, और यह समझना है कि भगवान् बुद्ध ही हमारे सच्चे शास्ता हैं।

हमारे पास अभी हाल ही में एक पत्र आया है, जो इस प्रकार है :—

"श्री कुलकर्णी जी,

भगवान् बुद्ध के सुवास से प्रेरित होकर जो आप सत्य और प्रेम का प्रचार करते हैं, उसके लिए मैं आपका स्वागत करता हूँ। मैं भी आपके साथ काम करना चाहता हूँ। आप मुझे बौद्ध धर्म की दीक्षा दीजिये, ताकि उस क्षेत्र में मैं वास करूँ। बुद्ध का सुवास भारत का हृदय जीते।

आपका—

दादाजी के० दास।"

इस पत्र को पाकर मैं इन दादाजी से मिला। इनसे मिलकर मुझे आश्चर्य हुआ कि पत्र-लेखक सज्जन एक ७६ वर्ष के वृद्ध हिन्दू संन्यासी थे। मैंने उनसे नम्रता-पूर्वक कहा—"स्वामी जी, क्या आप बौद्धधर्म को वाह्य-देशीय या दूसरे का धर्म मानते हैं?" उन्होंने कहा—"नहीं। बौद्धधर्म भारत का अपना धर्म है और हमें इसे अपनाना ही होगा। हम इतने दिनों तक भूले-भटके थे, जो ऐसे परम कल्याणकारी धर्म को अंगीकार करने से वंचित रहे। मैंने आपको केवल धन्यवाद देने के लिए ही पत्र लिखा था। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जब तक मैं जीऊँगा—और मुझे आशा है कि १०० वर्ष तक जीऊँगा—तब तक मैं भगवान् बुद्ध का प्रचार करूँगा।"

जो लोग स्वामीजी के दर्शनार्थ आते हैं, उन सभी को वह कहते हैं "बुद्ध भारत के गौरव हैं। जब तक भारत को बुद्ध का स्मरण था, तब तक भारत सुखी था, स्वतंत्र था और संसार का सांस्कृतिक-केन्द्र था, किन्तु जब हम बुद्ध को भूल गये, तो हम परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ गये। आज आश्चर्य की बात यह है कि अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए हमारे राष्ट्र ने भगवान् बुद्ध के 'धर्मचक्र" को ही ग्रहण किया है, जो प्रेम, मैत्री, सुख, शान्ति, न्याय और उन्नति का प्रतीक है।"

इस बात को जब मैंने उक्त प्रो० महाशय से कही, तो उन्होंने कहा—"कुलकर्णी जी, तो फिर मुझे भी आज से आप बौद्ध समझें।"

—अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी
नागपुर

अपने पाठकों से—

'धर्मदूत' अनेक कठिनाइयों का मुकाबिला करता हुआ एक लम्बे समय से हिन्दी भाषा-भाषी बौद्ध-धर्म-प्रेमियों की धार्मिक सेवा करता आ रहा है। इसके अत्यधिक प्रचार और सुदृढ़ बनाने के लिए हमारे उदार पाठकों का हमें सदा से सहयोग प्राप्त रहा है। हम 'धर्मदूत' को शीघ्र ही एक नये पैमाने से अधिक पृष्ठों के साथ निकालना चाहते हैं। क्या पाठक हमारी सहायता करने को प्रस्तुत हैं और वह चाहते हैं कि ऐसा हो? यदि चाहते हैं तो मेरा साग्रह निवेदन है कि कम से कम एक-एक भी नये ग्राहक बनाने का कष्ट करें।

निवेदक :—
व्यवस्थापक "धर्मदूत"

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

क्या कोली-राजपूत हरिजन हैं ?

राजस्थान के २०,००० कोली-राजपूतोंके बौद्ध होनेके समाचार को प्रकाशित करते हुए अनेक समाचार-पत्रों ने उन्हें "हरिजन" लिखा है और कहा है कि वे भारत के विधि-मन्त्री डॉ० भीमराव अम्बेडकर के परामर्शानुसार बौद्ध धर्म को ग्रहण करने जा रहे हैं। इस समाचार के पत्रों में प्रकाशित होने पर सबको खेद हुआ है। कोली-राजपूत-बन्धुओंको तो मार्मिक चोट पहुँची है। उन्होंने इस समाचार का, तथा अपने को हरिजन कहे जाने का तीव्र विरोध किया है जो स्वाभाविक है।

इतिहासज्ञ जानते हैं कि भगवान् बुद्धका कोलिय वंश से कितना निकट सम्बन्ध था ? यह भी लिखने की आवश्यकता नहीं कि महामाया देवी एवं राहुल माता कोलिय वंश की ही थीं। कोलिय इक्ष्वाकुवंशी थे, जिनकी वंश-परम्परा शाक्यों एवं बाराणसी के राजा राम से सम्बद्ध परिशुद्ध क्षत्रिय थी। हमें यहाँ यह भी लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि शाक्यों और कोलियों में किस प्रकार विवाह-सम्बन्ध प्रचलित था और कोलिय जाति किस प्रकार समृद्ध थी ?

जब कालान्तर में बौद्ध धर्म का पलड़ा हल्का पड़ा, तब भारत के प्रायः सभी बौद्धों को ब्राह्मणशाही मनोवृत्ति का शिकार होना पड़ा। हम जानते हैं कि जातियों की गुटबन्दी के समय बौद्धों को नीच, व्रात्य आदि कह कर सम्बोधित किया गया। उसी का प्रभाव है कि अब तक कुछ जातियाँ नीच समझी जाती हैं और वर्ग-विशेष उन्हें दबाकर रखा है। क्या भूमिहार, चन्दउ, कुर्मी, ढिलफोरा, थारू, दसवँधी, सैंथवार आदि उत्तर भारत की विभिन्न जातियाँ इसी भावना के परिणामस्वरूप नीच-ऊँच के झगड़े में नहीं लटकी पड़ी हैं ? वस्तुतः इसी प्रकार हमारे कोली-राजपूत बन्धु भी इस भावना के शिकार होते कई शताब्दियों से चले आ रहे हैं, किन्तु प्रसन्नता की बात है कि वे अपने गौरव को धीरे-धीरे समझने लगे हैं और इनमें नव-चेतना आने लगी है। भगवान् बुद्ध एवं बौद्ध धर्म के प्रति उनमें अचल श्रद्धा तथा भक्ति है, भिक्षुओं के अभाव में भी उन्होंने अपनी कुल-मर्यादा को अब तक बनाये रखा है। वे सदियों से आक्रांत एवं पीड़ित होने पर भी अपनी संस्कृति पर डटे हैं। उनकी संख्या उत्तर-प्रदेश, पूर्वी पंजाब, हिमांचल प्रदेश, राजस्थान, सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश एवं बम्बई में अधिक है। यद्यपि शिक्षा के अभाव, आर्थिक कठिनाई आदि अनेक विषमपरिस्थितियों के कारण उनमें काफी अज्ञान भरा है, तथापि केवल 'अज्ञान' के कारण ही कोई जाति 'हरिजन' नहीं कही जा सकती। इस उच्चवंश को 'हरिजन' कहने में जिस मनोवृत्ति से काम लिया गया है, वह सर्वथा घातक और निंद्य है। सम्प्रति जहाँ जातीयता के विषाक्त वातावरण को मिटाने का प्रयत्न हो रहा है, वहाँ एक वर्ग-विशेष के लिये इस प्रकार की हीन-मनोवृत्ति शोभा नहीं देती।

दिल्ली नगरपालिका का आदर्श-कार्य

दिल्ली नगरपालिका के अध्यक्ष डा० युद्धवीरसिंह ने टाउनहाल के पास क्वीन्सगार्डन में हार्डिंग पुस्तकालय के सामने भगवान् बुद्ध की एक मूर्ति की स्थापना कर आदर्श कार्य किया है। हम डा० साहब के इस कार्य के लिए बौद्ध जगत् की ओर से हार्दिक धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि डा० साहब के इस कार्य से भारत के अन्य नगरपिता भी प्रेरणा प्राप्त करेंगे और वे भी यथा-समय ऐसे पवित्र कार्य को कर यश के भागी होंगे। जो नगर तथागत के वास स्थान थे, जहाँ तथागत ने बहुत दिनों तक विहार किया था। वहाँ के नगर-पिताओं का परम धर्म है कि वे भगवान् की मूर्ति की स्थापना कर अपने अतीत के गौरव को पुनर्जीवित करें। क्या काशी, प्रयाग, मथुरा, कानपुर, पटना आदि नगरों में इस कार्य का अभाव खटकता नहीं है ? हम तो लखनऊ नगर के नगर-पिताओं के प्रशंसक हैं। जिन्होंने 'लाटूश रोड' को "गौतमबुद्ध मार्ग" घोषित किया है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बौद्ध-जगत्

मूलगन्ध कुटी विहार का उन्नीसवाँ वर्षिकोत्सव

गत २३ नवम्बर गुरुवार को सारनाथ में मूलगन्ध कुटी विहार का १९ वाँ वार्षिकोत्सव लद्दाख के बड़े लामा श्री जेस्टन कुशोक बकुला के सभापतित्व में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। सभा का कार्यक्रम वसंत कालेज की छात्राओं के मंगल-गान से प्रारम्भ हुआ। भदन्त शासनश्री जी ने बौद्ध उपासक-उपासिकाओं को पंचशील दिया तथा भिक्षु संघरत्न ने महाबोधि सभा, सारनाथ का वार्षिक विवरण पढ़ा। तत्पश्चात् महाबोधि इण्टर कालेज के प्रिंसिपल श्री केशरीकुमारराय ने, जो सभा के कार्यक्रम का संचालन कर रहे थे, देश-विदेश के प्रमुख व्यक्तियों द्वारा भेजे गये शुभ-कामना के सन्देश पढ़कर सुनाये।

भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सभापति का परिचय दिये जाने के बाद नागपुर के श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी का भाषण हुआ। आपने कहा—"भगवान् बुद्ध ने संसार के दुःखी और पीड़ित समाज को प्रेम की शिक्षा दी है, इसी से डाक्टर अम्बेडकर उसकी शरण में आये हैं। उनको हरिजनों का नहीं, बल्कि हिन्दुओं का नेता मानना चाहिए। आज वह समय आ गया है जब कि हमारे देश का भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं पर चलने से ही कल्याण हो सकता है। बुद्ध भारत के गौरव हैं, उन्हें अपनाना परम धर्म है। यद्यपि हम अपने राष्ट्रध्वज में धर्मचक्र को अपना लिए हैं, किन्तु उतने ही से काम चलने को नहीं है, हमें भारत में अपने उन महान् शिक्षक भगवान् बुद्ध की पूजा-पद्धति का भी निर्माण करना है। क्या हम हिन्दू कहलाने वाले भाई बुद्ध-काल में रहते हुए भी इस ओर कभी ध्यान देते हैं? बुद्ध को त्यागना अपने सुख शान्ति को त्यागना तथा उन्हें अपनाना सुख-समृद्धि का आह्वान है।"

तत्पश्चात् बर्मा-महासंघ के मंत्री भिक्षु ऊ-जागार का बर्मी भाषा में भाषण हुआ, जिसका हिन्दी-अनुवाद भदन्त ऊ कित्तिमा जी ने किया। आपने अपने भाषण में भारत और बर्मा के सांस्कृतिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए यह आशा प्रगट की कि अब शीघ्र ही भारतवर्ष बौद्धधर्म को अपनाने की ओर अग्रसर होगा। इसके पूर्व-लक्षण दिखाई दे रहे हैं। तदुपरान्त इंग्लैण्ड के भिक्षु संघरक्षित ने बौद्धधर्म की विशेषता और सारनाथ के महत्त्व पर भाषण दिया। आपने अपने भाषण के सिलसिले में कहा कि वर्तमान् संघर्ष और अशान्तिपूर्ण वातावरण तभी दूर हो सकेगा, जब कि संसार में पुनः भगवान् बुद्ध के उपदेशों का प्रचार किया जाय।

लंका के भिक्षु सद्धातिस्स जी ने पालि भाषा में एक मार्मिक भाषण दिया, जिसका हिंदी-भाषान्तर भिक्षु धर्मरक्षित ने किया। आपने अपने भाषण में कहा कि भारतदेश बुद्ध तथा बौद्धधर्म की जन्मभूमि है, किन्तु कुछ स्वार्थी लोगों ने इन्हें भारत से हटा दिया या ये स्वयं यहाँ से हट गये, जो कुछ भी हो, किन्तु जब तक भारत में बौद्धधर्म का प्रचार था, सभी प्राणी सुखी थे। धन-धान्य से देश परिपूर्ण था। बौद्धधर्म के हटते ही देश अधोगति को प्राप्त हो गया। आज इस स्वतंत्र भारत में यद्यपि प्रायः लोग बौद्धधर्म में दिलचस्पी ले रहे हैं, फिर भी ऐसे दुराग्रही लोगों का भी अभाव नहीं है जो समय-समय पर भुंकार किया करते हैं। आपने इस सम्बन्ध में चर्चा करते हुए दृष्टान्त के रूप में कहा कि मुझे यह देखकर बहुत दुःख होता है कि स्थानीय हिन्दी दैनिक "सन्मार्ग" में भगवान् बुद्ध के बारे में अनर्गल बातें लिखी गई हैं, जैसे यह कि भगवान् बुद्ध को कपिलवस्तु से एक साधु भगा ले गया था और वे बुद्धगया में जाकर शिवलिंग की पूजा किया करते थे। इन अनर्गल बातोंसे उक्त लेख के लेखक ने अपना अज्ञान और अशिष्टता प्रकट की है और गैर-जिम्मेदारी का परिचय दिया है, ऐसी मनोवृत्ति हितकी अपेक्षा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अहित ही करनेवाली होती हैं। अतः "सन्मार्ग" की दूषित-मनोवृत्ति सर्वदा घातक है। ऐसे प्रचारों से हमें सतर्क रहना चाहिये एवं प्रेम, मैत्री, करुणा और सज्जनता के भावों से ओत-प्रोत होना चाहिये, इसी से मानव-कल्याण सम्भव है।

नेपाली भिक्षु अमृतानन्द ने वर्तमान जनान्दोलन की चर्चा करते हुए कहा कि आज शान्ति के दूत भगवान् बुद्धके जन्मस्थान में ही अशान्ति फैली हुई है, अतः पड़ोसी भारतीयों का कर्तव्य है कि वे पीड़ित नेपाली जनता की हर प्रकार से सहायता करें।

समाज युद्ध-प्रेमी हो गया है

भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने कोरिया, चीन, तिब्बत और नेपाल की घटनाओं की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा कि आज देश, समाज—खास तौर से अखबार पढ़ा समाज—युद्ध-प्रेमी हो गया है। अखबार युद्ध के समाचार लम्बे मोटे शीर्षक में छापते हैं और समाज भी उसी को पसन्द करता है, इस प्रकार जो सामूहिक शिक्षा अखबारों द्वारा दुनिया को मिलती है, उससे संसार में शान्ति हो सके, यह मुश्किल जान पड़ता है। लोग मुझसे अक्सर कुछ बोलने को कहते हैं। तब मैं शान्ति और सद्भावना की बात कहूँ, यह व्यर्थ जान पड़ता है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है कि अभी जब शान्ति और सद्भावना की बात हो रही थी तब हमारे पत्र-प्रतिनिधि-बन्धु बिल्कुल चुपचाप बैठे हुए थे। शान्ति और सद्भावना की बात के प्रति उनकी उदासीनता ही इस बात का द्योतक है कि युद्ध-ज्वर ने हमारी जनता को ग्रस्त कर रखा है।

सभापति का भाषण

सभापति ने अपने भाषण में कहा कि भगवान् बुद्ध ने जो सिद्धान्त बताये हैं, उनको अपनाने से हमारी सभी कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी। उनकी शिक्षा केवल बौद्धों के लिए नहीं, बल्कि मानवमात्र के लिए है।

लद्दाख भारत के साथ

लामा ने आगे कहा कि कश्मीर की लड़ाई के कारण आज दुनिया के कोने-कोने में लद्दाख का नाम लिया जाने लगा है। इसमें सन्देह नहीं कि लद्दाख दूर होने से नींद में बिल्कुल बेखबर था, पर श्री नेहरू जी ने पहुँच कर वहाँ नया जीवन दिया। यद्यपि कुछ आतंक है तो भी हम डरते नहीं, क्योंकि हम जम्मू और कश्मीर के साथ हैं तथा भारत का हमारे सिर पर हाथ है।

दो प्रस्ताव

सभा में दो प्रस्ताव रखे गये। पहले प्रस्ताव को भिक्षु जगदीश काश्यप ने रखा और दूसरे को भिक्षु धर्मरक्षित ने। जिनके समर्थन क्रमशः भिक्षु धर्मरक्षित एवं श्री केशरी कुमारराय ने किये। जो सभा द्वारा स्वीकृत हुए। पहले प्रस्ताव द्वारा अजमेर के बीस हजार कोलियों को समाचार पत्रों में हरिजन लिखने पर क्षोभ प्रकट किया गया। प्रस्ताव इस प्रकार था—

"इस सभा को यह जानकर बड़ा आनन्द हुआ है कि राजस्थान के कोलिय राजपूत अपने पुराने गौरव को याद कर यह समझने लग गये हैं कि भगवान् बुद्ध से उनका कितना निकट सम्बन्ध था और वे बौद्ध धर्म को अपना रहे हैं। संकीर्ण मनोवृत्ति वाले समाचार पत्रों ने उन्हें जो 'हरिजन' लिखकर उनके मन को दुःख पहुँचाया है, इसके लिए यह सभा हार्दिक खेद प्रगट करती है। यह सभा आशा करती है कि कोलिय बन्धु अपने गौरव को पुनर्जीवित करने में दृढ़ रहेंगे।"

दूसरे प्रस्ताव द्वारा उत्तरप्रदेश में हाईस्कूलों तथा कालेजों में पालि की स्वीकृति मिलने पर हर्ष प्रकट करते हुए सरकार से उसके पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था करने की माँग की गई। प्रस्ताव इस प्रकार था।

"यह सभा उत्तर प्रदेश की सरकार को इस बात के लिए अपना हार्दिक धन्यवाद देती है कि उसने उत्तरप्रदेश के हाईस्कूलों और इण्टर की परीक्षाओं के लिए पालि की स्वीकृति दी है, परन्तु यह सभा सरकार से साग्रह अनुरोध करती है कि पालि के पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था अपने स्कूलों तथा कालेजों में भी करे।"

भिक्षु विमलशीलतिष्य के धन्यवाद-प्रदान के साथ सभा विसर्जित हुई।

प्रातःकाल मूलगन्ध कुटी विहार में मङ्गलाचरण होने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

के पश्चात् इंगलैण्ड के श्री विलियम वेट्स का प्रव्रज्या-संस्कार हुआ तथा उनका नाम विमलशीलतिष्य रखा गया। नव बजे भगवान् बुद्ध की पवित्र अस्थियों का प्रदर्शन-उद्घाटन हुआ। दोपहर में भिक्षु संघ को भोजन-दान दिया गया। दो बजे दिन में मूलगन्ध कुटी विहार से एक विशाल जुलूस निकला जो चौखण्डी स्तूप तक गया। इन सब कार्य-क्रमों के चल-चित्रों द्वारा प्रदर्शन के निमित्त सूचना विभाग की ओर से चित्र लिये गये।

दीक्षा-ग्रहण समारोह

सन्ध्या-समय प्रदीप-पूजा और अस्थि-पूजा के पश्चात् चकिया (बनारस) के दो व्यक्तियों ने बौद्ध धर्म में दीक्षा ग्रहण की। उनके नाम हैं—प्रोफेसर श्री परमानंद मौर्य, एम० ए० और डा० चतुरी सिंह। नव-दीक्षित व्यक्तियों को भिक्षु जगदीश काश्यप एवं श्री अनन्तरामचंद्र कुलकर्णी ने उपदेश तथा सत्परामर्श दिये। भिक्षु संघ ने उनकी मङ्गलकामना करते हुए सूत्रपाठ किया। इस दीक्षा-ग्रहण समारोह में बर्मा, लंका, चटगाँव, नेपाल, तिब्बत और भारत के विभिन्न प्रदेशों से पधारे बौद्ध सम्मिलित हुए थे। कोली-राजपूत हितकारिणी सभा, अजमेर के मन्त्री श्री मोहनकुमार नाथूसिंह 'तँवर' की अध्यक्षता में अजमेर से आया हुआ चार व्यक्तियों का एक सद्भावना मण्डल भी इस समारोह में सहर्ष सम्मिलित हुआ था।

उपसम्पदा-संस्कार

दूसरे दिन शुक्रवार को प्रातःकाल नव बजे स्थानीय बर्मी बौद्ध विहार में इंगलैण्ड के भिक्षु संघरक्षित का उपसम्पदा संस्कार हुआ। उपसम्पदा-संस्कार में बर्मा, चटगाँव, लंका आदि सभी देशों के बौद्ध सम्मिलित हुए थे। लद्दाख के बड़े लामा श्री बकुला ने भिक्षु संघरक्षित को अपने देश की प्रथा के अनुसार एक वस्त्र दान किया और उपसम्पदा-संस्कार का चित्र अपने देश ले जाने के लिए विशेष आग्रहपूर्वक ग्रहण किया। उपसम्पदा-संस्कार बर्मा के भदन्त ऊ कविन्द के उपाध्यायत्व में संपन्न हुआ।

महाबोधि विद्यालय का वार्षिकोत्सव—गत २४ नवम्बर को दो बजे महाबोधि-विद्यालय सारनाथ का पन्द्रहवाँ वार्षिकोत्सव बनारस के स्कूल इन्सपेक्टर की अध्यक्षता में मनाया गया। स्वागत-गान के पश्चात् छात्रों के वार्तालाप आदि हुए और पारितोषिक वितरण हुआ। अन्त में इन्सपेक्टर महोदय ने स्कूल भवन की पूर्ति पर जोर डालते हुए कहा कि शीघ्र ही इसकी पूर्ति होगी। उन्होंने अपने भाषण में छात्रों के सदाचार, अनुशासन आदि पर विशेष ध्यान देने का आग्रह किया। प्रिंसिपल के धन्यवाद प्रदान के बाद उत्सव का सारा कार्य-क्रम समाप्त हुआ।

आचार्य शासनश्री जी को उपाधि—लंका के अमरपुर निकाय के भिक्षु-संघ की ओर से आचार्य शासन श्री जी को उनके महान् त्याग, धर्म-सेवा एवं सद्धर्म-प्रचार से प्रभावित होकर उन्हें "त्रिपिटकाचार्य श्री सद्धर्म वागीश्वर" की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया गया है। यह उपाधि-पत्र एक विशेष तीर्थ-यात्री-मण्डल के साथ भेजा गया था, जो गत २४ नवम्बर की सन्ध्या को मूलगन्ध कुटी विहार में समारोह के साथ उन्हें प्रदान किया गया।

भारतीय बौद्ध संघ की बैठक—गत २५ नवम्बर को सारनाथ के बर्मी बौद्ध विहार में बर्मा के भिक्षु ऊ० कविन्द के सभापतित्व में भारतीय बौद्ध संघ की वार्षिक बैठक हुई, जिसमें नये पदाधिकारियों एवं कार्यकर्त्ताओं का निर्वाचन हुआ तथा यह निश्चय हुआ कि अगली बैठक कलकत्ता में होगी। इस बैठक में तीन महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए, जिन्हें क्रमशः भिक्षु संघरत्न एवं भिक्षु धर्मरक्षित ने रखा था—(१) वैशाख पूर्णिमा को सार्वजनिक अवकाश का दिन घोषित करने की केन्द्रिय सरकार से माँग। (२) उत्तर प्रदेश के हाईस्कूलों एवं कालेजों में पालि के पठन-पाठन की व्यवस्था के लिए प्रान्तीय सरकार से अनुरोध। (३) कोली राजपूतों के बौद्ध होने के घोषणा-पत्र के उपलक्ष में बधाई एवं उनका हार्दिक स्वागत।

डॉ० अम्बेडकर की क्रान्तिकारी घोषणा—गत २९ सितम्बर शुक्रवार को बम्बई के बुद्धविहार में हुए एक समारोह में बुद्ध-पूजा के पश्चात् भारत के विधि मंत्री डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने मराठी भाषा में भाषण देते हुए कहा—"स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् सर्वांगीण

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कल्याण की जो कामना की जाती थी, उसमें सर्वथा निराशा हुई है। जब तक चित्त शुद्ध नहीं हैं, अनैतिक तथा निंद्य-कर्म आमतौर पर किये जाते हैं, मनुष्य को मनुष्य के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए—यह न समझने के कारण समाज में भेद तथा विषमता का साम्राज्य फैला हुआ है, तब तक भारत का कल्याण होना असम्भव है। एक हजार वर्ष पूर्व भारत में एक ही धर्म था और था बौद्ध धर्म। परन्तु मुसलमानों के आक्रमण से तथा अन्य कारणों से बौद्ध धर्म नष्ट हुआ और हिन्दू धर्म का जन्म हुआ। अब भारत के अनादि धर्म अर्थात् बौद्ध धर्म को स्वीकार करने का समय आ गया है क्योंकि बौद्ध धर्म को स्वीकार किये विना भारत कभी भी वैभव-सम्पन्न नहीं होगा। मैंने इतने दिन तक राजनीति में लड़ा, अस्पृश्यों की उन्नति के लिए अदम्य परिश्रम किया और अस्पृश्यों को उनके कर्तव्य तथा सामर्थ्य की यथार्थ कल्पना दी। अब उन्हें चाहिए कि वे अपने पैरों पर खड़े हो जाँय।

मैंने अपनी शेष आयु में बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान तथा प्रसार करने के लिए संकल्प कर लिया है और मैं अपने जीवन के अन्तिम भाग में यही कार्य करूँगा।"

अपने भाषण के सिलसिले में आगे उन्होंने अस्पृश्यों को सम्बोधित करके कहा—"तुम्हें क्या करना चाहिए? यह मैं तुम्हें बताता हूँ—शराब मत पीओ। जूआ मत खेलो। व्यभिचार मत करो। इस बुद्ध मन्दिर में अपने परिवार के साथ सदा आकर पूजा करो। यहाँ के शुद्ध वातावरण में कुछ समय रहा करो। यह तुम्हारी पूर्व तैयारी होगी। इसके पश्चात् तुम लोगों को क्या करना चाहिए? यह मैंने यथासमय कहा है और भविष्य में भी कहूँगा।"

दो सौ तामिल बौद्ध हुए—गत मास में लंका के निगम्बु स्थिति बोधि-राजाराम नामक महाविहार में २०० से अधिक तामिल लोगों ने, जिनमें स्त्री, पुरुष तथा बच्चे भी सम्मिलित थे, सामूहिक रूप से बौद्ध धर्म-ग्रहण किया। उनमें से अधिकांश व्यक्ति कटुनायक हवाई अड्डे के कर्मचारी थे। उक्त अवसर पर भाषण देते हुए 'तामिल बुद्धिष्ट मिशन' के उपाध्यक्ष श्री एम० ए० अरुमुगम ने कहा कि शताब्दियों पूर्व उनके पूर्वज बौद्ध थे। किसी कारण वश बौद्ध धर्म उनके बीच से लुप्त हो गया। बौद्ध धर्म में दीक्षित होने का उनका निर्णय डा० अम्बेडकर की घोषणा का फल है। अन्त में उन्होंने कहा कि बौद्ध धर्म को ग्रहण करने में किसी तरह की राजनैतिक गुटबन्दी का भाव नहीं है।

निगम्बु के न्यायाधीश श्री बिलफ्रड विजयरत्न ने नव-दीक्षित तामिल जनता का स्वागत करते हुए कहा कि बौद्ध धर्म भारत से लंका को दिया गया सबसे मूल्यवान दायज्य है, जो लगभग २००० वर्ष प्राचीन है। लंका ने जो कुछ उन्नति की है, वह बौद्ध धर्म के ही कारण।

बर्मा सरकार द्वारा ५०,०००) का दान—हाल ही में बर्मा सरकार ने ५०,०००) का दान भारतीय महाबोधि सभा को देकर बड़ी ही उदारता दिखाई है। यह दान साँची में नव-विहार के निर्माण-कार्य में लगाया जायेगा, जहाँ भगवान् बुद्ध के दो प्रधान शिष्य सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की पवित्र अस्थियाँ रखी जायेंगी।

नई दिल्ली स्थिति बर्मी दूतावास में किए गये साधारण जलसे में भारत-स्थित बर्मा के राजदूत सर मौंगग्यी ने ५०,०००) का चेक महाबोधि सभा के दिल्ली स्थित प्रतिनिधि भिक्षु धम्माधार को भेंट किया। उस अवसर पर महाबोधि सभा के सभापति डा० श्यामप्रसाद मुखर्जी तथा स्याम देशीय भिक्षु वीरधर्मवर भी उपस्थित थे।

भिक्षु धम्माधार ने भाषण देते हुए कहा कि जो धार्मिक भावना इस उदार दान के पीछे छिपी है, वह निःसन्देह ही भारत तथा सुदूर पूर्व एशियायी बौद्ध देशों के बीच एक अटूट सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होगी। डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने बर्मा को बधाई देते हुए कहा कि बौद्ध धर्म बर्मा तथा भारत के बीच दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ हुआ। उन्होंने यह भी कहा कि राजनैतिक तथा आर्थिक प्रश्नों को छोड़कर एशिया में जहाँ कहीं भी भगवान् बुद्ध का शान्ति-सन्देश पहुँचा, उनके बीच सांस्कृतिक एवं धार्मिक सम्बन्ध सदा के लिए स्थापित हो गया। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि बर्मा तथा अन्य सब एशियायी बौद्ध देशों के प्रति भारत को

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

विशेष सहानुभूति एवं सहयोग प्रदान करना चाहिए।

बर्मा बौद्ध राष्ट्र घोषित—गत मास में बर्मा सरकार ने अपने राष्ट्र को बौद्ध राष्ट्र घोषित करने का अनुपम कार्य किया। बर्मा के प्रधान मंत्री श्री थाकिननूने उक्त प्रस्ताव पार्लियामेंट में उपस्थित किया, जो सर्व सम्मति से हर्ष के तुमुलध्वनि के साथ स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव में कहा गया था कि हमारा देश बौद्ध देश है, यद्यपि यहाँ हिन्दू, मुसलमान और ईसाई भी रहते हैं, परन्तु हम अधिक संख्या में बौद्ध हैं, हमारा व्यवहार सबके साथ एक भाँति ही होगा, किन्तु हमारी सरकार इन तीन बातों पर विशेष ध्यान देगी, जो किसी भी बौद्ध राष्ट्र के लिए अनिवार्य हैं:—

१. निज देश के साथ बाह्य देशों में बौद्ध धर्म के प्रचारकी ओर ध्यान देकर उसकी समुचित व्यवस्था करना।

२. बर्मा में बौद्ध धार्मिक कार्यों में विशेष योग देकर अपने देश में बौद्ध धर्म को शक्ति-सम्पन्न करना।

३. बौद्ध धर्म के विरुद्ध जो कोई भी कार्य हो, उसके विरुद्ध कार्य प्रारम्भ करना और बौद्ध धर्म के विद्रोहियों को पछाड़ना।

लंका को बौद्ध राष्ट्र घोषित किया जाय—लंका के सौख्य मन्त्री श्री वण्डारनायक ने अपने एक भाषण में कहा कि लंका को बौद्ध राष्ट्र घोषित किया जा। जैसा कि स्पेन, पुर्तगाल आदि देश कैथोलिक हैं, इंगलैण्ड, अमेरिका क्रिश्चियन हैं और कई एक देश इस्लामी हैं। उसी प्रकार लंका को बौद्ध देश घोषित करने में कोई आपत्ति न होनी चाहिये। आगे उन्होंने कहा कि इसका तात्पर्य यह नहीं होगा कि अल्पसंख्यकोंके साथ किसी तरह का अन्याय हो। स्वेच्छानुसार अपने-अपने धर्मों को पालन करने में उन्हें पूरी स्वतन्त्रता रहेगी। इतिहास पर दृष्टि डालते हुए उन्होंने कहा कि लगभग २००० वर्ष से बौद्ध धर्म लंका का राज्यधर्म रहा, जो अंग्रेजों के आक्रमण के समय विक्षिप्त हो गया, किन्तु सन् १८१५ की सन्धि के अनुसार बौद्ध धर्म की रक्षा के लिए शासकों को बाध्य होना पड़ा।

अन्त में उन्होंने कहा कि लंका की आबादी के दो-तिहाई लोग अब भी बौद्ध हैं और इतिहास हमें बाध्य करता है कि देश का राज्य-कार्य बौद्ध धर्म की शिक्षाओं के आधार पर हो।

जापान द्वारा बुद्ध मूर्ति की भेंट—टोक्यो समाचार समिति ने बताया है कि जापान के बौद्ध संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रधान कार्यालय के लिए भगवान् बुद्ध की एक १० फुट ऊँची मूर्ति भेंट करेंगे। इस मूर्ति को जापान के एक कलाकार ने तीन वर्ष में बनाया है। राष्ट्रसंघ-कार्यालय में भेजने से पूर्व जापान के एक बुद्ध मन्दिर में समर्पित किया जायेगा।

बौद्धाश्रम को १०,०००) का दान—जर्मनी के विद्वान् भिक्षु ज्ञानातिलोक द्वारा प्रतिष्ठित "दीपाश्रम" (आइलैण्ड-हरमिटेज़) के लिए श्री गोयस ने १०,०००) का दान दिया है। हाल ही में अनेक यूरोपीय तरुणों ने यहाँ रहकर भिक्षु-जीवन व्यतीत करने की प्रार्थना की थीं। किन्तु आर्थिकाभाव के कारण उन्हें अस्वीकार करना पड़ा था। अनुमान किया जाता है कि इस सहायता के फलस्वरूप कुछ नये छात्रों को भर्ती किया जा सकेगा। यह आश्रम लंका के दोडण्डुव नामक स्थान में है, जो ज्ञानातिलोक के अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों का केन्द्रस्थल है। जर्मनी में बौद्ध साहित्य के जन्मदाता प्रधानतया आप ही को कहा जा सकता है।

दिल्ली नगरपालिका द्वारा बुद्धमूर्ति की स्थापना—दिल्ली नगरपालिका के अध्यक्ष डा० युद्धवीर सिंह के प्रयत्न से टाउनहाल के पास क्वीन्स गार्डन में हार्डिंग पुस्तकालय के सामने भगवान् बुद्ध की एक बहुत सुन्दर मूर्ति स्थापित की गई है। जिसकी स्थापना गत मास में एक शानदार समारोह के साथ हुई। मूर्ति के आसन पर धम्मपद की कुछ गाथाएँ भी अर्थ सहित लिखी हैं।

प्रवारणोत्सव—गत २६ अक्तूबर को मलर्दाहया-स्थिति बौद्ध विहार में वर्षावास की समाप्ति पर सारनाथ तथा बनारस में रहनेवाले सभी सिंहली, बर्मी, स्यामी एवं भारतीय भिक्षुओं ने प्रवारणोत्सव मनाया। उत्सव में स्थानीय सभी बौद्ध छात्र भी सम्मिलित हुए थे। प्रातःकाल बुद्ध-वन्दना से उत्सव का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ तथा भिक्षुसंघ को भोजन-दान दिया गया। अपराह्ण में विधिवत् भिक्षुओं ने प्रवारणा किया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

और मंगलसूत्रों का पाठ हुआ। ४ बजे आचार्य शासनश्री की अध्यक्षता में सभा हुई जिसमें भारतीय बौद्धसंघ के प्रधान मंत्री भिक्षु चन्दिमा की ओर से प्रवारणोत्सव की महत्ता पर क लिखित भाषण पढ़कर सुनाया गया। उसके बाद महाबोधि सभा सारनाथ के मंत्री भदन्त संघरत्न जी का वर्षावास एवं प्रवारणा के सम्बन्ध में भाषण हुआ। आपने कहा कि आज हम सर्वदेशीय भिक्षु एकत्र हो इस समारोह के साथ प्रवारणा कर रहे हैं। यह भारत में बौद्धधर्म के प्रचार और उत्थान का द्योतक है।

इसी प्रकार प्रवारणोत्सव लखनऊ के 'बुद्ध धर्मांकुर' विहार और बुद्धपुरी के भारती वेद विद्यालय द्वारा भी बड़े समारोह के साथ मनाया गया, जिसमें भिक्षु शान्ति-रक्षित आदि ने भाग लिया था।

अजमेर में दो भिक्षुओं का स्वागत—गत मासमें भिक्षु जगदीश काश्यप और भदन्त वीरधर्मवर जी अजमेर गये थे। कोली राजपूतों ने हृदय खोलकर उनका स्वागत किया और उनके उपदेशों से लाभ उठाया। उक्त अवसर पर निम्नलिखित आठ व्यक्तियों ने विधिवत बौद्धधर्म में दीक्षा भी ग्रहण की—(१) रामसिंह छावर (२) धनसिंह चौहान (३) महेन्द्रकुमार गहरवार (४) रत्नसिंह (५) रामचन्द्र देवाय (६) रामसिंह तँवर (७) सवासिंह सिखिरवार और (८) नाथूसिंह खान्त।

नये प्रकाशन

पालि-पाठ-माला—सम्पादक : त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित। प्रकाशक : महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस। मूल्य १)

पालि के प्रारम्भिक पाठकों के लिए अभी तक पाठ्य-पुस्तकों का अभाव था, अतः प्रारम्भिक पाठकों को बड़ी कठिनाई होती थी, किन्तु इस पुस्तक से इस अभाव की पूर्ति हो गई है। इसमें कुल ३० पाठ हैं जो इस प्रकार दिये गये है, कि उन्हें प्रारम्भिक पाठकों को पढ़ने में बड़ी सुविधा होगी। प्रसन्नता की बात है कि यह पुस्तिका गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस द्वारा शास्त्री-परीक्षा के पाठ्य-क्रम में रख ली गई है और हाईस्कूल तथा इण्टर-मीडियट परीक्षा-बोर्ड, यू० पी०, इलाहाबाद ने भी इसे नवीं और दसवीं कक्षा के लिए स्वीकृति दे दी है।

थेरी-गाथाएँ—अनुवादक : भरतसिंह उपाध्याय। प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली। मूल्य १॥)

थेरी गाथा को हिन्दी में अनुवादकर हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री भरतसिंह उपाध्याय ने हिन्दी साहित्य तथा बौद्ध धर्म की अनमोल सेवा की है। मूल ग्रन्थ पालिभाषा में है, जिसमें ७३ बौद्ध भिक्षुणिओं के उद्गार ५२२ गाथाओं में सन्निहित हैं।

पुराणमतवादी लोग कहते हैं 'न स्त्रीः स्वातन्त्र्यं अर्हति' परन्तु निर्वाण या मुक्ति का मार्ग पुरुष तथा स्त्री, दोनों के लिए समान खुला है—ऐसी घोषणा कर भगवान् बुद्ध ने इस विचार-धारा के विरुद्ध जबरदस्त क्रान्ति की और स्त्री जाति को इस संसार में मनुष्य के बराबर स्थान प्रदान किया। इस दृष्टि से इन गाथाओं की आज हमारे समाज में नितान्त उपयुक्तता है। श्री भरतसिंह उपाध्याय जैसे विद्वान् और प्रातिभाशाली लेखक ने यह अनुवाद अपनी सरल, सुन्दर तथा आकर्षक शैली में कर हिन्दी के पाठकों का बड़ा ही उपकार किया है। विद्वान् अनुवादक हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। महिला विद्यालयों के पाठ्य-क्रम में "थेरी गाथाएँ" को स्थान मिलना चाहिए। विहार, उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान के शिक्षा-बोर्ड यदि इसे महिला-विद्यालयों के लिए स्वीकृत कर लें तो स्त्री-समाज के महान् कल्याण की आशा की जा सकती है।

पुस्तक के आरम्भ में श्री वियोगी हरि ने समयोचित शब्दों में 'आमुख' लिखकर पुस्तक का यथार्थ महत्व बताया है। छपाई सफाई और गेट-अप् सुन्दर हैं। यदि अगले संस्करण में अनुवाद सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ दूर कर ली जाँय तो ग्रन्थ और भी सुन्दर हो जाय। अनुवाद में प्रायः क्रिया और विभक्तियों की ओर विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया गया है, जिससे कितने ही स्थलों पर अर्थ का

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अनर्थ हो गया है। मैंने इस दृष्टि से प्रारम्भिक तीन चार गाथाओं को ही देखा है। उदाहरणार्थ, पहली गाथा के अर्थ में विद्वान् अनुवादक ने 'स्थविरी' के स्थान पर 'वत्से' लिखा है और 'अपने हाथ से बनाये हुए चीवर को ओढ़कर' लिख, भिक्षुणी-धर्म के विरुद्ध पाठ उपस्थित किया है, जहाँ भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष में यह नियम है कि कोई भी भिक्षुणी अपने हाथ के बनाये चीवर को नहीं पहन सकती, यदि पहन ले, तो नैसर्गिक प्रायश्चित होता है, वहाँ न जाने विद्वान् अनुवादक को यह अर्थ कैसे सूझा? 'तू इस शरीरमें परम शान्ति प्राप्त कर' वाक्य भी अपनी ओर से अधिक जोड़ दिया गया है जिसकी कोई आवश्यकता न थी। ऐसे ही दूसरी गाथा में—"सब श्रृंखलाओं" और तीसरी में "तू पूर्णता प्राप्त कर"। क्रियाओं पर ध्यान न देकर "करो' के स्थान पर 'कर देगी' 'भावना करो' के स्थान पर "विकास करेगी' आदि आदि लिखा गया है। अनुवाद सम्बन्धी सभी त्रुटियों को यहाँ देना सम्भव नहीं है। मैंने केवल तीन गाथाओं के अर्थों का ही यहाँ वर्णन किया है। प्रूफ सम्बन्धी भी कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं।

बुद्ध और बौद्ध साधक—लेखक और प्रकाशक उपर्युक्त ही। मूल्य १॥) पृष्ठ संख्या १२९।

इस ग्रन्थ के विद्वान् लेखक श्री भरतसिंह उपाध्याय ने अपनी इस कृति से बुद्ध-शासन की अनमोल सेवा की है। इस कृति के लिए वे हमारे विशेष रूप से अभिनन्दनीय हैं। इस ग्रन्थ में बुद्ध के स्वभाव व जीवन की विशेषताएँ, भगवान् बुद्ध 'तथागत क्यों कहलाते हैं? और तथागत का ईर्यापथ—ये तीन लेख भगवान् के सम्बन्ध में अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से लिखे गये हैं। इनके अतिरिक्त प्रभावशाली एवं सुमधुर भाषा में धर्म सेनापति सारिपुत्र, आनन्द, अंगुलिमाल, वक्कुल स्थविर, अनाथपिण्डिक, महाप्रजापतिगोतमी, पटाचारा, अम्बपाली तथा खुज्जुत्तरा के पवित्र जीवन चरित्र दिये गये हैं। सभी जीवन चरित्र आकर्षित करने वाले एवं श्रद्धा बढ़ाने वाले हैं। पुस्तक का विषय जैसा अत्यन्त शुद्ध और उदात्त है, वैसा ही लेखक ने अपनी सुन्दर, सीधी तथा प्रभावशाली शैली से इसे और भी महत्वपूर्ण बना दिया है।

हाँ, हमें केवल एक कथा के सम्बन्ध में कहना है, जो पहले लेखमें दी गई है, और वह है चुल्लपन्थक की कथा (पृष्ठ ५)। विद्वान् लेखक को इस कथा में सुधार कर लेना अपेक्षित होगा, कथा लिखने में विद्वान् लेखक को भ्रम हो गया है और उन्होंने "एकबार घर से अपमान पूर्वक निकाला हुआ व्यक्ति" लिख दिया है। 'पादपुंछनि' का अर्थ यहाँ "पैर पोंछने के लिए अँगोछा" नहीं होता।

—अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी

दी बुद्धिष्ट वर्ल्ड—(साप्ताहिक-पत्र, प्रकाशक: टन ल्हे औंग, पो० बाक्स ७६३, कोलम्बो, सीलोन (लंका) वार्षिक मूल्य १५)

यह अँग्रेजी का साप्ताहिक पत्र है, जो गत नवम्बर मास से प्रकाशित हो रहा है। इसका उद्देश्य विश्व के सभी बौद्धों में संगठन पैदा करना एवं सब के समाचारों से परिचित कराना है। हम इसके स्वागत के साथ-दीर्घ जीवन की कामना करते हैं।

"THE BUDDHIST WORLD."

Published
Every other Wednesday from
Colombo.

The latest addition to the family of newspapers exclusively devoted to the propagation of Buddhism in its Rational Approach to the Problems of Life.

Annual Subscription :-Rupees. 15/-

Apply for particulars to :—
Tun Hla Aung,
Managing Editor,
P. O. Box. No. 763,
Colombo Ceylon.

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

'जीवन-साहित्य'

का

आगामी विशेषांक

'प्राकृतिक चिकित्सा-अंक'

अपने पिछले विशेषांकों की परम्परा और प्रतिष्ठा के अनुरूप ही होगा। प्राकृतिक चिकित्सा को गांधीजी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया था। इसमें सन्देह नहीं कि प्राकृतिक रहन-सहन के द्वारा ही हम नीरोग रह सकते हैं और दीर्घजीवी हो सकते हैं। यदि हमें जानकारी हो तो रोग होने पर हम मिट्टी, जल आदि प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तुओं के प्रयोग और उपवास आदि की मदद से सहज ही लाभान्वित हो सकते हैं।

इस विशेषांक

में

पाठकों को स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक विषयों पर बहुत ही उपयोगी सामग्री मिलेगी, जिसे पढ़कर और उसके अनुसार आचरण करके पाठक अनेक रोगों से बच सकेंगे।

हमारे 'सर्वोदय' और 'विश्वशांति' विशेषांकों की विद्वानों, नेताओं और सामान्य पाठकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। 'प्राकृतिक चिकित्सा-अंक' उनसे भी बढ़कर हो, ऐसा हमारा प्रयत्न है। लगभग १०० पृष्ठों के इस विशेषांक के लिए ग्राहकों को अतिरिक्त कुछ भी नहीं देना पड़ेगा।

यदि आप 'जीवन-साहित्य' के ग्राहक नहीं हैं तो चार रुपये भेजकर शीघ्र ही ग्राहक बन जाने की कृपा करें, जिससे जनवरी के अन्त में या फरवरी के आरम्भ में प्रकाशित होनेवाले इस विशेषांक का लाभ ले सकें, अन्यथा इस अकेले विशेषांक के लिए आपको लगभग डेढ़ रुपया खर्च करना होगा। वैसे चार रुपये में आपको इस विशेषांक के साथ-साथ वर्ष भर 'जीवन-साहित्य' मिलता रहेगा। मण्डल की पुस्तकें रियायती मूल्य में मिलेंगी सो अलग। सन् १९५१ की 'गांधी-डायरी' की एक प्रति भी भेंट की जायगी।

व्यवस्थापक

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

"धर्म-दूत" के नियम

१—धर्मदूत भारतीय महाबोधि सभाका हिन्दी मासिक मुखपत्र है। "धर्मदूत" प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।

३—पत्रव्यवहार करते समय ग्राहक संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिए।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने या न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता या लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिनका लेख व कविता छपेगी, वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।

६—"धर्मदूत" में केवल बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।

७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

८—"धर्म दूत" का वार्षिक मूल्य ३) और आजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक—
"धर्मदूत" सारनाथ (बनारस)

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

श्री वीरेन्द्रकुमार के कलामय कृतित्व का अनुपम प्रतीक:—

मुक्तिदूत ४।।)

❀ उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है..........मर्मज्ञों ने मुक्तकण्ठ से प्रसंशा की है।

उर्दू काव्य के महान मर्मज्ञ श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय की दीर्घकालव्यापी साधना:—

शेर-ओ-शायरी ८)

❀ संग्रह की पंक्ति-पंक्ति से संकलयिता की अन्तर्दृष्टि और गम्भीर अध्ययन का परिचय मिलता है। हिन्दी में यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है।

विदग्ध और विलक्षण साहित्यकार श्री द्विवेदी की जीवन झांकी—

पथचिह्न २)

❀ मनोरम भाषा, मर्मस्पर्शी शैली........ लेखक ने पंक्ति-पंक्ति पर अपना हृदय उधेड़ दिया है

प्रबुद्ध विद्वान् और ओजस्वी ग्रंथकार डा० जगदीशचन्द्र जैन की प्रासादिक कृति:—

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ ३)

❀ जनपरम्परा के मनोरंजक उपाख्यान...... शैली सरल और सुबोध......

जैन शासन ४।)

❀ जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन करनेवाली सुन्दर कलाकृति।

कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न २)

❀ कुन्दकुन्द स्वामी के पंचायिस्तकाय, प्रवचनसार और समयसार इन तीन महान् आध्यात्मिक ग्रन्थों का हिन्दी में विषय परिचय।

अन्य पुस्तकों के लिए बड़ा सूचीपत्र मंगाइये।

पता:—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस ४

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हिन्दी में बौद्ध-धर्म की पुस्तकें

भगवान् बुद्ध का जीवन चरित्र　२)
बुद्ध और बौद्ध धर्म - आचार्य श्रीचतुरसेन शास्त्री ३)
दीघनिकाय—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन　६)
मज्झिम निकाय— ,, ,,　८)
विनयपिटक — ,, ,,　८)
पालि महाव्याकरण - भिक्षु जगदीश काश्यप　४॥)
धम्मपद - अवधकिशोर नारायण　१॥)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा - श्री देवमित्त धर्मपाल　।-)
बोधिद्रुम (कविता) - सुमन वात्स्यायन　।=)
तथागत - आनन्द कौसल्यायन　१॥)
बुद्ध और उनके अनुचर - आनन्द कौसल्यायन　१॥।)
पञ्चशील और बुद्ध-वन्दना— बोधानन्दस्थविर　=)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरञ्जन प्र०　-)
भगवान् बुद्ध　आनन्द कौसल्यायन　=)
जातक भाग १, २ और ३ ,,　७॥), ७॥), १०)
बुद्ध चित्रावली　७॥)
सरल पालि शिक्षा - भिक्षु सद्धातिस्स　१॥)
पालि धातुरूपावलि　॥=)
बौद्ध धर्म सवाल-जवाब (उर्दू में)　।=)
सुत्तनिपात - भिक्षु धर्मरत्न　१)
खुद्दकपाठ - ,,　।)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय　१॥)
बुद्धकीर्त्तन—प्रेमसिंह चौहान　१॥)
बुद्धार्चन　प्रेमसिंह चौहान　।)
बुद्ध भगवान् और छत्ता — जगतनारायण　।=)
भगवान् बुद्ध ने कहा था — सुमन वात्स्यायन　।=)
बौद्धचर्य्या-पद्धति— भदन्त बोधानन्द　१॥)

श्री गौतमबुद्ध जी—जगतनारायण　।=
भगवान् गौतम बुद्ध - स्व० पं० ईश्वरी प्र० शर्मा ॥=
बुद्धदेव - शरत कुमार राय　१।
सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन　पं० विश्वनाथ शास्त्री ।
अम्बपाली - बेनीपुरी
जो लिखना पड़ा - आनन्द कौसल्यायन
गौतमहंस किसका ?　।=
वार्तिकालंकार - राहुल सांकृत्यायन
तथागत वा प्रथम उपदेश - भिक्षु धर्मरक्षित
बौद्ध-शिशुबोध— ,, ,,
तेल कटाह गाथा — ,, ,,
सारनाथ-दिग्दर्शन — ,, ,,
कुशीनगर का इतिहास — ,, ,,
पालि-पाठ-माला— ,, ,,
जाति भेद और बुद्ध — ,, ,,
ब्राह्मणधम्मिय सुत— ,, ,,
पालि जातकावाली - बटुकनाथ शर्मा एम० ए०
बुद्ध-शतकम् —आनन्द कौसल्यायन
बुद्धवचन — ,, ,,
महापरिनिर्वाण सुत्त— भिक्षु ऊ कित्तिमा
बुद्ध चरित प्रथम और दूसरा भाग, २॥, १॥)
हर्षचरित (दो भाग) सूर्यनारायण चौधरी
बौद्ध-दर्शन मीमांसा— बलदेव उपाध्याय
भारतीय दर्शन— ,, ,,
बौद्ध-दर्शन अभिधम्मत्थ सङ्गहो
सौन्दरनन्द काव्य — सूर्यनारायण चौधरी
ब्रह्मजाल सुत्त —(मतों का जंजाल)

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

प्रकाशक—धर्मलोक, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम प्रकाश कपूर, ज्ञान मण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

बौद्धधर्म

व्यवस्थापक, गुरुकुल कांगड़ी

बौद्ध धर्म प्राचीन भारतीय संस्कृति की खान से निकला एक हीरा है। यह भारत के ताज का सबसे जगमगाता हुआ रत्न है। 'जीवन के सिद्धान्त' को भगवान् बुद्ध ने संसार के सम्मुख इस प्रकार उपस्थित किया, जिससे भारत को सम्पूर्ण संसार में अनन्तकाल के लिये गौरव प्राप्त हुआ। वह ऐसा उच्च गौरव है जो किसी सामरिक विजय अथवा सामुद्रिक श्रेष्ठता से कभी भी नहीं प्राप्त किया जा सकता। मनुष्य न तो बाह्य रीति-रिवाजों से ही अपनी रक्षा कर सकता है और न तो किसी कष्टप्रद यौगिक क्रिया ही से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। वह केवल सम्यक् विचार, सम्यक् वाणी और सम्यक् कर्म से ही अपने को बचा सकता है। जीवन के रहस्य का प्रश्न— मैं समझता हूँ भगवान् बुद्ध ने ही भली प्रकार समझा और समझाया। इस पवित्र जयन्ती के दिन हम लोगों को मन, वचन एवं कर्म से हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिये। हिंसा न करना बौद्ध धर्म' की एक महान शिक्षा है।

यदि हम कभी कोई गलती करें तो चाहिये कि उसके लिये दुःखी हों क्योंकि ऐसा करने से हममें पवित्रता आती है और पुनः वैसी गलती करने से बचते हैं।

श्रीराजगोपालाचारी

वर्ष १४
अंक ५
श्रावण
बु० सं० २४९३
वि० सं० २००६
ई० सं० १९४९
अगस्त
वार्षिक मूल्य २)
आजीवन ५०)
एक अङ्क ≈)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

समालोचनार्थ परिवर्तनार्थ

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ
१ बुद्ध वचनामृत	(उदान से)	...	१०७
२ उपसम्पदा संस्कार—चीन में	(प्र० अनुकूलचन्द्र बनर्जी एम० ए० बी० एल० पी० एच० डी० कलकत्ता)	...	१०८
३ मार विजय	(कुमारी विद्या)	...	११०
४ उन्नति के छः मार्ग	(आचार्य श्री शासन श्रीमहास्थविर)	...	११३
५ बुद्ध प्रतिमा के प्रति	(भुवनेश्वरी प्रताप श्रीवास्तव)	...	११६
६ भारत का राष्ट्र धर्म	(अनागारिका अनुला)	...	११९
७ बाला संघ	(रामबचन सिंह—"आनन्द")	...	१२१
८ वह प्रव्रजित क्यों हुआ !	(रुद्रराज शाक्य, नेपाली छात्र)	...	२२२
९ सम्पादकीय		...	१२४
१० बौद्ध जगत		...	१२५
११ नये प्रकाशन		...	१२८

विशुद्ध भारतीयत्व का अमर सन्देश लेकर
समाज में जागृति की नवज्योति जगाने वाला
बिहार का एक मात्र प्रमुख हिन्दी साप्ताहिक

प्र व र्त क

प्रत्येक शुक्रवार को प्रकाशित

उच्च कोटि के लेख, मनोहर कहानियाँ, सुन्दर कविताएँ, सामयिक राजनीति पर निष्पक्ष विचार, देश विदेश के चुने हुए समाचार आदि के लिये

आज ही इसके ग्राहक बनिये

वार्षिक शुल्क ६) अर्ध वार्षिक ५) एक प्रति का ≡)

सर्वत्र अभिकर्ताओं (एजेन्टों) की आवश्यकता है

विज्ञापन के दर के लिये भी लिखिये

नोट—नमूना के लिये तीन आने का डाक टिकट भेजना आवश्यक है

व्यवस्थापक—
प्रवर्तक कार्यालय, कदमकुआँ पटना।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

"भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोकपर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १४	सारनाथ, अगस्त	बु० सं० २४९३ / ई० सं० १९४९	अङ्क ५

बुद्धवचनामृत

"जो सन्तुष्ट और बुद्धधर्म का ज्ञानी है, उसी को यथार्थतः इस संसार में सुख है।"

"संसार में अनासक्त होना और अपने कामों को जीत लेना, आत्मभाव का जो नाश कर देना है, वही सुख और परम सुख है।"

"जो सांसारिक काम-सुख हैं, और जो तृष्णा के क्षीण होने से दिव्य सुख होता है, उनमें यह उसकी सोलहवीं कला भर भी नहीं है।"

"जिस ज्ञानी और पण्डित पुरुष को कुछ नहीं है, उसे ही यथार्थ में सुख है। देखो! सांसारिक जीव कैसा बझा रहता है। एक मनुष्य दूसरे के प्रति बन्धन होता है।"

"देवता या मनुष्य जो संसार से प्रेम कर लिपटे रहते हैं, पाप और दुःख में पड़, वे मृत्युराज के वश में चले आते हैं। जो रात और दिन सचेत रह प्रेम को छोड़ते हैं' वे पाप के मूल को खनते हैं, मृत्यु के फन्दे में नहीं पड़ते।"

"प्रमत्त (मूर्ख) लोग बुरे को अच्छे के रूप में, प्रिय के रूप में अप्रिय को, दुःख को सुख के रूप में समझा करते हैं।"

"जिसके भीतर कुछ मैल नहीं है, जो लाभ—अलाभ के द्वन्द्व से ऊपर उठ गया है; उस निर्भय, सुखी और शोक रहित मनुष्य को देवता भी नहीं समझ सकते।"

"जिसने काम रूपी कण्टक, क्रोध और हिंसा सभी को जीत लिया है, वह पर्वत के ऐसा अचल रहता है, उस व्यक्ति को सुख-दुख नहीं सताते।"

—उदान से

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उपसम्पदा संस्कार--चीनमें

(ले० डा० अनुकूलचन्द्र बनर्जी एम०ए०बी० एल० पी० एच० डी० प्राध्यापक, पालि विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

(कोई भी बौद्ध गृहस्थ जब भिक्षु संघ में सम्मिलित होना चाहता है तो उसे बौद्ध-धर्म के नियमों के अनुसार कुछ विशेष कर्म करने पड़ते हैं तदनन्तर भिक्षु संघ उस व्यक्ति को संघ में स्वीकार करता है और तब वह भिक्षु जैसा जीवन व्यतीत कर सकता है। इसी संस्कार को उपसम्पदा कहते हैं। उपसम्पदा के नियम बौद्ध ग्रन्थों में दिये गये हैं। विनय-पिटक में इन नियमों का सविस्तार वर्णन है। अतः प्रायः सभी बौद्ध देशों में इस संस्कार की विधि एक सी ही है परन्तु चीन में कुछ विशेष भिन्नता है जिसका कारण देश, काल की भिन्नता है। विद्वान लेखक ने प्रस्तुत लेख में अच्छा वर्णन किया है जो हमारे पाठकों के लिये अवश्य ज्ञानवर्द्धक होगा—सं०)

भारत तथा अन्य बौद्ध देशों के विपरीत चीन में तीन विशेष प्रकार की विधियां हैं जिसे एक गृहस्थ को भिक्षु होने के लिये पालन करना पड़ता है। ये विधियां वास्तव में भिक्षु बनने की कठोर परीक्षायें ही हैं। विधियां ये हैं:—(१) शा-मि-चेह (उपासक संवर) (२) पि-चिउ-चेह (भिक्षुसंवर) (३) पु०-सा-चेह (बोधिसत्व संवर)।

(१) शा-मि-चेह (उपासक संवर) कर्म एक बौद्ध गृहस्थ को शा-मेन् अर्थात् श्रमण बनाता है। यह कर्म 'प्रवज्या संस्कार' जैसा ही है। इस कर्म के दो भाग हैं। प्रथम भाग में तो उपासक पञ्चशील को ग्रहण करता है और दूसरे भाग में शेष पांच शिक्षा पद को। पच्चशील ये हैं—पु-शा-शेङ (किसी जीव की हिंसा न करना), पु-ताउ-तो (चोरी से विरत रहना), पु-सेह्-यिन् (व्यभिचार न करना), पु-वैङ-यि (झूठ न बोलना) और पु-यिन्-चिउ (मदिरा आदि से विरत रहना)। 'चिआओ-चेङ-फा-शिउ' में इन निषिद्ध कर्मों का विशेष विवरण है और इनके विरुद्ध आचरण करने के फलों का भी विशद् वर्णन किया हुआ है। जो कट्टर उपासक (शाउ-बु-चेह्-ति) हैं वे भी इस कर्म में प्रायः इसलिये सम्मिलित हो जाते हैं कि जिससे वे शास्ता के प्रति सदा सत्य बने रहें। इस समय चीन में प्रायः बहुत बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष इस संस्कार में सम्मिलित होते हैं और पञ्च-शील ग्रहण करते हैं। तदनन्तर उनको यह सनद भी दी जाती है कि उनका धर्म में अटूट विश्वास है और बुद्ध धर्म सङ्घ के प्रति श्रद्धा है। मैं जहां तक समझता हूं चीन में इस समय में भी ऐसे व्यक्तियों की बिलकुल कमी नहीं है जो कि अपना जीवन धर्म के कार्यों में लगा सकें।

शा-मि-चेह (उपासक संवर) के दूसरे भाग में शेष पांच शिक्षापदों को ग्रहण करना पड़ता है। यह वही करते हैं जो पूर्ण रूप से दीक्षित होना चाहते हैं। वे शिक्षा पद ये हैं:—हुआ-यिंग् (गन्ध-पुष्प-माला आदि से विरत रहना), को चेङ् (नृत्य गीत से विरत रहना), ता-चुआङ (उच्चासन या महासन से विरत रहना,), फे-शिह्-शिह् (विकाल भोजन से विरत रहना), और चो-सै-पाओ (सोना-चाँदी ग्रहण करने से वि त रहना । इसके अतिरिक्त २५० प्रातिमोक्ष के नियमों का भी पालन करना पड़ता है। इस प्रकार शा-मि-चेह् (उपासक-संवर) समाप्त होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शा-मेन (श्रमण) के लिये दस शिक्षापद निर्धारित हैं और शा-मि (उपासक) के लिये केवल प्रथम पांच। जो कट्टर धर्मावलम्बी हैं। वे प्रथम आठ शिक्षा पदों को भी ग्रहण करते हैं।

यह कर्म कई घण्टों में समाप्त होता है कारण यह कि प्रत्येक शिक्षा-पदों एवं २५० प्रातिमोक्ष के नियमों का एक एक करके प्रवचन होता है और प्रत्येक को ग्रहण करनेवाला स्वीकार करता चलता है। इसके अनन्तर उपासक को बौद्ध-भिक्षु का चिया-शा (चीवर) चि (आसन) चिन-पेन (भिक्षा पात्र) प्रदान किया जाता है। जो केवल पञ्चशील ही ग्रहण करते हैं (शाउ-बु-चेह्-ति) उनको भिक्षा-पात्र नहीं मिलता है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

(२) पि-चिउ-चेह् (भिक्षुसंवर) कर्म श्रमण को भिक्षु (पि-चिउ) बनाता है और यही 'उपसम्पदा' कर्म है। यह कर्म शा-मि-चेह् (उपासक संवर) के एक या दो दिन बाद होता है। इस कर्म के करने के पहले श्रमण को स्नानादि करके नवीन वस्त्र धारण करना पड़ता है।

चीन में प्रत्येक अच्छे भिक्षु सङ्घ के मठ में एक 'हाल' होता है और उस हाल में पूजा आदि के लिये अलग एक चबूतरा होता है। पि-चिउ-चेह (भिक्षु संवर) कर्म इसी 'हाल' में होता है। इस हाल में उपसम्पदा कर्म को सम्पादित करने के लिये बड़े-बूढ़े भिक्षु, गुरु एवं सात पर्यवेक्षक एक साथ प्रवेश करते हैं और उनके पहुँचते ही कार्य प्रारम्भ हो जाता है। सर्वप्रथम फो ('बुद्धां') पु-सास (बोधिसत्वां) सु-शिह (प्रमुख ऋषियों) को स्तुति में आमंत्रित किया जाता है। यहां पर यह स्मरण रखने की बात है कि ऐसी स्तुति या मंत्रणा शास्ता बुद्ध की शिक्षाओं के विरुद्ध है। बौद्ध धर्म कभी भी बाह्य शक्तियों में इस प्रकार विश्वास नहीं करता और न तो उनके अनुभव से कुछ प्राप्त किया जाय—ऐसा ही मानता है।

इस स्तुति के उपरान्त वह स्थल परम पवित्र माना जाता है अतः श्रमण एवं कुछ थोड़े से भिक्षुओं के अतिरिक्त वहां अन्य किसी को रहने नहीं दिया जाता। दूसरे लोग हटा दिये जाते हैं और द्वार पर यह कड़ी चेतावनी रहती है। कोई भी बाहरी व्यक्ति प्रवेश न करें। तुरन्त इसके बाद वह व्यक्ति जिसकी उपसम्पदा होने को है उस चबूतरे पर चढ़ता है और सिर जमीन में टेक कर मूर्ति का अभिवादन करता है। तदनन्तर फन्-वैङ चिङ (ब्रह्मजाल सूत्र) की ५८ शिक्षाओं का एक-एक करके प्रवचन होता है और श्रमण प्रत्येक शिक्षा की स्वीकृति देता जाता है। अब पि-चिउ-चेह (भिक्षु संवर) कर्म समाप्त होता है।

(३) पु-सा-चेह् (बोधिसत्व-संवर) इस संस्कार का अन्तिम कर्म है और यह कर्म प्रायः 'भिक्षु संवर कर्म से आठ या दस दिन बाद प्रारम्भ होता है। यह वह कर्म है जो भिक्षु को बोधिसत्व पद की ओर ले जाता है ऐसा यहाँ के लोगों का विश्वास है जो कि अर्हत् वाद से बिल्कुल भिन्न है। यह कर्म इतना कठोर एवं कष्ट साध्य है कि पिछले वर्णित दोनों कर्म उसके सामने कुछ भी नहीं हैं। इस कर्म में मुण्ड मस्तक पर अनेक निशान अग्नि से जला कर बना दिये जाते हैं।

इस कर्म के प्रारम्भ में भी वैसे ही जैसे भिक्षु संवर में, भिक्षु को स्वीकृति का पाठ करना पड़ता है तदनन्तर बाल बनवा कर स्नानादि कर के नवीन वस्त्र धारण करना पड़ता है। तब वह इस हाल में या चबूतरे पर आसन बिछा कर घुटने के बल हाथ जोड़ कर बैठ जाता है। और तब कोई बड़ा बूढ़ा भिक्षु उसके घुटे हुए सिर पर बारह निशान स्याही से बना देता है। ऐसे चिन्ह हमें भिन्न भिन्न संख्या में ३ से १८ तक चीन में भिक्षुओं के सिर पर देखने को मिलते हैं—ये चिन्ह उनके इस भावना को प्रदर्शित करते हैं कि धर्म के लिये वे कितना कम या अधिक कष्ट सह सकते हैं।

अब दागने की क्रिया प्रारम्भ होती है। कोई तो उस व्यक्ति का सिर खूब कड़ाई से पकड़ कर उगलियों द्वारा दबा कर मूर्ति की ओर रखता है तो कोई हाथ पकड़े रहता है और कुछ लोग उसके पीछे धूप जला कर खड़े हो जाते हैं। यह कर्म कराने वाला भिक्षु उसके सिर पर उसी निशान पर जलते हुए नोकीले कोयले को लाह से सटा कर रख देता है। जलता हुआ कोयला थोड़ी ही देर में लाह को जला कर नीचे खोपड़ी पर पहुँच जाता है—यह क्रिया प्रायः एक मिनट तक रहती है। तब तक वह व्यक्ति जिसके सिर पर यह कोयला रखा जाता है तथा अन्य उपस्थित लोग बड़ी ही जोर से यह कहते हुए प्रार्थना करते हैं—"कुयेइ-इ-फो, कुयेइ-इ-फा, कुयेइ-इ-सेङ्" (अर्थात्-मैं तुम्हारी शरण जाता हूँ। तुम हमारे शास्ता हो ऐ शाक्यमुनि बुद्ध!)। तदनन्तर नगाड़ों की गड़गड़ाहट के बीच वह कोयले की जलती राख सिर पर-जोर से दबा दी जाती है। और तब इस असह्य वेदना को कम करने के लिए उस राख पर शलजम के टुकड़े रख दिये जाते हैं। अन्त में कोई भिक्षु उस राख को सिर से पोछ कर गिरा देता है। दागने से कष्ट पाने के अतिरिक्त कभी कभी बहुत बड़े बड़े खतरे उठाने पड़ते हैं जैसे अन्धा हो जाना, खून में जहर पैदा हो जाना, अनिद्रा, सिर फूल जाना आदि। इन सब से बचने के लिये पहले ही से प्रबन्ध कर लिया जाता है। जैसे निद्रा या आलस्य

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से बचने के लिये उस भिक्षु को यह छूट रहती है मठ में जहाँ कहीं भी चाहे जब टहल सकता है।

वे सभी भिक्षु जिनका सिर दागा जाता है असह्य शारीरिक वेदना के बावजूद भी बड़ी ही वहादुरी पूर्वक उसे सहन करते हैं। उनके मुख से सी भी नहीं निकलती है। कोई भी भिक्षु जब वह दागा जाता है तो वह कभी दागने से इन्कार नहीं करता है और मृतवत् होकर घुटने के बल चुपचाप बैठ जाता है।

पु-सा-चेह (बोधिसत्वसंवर) कर्म दागने के दूसरे ही दिन होता है। तब उस व्यक्ति को शोउ-पुसा-चेह अर्थात् बोधिसत्व की शिक्षाओं को ग्रहण करना पड़ता है। इस कर्म के थोड़ी ही देर बाद 'चिन्-इ-मु-वेन्' अर्थात् 'बौद्ध मठाधीश का दंड' नामक कर्म होता है। इस कर्म में उस दंड को दाहिने हाथ की दूसरी और तीसरी उँगली से छूना पड़ता है। इसका तात्पर्य यह होता है कि वह व्यक्ति शास्ता के धर्म प्रचार में दृढ़-प्रतिज्ञ है। और अब यह पु-सा-चेह् (बोधिसत्वसंवर) कर्म समाप्त होता है।

इसके अतिरिक्त दो और छोटे छोटे कर्म भी होते हैं। एक तो नये भिक्षुओं को प्रमाण-पत्र वितरित करता है और दूसरा प्रमाण-पत्र प्राप्त किये हुए भिक्षुओं की मठ-से विदाई।

उपर्युक्त वर्णन से विदित होगया होगा कि उपसम्पदा के तीन भाग हैं जिसमें तीसरा भाग अर्थात् पु-सा-चेह् (बोधिसत्वसंवर) बड़ा ही विचित्र है। इस कर्म का किसी भी अन्य बौद्ध देश में प्रचार नहीं है। यह विशुद्ध महायान सम्बन्धी है और यह एक ऐसा आदर्श है जिसके लिये प्रत्येक महायानी प्रयत्न करता है। पु-सा-चेह् (बोधिसत्व संवर,) की भावना वास्तव में झलक भर ही है और इसका प्रतिपादन भी फैन-वैङ्-चिङ् (ब्रह्मजाल सूत्र) में मिलता है जिसे महायानी अपना 'विनय' मानते हैं।

मार-विजय

कुमारी विद्या

रंग विरंगी चुनरी पहिने,
घनमाला जब घिर आई;
वरुणा के निर्मल अञ्चल में,
विश्व-माधुरी मुस्काई।
इस सघन रजनि की छाया में,
यौवन का मादक भार लिये;
उच्छृङ्खल-गति की माया में,
अनुरोध भरा अभिसार लिये।
उन्मत्त बनी-सी सुन्दरियाँ,
आईं उनको विचलित करने;
पामर अन्तक की हार हुई,
ज्ञानामृत बूँद लगी झरने।
विजयी हुए तथागत उस क्षण—
गूँज उठा अभिनव संगीत
तमस्-जाल में प्रभा-पुञ्ज का,
सृजन हुआ ले अनुपम जीत।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वार्षिक मूल्य ६॥) **कृषि-संसार** एक प्रति ।=)

होशियार किसान हमेशा कृषिसंसार पढ़ते हैं।

सभी प्रान्तों की सरकारों द्वारा स्कूलों और लायब्रेरियों औरसहकारी समितियों के लिये स्वीकृत

स्थायी ग्राहकों को मुफ्त **अधिक उत्पादन विशेषांक** मूल्य १)

कम्पोस्ट विशेषांक १।) समाप्त

फ़ौरन ६॥) भेजकर स्थायी ग्राहक बनिये

गन्ना विशेषांक १॥) थोड़ी प्रतियां शेष

पताः—मैनेजर—'कृषि-संसार' कार्यालय, बिजनौर (यू० पी०)

भारत की पुण्य नगरी काशी से निकलनेवाला सब से पुराना नेपाल राज्य और स्वतंत्र भारत का

अपने ढंग का एकमात्र सचित्र नेपाली मासिक पत्र

'उदय'

नेपाली मात्र का अपना राष्ट्रीय और साहित्यिक पत्र है।

नेपाली भाषा-भाषी बन्धुओं का, नेपाली राष्ट्र भाषा में स्वतंत्र भारत से निकलनेवाला सब से पुराना यही एक मासिक पत्र है जो गत् १२ वर्षों से अपने पाठकों की सेवा में संलग्न रहता है।

'उदय'

में ज्ञान, विज्ञान, जीवनी, समाज-साहित्य, राजनीति, कहानी, कविता एवं नेपाल आदि जगहों का समाचार का समावेश रहता है इससे पाठक इसे पढ़ने के लिए हमेशा लालायित रहते हैं।

'उदय'

में विज्ञापन देने से आप के व्यापार का प्रचार बढ़ सकता है और 'उदय' अपने सहयोग द्वारा हर तरह आपकी सेवा करने की इच्छा रखता है। विज्ञापन तथा छपाई दर के लिये पूछताछ करें।

पताः—उदय कार्यालय, २५।६७, चौखम्बा, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
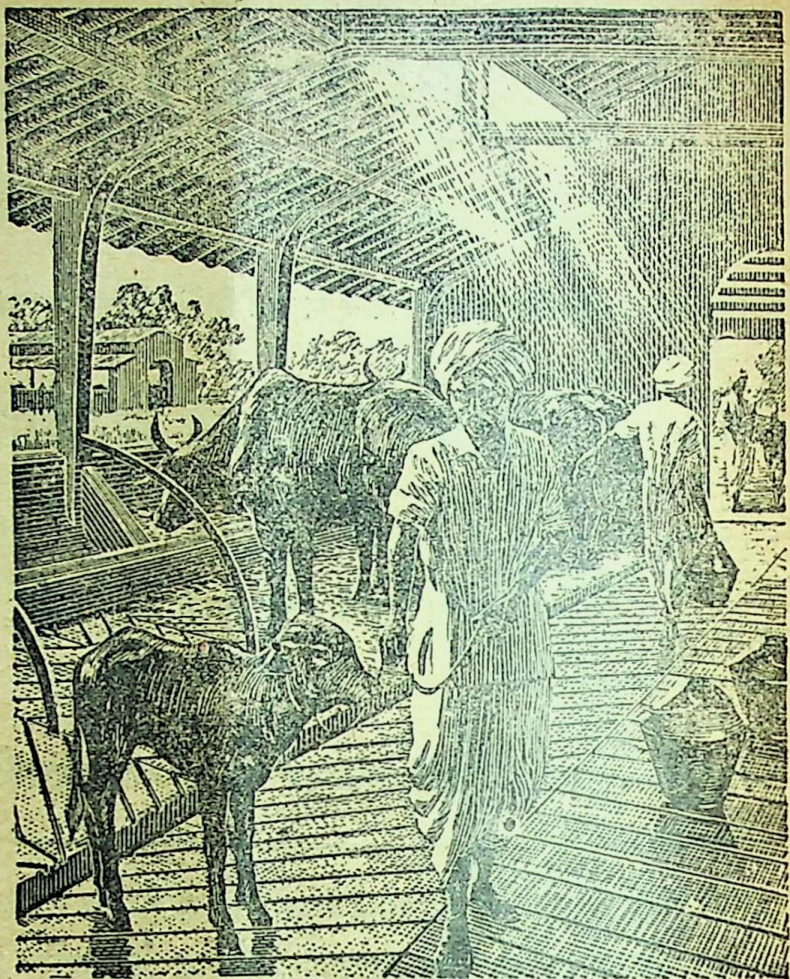
आधुनिक गौशाला

आधुनिक गोशाला

पवित्र और ताज़ा दूध जनता के स्वास्थ्य रक्षा के लिए परम आवश्यक है। इस लिए गोशालाएँ साफ़ सुथरी और स्वास्थ्य कारक होनी चाहिएँ। सीमेंट कनक्रीट के अतिरिक्त और कौन सा ऐसा मसाला है जो आसानी से सील और गंदगी को दूर रख सके?

कनक्रीट की ज़मीन चिकनी होती है–इस में कोई छेद नहीं रहने पाते जिन में कीटाणु पैदा हो सकें और न ही गीलापन इन को खराब कर सकता है। इनका पहला खर्च कम होता है और फिर भी कनक्रीट की बनी गोशालाएँ टिकाऊ होती हैं। स्मरण रक्खें "सुथरी और सुखद गोशाला अधिक और बढ़िया दूध पैदा कर के अपने मूल्य को चुका देंगी"।

अधिक जानकारी के लिए–कान्क्रीट एसोसीयेशन आफ़ इंडिया, ८१-८४ क्वीनज़वे नया दिल्ली।

दी सीमेन्ट मार्केटिंग कम्पनी आफ़ इंडिया लीमीटेड

एसीसी सीमेन्ट के डिस्ट्रीब्युटर्स

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उन्नति के छः मार्ग

(आचार्य श्री शासन श्रीमहास्थविर)

संसार के सभी व्यक्ति अपनी उन्नति चाहते हैं। वे अपनी उन्नति के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न भी करते हैं, किन्तु उन्नति के इच्छुक होते हुए भी वे यथार्थतः यह नहीं जानते हैं कि उनकी उन्नति कैसे होगी एवं उन्नति के लिए उन्हें किन मार्गों का अवलम्बन करना होगा। धर्मराज भगवान् बुद्ध ने संसार के सभी व्यक्तियों की उन्नति के लिये छः मार्गों का उपदेश दिया है। इन्हीं छः मार्गों को अपनाने से व्यक्ति की लौकिक तथा लोकोत्तर उन्नति हो सकती है। यदि इन छः मार्गों का अतिक्रमण करके अन्य मार्गों का अवलम्बन किया जाय, तो कदापि उन्नति नहीं हो सकती।

आरोग्य

मनुष्य को आरोग्य होना परम आवश्यक है। बिना आरोग्यता के संसार का कोई भी कार्य नहीं हो सकता है। खेती, गृहस्थी, घर-द्वार से लेकर पढ़ना-लिखना आदि कोई भी कार्य भलीभांति सम्पादित नहीं हो सकता। रोगी व्यक्ति ध्यान-भावना भी नहीं कर सकता है। आयुष्मान गोधिय आरोग्य के ठीक न होने के कारण छः बार प्रयत्न करके भी ध्यान नहीं प्राप्त कर सके थे और उन्हें प्रथम प्राप्त ध्यान फिर नहीं प्राप्त हुआ। इसीलिये तथागत ने कहा है कि स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिये, ताकि जीवन बना रहे और अपने कार्यों का सम्पादन कर सकें। "आरोग्यपरमालाभा" अर्थात् आरोग्य परम लाभ है। अतः आरोग्य होने के लिए हर एक व्यक्ति को साफ-सुथरा रहना चाहिये। वस्त्रों को परिशुद्ध रखना चाहिये। ऐसा न करने से नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। घर-द्वार आदि को भी परिशुद्ध रखना चाहिये। घर-द्वार को परिशुद्ध रखने से संक्रामक रोगों की सम्भावना जाती रहती है। अतएव 'आरोग्य होना' उन्नति का प्रथम मार्ग है।

शील

यहां शील का तात्पर्य सदाचार या शिष्टाचार है। हर एक व्यक्ति को शिष्टाचार सीखना चाहिये। कैसे खाना चाहिये, कैसे बैठना-उठना चाहिये, कैसे बातचीत करना चाहिये आदि को न जानने से मनुष्य समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है। सम्प्रति भारत का प्राचीन शिष्टाचार लुप्त प्राय सा हो चला है और लोग उसे नहीं जान कर दूसरों की दृष्टि में नीचे गिर गये हैं। जाति वेतन आदि पूछना शिष्टाचार के बिलकुल प्रतिकूल है। जाति पूछ कर ऊंच-नीच के भाव से व्यवहार करना और उसे ही शिष्टाचार समझना सर्वथा अनुचित है। जाति-भेद शिष्टाचार नहीं, प्रत्युत मानव जाति का एक महान् कलंक है। अतः भगवान्ने इसका सदा निषेध किया है और बतलाया है कि सब को शीलवान् अर्थात् शिष्टाचारी होना चाहिये। खाने-पीने के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है:—

(१) सुड़सुड़ करके न खाना चाहिये।
(२) हाथ चाट-चाट कर न खाना चाहिये।
(३) बर्तन चाट-चाट कर न खाना चाहिये।
(४) ओठ चाट-चाट कर न खाना चाहिये।
(५) जूठ लगे हाथ से पानी का बर्तन न पकड़ना चाहिये।
(६) ग्रास को बिना मुंहतक लाये मुख को न खोलना चाहिये।
(७) भोजन करते समय सारे हाथ को मुंह में न डालना चाहिये।
(८) ग्रास पड़े हुए मुख से बात न करना चाहिये।
(९) ग्रास को उछाल-उछाल कर नहीं खाना चाहिये।
(१०) ग्रास को काट-काट कर नहीं खाना चाहिये।
(११) गाल फुला-फुला कर नहीं खाना चाहिये।
(१२) हाथ झाड़-झाड़ कर नहीं खाना चाहिये।
(१३) बिखेर-बिखेर कर नहीं खाना चाहिये।
(१४) जीभ चटकार-चटकार कर नहीं खाना चाहिये।
(१५) चपचप करके नहीं खाना चाहिये।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

ऐसे ही पेशाब-पाखाना के सम्बन्ध में भी शिष्टाचार को बतलाते हुए उन्होंने कहा है—

(१) नीरोग रहते खड़े-खड़े पेशाब-पाखाना नहीं करना चाहिये।

(२) नीरोग रहते हरियाली में पेशाब पाखाना नहीं करना चाहिये।

(३) नीरोग रहते पानी में पेशाब पाखाना नहीं करना चाहिये।

(४) पाखाना के बाद जल ग्रहण करना चाहिये।

इस प्रकार भगवान् ने शिष्टाचार की हर एक बातों का उपदेश दिया है, यदि उनका यहाँ अलग-अलग उल्लेख किया जाय, तो लेख का कलेवर बढ़ जायेगा। अतः हर एक व्यक्ति को शिष्टाचार सीखना चाहिये, यही उन्नति का दूसरा मार्ग है।

वृद्धों की अनुमति

किसी भी कार्य को करने के पूर्व वृद्धों से अनुमति लेना, परामर्श करना अत्यन्त आवश्यक है। खेती-गृहस्थी, वाणिज्य-व्यवसाय आदि सब कार्यों में अनुभवी वृद्धों से पूछताछ करके उनसे अनुमति लेकर ही करना उचित है। ऐसा करने से सदा उन्नति ही होती है। भगवान् ने वैशाली में लिच्छवियों को सात पतन-विरोधी धर्मों को बतलाते हुए कहा था—"जब तक तुम लोग वृद्धों का सत्कार करोगे, उन्हें मानोगे, पूजोगे और उनकी बात सुनने योग्य मानते रहोगे, तब तक सम्भव नहीं कि तुम लोगों की हानि हो।" भिक्षुओं को भी उन्होंने कहा था—"जब तक भिक्षु स्थविर भिक्षुओं को मानेंगे, पूजेंगे और उनकी बात सुनने योग्य मानेंगे तब तक भिक्षुओं, की वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।" इसी प्रकार "निच्चं वुड्ढापचायिनों अर्थात्" नित्य वृद्धों की सेवा करना कहा गया है। जो वृद्ध लोग हैं, घर के या नगर के बड़े-बूढ़े हैं, उनसे सदा परामर्श लेकर ही किसी कार्य को करना चाहिए। यह उन्नति का तीसरा मार्ग है।

श्रुत

श्रुत का तात्पर्य नाना प्रकार के शिल्प, विद्या आदि को जानना और उनका अभ्यास करना है। जो व्यक्ति किसी शिल्प या विद्या को नहीं जानता है, उसका जीवन सुखपूर्वक नहीं व्यतीत होता है। इसीलिये भगवान् बुद्ध ने बहुश्रुत होने को अड़तीस मङ्गलों में से एक मङ्गल बतलाया है। जो व्यक्ति पढ़ा, लिखा या धर्मग्रन्थों को श्रवण कर बहुश्रुत नहीं हुआ है, वह न तो लौकिक उन्नति ही कर सकता है और न लोकोत्तर ही। अतः सबको शिल्प, कला आदि सीखना चाहिये तथा विद्याध्ययन करके बहुश्रुत होने का प्रयत्न करना चाहिये। भगवान् ने सात धनों में से 'श्रुत' को भी एक महाधन बताया है। अतः इस धन की प्राप्ति के लिए सोत्साह उद्योग करना चाहिये। यह धन ऐसा है कि जिसे चोर, भाई-बन्धु या अन्य कोई व्यक्ति चुरा या छीन नहीं सकते हैं। यह सदा अपना होकर रहता है और लौकिक तथा लोकोत्तर सुख को दिलाता है। इसलिये इसे उन्नति का चौथा मार्ग कहा जाता है।

धर्माचरण

धर्म के अनुसार आचरण करना ही धर्माचरण है। यहाँ धर्मानुसार आचरण करने के लिए काय, वाक और मन द्वारा होने वाले इस प्रकार के अकुशल कर्मों को त्याग कर दस कुशल कर्मों का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। उन्हें ही दस कुशल कर्म-पथ कहते हैं। यह दस कुशल कर्म मानव-धर्म है। जो व्यक्ति इन कर्मों से विरहित हैं, जिनमें ये दस आचरणीय कर्म नहीं हैं, वे सद्धर्म और मानव-धर्म से विमुख हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इन दस, कुशल कर्मों का आचरण करे। वे कर्म इस प्रकार हैं—

तीन कायिक कुशल कर्म—(१) प्राणातिपात न करना (२) चोरी न करना, और (३) व्यभिचार न करना।

चार वाचिक कुशल कर्म—(१) झूठ न बोलना (२) कटुवचन न बोलना (३) बकवाद न करना (४) चुगली न खाना।

तीन मानसिक कुशल कर्म—(१) अन—अभिध्या अर्थात् विषम लोभ का न होना, (२) अव्यापाद अर्थात् द्रोह की भावना का न होना और (३) सम्यक् दृष्टि अर्थात् सच्ची धारणा।

जो व्यक्ति इन दस कुशल कर्मों का आचरण करता है, वह यहाँ भी सुखी होता है और मरने के पश्चात् परलोक में भी इसे उन्नति का पाँचवाँ मार्ग कहते हैं।

अनालस्य

मनुष्य को प्रत्येक कार्य में आलस्य रहित होना चाहिये। खेती-गृहस्थी, लिखने-पढ़ने, वाणिज्य-व्यवसाय

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आदि सभी कार्यों में अनालस्य की बहुत बड़ी आवश्यकता है। भगवान् ने आलस्य के छः दोष बतलाया है—(१) इस समय बहुत ठंडा है—सोचकर आलसी व्यक्ति काम नहीं करता है। (२) इस समय बहुत गर्म है—सोचकर काम नहीं करता है। (३) बहुत शाम हो गई है—सोचकर काम नहीं करता है। (४) बहुत सबेरा है सोचकर काम नहीं करता है। (५) बहुत भूखा हूँ—सोच काम नहीं करता है। (६) बहुत खाया हूँ—सोच काम नहीं करता है। इस प्रकार बहुत से करणीय कामों को न करने से अनुत्पन्न भोग नहीं उत्पन्न होते और उत्पन्न भोग नष्ट हो जाते हैं।" अतः आलस्य नहीं करना चाहिये। अनालस्य उन्नति का छठाँ मार्ग है।

इस प्रकार व्यक्ति की उन्नति के लिए छः मार्गों का भगवान् ने निर्देश किया है। इन्हीं मार्गों पर चलकर व्यक्ति की सर्वांगीण उन्नति हो सकती है। इसीलिए भगवान् ने कहा है—

"आरोग्यमिच्छे परमं च लाभं,
सीलं च बुद्धानुमतं सुतञ्च।
धम्मानुवत्ती च अलीनता च,
अत्थस्स द्वारा पमुखा छलेते।"

आरोग्यता को परम लाभ समझना चाहिये; शील, वृद्धों की अनुमति, श्रुत, धर्मानुसार आचरण और अनालस्य—ये अर्थ (=उन्नति) के छः प्रमुख द्वार हैं।

अखिल भारतीय-ओसवाल-महासम्मेलन का पाक्षिक मुख-पत्र

ओ स वा ल

"धार्मिक भावना, नैतिक सदाचार, सामाजिक संगठन, शिक्षा-प्रचार और कुरीति-निवारण को बल देना 'ओसवाल' का ध्येय है।"

सामाजिक उत्थान राष्ट्रीय उत्थान का मुख्य अंग है

'ओसवाल' १५ वर्ष से लगातार समाज-सेवा में लग रहा है। सर्वाङ्ग उपयोगी होने से हिन्द के हर कोने के नागरिकों के हाथ में पहुँचता है। अच्छे विज्ञापनों का भी एक अच्छा साधन है।

आजीवन सदस्य २५०), विशिष्ट सदस्य ५), वार्षिक चंदा ४ll), एक प्रति ≡)

व्यवस्थापक—'ओसवाल' रोशन मुहल्ला, आगरा.

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बुद्ध प्रतिमा के प्रति

श्रीभुवनेश्वरी प्रताप श्रीवास्तव

कमल पुष्प पर ध्यान मग्न
ओ, सत्य शांति के दूत
बैठे हो तुम कौन ?
होता मस्तक श्रद्धा से नत
हृदय-सुमन होता अर्पित
तुम्हारे चरणों में
देख तुम्हारी पावन प्रतिमा
कठिन साधना लीन।
देख दुर्दशा मनुपुत्रों की
देव, त्याग कर तुम
माँ का वात्सल्य
पिता का स्नेह अशेष
अप्सर सी सुन्दर वनिता का प्यार
शिशु का मोह
यौवन ही में वैरागी बन
निकल पड़े थे अर्ध निशा में
निज गृह से तुम कौन ?
मनुज-मुक्ति हित
तुम भटके वन वन, गिरि गिरि,
घूमे तीर्थ तीर्थ, नगर, नगर
पंडित वर के पास गये
पर पा न सके
कहीं तथागत तुम
मानव-मुक्ति की क्षीण रेख।

पर फिर भी तुम न निराश हुये;
आगे बढ़ हताश न हो हे मुक्ति-दूत !
उर में मुक्ति की अभिलाष लिये
तपरत हुये हे तपः पूत !!
और एक दिन
उस बोधि वृक्ष के नीचे,
देव, तुम्हारे अन्तर में ज्योति जली।
तम पर प्रकाश ने जय पाई;
उस दिन मानवता धन्य हुई।
उर में निर्वाण दीप जलाये
पशुवत बर्बर मानव को
सन्देश सुनाते थे करुणा का
घूम-घूम घर-घर तुम कौन ?
देव, तुम्हीं ने सर्वप्रथम
इस वसुन्धरा के पट पर
मुक्त स्वरों से किया घोष—
"मिथ्या जाति-पांति के बन्धन,
झूठे जप-तप के सब साधन,
सत्य नहीं ये कर्मकाण्ड
सारहीन बलि-यज्ञों के ये आडम्बर।
क्षण क्षण में परिवर्तित इस जग में
सरल पवित्र जीवन ही
मुक्ति के शाश्वत पथ का रथ है
सत्य शील, अहिंसा करुणा के चक्रों से जो बढ़ता आगे।

———

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

जनशिक्षण

समाज शिक्षा विषयक उच्च कोटि का हिन्दी मासिक

- ▲ सम्पादक - मनोविज्ञान के पण्डित प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री डा० कालूलाल श्री माली
- ▲ संचालक—भारत की सुविख्यात शिक्षण संस्था विद्या भवन सोसायटी
- ▲ विद्वानों तथा अनुभवी शिक्षाशास्त्रियों के लेखों से सुसज्जित
- ▲ शिक्षकों माता-पिताओं तथा विद्यार्थियों के अभिभावकों के लिये महत्वपूर्ण
- ▲ अनेक शिक्षा विभागों द्वारा स्वीकृत

वार्षिक मूल्य ३)

नमूने के अङ्क के लिये चार आने के पोस्टेज़ भेजिये

व्यवस्थापक——जनशिक्षण, विद्याभवन, उदयपुर

अच्छा बीज इस्तेमाल करनेसे पैदावार बढ़ती है।

हर प्रकार की तरकारी तथा फूल

के

सर्वोत्तम और बढ़िया बीज

के लिये

सीताराम कृषिशाला

कमच्छा बनारस सिटी को लिखिये

वी० पी० द्वारा भी मँगा सकते हैं
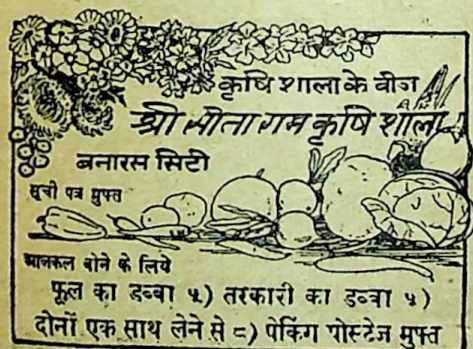
मदन स्टूडियो

नीचीबाग, बनारस।

हमारे यहाँ सब तरह के फोटो का काम होता हैं। हर काम निश्चित समय पर किफायत के साथ तैयार किया जाता है। सादा और रंगीन इन्लार्जमेन्ट का काम हमारे यहाँ विशेष रूप से किया जाता है। ग्राहकों की सुविधा के लिये फोटो का हर तरह का सामान भी तैयार मिलता हैं। सारनाथ, बनारस विश्वविद्यालय, बुद्ध गया आदि तीर्थों के सुन्दर और आकर्षक चित्र भी बिक्री के लिये तैयार रहते हैं। बाहर के ग्राहकों के आर्डर पर घर पर जाकर फोटो बनाने का भी प्रबंध कर दिया जाता है। एक बार परीक्षा कीजियेगा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

दक्षिण भारत का एकमात्र सांस्कृतिक अग्रदूत

" दक्खिनी हिन्द "

(मद्रास सरकार की सचित्र हिन्दुस्तानी मासिक पत्रिका)

सम्पादक—श्री रामानन्द शर्मा

▲ उत्तर और दक्षिण को साथ चलकर ही समृद्ध एवं शक्तिशाली नवभारत का निर्माण करना है।

▲ "दक्खिनी हिन्द" उत्तर और दक्षिण के बीच सर्वोत्तम सांस्कृतिक सेतु का कार्य कर रहा है।

सालाना चन्दा—सिर्फ चार रुपये

▲ वी० पी० भेजने का नियम नहीं है। मनि-आर्डर से चन्दा पेशगी भेजें।
एजेन्सी और विज्ञापन की दर के लिए तुरन्त लिखें—अंग्रेजी में।

प्रकाशक—डाइरेक्टर आफ इन्फरमेशन ऐण्ड पब्लिसिटी,
फोर्ट सेन्ट जार्ज, मद्रास।

हिन्दी भाषा में अनुपम प्रयास

भारतीय गौरवान्वित इतिहास को सरल भाषा में जनता के सम्मुख रखने के उद्देश्य से
१५ अगस्त सन् ४८ से प्रकाशित एकमेव मासिक पत्रिका

" इतिहास "

▲ ऐतिहासिक गवेषणात्मक लेख
▲ राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समस्या
▲ धर्म संस्कृति व कला
▲ महापुरुष व त्यौहार
▲ सामाजिक व्यवस्था
▲ ऐतिहासिक सुरुचिपूर्ण कहानी
▲ भावपूर्ण ओजस्वी कविता

वार्षिक शुल्क ४) एक प्रति का।≈)

१. अपने व्यापक प्रचार के कारण पत्र आपके विज्ञापन के सर्वथा उपयुक्त है।
२. अभिकर्ताओं की आवश्यकता है।
३. ४) का मनिआर्डर शीघ्र भेजकर वार्षिक ग्राहक बनें।
आप किसी भी अङ्क से वार्षिक ग्राहक बन सकते हैं।
४. सुन्दर ऐतिहासिक लेखों का विशेष स्वागत किया जायगा।

व्यवस्थापक—इतिहास कार्यालय, कटरा बड़ियान दिल्ली।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भारत का राष्ट्र धर्म

अनागारिका अनुला

पूर्वकालीन आर्य

आज से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व आर्य लोग जब भारत में आए तो उनकी सभ्यता ऊँचे दर्जे की थी। वे बहादुर और कर्मशील थे। उनका एकमात्र उद्देश्य संसार की विभूतियों को और शक्ति को संचित करना था और उनकी प्राप्ति के लिये ही वे धर्म का प्रयोग भी करते थे। उनके देवता प्राकृतिक शक्तियाँ—इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु आदि थे। उनका पूजा करने का ढंग आज की तरह न था। वे न कभी मन्दिर बनाते थे, न पूजार्थ मूर्तियाँ रखते थे। प्रत्येक घर में प्रातः और सायं अग्नि जलाकर खाद्य पदार्थों की आहुति दी जाती थी और उसी अवसर पर वैदिक ऋचाओं द्वारा देवताओं का आह्वान किया जाता था। उनमें न कोई ब्राह्मण था न क्षत्रिय। जाति-भेद का नामोनिशान न था। सब लोगों की एक ही जाति थी और परस्पर रोटी बेटी का व्यवहार निःसंकोच किया जाता था। यज्ञोपवीत (यज्ञ में पहिने जानेवाले सूत्र) यज्ञ करने वाले, यज्ञ के अवसर पर ही धारण किया करते थे। स्त्रियाँ स्वतन्त्र थी और उनपर किसी प्रकार के प्रतिबन्ध न थे। बाल विवाह की प्रथा न थी और विधवा विवाह प्रचलित था। उस काल में सती प्रथा तो नाम को भी न थी। थोड़े शब्दों में उस युग के आर्य लोग खुशहाल थे और उन सब बुराइयों और अन्याय पूर्ण रीति रिवाजों से अछूते थे, जिनको ब्राह्मण-समाज ने बाद में प्रोत्साहित किया।

ब्राह्मणशाही का आरम्भ

जब देश में शान्ति स्थापित हो गई और धन-धान्य की कमी न रही तो ऐशोआराम बढ़ने लगा। राजा और धनी लोगों की सम्पत्ति देख ब्राह्मणों को लोभ हुआ कि उनके पास भी ऐशोआराम के ऐसे साधन हों, फलतः वेद-मन्त्र रचकर ब्राह्मणों ने राज्याधिकारी तथा धनी लोगों को यज्ञ याग के लिये प्रेरित किया जिसमें उन्हें नाना प्रकार के धन धान्य का दान दिया जाता, खाना, पीना, गाना-बजाना, मद्य-पान, नाचरंग धूम धाम से किया जाता और यह सब कई दिनों तक ही नहीं प्रत्युत कई महीनों तक होता रहता था। धीरे धीरे ब्राह्मणों ने इसे अपनी आमदनी का पेशा बना लिया और इस प्रकार उनकी एक अलग जमात बन गई। आमदनी के ये साधन दूसरे लोग न अपना लें, इस भय से पुरोहितों ने इसे अपने कुटुम्ब-कबीले तक ही सीमित रखा। इस प्रकार जन्म पर अवलम्बित एक टोला बन गया। एक ऐतिहासिक लेखक ने तत्कालीन यज्ञों का वर्णन इस प्रकार किया है—"पुरोहित एक सुन्दर और सजे हुए झूले पर बैठ जाते थे, और जब वह झूला झूलता था तो नर्त्तकियाँ अपने नाच और संगीत से उनको प्रसन्न करती थीं। यज्ञकर्त्ता एक सजे हुए मण्डप में बैठ जाता था, जिसे सुरलोक कहा जाता था। यज्ञ-पशुओं और दान-दक्षिणा की सब अमूल्य वस्तुओं की परेड की जाती थी। गन्दे विचार, मद्यपान, जूआबाजी का प्रयोग खुलेआम होता था।" इस याज्ञिक काल में पुरोहितों का प्रभाव जन-समाज में इतना बढ़ गया कि उन्होंने एकाधिपत्य कायम रखने के लिये और भी कड़े कानून बना दिये और मन्त्रों द्वारा देवताओं को अपने वश में कर लेने का दावा करने लगे। मनुस्मृति में स्पष्ट लिखा है:—"संसार में जो विभूति है, वह सब ब्राह्मणों के लिये ही पैदा की गई है।" ब्राह्मण मूर्ख हो अथवा विद्वान् महान् देवता है, इसलिये इसकी पूजा सर्वश्रेष्ठ है, ब्राह्मणों से कर वसूल न किया जाय और उसका भरण पोषण राज्य की ओर से हो।" इस प्रकार धीरे धीरे ब्राह्मण लोग जन साधारणको बेढंगे रीति रिवाज और अन्धविश्वास के जाल को लपेट में लाने के लिये षड्यन्त्र रचने लगे। इस षड्यन्त्र के परिणाम स्वरूप ब्राह्मणों ने जातिभेद के विष बो कर जनसमाज में ऊँच नीच का भाव भर दिया। मानव, मानव के अधिकारों को छीनने लगा। ब्राह्मणों ने वेदाध्ययन केवल अपने तक ही सीमित कर दिया। धर्म के नामपर अनेक प्रकार के अत्याचार होने लगे और मानवता के नियमों का उल्लंघन।

महाभारत युद्ध के पश्चात्

महाभारत का युद्ध यद्यपि उच्च आदर्शों के आधारपर लड़ा गया था तथापि उससे क्षत्रियों की शक्ति का ह्रास

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हो गया और ब्राह्मणों ने मनमाने कानून बनाने प्रारम्भ कर दिये। इस अन्धकार पूर्ण युग में ही सूत्रों की सृष्टि की गई जिसने जाति भेद की ज़जीरों को और भी कड़ा बना दिया। इस प्रकार ब्राह्मण, स्वार्थवश जन समाज को बेहोशी की निद्रा में सुलाकर स्वयं ताण्डव-नृत्य करने लगा, अर्थात् धर्म के नाम पर, ईश्वर के नामपर अनेक प्रकार के घोर अत्याचार करने लगा।

ज्योतिस्तम्भ का उदय

उस समय विश्व इतिहास के महामानव एवं संसार के ज्योतिस्तम्भ भगवान बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने संसार को चरम ज्ञान के आलोक से उद्भासित किया। उस समय जन-साधारण ब्राह्मणी धर्म के अत्याचार पूर्ण जूए के नीचे अन्धकार रूपी दलदल में फँसे हुए थे। अन्धविश्वास और हिंसा-पूर्ण यज्ञ याग ही उनका धर्म बन चुका था, जिसमें उनकी आत्मा और शरीर शुष्क बन गये थे। भगवान् बुद्ध ने देखा कि जिस तत्व को उन्होंने प्राप्त किया था, बहुत ही गम्भीर था। राग, द्वेष और मोह में लिप्त जनता को उसे जानना कठिन था। लोगों ने उनके धर्म को धीरे धीरे समझा और कई विद्वान् पण्डितों ने उनके साथ शास्त्रार्थ किये और उनके धर्म को अपनाया। इस प्रकार धीरे धीरे प्रचार कार्य आरम्भ हुआ। भगवान् बुद्ध ने सम्यक दृष्टि का जो उपदेश दिया, उसने लोगों को विशेषकर अपनी ओर खींचा उसमें ऊँच नीच का भेद भाव न था। उन्होंने कपोल-कल्पित वैदिक मन्त्रों का और अन्याय पूर्ण जाति भेद का तिरस्कार किया और धर्म-क्षेत्र में संस्कृत के स्थान पर, जन-साधारण में बोली जानेवाली भाषा पालि का ही प्रयोग किया। बुद्धधर्म की सबसे बड़ी विशेषता थी मध्यम-मार्ग। मध्यममार्ग में भोग-विलास, काम-योग तथा दुष्कर तपस्या इन दोनों अन्तों का परित्याग था। उन्होंने बतलाया कि आर्य अष्टांगिक मार्ग पर चलते हुए, प्रत्येक व्यक्ति "बुद्ध" बन सकता है, निर्वाण प्राप्त कर सकता है। भगवान् के भिक्षु संघ में नाई, डोम, चमार, मेहतर तक प्रवेश कर सकता था। भिक्षु संघ में आनेपर उनमें किसी प्रकार का भेद भाव न रहता था। अब उनकी आँखें खुल चुकी थी और वे अपने को दस्यु, राक्षस, म्लेच्छ, वानर अथवा शूद्र नामों से सम्बोधित न करते थे। इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने जो धर्मचक्र चलाया उसकी विशेषता है कि बिना एक बूँद भी रक्त बहाए वह धर्म संसार भर में व्याप्त हो गया।

राष्ट्र धर्म

यही धर्म अब फिर स्वतन्त्र भारत का पथ-प्रदर्शक बनने की क्षमता रखता है और हमें प्रसन्नता है कि राष्ट्र के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों ने इस गूढ़ रहस्य को समझकर ही अशोकचक्र को अपने कौमी झंडे में मुख्य स्थान दिया है। इसी भावना से प्रेरित होकर हमारे पूज्य प्रधान मन्त्री श्रीजवाहरलाल नेहरू ने स्वयं भगवान बुद्ध के दो प्रमुख शिष्यों—अर्हत सारिपुत्र और महामौद्गल्यायन की पवित्र अस्थियों को अपने कर-कमलों से स्वागत किया था। इससे यह प्रतीत होता है कि हमारे नेतागण बौद्ध धर्मान्तरगत बौद्ध आदर्शों को अपना पथ प्रदर्शक बना रहे हैं और यदि हम बौद्धधर्म प्रचारक अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहेंगे तो वह समय दूर नहीं जब कि बौद्धधर्म भारतवर्ष का पुनः राष्ट्र-धर्म बन जायगा जिसमें—ऊँच नीच के भेद भाव मिट जायँगे, कला कौशल की वृद्धि होगी और देश में धन धान्य बढ़ेगा

———

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

[इस स्तम्भ में बालक-बालिकाओं के बौद्ध-धर्म सम्बन्धी लेख, कविता, कथा-कहानी, पहेलियाँ आदि छपा करेंगी। बालक-बालिकाओं को अपनी रचनायें भेजते समय साफ-साफ अक्षरों में कागज के एक ही ओर हासिया छोड़कर लिखना चाहिये। सम्पादक]

गौतम

करुणा की मूर्त्ति-दिव्य ! क्रान्ति की नूतन अग्नि-विस्फुलिंग।
मानवता के प्राण ! सत्य-न्याय के मंडित-गिरिवर-शृंग।
भारत—भू पर आये तुम गाते शुभ्र अहिंसा गान।
तुम जागे गत-संस्कृतियों का लेकर नव स्वर्ण-विहान॥

तुम बन सरसे मानव-जग में नवल-प्रेम-प्रकाश-प्रसार।
तुम बरसे जीवन-नभ में बन कर हर्ष-उमंग-फुहार॥

मेरे गौतम ! क्या रत्न-सिंहासन से तुमको अब स्नेह ?
तुम त्याग चुके थे दुःखित-हित ही स्वर्गिक-स्वर्णिम-गेह।
दीनों के हृदय-आसन पर तुम जमे हुए थे सत्वर।
इतिहास-विश्व का कहता है साक्षी तुंग-हिमाद्रि-शिखर॥

अब इस अशान्ति के युग में जागो-दीनबन्धु फिर शुभ-हित।
कलह अनय की निशा मिटे हो युग सत-कर से आलोकित॥

—रामबचन सिंह "आनन्द"

———

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वह प्रव्रजित क्यों हुआ ?

श्रीरुद्रराज शाक्य, नेपाली छात्र,

[भगवान सम्यक सम्बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन विहार में ठहरे हुए हैं। उपासक—उपासिकायें पुष्प गन्ध आदि ले भगवान के पास उपदेश ग्रहण करने आयी हैं, मार्ग में महाकाल सेठ से भेंट होती है। महाकाल उन्हें देखकर पूछता है—]

महाकाल—"कहिये ! आप लोग फूल, गन्ध आदि अनेक पूजनीय वस्तुओं से सुसज्जित कहाँ जा रहे हैं ?"

उपासक—इस समय भगवान बुद्ध यहाँ अनाथ पिण्डिक के विहार में आये हुए हैं। हम सब उन्हीं को पूजने और उनके धर्मोपदेश को सुनने जा रहे हैं।

तो क्या मैं भी आप लोगों के साथ वहाँ चलकर धर्मोपदेश सुन सकता हूँ ?

"हाँ, हाँ अवश्य, उनके धर्म में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं है। एक हरिजन से लेकर ब्राह्मण तक और एक भिखारी से लेकर धनी तक सभी उनके धर्मोपदेश के भागी हो सकते हैं। वे किसी प्रकार का भेद भाव रखकर उपदेश नहीं देते। वे सबके लिये समान भाव से उपदेश देते हैं।

"ऐसा है तो मुझे भी जाना चाहिये।"

[महाकाल सबके साथ भगवान के पास पहुँचता है और भगवान की वन्दना कर एक ओर बैठ जाता है]

भगवान बुद्ध का प्रत्येक दिन का एक नियम यह था कि वह प्रातःकाल उठने के बाद ज्ञान-चक्षु द्वारा एक बार यह विचार कर लेते थे कि आज मुझे किसका उपकार करना चाहिये ! मेरे उपदेश से किसको अधिक लाभ होगा ? उसी नियमानुसार उस दिन महाकाल के लिये विशेष रूप से कल्याणकारी उपदेश दिये। जिसे सुनकर महाकाल को घर से वैराग्य हो गया। उपदेश के बाद सभा के विसर्जन हो जानेपर महाकाल ने भगवान के निकट आकर अपनी इच्छा प्रकट की:—

"भगवन ! मैं भी आपके शासन में प्रव्रजित होकर आपके धर्म का आचरण करना चाहता हूँ।"

"तुम्हारा यह विचार बहुत ही अच्छा है। लेकिन प्रव्रजित होने के लिये तूने अपने माता पिता से आज्ञा ली कि नहीं ?"

"नहीं भन्ते !"

"अपनी धर्मपत्नी या भाई बहिन आदि से आज्ञा ली है ?"

"उनसे भी नहीं भन्ते !"

"तथागत के शासन में माता, पिता, भाई आदि की आज्ञा लिये बिना प्रव्रजित होने का नियम नहीं है। अतः घर जा आज्ञा लेकर आओ।"

'भगवन ! बहुत अच्छा। मैं अभी आज्ञा लेकर आता हूँ।"

[घर पहुँचकर महाकाल छोटे भाई चूलकाल से आज्ञा माँगता है। लेकिन भाई उसको आज्ञा देने से इन्कार करता है। वह कहता है कि आपके बिना हमारा घर किस प्रकार सम्हलेगा। किन्तु महाकाल किसी प्रकार भी नहीं मानता है, और अन्त में चूलकाल भी उसके साथ ही प्रव्रजित होने के लिये घर त्याग देता है, । वे दोनों भगवान के पास आकर प्रव्रजित हो जाते हैं]

महाकाल अपनी श्रद्धा के बल से अर्हत-फल प्राप्त कर लेता है। और चूलकाल बना रहता है जैसा का तैसा साधारण भिक्षु। वह निरन्तर अपने घर का ख्याल करता है। ध्यान-भावना नहीं करता। सदा घर की चिन्ता में लीन रहता है। अतः अभी तक किसी प्र ार का ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाया है।

इधर दोनों भाइयों में से छोटे की चार पत्नी और बड़े भाई की आठ पत्नी थीं। उन बारहों ने यह तय किया कि चूलकाल और महाकाल सहित भगवान् बुद्ध को निमंत्रण करें और भोजन के उपरान्त जब पुण्यानुमोदन के लिए दोनों रह जायेंगे तब हम उनको पकड़ कर घर में रख लेंगे।

इस राय के अनुसार उन्होंने दूसरे दिन भिक्षुओं सहित भगवान् को निमंत्रण दिया।

इस समय दान के लिए इस प्रकार का नियम था कि जब भिक्षु संघ को दान दिया जाता था तो कुछ पहले

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

किसी एक भिक्षु को दाता के घर जाकर सब ठीक करना पड़ता था। अत: उस दिन चूलकाल को भेज दिया गया। चूलकाल घर पहुँचा तो चारों पत्नियों ने मिलकर नाना प्रकार से तंग किया और उसे जबरदस्ती गृहस्थ बना लिया।

इसी प्रकार महाकाल को भी उसकी पत्नियों ने गृहस्थ बनाना चाहा। लेकिन महाकाल अर्हत हो चुका था। उसको ऋद्धि प्राप्त हो गयी थी। उसे सांसारिक सुखों से कुछ सम्बन्ध नहीं रह गया था। अतः जब उसे भी उसकी पत्नियाँ तंग करने लगीं तो वह ऋद्धि द्वारा आकाश मार्ग से भगवान् बुद्ध के समीप पहुँचा और उनके चरणों की वन्दना की। इस आश्चर्य को देखकर भिक्षुओं ने भगवान् से चूलकाल के गृहस्थ बन जाने और महाकाल के न बनने के बारे में पूछा।

तब भगवान् ने कहा—भिक्षुओ! जो सभी चीजों को अशुभ ही अशुभ देखता है, जिसकी इन्द्रियाँ उसके वश में हैं जिसको भोजन की उचित मात्रा का ज्ञान है, जो वीर्यवान है, उसको मार उसी प्रकार नहीं हिला सकता जिस प्रकार पहाड़ पर स्थित पाषाण को प्रचण्ड वायु नहीं हिला सकती।

लेकिन जिनमें उपर्युक्त गुण नहीं है उसके विरुद्ध है उन्हें मार उसी प्रकार गिरा देता है या अपने वश में कर लेता है, जिस प्रकार दुर्बल वृक्ष को वायु।

यही अंतर चूलकाल और महाकाल में विद्यमान था, जिसके कारण चूलकाल गृहस्थ बना लिया गया और महाकाल का कोई भी बाल बाँका न कर सका।

—महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल, सारनाथ।

तृष्णा बुरी है

"पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त का (एक) सञ्जय नामक माली था। एक शीघ्रगामी मृग (वात-मृग) उस उद्यान में आता, (लेकिन) सञ्जय को देखकर भाग जाता। सञ्जय उसको डराकर निकालता था। वह बार बार आकर उद्यान में ही चरता था। माली प्रतिदिन उद्यान से नाना प्रकार के फल-फूल राजा के पास ले जाता था। एक दिन राजा ने उससे पूछा—"सौम्य! उद्यानपाल! उद्यान में कोई आश्चर्य (की चीज) देखते हो?"

"देव! और तो कुछ नहीं देखता, हाँ यह देखता हूँ कि एक शीघ्र-गामी मृग आकर उद्यान में चरता है।"

"क्या, उसे पकड़ सकोगे?"

"यदि थोड़ा मधु मिले, तो उसे यहाँ राज-निवास के अन्दर भी ला सकूँगा।"

राजा ने उसे मधु दिलवा दिया। उसने मधु ले, उद्यान में जाकर, शीघ्र-गामी मृग के चरने की जगह (कुछ) तिनकों को मधु से माख (=चुपड़) दिया। मृग आकर, मधु लगे तिनकों को खाकर रस-तृष्णा से बँधा हुआ, किसी दूसरी जगह न जा, उद्यान में ही आता था। माली ने मधु लिप्त तृण में लुब्ध हो जाने पर धीरे-धीरे अपने को प्रकट किया।

उसने उसे देख, कुछ दिन तक भाग कर, फिर फिर देखने से लोभ पैदा कर, धीरे धीरे माली के हाथ में रक्खे तृणों को भी खाना आरम्भ कर दिया। माली ने उसका 'विश्वास जीत लिया' जान राज-भवन तक सड़क पर चटाइयां बिछवाई। जहां-तहां (पत्तों की) डालियां गिरवाईं। (तब वह) मधु के कुप्पे को कन्धे पर लटका तृणों की पूली बगल में दबा, मधु से माखे तृण को मृग के आगे आगे बखेरते राज-भवन के अन्दर चला गया। मृग के अन्दर दाखिल होने पर द्वार बन्द कर लिए गए। मृग मनुष्यों को देखकर, कांपता हुआ मरने से भयभीत (राज) भवन के आङ्गण में इधर-उधर भागने लगा। राजा ने प्रासाद से उतर, उसे कांपते देख, (सोचा)—वात मृग मनुष्य दिखाई देने की जगह एक सप्ताह तक नहीं जाता। और जहां से डरा दिया जाये वहाँ तो जन्म-भर नहीं जाता। सो इस प्रकार छिपकर रहने वाला वात-मृग रस-तृष्णा में बंधकर, अब ऐसी जगह आ गया। भो! लोक में रस-तृष्णा से बढ़कर बुरी चीज नहीं है। यह (सोच) इस गाथा से धर्मोपदेश की स्थापना की—

न किरत्थि रसेहि पापियो आवासेहि वा सन्थवेहि वा।
वात-मिगं गेहनिस्सितं वसमानेसि वसेहि सञ्जयो॥

[निवास स्थान वा मित्रों के मिलाप की भी आसक्ति रस की आसक्ति से बढ़कर खराब नहीं है। घोर जंगल में रहने वाले मृग को रस के द्वारा सञ्जय ने वश में कर लिया।]

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

यह उपेक्षा क्यों ? भारत की प्राचीन भाषाओं में पालिका एक बहुत बड़ा स्थान है। इसके अध्ययन से भारतीय संस्कृति और भाषाओं की अनेक गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं। इसका 'तिपिटक' साहित्य तथागत के महान् कल्याणकारी उपदेशों का संग्रह है, जिसमें संसार के सभी प्राणियों के हित-सुख के लिए मार्ग प्रदर्शित किया गया है। सम्प्रति विश्व में 'तिपिटक' जैसा महान् और जन-हितकारी दूसरा कोई साहित्य उपलब्ध नहीं है। इसके उपदेश सार्वभौमिक और सर्वांगीण परिपूर्ण हैं। इसमें मानव-जगत् को ऊपर उठाने वाली तथा इस लोक और परलोक को सुखी बनाने वाली शिक्षायें आई हुई हैं। आज संसार का एक तिहाई जन-समुदाय इसी के भरोसे अपना शान्तिमय जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न कर रहा है। यदि संसार के सारे मनुष्यों को विश्व-बन्धुत्व की शिक्षा लेनी हो, भारत के गौरव-मय इतिहास का अध्ययन करना हो, मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा को जानकर ऊँच नीच एवं स्पृश्य-अस्पृश्य के भाव को तिलाञ्जलि देनी हो, विश्व में एक अद्भुत और चमत्कारिक वेग से भारतीय संस्कृति को प्रसरित करने वाले पालि साहित्य से परिचय प्राप्त करना हो तथा दुःख-सन्तप्त जीवन को सुखी एवं शान्ति-पूर्ण बनाने के लिए एकमात्र शिक्षा का अवलम्बन करना हो—तो अवश्य ही 'तिपिटक' का आश्रय लेना पड़ेगा।

तथापि हम देखते हैं कि भातीय जनता इसके महत्व को जानते हुए भी 'पालि' और 'तिपिटक' के अध्ययन के प्रति उदासीन है। भारत में बिरले ही माई के लाल हैं जिन्होंने पालि और तिपिटक के अध्ययन एवं प्रचार में सहयोग देना-अपने जीवन का लक्ष्य बनाया है। फिर भी कार्य-क्षेत्र में उदासीनता के सामने उन्हें भी मात हो जाना पड़ता है! हम नहीं समझते कि यह उदासीनता या उपेक्षा क्यों उत्पन्न हुई है? यूरोप, अमेरिका के उन सभी विद्यालयों में, जिनमें भारतीय विद्या का अध्ययन होता है, पालि के अध्ययन का पूरा प्रबन्ध है। लन्दन की पालि-टेक्स्ट-सोसाइटी ने तो सारा पालि वाङ्मय ही प्रकाशित किया है! किन्तु भारत में कलकत्ता, बम्बई और काशी के विश्व-विद्यालयों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी इसके अध्ययन की पूर्ण व्यवस्था नहीं हुई है। गत वर्ष इलाहाबाद के शिक्षा बोर्ड ने युक्तप्रान्त के हायर सेकण्डरी स्कूलों के लिए पालि के अध्ययन की स्वीकृति दी, परन्तु अभी तक केवल सारनाथ के महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल में ही इसकी शिक्षा दी जाती है। अन्य भी कई स्कूलों ने अपने यहाँ पालि के शिक्षण के लिए अनुमति ली थी किन्तु उनके पीछे लगा हुआ उपेक्षा भाव जो है। यही कारण है कि पालि भाषा का शिक्षण कार्य नहीं-सा होता दीख रहा है।

क्या हम आशा करें कि यह उपेक्षा-भाव शीघ्र ही मिटेगा और आगरा, लखनऊ आदि विश्वविद्यालयों के साथ बिहार, मध्यप्रान्त इत्यादि के शिक्षा-बोर्ड भी अपने यहाँ पालि के अध्यापन की व्यवस्था करेंगे।

अभी तक 'तिपिटक' पालि का देवनागरी लिपि में प्रकाशन भी नहीं हुआ है। यह भी कम लज्जास्पद बात नहीं है। भारतीय महाबोधि सभा इस महत्वपूर्ण कार्य के सम्पादन के लिए कदम उठाती थी, किन्तु इस कार्य का सरकारी सहयोग के बिना पूर्ण होना कठिन है। केन्द्रिय सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिये और 'तिपिटक' के प्रकाशनार्थ उसकी सहायता करनी चाहिए। हमें विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ था कि मध्य-प्रान्त की किसी समिति ने पूज्य भदन्त आनन्द कौसल्या-यन की देखरेख में सारे 'तिपिटक' के मुद्रण का कार्य प्रारम्भ करने की बात सोची थी, यदि उसका यह स्तुत्य कदम उठ जाय और मूल तिपिटक पालि का प्रकाशन होने लगे तो एक बहु बड़े अभाव की पूर्ति हो जायगी।

बुद्ध गया-मन्दिर – बुद्ध गया के सुप्रसिद्ध मन्दिर की व्यवस्था के लिए जो कमेटी बनी थी और बिल प्रका-शित की गई थी, उसके सम्बन्ध में हमें लिखते हुए खेद हो रहा है कि वह ज्यों का त्यों पड़ा हुआ है और अभी तक बुद्ध गया-मन्दिर की व्यवस्था कमेटी को नहीं सौंपी गयी। बिहार सरकार को इसकी ओर ध्यान देना

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बौद्धजगत्

अग्रश्रावकों की पवित्र धातुओं का शुभागमन

बड़े हर्ष की बात है कि अग्रश्रावकों की पवित्र धातुयें सारनाथ स्थित मूलगन्धकुटी विहार के अठारहवें वार्षिकोत्सव के शुभावसर पर ३ नवम्बर को सारनाथ आ रही हैं। संयुक्त-प्रान्तीय सरकार की ओर से बनारस शहर में इन धातुओं के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया जावेगा। आशा है कि इस अवसर पर प्रान्त के प्रधान मन्त्री, गवर्नर एवं अन्य प्रमुख व्यक्ति सम्मानार्थ पधारेंगे। बनारस से ये धातुयें बड़ी ही धूमधाम से सारनाथ पहुँचाई जावेंगी। जहाँ भगवान् बुद्ध की परम-पवित्र धातु के साथ इन धातुओं का भी प्रदर्शन होगा। ऐसा अनुमान है कि इस अवसर पर विदेशों से हजारों की संख्या में यात्री एवं प्रमुख व्यक्ति सारनाथ आवेंगे। जो सज्जन इस पुण्य तिथि पर उपस्थित होना चाहते हैं, वे मन्त्री महाबोधि सभा सारनाथ से पत्र व्यवहार करें।

श्याम के राजकुमार एवं राजकुमारी का आगमन

बौद्ध धर्म का प्रभाव जिस प्रकार एशिया के अन्य देशों में अविच्छिन्न है उसी प्रकार इसका पवित्र प्रभाव श्याम में भी है। प्रायः सभी देशों से हजारों व्यक्ति भगवान् बुद्ध के प्रति सम्मान प्रकट करने तीर्थ-यात्रा में भारत आते हैं। अभी हाल में श्याम के राजकुमार प्रियरंजीत तथा राजकुमारी विभावती भारत में बौद्ध तीर्थों के पर्यटन के लिये पधारी थीं। यह राज-दम्पति सारनाथ भी आयी थी। सारनाथ के दर्शन से ये बड़े ही प्रभावित हुए। यहाँ मूलगंध कुटी विहार में भिक्षु संघ ने उन्हें मंगल पाठ से आशीर्वाद दिया। महाबोधि सभा के मंत्री भिक्षु संघरत्न जी ने उनसे यह अनुरोध किया कि श्याम के यात्री भारत में बौद्ध तीर्थ स्थानों के पर्यटन के लिए बहुत ही न्यून संख्या में आते हैं, हमें आशा है कि आपके इस आगमन से इस ओर श्याम में विशेष प्रगति होगी और उसे तीव्रतर करने में आप पूरा सहयोग देंगे। राजकुमार ने सारनाथ के महाबोधि-सभा के मंत्री महोदय को लिखा है कि "हम लोगों ने भारत भ्रमण में अनेक अनुपम वस्तुओं का दिग्दर्शन किया, लेकिन सारनाथ की पुण्य भूमि की स्मृति हमें सदा सजीव रहेगी। यही नहीं कि यहाँ सारनाथ में प्रत्येक बौद्ध यात्री कहीं से भी आते, पर एक विचित्र अनुपम शान्तिमय अनुभूति प्राप्त होती है प्रत्युत सबसे बड़ी प्रसन्नता एवं उल्लास तो तब होता है जब वह यहाँ फिर एक बौद्ध-सांस्कृतिक केन्द्र को सुचारु रूप से कार्य करते हुए पाता है।"

चाहिये एवं शीघ्रातिशीघ्र मन्दिर को कमेटी के हाथ में सौंप देना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता है तो कमेटी बनाने का कोई महत्व ही नहीं रहता है तथा बौद्धों को पुनः असन्तुष्ट होने का अवसर दिया जाता है।

——

बौद्धधर्म द्वारा भारत का दक्षिण-पूर्वी एशिया के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध

बुद्ध विहार, नई दिल्ली। श्याम के राजकुमार प्रियरञ्जीत एवं राजकुमारी विभावती ने जो वहाँ के युवराज के पुत्र और पुत्रवधू हैं ७ जुलाई को यहाँ के बुद्ध विहार में पदार्पण किया। विहार में महाबोधि सभा और इण्डियन बुद्धिस्ट एसोशियेशन की ओर से स्वागत किया गया।

इस अवसर पर स्वगताध्यक्ष प० हम्मलव सद्धातिस्स थेर ने कहा कि 'श्याम राजवंश हमारे धर्म का सदा से रक्षक रहा है और राजकुल में ही कुछ तो प्रसिद्ध धर्माचार्य भी हो चुके हैं। युगों से वे दलित मानवता को ऊपर उठाने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

का आश्वासन देते रहे हैं और अन्धकार में भरमने वालों को उनसे प्रकाश मिला है।

बौद्ध धर्म का प्रभाव ही ऐसा है कि वह उसे श्याम तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया के इन देशों से सांस्कृतिक मैत्री के सूत्र में बाँधता है। पाश्चात्य राज्याधिकार तथा ईसाई पादरियों के आगमन से युगों के इस सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सम्बन्ध में शिथिलता आ गई, परन्तु स्वतंत्र होते ही हमने पश्चिमी राष्ट्रों की दासता से मुक्ति पा ली और एक युग का आविर्भाव हो गया।'

पं० सद्धातिस्स ने यह भी कहा कि 'दक्षिण-पूर्वी एशिया आज स्वाधीन है और अब वह समय आ गया है कि हम अपने शास्ता की वाणी से सारे संसार को शान्ति प्रदान करें, जो अनेक तापों से जल रहा है। बौद्ध देशों के हमारे उक्त ही धर्म प्रचारक सत्य और अहिंसा का सन्देश देकर सारे मानव समाज को प्रबुद्ध करें।'

श्याम और सिंहल के सम्बन्ध की ओर लक्ष्य करके उन्होंने बतलाया कि 'लंका के छोटे-से द्वीप के द्वारा श्याम के लोगों को धार्मिक प्रेरणा मिली थी। श्याम के प्रचलित वर्तमान थेरवाद ने इन दोनों देशों में और बर्मा के सम्बन्ध को दृढ़ किया है।'

राजकुमार रङ्गजीत ने इस स्वागत का उत्तर देते हुए कहा कि 'बौद्ध धर्म तथा बौद्ध दर्शन अत्यन्त प्राचीन काल से भारत और श्याम में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध की शृंखला की कड़ी रहा है।

राजकुमार ने इस बात पर जोर दिया कि सबसे ध्यान देने की बात तो यह है कि श्याम, लंका, बर्मा आदि देश बराबर भगवान् बुद्ध के देश से प्रेरणा ग्रहण करते रहे हैं।

राजकुमार और राजकुमारी ने भगवान् बुद्ध के चरणों की पुष्पों तथा धूप-दीप द्वारा अर्चना की।

नई दिल्ली में बर्मी उत्सव

नई दिल्ली, बर्मी दूतावास। गत १० जून को सायंकाल बर्मा के भारत-स्थित राजदूत के निवासस्थान पर नई दिल्ली में भगवान् बुद्ध के 'महासमय सुत्त' उपदेश की स्मृति में एक सार्वजनिक सभा हुई। सभा के अध्यक्ष बर्मा के राजदूत सर माँग-जी थे।

यह दिवस बर्मा में नेयाँन (ज्येष्ठ) की पूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध है और सारे बर्मा में बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है। कहते हैं कि इसी दिन भगवान् बुद्ध ने शान्ति का सबसे महत्वपूर्ण उपदेश किया था जो 'महासमय सुत्त' में है।

सभा के आरम्भ में भिक्षुओं द्वारा त्रिपिटक से सूत्रों का पाठ हुआ और दिवस के महत्व पर सिंहली भिक्षु थेर सद्धातिस्स ने एक छोटा सा भाषण दिया। थेर ने बतलाया कि 'इस दिन भगवान् ने विश्व-शान्ति का उपदेश किया था। सिंहली बौद्ध इसे उस घटना की स्मृति मानते हैं जब कि शाक्यमुनि का धर्म सम्राट अशोक ने अपने पुत्र कुमार अर्हत महेन्द्र द्वारा सिंहल भेजा था। यह घटना तीसरीशती ई० पूर्व ५० की है।

बर्मा के बौद्ध सहानुयायियों को थेर ने यह विश्वास दिलाया कि 'वह दिन दूर नहीं जबकि सिंहल द्वीप में भी 'महासमय सुत्त' का उतना ही महत्व समझा जाने लगेगा जितना कि बर्मा में समझा जाता है अथवा जितना समझा जाना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि संसार के सभी बौद्ध देशों में इस पूर्णिमा का उत्सव किसी न किसी रूप में मनाया जाता है, पर आवश्यकता इस बात की है कि 'महासमय' की विशेषता को लक्ष्य कर यह उत्सव वैसे ही समारोह के साथ सर्वत्र मनाया जाय जैसा कि बर्मा में लोग मनाते हैं।

मंग्पु में धर्मचक्र प्रवर्तनोत्सव

गत आषाढ़ पूर्णिमा के दिन मंग्पु में धर्मचक्र प्रवर्त्तनोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया।

भारत के बौद्धों को चीन की भेंट

कलकत्ता ५ अगस्त। चीन की राष्ट्रीय सरकार के पर राष्ट्र मन्त्री के सलाहकार श्री शेनसंग लिङ ने हिन्दुस्तान के बौद्धों को भगवान् बुद्ध की पीतल की एक डेढ़ फुट ऊँची मूर्ति भेंट की है। यह मूर्ति उन्हें हाल ही में नेपाल के महाराज से मिली थी। अब वह कलकत्ते के महाबोधि सभा के मन्दिर में रखी गई है। (आज)

जातक कथाओं की प्रामाणिकता का एक संवाद—इस वैज्ञानिक युग में बहुत से लोग जातक की अनेक कथाओं पर विश्वास नहीं करते थे। किन्तु अभी हाल ही में लन्दन से प्रसारित एक समाचार में कहा गया है कि "ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने ब्रिटेन के पश्चिम में समुद्र-गर्भ-स्थित एक विशाल जल प्रपात का पता लगाया है, विश्वास

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

किया जाता है कि इसी के कारण इस प्रदेश में सन् १९३० के बाद से मछलियों की संख्या नगण्य हो गई है। बताते हैं कि भारी मात्रा में समुद्र के अन्दर पानी नीचे की ओर गिरता है।" इस संवाद से सुप्पारक जातक की वह बात प्रमाणित हो जाती है, जिसमें कि "वलभा-मुख" समुद्र का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि ऐसा जलप्रपात है, जिसमें पड़कर कोई भी जलपोत बच नहीं सकता। वह जलप्रपात के साथ ही समुद्रगर्भ में समा जाता है।

सारनाथ का श्रावणी मेला—प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी सारनाथ का श्रावणी-मेला हुआ। सहस्रों नर-नारी मूलगन्ध कुटी मन्दिर में आकर श्रद्धापूर्वक पुष्प-पूजा किये तथा सारनाथ के भग्नावशेषों का परिदर्शन कर घर लौटे।

हमारे यावज्जीवी ग्राहक

निम्नलिखित सज्जन ५०) या अधिक देकर "धर्म-दूत" के यावज्जीवी ग्राहक बने हैं। हम आशा करते हैं कि आप भी ५०) भेजकर "धर्म-दूत" का यावज्जीवी ग्राहक बनेंगे तथा हमारी सहायता करेंगे। यावज्जीवी ग्राहकों के नाम समय-समय पर प्रकाशित होते रहेंगे। हम अपने यावज्जीवी ग्राहकों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं और उनकी शुभ-कामना करते हैं।

१—श्री धर्मराज शाक्य १००)
२—श्री त्रिरत्न कुरुमराज १०१)
३—सेठ श्री नारायणदासजी बाजोरिया ५१)
४—श्री विरेन्द्रलाल जी मुत्तसुद्दी १०५)
५—श्री भाजुरत्न मणिहर्षज्योति १०५)
६—श्री अवधविहारीलाल जी श्रीवास्तव ५०)
७—अनागारिका गौतमी (लंका) ५०)
८—श्री जशनमल जी १२५)
९—आर० एल० सैनी १००)

आयुर्वेदवाणी

आयुर्वेद-जगत में क्रान्ति मचाने वाली समयानुकूल वैज्ञानिक ढंग की एकमात्र मासिक पत्रिका

पत्रिका द्वारा आयुर्वेद जगत् में पैठे हुये महामान्य धुरन्धर विद्वानों के उज्ज्वल मस्तिष्क से उत्पन्न नवीन अन्वेषण पूर्ण उच्चकोटि का स्थायी साहित्य आयुर्वेद प्रेमियों के ज्ञानवर्धन हेतु प्रतिमास प्रकाशित किया जाता है और वर्ष में एक वृहद विशेषांक भेंट किया जाता है।

इसके स्थायी स्तम्भों के लेख विवेचन, औषधि गुण-धर्म विवेचन, कृत्रिम-औषधि-परीक्षण, सूचीवेध विज्ञान, शल्य, चिकित्सा, बालरोग व्यवस्था, नारी स्वास्थ्य, फल और स्वास्थ्य विज्ञान, अनुभूतयोग, प्रश्नोत्तर आदि आदि चिकित्सा क्षेत्र में नव-जीवन का संचार करने वाले हैं।

हमें पूर्ण आशा ही नहीं दृढ़ विश्वास है कि इस अमूल्य साहित्य के लिये आज ही ५।) वार्षिक मूल्य विशेषाङ्क सहित का मनिआर्डर द्वारा भेज कर लाभ उठावेंगे। प्राप्तिस्थानः—

भारद्वाज आयुर्वैदिक फार्मेसी, पो० विजयगढ़ (अलीगढ़)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नये प्रकाशन

सरल-पालि-शिक्षा—लेखक पं० भिक्षु सद्धातिस्स। प्रकाशक—महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस। मूल्य १॥)।

सरल-पालि शिक्षा के प्रकाशन से हमें विशेष प्रसन्नता है। हिन्दी में ऐसे उपयोगी ग्रन्थ का सर्वथा अभाव था। जो लोग पालि भाषा का अध्ययन करना चाहते थे, उनके सामने ग्रन्थ के अभाव की समस्या थी। किन्तु इस ग्रन्थ से उसकी पूर्ति हो गई है। यद्यपि यह ग्रन्थ विशेष कर मैट्रिक और इण्टर के छात्रों को ध्यान में रखकर लिखा गया है। तथापि यह प्रारम्भिक सभी प्रकार के छात्रों के लिए उपादेय है।

पुस्तक की छपाई आदि भी सुन्दर है। हम भाई सद्धातिस्स जी को इस ग्रन्थ की सफलता के लिए हिन्दी पाठकों की ओर से हार्दिक बधाई देते हैं।

बुद्ध-कीर्तन—लेखक—प्रेमसिंह चौहान दिव्यार्थ। प्रकाशक—महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस। मूल्य २॥)।

'दिव्यार्थ' जी से हमारे पाठक परिचित हैं। इनकी अनेक कवितायें "धर्मदूत" में प्रकाशित हो चुकी हैं। 'बुद्धकीर्तन' में उन्होंने भगवान् का 'जीवन-चरित' पद्यबद्ध लिखा है। भाषा संस्कृत, हिन्दी, उर्दू—तीनों का रसास्वादन कराती है। हिन्दी में शुक्ल जी के बुद्ध चरित' के पश्चात् अभी तक ऐसा कोई ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ था। इस कृति के लिए बधाई है।

चन्द्रमणि महास्थविर—लेखक—भिक्षु धर्मरक्षित। प्रकाशक—कुशीनगर-प्रकाशन।

इसमें पूज्य महास्थविरपाद का जीवन चरित वर्णित है। इसका प्रकाशन उनकी ७३वीं वर्षगाँठ के अवसर पर हुआ था। ग्रन्थ में भारत, नेपाल और बर्मा के बौद्ध-धर्म की उन्नति अवनति का सुन्दर इतिहास दिया गया है।

श्रीराष्ट्रलोकः—लेखक—अमृतवाग्भव आचार्य। प्रकाशक—श्री स्वाध्याय सदन, सोलन, शिमला। मू० ॥)।

यह संस्कृत ग्रन्थ है। जिसका हिन्दी अनुवाद मूल-सहित प्रस्तुत किया गया है। इसमें संसार-कल्याण एवं मानव-जीवन के अन्तिम लक्ष्य का वर्णन किया गया है।

श्री विश्वविजय पचांगम्—सम्पादक—पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी। प्रकाशक—श्री सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा, श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर, नई दिल्ली। मूल्य ॥)।

पृष्ठ संख्या २०४।

यह पचांग अत्यन्त ही सुन्दर और सर्वांग परिपूर्ण छपा है। इसमें भारत राष्ट्र संघ तथा उसके प्रमुख नेताओं का भी वर्षफल वर्णित है। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान इंगलैण्ड, रूस, फ्रांस, इटली, जर्मनी, मिश्र, फिलस्तीन, जापान, बर्मा, हिन्देशिया, चीन और अमेरिका का भी वर्षफल संक्षेप में दिया गया है। पचांग की छपाई सुन्दर हुई है।

श्री हृदय के चार ग्रन्थ—हमें नेपाल के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् कवि और लेखक श्री चित्तधर उपासक 'हृदय' के चार काव्य ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं—(१) सुगत सौरभ, (बुद्ध जीवनी) मूल्य ५), (२) बभ्रुवाहन, मूल्य ।=) (३) न्हूगु स्वां मूल्य ≋), (४) अन्तरध्वनि, मूल्य ।)

ये चारों ग्रन्थ नेवारी भाषा के हैं। हम बहुत दिनों से सुगतसौरभ की प्रतीक्षा में थे। अब इसे प्रकाशित हुआ देखकर बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। यद्यपि हम नेवारी भाषा नहीं जानते हैं, किन्तु इन ग्रन्थों की उपयोगिता से भली प्रकार परिचित हैं। अपनी नेपाल-यात्रा में ही हमने इन ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों को देखा था और कविताओं को भी अर्थ सहित सुना था। आशा है इन ग्रन्थों के प्रकाशन से नेपाल देशवासियों का महोपकार होगा।

इन ग्रन्थों के मिलने का पता—मानदास व सुगतदास-असनत्वा, कान्तिपुर, नेपाल।

———

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बनारस 'वाइल' सिल्क साड़ी

बिल्कुल नया नमूना नयी चीज हर डिज़ाइन में व एक रंग में सिर्फ एक साड़ी पहले मँगा कर देखें फिर दर्जनों मँगाइयेगा, स्टाक बहुत कम है। जल्द से जल्द आर्डर दें।

६ गज की साड़ी की कीमत सिर्फ १५)

के० एस० मुत्तैया एण्ड कम्पनी लि०

सिल्क हाउस, बनारस

सूची पत्र हिन्दी में छप रहा है।
साड़ियाँ बी० पी० द्वारा भी मँगा सकते हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

शेर ओ शायरी

[उर्दू के सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज़्म]

ले० अयोध्याप्रसाद गोयलीय

[प्राचीन और वर्तमान कवियों में सर्व प्रधान लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का संकलन और उर्दू कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय।]

पृष्ठ संख्या ४६०। मूल्य आठ रुपये

मुक्तिदूत (उपन्यास)

ले० वीरेन्द्रकुमार एम० ए०

[हिन्दी में अपने ढंग का सबसे पहला पौराणिक रोमांस। आधुनिक भारतीय साहित्य में जैन संस्कृति पर आधारित प्रथम कलाकृति।]

पृष्ठ सं० ३४०, मूल्य ४॥)

पथ चिन्ह

[स्मृति रेखायें और निबन्ध]

ले० शान्तिप्रिय जी द्विवेदी

[हिन्दी साहित्य की अनुपम पुस्तिका जो आज की गतिविधि की निःसारता दिखाती है और पाठक को रुकने के लिये वाध्य करती है।] मूल्य २)

जैन शासन

पं० सुमेरचन्द्र जी दिवाकर न्यायतीर्थ

[जैनधर्म का परिचय करानेवाली सुन्दर रचना]

पृष्ठ सं० ४२०। मूल्य ४।-)

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ

डा० जगदीशचन्द्र जैन M. A. Ph. D.

[व्याख्यान तथा प्रवचनों में उदाहरण देने योग्य] मूल्य ३)

व्यवस्थापक—**भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस सिटी**

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मध्यप्रांत तथा बरार के शिक्षा संचालक द्वारा पाठशालाओं और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत

समाज के सर्वाङ्गीण विकास की अभिनय मासिक-पत्रिका

स्वीकृति-पत्र सं० ५५१, दिनांक १९-४-४९

सम्पादिका

भारतीय एम. ए.

सम्पादक

बागमल गोलछा
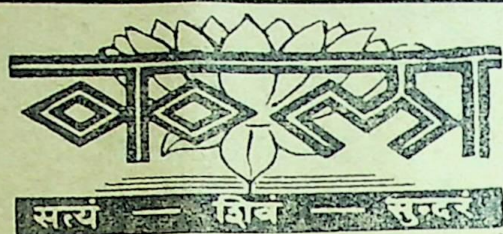
वार्षिक—५)

एक प्रति ।।)

पुस्तकालयों तथा छात्रों से

४, मात्र

कला के ग्राहक बनकर गागर में भरे सागर से लाभ उठाइये

कला में विज्ञापन देकर अपने व्यवसाय की व्यापकता से लाभ उठाइये

पत्र व्यवहार का पता :—

'कला' मासिक कला-मन्दिर सदर नागपुर।

भारत की सीमा का सन्तरी

पंजाब का प्रमुख राष्ट्रीय सचित्र हिन्दी पत्र

"साप्ताहिक दीपक"

हिन्दी का प्रबल प्रचारक	▲	गांधीवाद का समर्थक
राष्ट्रीयता का पोषक	▲	राष्ट्रीय सरकार का समर्थक
जनता-जनार्दन का सेवक	▲	जीवन-जागृति का प्रतीक
कुरुचि वर्द्धक साहित्य से रहित	▲	अश्लील विज्ञापन से अछूता

ग्राम सुधार इसका मुख्य ध्येय है।

*** प्रति सप्ताह पढ़िये ***

पंजाब व राजपूताने की घटनाओं का दिग्दर्शन। देश व विदेश के महत्वपूर्ण समाचार। मननशील लेख, तर्क पूर्ण टिप्पणियां। स्फूर्ति दायक कविताएँ। हिन्दी विश्वविद्यालय प्रयाग व पंजाब की हिन्दी परीक्षोपयोगी विद्वत्तापूर्ण सामग्री।

वार्षिक मूल्य ८)] [एक प्रति ≡)

❀ शीघ्र ग्राहक बनिए ❀

प्रबन्धक - "दीपक" साहित्य-सदन, अबोहर (पू० पंजाब)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महाबोधि-प्रकाशन

MAHA BODHI PUBLICATIONS

हिन्दी

मज्झिम निकाय (बुद्ध वचनामृत-१) ८)
दीघनिकाय (" " २) ६)
विनय पिटक (संघ के नियम) ८)
उदान १॥)
बुद्धवचन ॥)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा ।–)
बौद्ध-शिशुबोध ।)
तेलकटाह-गाथा ।)
बौद्ध-चर्य्या पद्धति १॥)
भगवान हमारे गौतम बुद्ध –)
सुत्त-निपात १)
पालिमहाव्याकरण ४॥)
सरल-पालि-शिक्षा १॥)
बुद्धकीर्तन २)
बौद्ध दर्शन (मनोविज्ञान) २)
भगवान् बुद्ध =)
सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन ॥।)
धम्मपद १॥)
खुद्दक पाठ ।)
जातिभेद और बुद्ध ।≈)

बँगला

बुद्धवाणी ३)
सुत्त-निपात १॥)
थेरीगाथा १)

चार पुण्यस्थान १)
तीन बौद्धस्थान २)
सारिपुत्र-मौद्गल्यायन १)
दीघ-निकाय भाग १ १॥)
धम्मपद (पालि, बंगला) ॥)
भगवान् बुद्ध के उपदेश ।≈)
बौद्ध धर्म के संक्षिप्त सार =)
पालि प्रवेश ॥)

पालि

नवनीत टीका (अभिधम्मत्थ-संगहो) २॥)
विसुद्धिमग्ग दीपिका ३॥)

तिब्बती

तिब्बती रीडर ।)
तिब्बती गाइड १)
तिब्बती व्याकरण १।)

नेवारी

शील व मैत्री भावना =)
पूजा-विधि =)

उर्दू

भगवान् बुद्ध =)
बौद्ध धर्म-सवाल-जवाब ।≈)

संस्कृत

वादन्यायः ३)
वार्तिकालंकारः २)

अन्यान्य बौद्ध प्रकाशनों के लिए तीन आने का डाक-टिकट भेजकर विस्तृत परिचयात्मक सूची मँगाइये।

महाबोधि पुस्तक-भण्डार सारनाथ, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

JAWAHARLALL PANNALALL & Co

267 DASASWAMEDH ROAD, BANARAS,

Branch :
College Street Market
CALCUTTA
Phone B. B. 1909

OVER CENTURY FAMOUS
HOUSE
FOR

Branch :
Katra Aluwala,
AMRITSAR.

BANARASI & Other Silk Saris etc.

Stock of up-to-date designs of this year.
No Middlemen profit from Factory direct to Customres

दशाश्वमेध रोड, बनारस

शाखा
कालेज स्ट्रीट मार्केट
कलकत्ता
बी० बी० १९०९

बनारसी और रेशमी कपड़े
के
भारत प्रसिद्ध प्रस्तुत कारक और विक्रेता।

शाखा
कटरा आलूवाला
अमृतसर

प्रकाशक—उ० धम्मजोति, महाबोधि-सभा, धम्मपाल रोड, सारनाथ-इसिपतन, बनारस।
मुद्रक—दुर्गादत्त त्रिपाठी, सन्मार्ग प्रेस, टाउनहाल, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धर्म-दूत

समालोचनार्थ परिवर्तनार्थ

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

"भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोकपर दया करने के लिये, देवताओं ... हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! ...

...वाचनालय, गुरुकुल कांगड़ी

वर्ष १४ अंक ६-१० | आश्विन कार्तिक | बु० सं० २४९३ वि० सं० २००६ ई० सं० १९४९ | दिसम्बर जनवरी | वार्षिक मूल्य २) आजीवन ५०) इस अङ्क का ।=)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

रजिस्ट्री की संख्या ७९

JAHARLALL
PANNALALL

"धर्म-दूत" के नियम

१—धर्मदूत भारतीय महाबोधि सभा का हिन्दी मुखपत्र है। "धर्मदूत" प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।

३—पत्रव्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिए, ताकि पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिए।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता व लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिनका लेख वा कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।

६—"धर्मदूत" में सिर्फ बौद्धधर्म, कला, संस्कृत, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।

७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

८—धर्म-दूत का वार्षिक मूल्य २) और आजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक—
"धर्मदूत", धर्मपाल रोड, सारनाथ (बनारस)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

धर्म-दूत

समालोचनाय ... पारवतनाथ

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

"भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिये, लोकपर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १४	सारनाथ, दिसम्बर-जनवरी	बु० सं० २४९३ / ई० सं० १९४९	अङ्क ९-१०

बुद्धवचनामृत

"अग्निवेश! यह रूपवान काया चार महाभूतों से बनी है, माता-पिता से उत्पन्न है; दाल-भात से बढ़ी है, अनित्य, विनाशी, टूटने और ध्वंस होने की स्वभाव वाली है। इसे मुझे अनित्य के तौर पर, दुःख, रोग, फोड़ा, काँटा बाधा, नाशमान, परकीय, शून्य आत्मा रहित के तौर पर समझना चाहिये। इस काया को अनित्य के तौर पर समझनेसे उसका इस काया में राग, स्नेह, अन्वयता नष्ट हो जाता है।

"अग्निवेश! यह तीन वेदनायें हैं। कौन सी तीन? सुखा वेदना, दुःखा वेदना और अदुःख-असुखा वेदना। अग्निवेश! जिस समय व्यक्ति सुखा वेदना को अनुभव करता है उस समय न दुःखा वेदना को अनुभव करता है, और न अदुःख-असुखा वेदना को। सुखा वेदना को ही उस समय अनुभव करता है अग्निवेश! जिस समय दुःखा वेदना को अनुभव करता है, उस समय न सुखा वेदना को अनुभव करता है और न अदुःख-असुखा वेदना को। दुःखा वेदना को ही उस समय अनुभव करता है। अग्निवेश! जिस समय अदुःख-असुखा वेदना को अनभव करता है, उस सयय न सुखा वेदना को अनुभव करता है, और न दुःखा वेदना को। अदुःख-असुखा वेदना को ही उस समय अनुभव करता है।

"अग्निवेश! सुखा वेदना भी अनित्य है, संस्कृत है, कारण से उत्पन्न है, क्षय होने के स्वभाव वाली है, व्यय और विराग होनेके स्वभाव वाली है, निरोधधर्मा है। अग्निवेश! दुःखा वेदना भी अनित्य है, अदुःख-असुखा वेदना भी अनित्य है। अग्निवेश! ऐसा समझ बहुश्रुत आर्य श्रावक सुखा वेदना से भी उदासीनता को प्राप्त होता है, दुःखा वेदना से भी उदासीनता को प्राप्त होता है, अदुःख-असुखा वेदना से भी उदासीनता को प्राप्त होता है। उदासीनता को प्राप्त हो विरक्त होता है, विराग को प्राप्त हो विमुक्त होता है, विमुक्त होने पर "मैं विमुक्त हूँ" यह ज्ञान होता है, 'जन्म खत्म हो गया', ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अब यहाँ करने के लिये कुछ शेष नहीं है—यह जान लेता है।

"अग्निवेश! इस प्रकार विमुक्त-चित्त भिक्षु न किसी के साथ संवाद करता है, न विवाद करता है, संसार में जो कुछ कहा गया है, आग्रह-रहित हो उसी से (कथन-) व्यवहार करता है।" (—मज्झिम निकाय)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महामुनियों का पुण्य-स्मृति अवशेष

श्रीकमलापति त्रिपाठी शास्त्री, एम० एल० ए०, प्रधान सम्पादक "दैनिक संसार"

काशी की इस पवित्र भूमि में हम अत्यन्त श्रद्धा, आदर और नम्रता के साथ महाभिक्षु सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के पुण्य अस्थि अवशेषों का हृदय से स्वागत करते हैं। ये अवशेष आज ढाई सहस्र वर्ष के बाद ऋषिपतन में दर्शन पूजन के लिए काशी लाये गये हैं। इन पावन अवशेषों के आगमनमात्र से हमारे अन्तर के भावतन्तु झंकृत हो उठे हैं। ढाई सहस्राब्दियों का हमारा प्राचीन इतिहास हमारे सम्मुख सजीव खड़ा हो जाता है। हमें स्मरण हो आता है कि सहस्राब्दियां बीत गयीं अब हमारी इसी मातृभूमि के अंक में शाक्य महामुनि ने अवतार ग्रहण करके विकल मानव समाज के सामने वह शुभ्र शाश्वत और सुखप्रद मार्ग निर्मित किया जिस पर चलकर मनुष्य आज भी सुख और श्रेय प्राप्त करता है। भारत वह पवित्र देश है जिसमें मनुष्यता की उज्ज्वल विभूतियाँ और उसमें निहित सात्विक प्रतिभा समय-समय पर सजीव और सदेह मूर्त होकर संसार का कल्याण करती रही है। धर्म का, विकास का, प्रगति और उत्थान का प्रकाश, देवत्व और संस्कृति का सन्देश हमारा यह देश समस्त मानव-जगत् को युग युग से देता चला आया है। कपिलवस्तु में शुद्धोदन के प्रासाद में ढाई सहस्र वर्ष पूर्व गौतम का जन्म हुआ जिनके पावनपद-पद्मों से वह सन्मयी धारा प्रवाहित हुई जिसने न केवल इस देश के कोने-कोने को प्रत्युत भारत की सीमा का उल्लंघन करके विश्व के विशाल भूभाग का आप्लावन किया। गौतम को गया के बोधिवट की शीतल छाया में प्रकाश मिला परन्तु उन्होंने हमारी इसी नगरी के पार्श्व में स्थित ऋषिपत्तन में आकर अपने महान धर्मचक्र का प्रवर्तन किया।

प्रान्तीय गवनर द्वारा स्टेशन पर पवित्र अस्थियों का स्वागत

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आत्मा के साक्षात्कार से उद्बुद्ध हुए गौतम ने प्रथम बार अपने धर्म का सन्देश मानवसमाज को यहीं से दिया और यहीं से उस प्रकांड और प्रखर बुद्ध युग का प्रारम्भ हुआ जिस पर आज भी भारत गर्व करता है। हमारे इतिहास का बौद्धकालीन युग हमारा वह सर्वोत्कृष्ट स्वर्णाभ शुभ्रयुग रहा है जिससे न केवल हम प्रत्युत सारी मनुष्य जाति चिरकाल तक प्रेरणा प्राप्त करती रहेगी। बुद्ध के बाद इस देश में उन्नति, विकास और ऐश्वर्य का चरम उत्कर्ष हुआ। भगवान तथागत के सन्देशवाहक बनकर इस देश से अनेक भिक्षु, दार्शनिक, साधक, महात्मा और पण्डित विदेशों को गये और सहस्राब्दियों तक भगवान की वाणी से निकले हुए उनके अमृतमय उपदेश का प्रचार और प्रसार करते रहे। वह युग था जब भारत राष्ट्रीय दृष्टि से यदि एक ओर अति उन्नत अवस्था में पहुँच गया था तो अन्तर्राष्ट्रिय दृष्टि से भी उसका अन्यतम स्थान था। यदि भारत के राष्ट्रनायकों की बलमयी भुजाओं को शक्ति का स्वाद पारस, यूनानी तथा मध्य एशिया की शक, हूण आदि जातियों को मिला और उन्हें भारत की शक्ति का लोहा मानना पड़ा तो दूसरी ओर संस्कृति, धार्मिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में भारत ने समस्त संसार का नेतृत्व प्राप्त किया। फलतः आज भी सारा जगत भारत के प्राचीन इतिहास को श्रद्धा के साथ देखता है और हम भारतीय अपने उस इतिहास की विरासत के बल पर संसार की ओर अपना सिर ऊँचा करके देखने में समर्थ होते हैं।

ऐसे समय जब ढाई सहस्र वर्ष पूर्व भारत की पवित्र भूमि में उत्पन्न हुए दो प्रसिद्ध महात्माओं के भौतिक देह का अवशेष हमें प्राप्त हो रहा है तब स्वभावतः अपने विशाल और उज्ज्वल अतीत के पट की झलक हमें मिल जाती है और हम असाधारण रूप से स्पन्दित हो उठते हैं। महाभिक्षु सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भगवान बुद्ध के अत्यन्त प्रिय योग्य और सफल शिष्यों में अग्रणी रहे हैं। हमारा प्राचीन बौद्ध कालीन इतिहास इन दोनों की पवित्र कृतिगाथा और स्मृति से सुशोभित है। इन दोनों का निर्वाण भगवान के जीवनकाल में ही हो गया था और कहा जाता है कि भगवान की प्रेरणा से ही अस्थि के स्वरूप में इनके अवशेष सुरक्षित रखे गये जो अब तक सांची के प्रसिद्ध स्तूप-गर्भ में प्रतिष्ठित थे। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भगवान बुद्ध के सन्देहवाहक थे जिन्हों ने अपनी तपस्या, साधना, प्रतिभा और आत्मा की उज्ज्वलता के द्वारा समस्त देश में उस ज्योति का प्रसार किया जिसकी सजीव प्रतिमा के रूप में स्वयं बुद्ध धरती पर अवतरित हुए थे। आज सहस्रों वर्षों की पराधीनता का अन्त होने के बाद अब भारत स्वतन्त्र हुआ है तब भारतीय संस्कृति के इन आरंभिक नायकों और सन्देशवाहकों की पुण्यस्मृति, हमें अपने प्राचीन गौरव, अपनी पुरातन परम्परा और अपने महान् उत्तर दायित्व का स्मरण कराने में समर्थ हो यह हमारी कामना है। यही वह देश है जिसने सम्राट अशोक के नेतृत्व में धरती के बहुत बड़े भाग पर धर्म विजय की पताका फहरायी थी। लंका, स्वर्ण-भूमि (बर्मा), मलाया, हिन्दएशिया, तिब्बत चीन, मंगोलिया, जापान, अफगानिस्तान, फारस, अरब मध्यएशिया के बड़े भूभाग फिलस्तीन, स्याम, यूनान और मिस्रतक भारत के सांस्कृतिक सन्देश से प्रभावित हुए थे। जब जगत् में अन्धकार था और मनुष्य बहुत कुछ बर्बर स्थिति में पड़ा हुआ अपनी ही पशुता से त्रस्त था और जब उसकी हिंसा, उसके शस्त्र और उसके अहंकार के भोग का ही बोलबाला था उस समय बुद्ध के उपदेशों ने मनुष्य की आत्मा को विकास के उच्च दैवी स्तरकी ओर बलपूर्वक उत्प्रेरित किया था। आज पुनः जगत् विकट सांस्कृतिक संकट में फंसा दिखाई दे रहा है। मनुष्य अपनी महत्ता, उच्चता और देवत्व को जैसे भूल गया है। ऐसे युग में संसार पुनः नये पथ, नये सन्देश और नये जीवन की अपेक्षा कर रहा है। सनातन सत्य यद्यपि नया नहीं हुआ करता पर वह अपनी शाश्वत सत्ता रखते हुए भी सदा ही नूतन रहता है। जिन चितरंजन तथ्यों की ओर भगवान ने ढाई सहस्र वर्ष पूर्व संकेत किया था वे सदा स्थित रहे हैं और सदा स्थित रहेंगे पर इस प्रकार स्थित रहते हुए भी वे तब भी नूतन थे और आज भी नूतन हैं। कालधारा जब उन तथ्यों की अपेक्षा करती है तब वे किसी विभूतमयी आत्मा के मुख से निर्गत हो कर संसार के सामने नये रूप में ही उपस्थित होते हैं। एक समय यदि उनका उपदेश भगवान् ने किया तो आधुनिक युग में उन्हीं अमर आदर्शों की ओर संकेत बापू ने किया। इस समय क्या उन्हीं आदर्शों के अभाव में मनुष्यता संकटग्रस्त हुई दिखाई नहीं दे रही है? जिस देश का यह सौभाग्य था कि उसने उन आदर्शों की ओर संकेत करने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

का श्रेय पाया उसी देश पर क्या यह उत्तरदायित्व नहीं है कि वह स्वयम् उन आदर्शों की ओर उन्मुख होकर अग्रसर हो और अपने चरित्र से संसार को उनका सन्देश प्रदान करें। भारत स्वतन्त्र हुआ है और संसार उसकी ओर महान हुए सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की पुण्यस्मृति हमें बल प्रदान करे। वह सहायक हो जिसमें हम अपनी विस्मृति के गहन अंधकार से निकल कर अपने उज्वल अतीत से प्रेरणा प्राप्त कर सकें और अपने वर्त्तमान तथा भविष्य

पवित्र अस्थियों के जुलूस का एक दृश्य

उत्सुक नेत्रों से देख रहा है। वह आशा कर रहा है कि इस देश की प्रतिमा और उसकी सुसंस्कृत आत्मा विश्व के ऐतिहासिक रंगमंच पर कदाचित कोई अभिनव अभिनय करेगी। ऐसे समय भगवान् बुद्ध और उनके प्रसार से के शुभ्र तथा शिवमय स्वरूप का निर्माण कर सकें। भगवान के शब्दों में भारत 'बहुजन हियताय, बहुजन सुखाय' तथा लोक और देव के आराधनाय अपने अस्तित्व का उपयोग कर सके। (—'संसार' से)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बुद्धकाल में तापस-जीवन

श्रीसुमन वात्स्यायन, वर्धा

"आर्यों का धर्म-कर्म आरम्भ में बहुत सरल और सीधा था। उनके सभी देवता स्तोत और उपासक को वर देनेवाले, असीस देनेवाले स्तुति प्रार्थना और आहुति से तृप्त और प्रसन्न होनेवाले थे।"[१] सही माने में प्राचीन भारत का धर्म एक उलझन-रहित प्राकृतिक धर्म था। लोग देवताओं के कोप से बचने के लिये यज्ञ करते और बलि चढ़ाते थे। लेकिन जिस सामर्थ्यवान के कोप से बचने की जरूरत थी वह प्रसन्न होनेपर कुछ दे भी सकता था।

इस तरह कालान्तर में यज्ञ और बलिकर्म देवताओं से मोल-भाव के साधन हो गये—देहि मे ददामि ते।

यज्ञ और बलिकर्म जब मनुष्य और देवताओं के बीच लेन-देन का साधन हो गया, तब यह भावना उत्पन्न होना कि इन्हीं साधनों द्वारा देवताओं को मनुष्य की इच्छा-पूर्ति के लिये विवश भी किया जा सकता है—बिलकुल स्वाभाविक था। प्रो० सिलबन लेवी के मतानुसार इस प्रथा में कोई नैतिकता नहीं है। बलि, जो मनुष्य और देवताओं के सम्बन्ध को नियमित करता है, एक मेकेनिकल काम है। यह स्वेच्छानुसार काम करता है और पुरोहितों की जादूगरी को सामने लाता है।

धीरे-धीरे यज्ञ और बलिकर्म भारतीय समाज में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त कर लेता है। आज बीसवीं सदी में भी वर्षा न होनेपर हम इन्द्र को यज्ञ द्वारा ही विवश करते हैं। इस तरह यज्ञ और बलिकर्म करानेवाले पुरोहित भारतीय समाज पर हावी हो जाते हैं। फिर तोः—

'देवाधीनम् जगत् सर्वम मन्त्राधीनम् तु देवतम्। तन्मन्त्र ब्राह्मणाधीना ब्राह्मणा मम देवताः॥ हो जाता है। अर्थात् सारा विश्व देवताओं के अधीन है और देवता (बलि) मन्त्र के वश में हैं। लेकिन वे मन्त्र ब्राह्मणों के अधीन हैं। इसलिये ब्राह्मण हमारे देवता हैं।

बलिकर्म की महत्ता इतनी ज्यादा बढ़ गई कि मनुष्य तक की बलि दी जाने लगी। नरबलि सबमें श्रेष्ठ मानी गई। ऋग्वेद काल के बहुत बाद तक नरबलि आम बात थी और अब भी अखबारों में चोरी-छिपे की गई नरबलि की खबर छपती ही रहती है। पर था यह बहुत मँहगा सौदा। साधारणतया बलि के लिये एक मनुष्य खरीदने में एक हजार पशु तक देने पड़ते थे। श्रद्धा और विश्वास की अधिकता तथा आर्थिक विवशता के कारण नरबलि की अपेक्षा आत्म-बलि देना श्रेष्ठ माना जाने लगा। कठोरतम तपस्या, काय-क्लेश और आत्मबलि द्वारा देवताओं को विवश करके मनचाहा शक्ति प्राप्त करने की कथाओं से पुराण तथा अन्य प्राचीन साहित्य भरे पड़े हैं। आत्मबलि और कठिन तपस्या द्वारा ही रावण अभेद्य हो सका। नहुष तीनों लोक का राज्य पा सका और क्षत्रिय कुल में पैदा होकर भी विश्वामित्र ब्राह्मण ऋषि का उच्चपद प्राप्त कर सके। ब्राह्मण का श्रेष्ठ पद प्राप्त करने के लिये चाण्डाल मातंग ने इतनी कठिन तपस्या की कि इन्द्र का आसन गर्म हो गया।

जैन और बौद्धधर्म के उत्थानकाल में तपस्या का प्रभाव अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। तप धार्मिकता का चिन्ह माना जाने लगा। प्रो० जैकोबी ने लिखा है, "जैन लोग अपने ब्राह्मण प्रतिद्वन्दी से कठिन तप करने में गौरव अनुभव करते थे।" महावीर स्वामी "महीना, आध महीना पानी तक नहीं पीते थे।...अपनी साधना में वे इतना निमग्न रहते थे कि उन्होंने कभी अपनी आँख तक न मसली और न शरीर तक को खुजलाया। उस कड़कती सर्दी में वस्त्र से शरीर को न ढँकने का उनका संकल्प दृढ़ था।"[२] जैन साधुओं के आदर्श जीवन के लिये आचारांग सूत्र बताता है—"जल जीव ही है; इस कारण उसका उपयोग करना हिंसा है। बिना वस्त्र के ठंढ-गरमी आदि अनेक दुख सहनेवाला

---

१ भारतीय इतिहास की रूप रेखा। २ आचारांग सूत्र।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वह भिक्षु उपाधि से मुक्त हो जाता है और उसका तप बढ़ता है।"

यह एक आश्चर्य की बात है कि जो जैनधर्म छोटे से छोटे जीव की रक्षा पर इतना जोर दिया है वही आत्म-हत्या की प्रशंसा करता है। आचारांगसूत्र के अनुसार "यदि भिक्षु को ऐसा जान पड़े कि मैं संयम-पालन के लिये इस शरीर को धारण करने में असमर्थ हूँ तो वह आहार कम करता रहे, घास लेकर एकान्त में जहाँ जीव-जन्तु पानी, गीली मिट्टी, काई, जाले न हों ऐसे स्थानपर बिठावे और उसपर बैठकर 'त्वरित मरण' स्वीकार करे।" उसी सूत्र के अनुसार काय-क्लेश द्वारा आत्महत्या की तीन विधियाँ हैं और यह (इस तरह की मृत्यु) अनेक मुक्तों द्वारा अपनायी जा चुकी हैं।

सिद्धार्थ गौतम ने भी बुद्ध होने के पूर्व इस तरह के कठोर तापस जीवन को बिताया था। उस समय की प्रथा के अनुसार उन्होंने भी अपना घर-परिवार छोड़कर जंगल का रास्ता लिया था। आलार कालाम और उद्रकरामपुत्र जैसे प्रसिद्ध तपस्वियों के पास रहकर योगभ्यास किया। उन्होंने भी बलि दे, भूखा और नंगा रह तप के नाम पर अनेक यंत्रणायें सह अपने को परिशुद्ध करने का प्रयत्न किया था।

बुद्ध ने स्वयम् अपनी कठोर तपस्या का वर्णन किया है—"सारिपुत्र! मैं नग्न रहता था, हाथ में ही खाता था, बुलाकर दी गई भिक्षा का त्यागी था, साप्ताहिक आहार करता था, अर्ध मासिक भोजन करता था, घास, गोबर खाता था, श्मशान में पड़े हुए कपड़े पहनता था, छाल पहनता था, केश-दाढ़ी नोचने वाला था, उकड़ूँ बैठता था, काँटे दार खाट पर सोता था। शाम को (सर्दी में) जलशयन करता था—ऐसे अनेक प्रकार से काया के आता-पन-सन्तापन के व्यापार में लगन हो विहरता था पपड़ी पड़े अनेक वर्ष के मैल को शरीर में संचित किये रहता था। सारिपुत्र! यह मेरी तपश्चर्या थी[१]।" बुद्ध ने अपने पूर्व उपवास व्रत का वर्णन करते हुए कहा है, "मेरा शरीर अत्यन्त दुबला हो गया। अस्सी वर्ष के बूढ़े जैसा मैं लगता था। ऊँट के पाँव जैसे कूल्हे और रस्सी की ऐंठन जैसी पीठ के काँटे को पकड़ लेता था[२]।" लेकिन सिद्धार्थ बुद्ध-मार्ग का पथिक था। उसकी बुद्धि जड़ नहीं थी। उसे अनुभव हुआ, "यह दुष्कर तपस्या बुद्धत्व प्राप्ति का मार्ग नहीं है"[३] "इस आचार से इस कठिनतप से दिव्य-शक्ति या उत्तम ज्ञान-दर्शन को नहीं पा सका।"[४]

सिद्धार्थ गौतम ने बुद्ध होने पर तापस जीवन की घोर निन्दा की। एक बार नग्न काश्यप के यह पूछने पर कि श्रमणों और ब्राह्मणों की ये तपस्यायें उनके श्रमणपन और ब्राह्मणपन की द्योतक हैं या नहीं, बुद्ध ने उत्तर दिया, "काश्यप! जो नंगा रहता है ⋯ (शरीर को अनेक प्रकार से तपाता है) वह शील-सम्पत्ति, चित्त सम्पत्ति और प्रज्ञा-सम्पत्ति की भावना नहीं कर पाता और वह श्रमणपन तथा ब्राह्मणपन से बिलकुल दूर है।"[५]

बुद्ध ने अपने प्रथम उपदेश (धर्मचक्र-प्रवर्तनसूत्र) में कहा, "द्वे मे भिक्खवे अन्ता पब्बजितेन न सेवितब्बा—योचायं कामेसु कामसुखल्लिकानुयोगो, हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो योचायं अत्तकिलमथानुयोगो दुक्खो अनरियोअनत्थ संहितो।" अर्थात् भिक्षुओ! दो अतियाँ हैं जिन्हें तुम्हें नहीं सेवन करना चाहिये। उनमें एक तो काम-सुख-काम वासनाओं में लिप्त रहना और दूसरा आत्म-पीड़ा में लगना। दोनों ही हीन कर्म हैं, निम्न कोटिके हैं, अनार्य-सेवित और अनर्थयुक्त हैं। इसीलिये भगवान् बुद्ध ने दोनों के बीच का मज्झिमा पटिपदा-ग्रहण किया।

एक बार देवदत्त ने जो, तापस जीवन से काफी प्रभावित था, आग्रह किया कि बुद्ध अपने अनुयायी भिक्षुओं के लिये निम्नलिखित पांच बातें स्वीकार करलें (१) सभी भिक्षु जीवन भर वन में रहें, (२) घर में न रह वृक्षों के नीचे रहें, (३) दुरुस्त कपड़ा न पहन फटा-चिथड़ा-पहनें, (४) भिक्षा ही खायें और (५) मांस-मछली न खाकर शाकाहारी रहे। कहते हैं, बुद्ध ने ये बातें नहीं स्वीकार कीं और इसके कारण भिक्षु-संघ में फूट पड़ गयी। इस तरह हम देखते हैं कि बुद्ध तापस जीवन की कठोरता के सख्त विरोधी थे।

१ महासीहनादसूत्र। २ वहीं। ३—जातक। ४ - महासीहनादसूत्र। ५—काश्यप सीहनादसूत्र।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

तप मय जीवन व्यतीय करना इतना श्रेष्ठ माना जाता था कि लोग जवानी ही में "अत्यन्त काले केशोंवाले सुन्दर यौवन से युक्त, यौवन में प्रवेश करते समय ही अनुच्छुक माता-पिता को अश्रुमुख रोते छोड़ दाढ़ी-मूँछ मुड़ा प्रव्रजित' हो जाते थे।"[1] इनका जीवन 'अत्यन्त कठोर था। जाड़े में तालाब या नदी में मचान बनवा कर नंगे शरीर रह रात उसी पर गुजारते थे। भयंकर तपती हुई लू में पंचाग्नि तापते थे। बिस्तर की जगह काँटे बिछाकर सोते थे। आज भी कुंभ के समय प्रयाग और हरिद्वार में ऐसे अमानुषिक जीवन व्यतीत करने वालों की कमी नहीं। तापसों के जमात प्रमुख (गणाचार्य) के नाम पर ही उनके दल का नाम होता था। इनके रहन-सहन का कोई निश्चित नियम नहीं था। काय-क्लेश रहने में इनका एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा रहती थी, जनता भी अधिक तकलीफ सहन करनेवालों का ज्यादा आदर सत्कार करती थी। कोई निश्चित नियम न होने के कारण जिसके मन में जैसा आता था, वैसा करता था। ये तापस इक्के-दुक्के भी रहते थे और झुंड बनाकर भी। कभी कभी किसी किसी गिरोह में एक हजार तक भी तपसी होते थे। कितने सिर दाढ़ी मुड़ानेवाले भी थे और कितने ही खूब लम्बी जटा रखते थे जिसे सलाई डालकर जूड़ा बाँधते थे। कोई-कोई 'मूर्दों की हड्डियों का सिरहाना बना श्मशान में सोते थे। चरवाहे आकर बदन पर थूकते भी थे पेशाब भी करते थे धूल भी फेंकते थे, कान में सींक भी डालते थे।' इतना होनेपर भी वे तपस्वी अपने मन में उनके प्रति बुरा भाव नहीं उत्पन्न होने देते थे।

वर्ण-भेद की दृष्टि से इन तपस्वियों में ब्राह्मण-क्षत्रियों की संख्य ही ज्यादा होती थी। वैसे औरों के लिये भी कोई रुकावट नहीं थी, पर जनता उच्चजाति के तपस्वियों का ही आदर करती थी।

किसी वर्ण विशेष का एकाधिकार न रहने पर भी चांडाल, भंगी आदि नीच समझी जानेवाली जाति के लोग तपस्वियों में स्थान नहीं पाते थे। आर्थिक दृष्टि से राजा से लेकर साधारण गृहस्थ भी 'कठोर तपमय जीवन से आत्मशुद्धि की भावना' से प्रभावित था। सभी श्रेणी के लोग इसमें शामिल होते थे। कभी कभी राजा या धनी गृहस्थ इन तपस्वियों की करामात से इतने आकर्षित हो जाते थे कि वे अपने राजपाट, धन दौलत सब लुटाकर इनके चेले हो जाते थे।

भगवान् बुद्ध के समय तक न तो ईश्वर आज के इतना शक्तिशाली था न भक्तिमार्ग का ही आविष्कार हुआ था। उनका विश्वास था कि शरीर, वचन और मन की शुद्धि से ही निर्वाण प्राप्त होता है।

इसलिये इन तीनों का संयम तापस जीवन का मुख्य लक्ष्य था। इसके अतिरिक्त एक और आकर्षण था जिसकी शुरुआत वैदिक काल में ही हुई थी और वह थी ऋद्धियों की प्राप्ति। रूपान्तर से इसमें हम मारण, मोहन उच्चाटन आदि सब शामिल कर सकते हैं। "औंवौषट, श्रौषट आदि शब्द ऐसे ही हैं; जिनका प्रयोग यज्ञों में आवश्यक माना जाता है।"[1]

भगवान् बुद्ध के समय में ऋद्धियों का बड़ा महत्व था। तापस जीवन के मूल में ऋद्धियों की प्राप्ति सबसे प्रमुख थी। ऋद्धियों को प्राप्त करनेवाला "एक होकर बहुत होता है, बहुत होकर एक होता है, प्रकट होता है, अन्तर्धान होता है, दीवार के आरपार, प्राकार के आरपार और पर्वत के आरपार बिना टकराये चला जाता है। पृथ्वी में, जल में जैसा गोते लगाते हैं। जल के तल पर भी पृथ्वी के तलपर जैसा चलता है। आकाश में भी पालथी मारे हुए उड़ता है, महा तेजस्वी सूर्य और चन्द्रमा को भी हाथ से छूता है और मलता है; ब्रह्मलोक तक अपने वश में किये रहता।[2] लेकिन भगवान् बुद्ध ने उपर्युक्त प्रकार की ऋद्धियों को 'आश्रव-युक्त और उपाधियुक्त" कह निन्दा की है। नालन्दा के एक गृहस्थ ने एक बार बुद्ध से ऋद्धि-प्रदर्शन कराने का आग्रह किया। बुद्ध ने कहा, "नहीं, मैं भिक्षुओं से ऐसा नहीं कह सकता कि तुम लोग उजले कपड़े पहननेवाले गृहस्थ को अपनी ऋद्धि दिखलाओ।"[3]

तप द्वारा ऋद्धिबल की प्राप्ति पर आज भी अधिकांश भारतीय जनता विश्वास करती है तो फिर पुराने जमाने की तो बात ही क्या। इस तरह का विश्वास सिर्फ हमारे

---

१ राहुल सांकृत्यायन २ सामञ्ञफल सुत्त ३ केवट्ट सुत्त

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

समाज में ही नहीं है बल्कि यह तो सार्वदेशिक है। प्राचीन काल में सबसे सभ्य और उन्नत देश बेबिलोन, मिश्र, चीन आदि में भी इसी तरह का विश्वास फैला था। स्पर्श मात्र से ईसा कठिन से कठिन रोगों को कैसे दूर कर देते थे। आखिर ईश्वर विश्वास भी तो इसी कोटि में आता है।

भगवान् बुद्ध के समय प्रचलित सम्प्रदाय और उनका धार्मिक विश्वास एक अलग पुस्तक का विषय है। यहाँ हमें सिर्फ तापस जीवन से सम्बन्धित बातों पर ही विचार करना है। प्राचीन काल से लेकर आज तक तापस जीवन भारतीय जिन्दगीपर असर डालता आया है। अनेक क्रान्तिकारी सुधारों के बावजूद भी किसी न किसी अंश में यह आज भी जीवित है और समाज में इसे आदर का स्थान प्राप्त है। ऊपर लिखा गया है कि ऋद्धियों की साधना तापस जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। यह साधना भोग के द्वारा सम्भव नहीं थी। इसीलिये साधक घरबार छोड़कर बस्ती के करीब वाले पहाड़ या जंगल में चले जाते थे। वहाँ घास-फूस की कुटी बनाकर रहते थे। अक्सर कुटी में एक चंक्रमण-भूमि (टहलते हुए योगाभ्यास करने की जगह) होती थी जो डेढ़ हाथ चौड़ी, दोनों ओर एक हाथ बगली छोड़ी हुई, साठ हाथ लम्बी और समतल होती थी। कुटी के पास-पड़ोस में नदी, तालाब या जलाशय का होना आवश्यक था आश्रम 'बाघ आदि हिंसक पशु तथा भयानक पक्षियों से शून्य' होता था। 'पर्णकुटी के अन्दर जटा-मण्डल, बल्कल, चीर, त्रिदण्ड, कुण्डी आदि तापसों के सामान मण्डप में पानी का बर्तन, पानी भरा शंख, पानी पीने के कसोरे' अग्निशाला में अँगीठी तथा जलावन आदि' ही तापसों के सामान होते थे।

पर जो और कठिन जीवन व्यतीत करना चाहते थे वे 'आठ दोषों से युक्त पर्णकुटी को छोड़ दस गुणोंवाली वृक्षों की छाया' का आश्रय लेते थे। ये मनुष्य के आने-जाने की जगह से पृथक ही रहना पसन्द करते थे। जंगल में भी ऐसी जगह रहते थे जहाँ 'गोपालक पशु-पालक, घसियारे, लकड़हारे या वनकर्मिक (बन में काम करनेवाले) की पहुँच न हो।'

कुछ को छोड़, अधिकांश तपस्वी का भोजन भिक्षा से ही प्राप्त होता था। इसीलिये इनका आश्रम गाँव या शहर से 'नाति दूरे' (बहुत दूर नहीं) होता था। सवेरे दस और बारह बजे के बीच तपस्वी भिक्षा के लिये बस्ती में जाता था जहाँ लोग उत्साह और श्रद्धा पूर्वक पका-पकाया भोजन देते थे। इसलिये 'आहार चिकना-चुपड़ा और अभिमान तथा पौरुष के मदों को बढ़ानेवाला होता था।'

परन्तु इनमें से कोई तपस्वी ऐसे होते थे जो 'इस प्रकार के आहार से अत्यन्त दुख का अन्त नहीं' समझते थे और इसलिये 'बो–जोतकर तैयार किये अनाजों को बिलकुल त्याग देते थे।' ऐसे तपस्वी सिर्फ 'अनेक गुणों से युक्त वृक्षों से गिरे फलों को ही ग्रहण करते थे।'

इन तपस्वियों में भोजन करने की विचित्र-विचित्र रिवाज था। बर्तन में भोजन करना अच्छा नहीं माना जाता था। ज्यादातर तापस लोग हाथ में ही खाते थे। कुछ लोग मछली मांस खाते थे और शराब भी पीते थे।[1] "एक दिन नगर में शराब पीने का उत्सव था। प्रव्रजितों को शराब दुर्लभ होती है—सोच राजा ने उन तपस्वियों को अत्युत्तम शराब दिलवाई। तपस्वी शराब पी, बाग में जाकर, शराब से मदमस्त हो उठकर नाचने-गाने लगे" आदि[1]। शराब पीना भी आम बात थी उत्सव और त्यौहारों के समय तो स्त्री, पुरुष, बच्चे सब शराब पीते थे। हमारे तपस्वियों में भी शराब पीनेवालों की कमी नहीं थी। सम्भव है कि यह शराब विह्स्की की तरह हल्की नशा करनेवाली हो। पर शराब का सेवन अच्छा नहीं माना जाता था। साधारण नियम यही था कि जो कुछ भिक्षा में मिल जाय वह सब ग्राह्य है।

यहाँ यह याद रखने की बात है कि उन दिनों माँस मछली भारतीय भोजन का प्रमुख अंग था। जैन धर्म ने मांसाहार का बहुत विरोध किया और उसके प्रचार के साथ साथ ही शाकाहार का भी प्रचार हुआ। पर बुद्ध ने 'त्रिकोटि दोष परिशुद्ध' मांसाहार को स्वीकृति दी। यहाँ भी बुद्ध ने बीच का ही मार्ग अपनाया।

कोई कोई तपस्वी सप्ताह में एक ही बार भोजन

१ जातक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

करता था तो कोई कोई मास में एक बार। कितने ऐसे थे कि 'फसल कटे खेत में प्राप्त अन्न' पर ही गुजारा करते थे। कितने ऐसे भी थे जो उपरोक्त प्रकार के आहार को निन्द्य मान गोबर (गोमय भक्खो वा होमि) ही खाते थे। ये सम्भवतः नवजात बछड़ों का गोबर खाना ज्यादा परिशुद्ध समझते थे।[1] भोजन की शुद्धता के बारे में इन तापसों के जितने गणाचार्य थे उतने ही भिन्न मत थे। कोई मूँग, कोई तिल, कोई चावल-कण ही खाते थे तो कोई चावल का पानी पीना ही श्रेष्ठ आहार मानते थे। आज भी थे—(१) अति मूल्यवान होना, (२) दूसरे पर निर्भर रहकर मिलना, (३) पहनने पर जल्दी से मलिन होना और फिर उसे रंगना और धोना, (४) पहनने से फट जाना और फिर, पेवंद लगाना, (५) ढूढ़ने पर मुश्किल से मिलना, (६) साधु जीवन से मेल न रखना, (७) चोरों के लिये चोरी करने योग्य होना, (८) उपयोग करने से सजावट का कारण होना और (९) लेकर चलते समय कन्धे के लिये भार और दूसरे के लिये लोभ होना।

अस्थियों को गवर्नर टूरिस्ट कार से बाहर ला रहे हैं

भोजन के विषय में अघोरी साधु काफी उदार देखे जाते हैं। मनुष्य का मल भी उनके लिये अखाद्य नहीं होता।

जिस तरह तापसों के रहन-सहन और भोजन में विभिन्नता थी उसी तरह उनके वस्त्र में भी। यों तो इनमें ज्यादातर अचेलक (नग्न) ही रहते थे। यदि वस्त्र पहनते भी थे तो सन मूँज का या श्मशान में पड़े फटे चिथड़े ही। बल्कल, छाल और मृगचर्म आम पोशाक था। मृगचर्म पहनने और बिछाने दोनों ही काम आता था।

पहुँचे हुए तपस्वी 'साधारण कपड़ों में ९ दोष देख त्याज्य' मानते थे। कपड़ों में वे निम्न ९ दोष मानते

ऊपर बताया गया है कि भगवान् बुद्ध ने भोग में अत्यधिक लिप्त रहकर या शरीर को अत्यधिक तपाकर चित्त की शुद्धि ऋद्धि या निर्वाण की प्राप्ति की भावना का घोर विरोध किया और उन्होंने उन दोनों के बीच का मार्ग ग्रहण किया और इसी मध्यम मार्ग को "आँख देनेवाला, ज्ञान करानेवाला, शान्ति के लिये, अभिज्ञा के लिये, परिपूर्ण ज्ञान के लिये और निर्वाण के लिये" बताया। बौद्धधर्म के उत्थान ने तापस जीवन की निस्सारता को स्पष्ट कर दिया। भारतीय समाजपर से इसका प्रभाव क्रमशः उठता गया।

———

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पावा की स्मृति में

अरे पुजारी! पूजा कर ले,
अन्ध - हृदय - पट खोल।
पावा की इस पुण्य-भूमि में,
'नमो बुद्ध' तू बोल॥

पर-हिंसा, धन-हरण त्याग दे,
मृषा वचन, व्यभिचार लाँघ दे।
सुरापान की मस्ती से भी—
सदा दूर ही डोल॥
अरे पुजारी! पूजा कर ले,
अन्ध - हृदय - पट खोल॥

कभी यहीं पर अरे, तथागत ने,
अनुपम उपदेश दिया था।
स्वर्णकार उस चुन्द यशी ने—
आम्र-वाटिका दान किया था॥
खण्डसुमन-वल्लिय सुबाहु के—
गुण - अमृत - रस घोल।
अरे पुजारी! पूजा कर ले,
अन्ध - हृदय - पट खोल॥

मल्लों की वह उच्च ध्वजायें,
प्रजातन्त्र की गुण-गाथायें।
दशबल के उपदेश विमल वे,
गये कहाँ? किस ओर बतायें।
वह विशाल स्तूप जीर्ण है,
अब भी ज्ञान टटोल॥
अरे पुजारी! पूजा कर ले,
अन्ध - हृदय - पट खोल॥

दशबल का अन्तिम पोषक यह,
आज पड़ा सोता विह्वल है।
देखो तो इसकी छाती पर—
कब्रगाह यह बनी अचल है॥
कब जाग्रत होगा नवयुग में,
पावा यह अनमोल।
अरे पुजारी! पूजा कर ले।
अन्ध - हृदय - पट खोल॥

—भिक्षु धर्मरक्षित

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्री लंका

श्रीभरतसिंह उपाध्याय

२७२½ मील लम्बा, १३७½ मील चौड़ा, लंका द्वीप विश्व का एक अत्यन्त रमणीय भूमि-भाग है । आकार की दृष्टि से अधिक बड़ा न होने पर भी उसका प्राकृतिक सौन्दर्य और वैभव महान् है । हाथी, मोती और बहुमूल्य रत्नों के लिये वह प्राचीन कालसे प्रसिद्ध रहा है। उसके निवासियों की शालीनता, उच्च संस्कृत और स्वभावगत सौन्दर्य जगत्-प्रसिद्ध हैं। भारत के साथ तो लंका के सम्बन्ध प्रागैतिहासिक युग से हैं । पूरब और पच्छिम के अन्य अनेक देशों से भी उसका सम्पर्क रहा है । चीन-निवासियों ने उसे रत्नों का द्वीप कह कर पुकारा है स्याम वालों के लिये वह 'तवे-लंका' अर्थात् 'देवों की लंका' है । बर्मी लोग उसे 'तीहो'—सिंह–विहार कह कर उसके प्रति सम्मान प्रकट करते हैं । सुदूर अरब देश से वह 'सेरेनदिब' नामसे प्रसिद्ध है, जो 'सिंहल द्वीप' का ही बिगड़ा हुआ रूप है । ग्रीक और रोम. लोगों ने उसे अपनी भाषा में 'ट्रेप्रोबेन' नाम दिया हैं, जो ताम्र-पर्णि (पाली तम्बपण्णि) शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है । लंका, सिंहल, (सिंह-देश) और ताम्र-पर्णि (ताँबे के पत्र जैसे रंग वाला देश—लंका का प्राचीनतम नाम) इन तीनों ही नामों का प्रयोग इस द्वीप के लिये भारतीय और सिंहली साहित्यमें हुआ है । विशेषतः आजकल लंका और सिंहल शब्दों का प्रचलन अधिक है ।

साधारण भारतीय जनता का लंका-सम्बन्धी ज्ञान अभी तक प्रायः कल्पनाश्रित अधिक है । रामायण ने रावण और उसकी सोने की लंका का जो चित्र हमें दिया है, वही अभी तक हमारे स्मृति-पटल पर अंकित है । अथवा हमारे मध्ययुगीन नाथपंथी साधुओं ने वज्रयानी बौद्धों की कृपा से सिंहल का 'सिद्ध पीठ' के रूप में जो एक काल्पनिक चित्र खींचा था, जिसका आधार जायसी ने अपने प्रेमाख्यान 'पद्मावत' के पूर्वार्द्ध में लिया है, उसी का आश्रय लेकर हम कभी-कभी सिंहल द्वीप को पद्मनी स्त्रियों से सम्बद्ध कर लिया करते हैं । परन्तु सिंहल राक्षसों, गन्धर्वों और पद्मिनियों का देश नहीं है । लंका-सम्बन्धी मध्य-युगीन वर्णन तो पूरे काल्पनिक हैं ही, रामायणकाल के लंका-भारत के सम्बन्धों की भी कोई निश्चित परम्परा बाद के इतिहास में नहीं चलती । लंका का पूर्ण रूप से ज्ञात और लेखबद्ध इतिहास पांचवीं शताब्दी ईसवी पूर्व से आरम्भ होता है । तब से किस प्रकार उसके सामाजिक और राजनैतिक विकास में, उसके निवासियों की संस्कृति और स्वभाव में, इनकी कला, साहित्य और नाना संस्थाओं में, उनके उत्सवों, पर्वों, और प्रथाओं में, संक्षेपतः उनके सारे जीवन की रग-रग में, भारतीय रक्त-मांस समाया हुआ है, यह हम उसके इतिहास के किंचित् निर्देश से यहाँ दिखाने का प्रयत्न करेंगे ।

लंका की ऐतिहासिक परम्परा भारत से कहीं अधिक अक्षुण्ण है । उसके प्राचीन काल (पाँचवीं शताब्दी ईसवी पूर्व से चौथी शताब्दी ईसवी तक) का इतिहास हमें प्रधानतः 'दीपवंस' और 'महावंस' इन दो इतिहास-ग्रन्थों और 'समन्तपासादिका' (विनय-पिटक की अट्ठ कथा, आचार्य बुद्ध घोष-कृत) की भूमिका से मालूम होता है । 'दीपवंस की रचना ३५० और ४०० ई० के बीच हुई, 'महावंस' छठीं शताब्दी ई० की रचना है बुद्ध-घोष का जीवन-काल चौथी-पांचवीं शताब्दी ईसवी है। पांचवीं शताब्दी ईसवी के बाद लंका का इतिहास 'महा-वंस' के परिवर्द्धित संस्करण 'चूलवंस' में वर्णित है। 'चूलवंस कोई इकाईबद्ध रचना नहीं है। उसे किसी एक लेखक ने नहीं लिखा, बल्कि भिन्न-भिन्न युगों में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भिन्न-भिन्न लेखकों ने काल के प्रवाह के साथ-साथ उसमें लंका के इतिहास का घटनावार वर्णन किया है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मूलतः भारतीय मध्यमंडल की भाषा पालि में सिंहली लोगों ने अपने जातीय इतिहास को पाँचवीं शताब्दी ईसवी पूर्व से लेकर सन् १९३५ ई० तक ग्रंथित किया है।

लंका के इतिहास की सर्वप्रथम घटना कुमार विजय का ४८३ ईसवी पूर्व (सिंहली परम्परा के अनुसार ५४३ ईसवी पूर्व) लंका में आगमन है । विजय कुमार या विजय 'सिंह' लाल (लाट—गुजरात) देश के राजा सिंहबाहु का पुत्र था । विजय के दुर्व्यवहार के कारण पिता ने उसे अपने देश से निर्वासित कर दिया था । साहसिक विजय अपने साथियों के साथ सुप्पारक (वर्तमान सोपारा, जिला थाना, बम्बई से ३७ मील उत्तर) आदि बन्दरगाहों में होता हुआ लंका में ताम्रपर्णी नामक स्थान पर उतरा । 'महावंस' के वर्णनानुसार जिस दिन कुशीनगर में भगवान् बुद्ध निर्वाण की प्राप्ति के लिये जुड़वां साल वृक्षों के नीचे लेटे, उसी दिन कुमार विजय यहाँ आया। इसका अर्थ यह है कि ठीक बुद्ध-परिनिर्वाण के दिन विजयकुमार ने लंका में प्रवेश किया । जिस स्थान-पर विजय और उसके साथी उतरे थे, उसके ताम्र वर्ण की मिट्टी के स्पर्श से उनके थके हुए हाथ् ताँबे के पत्र (तम्बपण्णि) जैसे हो गये थे, इसी लिये उस प्रदेश और द्वीप का नाम ताम्रपर्णि (तम्बपण्णि) हुआ । कुमार विजय के पिता सिंहबाहु ने सिंह को मारा था 'सिंहल' (सिंह पुरुष) भी कहलाता था । 'महावंस' के वर्णनानुसार उसी की स्मृति में सब लंकावासी 'सिंहल' कहलाये । अनेक स्थानोंपर विजय और उसके साथियों ने ग्राम और नगर बसये। विजय के एक साथी अनुराध ने कदम्ब नदी वर्तमान मलवत्त आये) के समीप अनुराध ग्राम बसाया । बाद में चल कर यह अनुराधपुर के नाम से प्राचीन लंका का प्रसिद्ध नगर हुआ । अनुराध ग्राम से उत्तर गंभीर (वर्तमान योदि एल) नदी के किनारे उपतिष्य पुरोहित ने उपतिष्य ग्राम बसाया । इसी प्रकार भारतीय नगरों के नाम पर उज्जैनी, उरुवेला और विजितपुर तीन नगर भी बसाये गए । विजय लंका का प्रथम अभिषिक्त राजा हुआ और उसने ताम्रपर्णि नगर में ३८ वर्ष राज किया । विजय के बाद के उसके उत्तराधिकारी राजाओं की लम्बी सूची देने की यहाँ आवश्यकता नहीं । विजय के लगभग २०० वर्ष बाद लंका के सिंहासन पर देवानं पियतिस्स (२४७ ई० पू० से २०७ ई० पू० तक, जब कि ४८३ ई० पू. से बुद्धाब्द आरम्भ करें; सिंहली परम्परा के अनुसार इसमें ६० वर्ष और जोड़ने पड़ेंगे) राजा अभिषिक्त हुआ । इस राजा का शासन-काल लंका के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है बौद्ध धर्म का लंका में प्रवेश देवानं पिय तिस्स के समय में ही हुआ । देवानं पिय तिस्स भारतीय सम्राट् अशोक का समकालिक था । दोनों एक दूसरे के मित्र थे और दोनों में भेंटों का आदान-प्रदान भी हुआ था । अन्य भेंटों के साथ सद्धर्म की भेंट भेजते हुए धर्माशोक ने देवानं पिय तिस्स को सन्देश भेजा था, 'मैंने बुद्ध-धर्म और संघ की शरण ग्रहण की है और शाक्य-पुत्र के शासन में उपासकत्व प्राप्त किया है । हे नरेन्द्र ! आप भी आनन्दपूर्वक श्रद्धा के साथ इन उत्तम रत्नों की शरण ग्रहण करें "[१] देवानं पियतिस्स ने राजा अशोक के इस आदेश को पूरा किया । अशोक के समय हुई तृतीय धर्म संगीति के बाद उसके सभापति स्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स ने भिन्न-भिन्न देशों में भिक्षुओं को बुद्ध-धर्म के प्रचारार्थ भेजा था । स्थविर मज्झन्तिक को कश्मीर और गांधार, स्थविर महादेव को महिषमंडल, स्थविर रक्षित को वनवास (मैसूर का उत्तरी भाग) ग्रीक भिक्षु धर्मरक्षित को अपरान्त (बम्बई के सूरत तक का प्रदेश), स्थविर महाधर्मरक्षित को महाराष्ट्र, स्थविर महारक्षित को यवन-देश, स्थविर मज्झिम को हिमालय प्रदेश, स्थविर सोण और उत्तर को स्वर्ण-

---

१. अहं बुद्धं च धम्मं च सघं च सरणंगतो, उपासकत्तं वेदेसिं सक्यपुत्तस्स सासने ।
त्वं पि इमानि रतनानि उत्तमानि नरुत्तम, चित्तं पसादयित्वान सद्धाय सरणं भज ॥

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

भूमि (बर्मा), इस प्रकार अनेक भिक्षुओं को अनेक देशों में भगवान् बुद्ध का करुणामय सन्देश सुनाने को भेजा गया था। अशोक के प्रव्रजित पुत्र कुमार महेन्द्र और इट्ठिय, उत्तिय, सम्बल और भद्रशाल इन अन्य चार स्थविरों को स्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स ने यह कह कर लंका द्वीप में भेजा "तुम मनोज्ञ लंका द्वीप में मनोज्ञ बुद्ध'धर्म की स्थापना करो।" स्थविर महेन्द्र और उनके साथी भिक्षुओं के लंका पहुँचते ही नर-नारियों के झुंड उनके दर्शनार्थ दौड़ पड़े। सब को उन्होंने अपने धर्मोपदेश से तृप्त किया। देवानं पिय तिस्स को अपना परिचय देते हुए महेन्द्र ने उससे कहा—

"समणा मयं महाराज धम्मराजस्स सावका।
तवेव अनुकम्पाय जम्बुदीपा इधागता॥"

"हे राजन्! हम धर्मराज (बुद्ध) के शिष्य भिक्षु हैं और तेरे ही अनुग्रह के लिए भारत से यहां आये हैं।" स्थविर महेन्द्र के उपदेश को सुन कर राजा देवानं पिय तिस्स और सैकड़ों लंका वासी स्त्री-पुरुषों ने बुद्ध धर्म में दीक्षा प्राप्त की। स्थविर महेन्द्र लङ्का के लिए जैसे दूसरे बुद्ध हुए। "बुद्ध के समान अनुपम, द्वीप के दीपक स्थविर ने लङ्का द्वीप में दो स्थानों पर द्वीप की ही भाषा में उपदेश देकर सद्धर्म की स्थापना की।" लङ्का निवासी समृद्ध और सुसंस्कृत तो पहले से थे ही। भारत के साथ व्यापारियों के द्वारा उनका सांस्कृतिक सम्बन्ध भी था ही। विजय के बाद अनेक भारतीय वंश भी वहाँ जाकर बस गये थे। अशोक और देवानं पिय तिस्स के मित्रतापूर्ण सम्बन्धों का हम अभी उल्लेख कर ही चुके हैं। इसी सब सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने स्थविर महेन्द्र के कार्य को अभूतपूर्व सफलता प्रदान की। थोड़े ही समय में भारत की तरह लंका द्वीप भी काषाय वस्त्रों से प्रकाशमान् हो गया। स्थविर महेन्द्र और अनेक साथी भिक्षुओं के निवास के लिए राजा देवानं पिय तिस्स ने "महाविहार' और 'चेतियपब्बत विहार' (चैत्यपर्वत विहार) नामक दो विहार बनवाये, जिन्हें उसने भिक्षु-संघ को समर्पित किया। अनुराधपुर का 'महाविहार' इसी समय से लंका में बौद्ध संस्कृति का केन्द्र हो गया। भगवान् बुद्ध के भिक्षा-पात्र, श्रद्धालु राजा के देवानं पिय तिस्स ने अशोक से प्राप्त कर लिया था, और उनकी दाहिनी हँसली की धातु (हड्डी) को स्थापित कर लंकाधिराज ने एक विशाल स्तूप बनवाया और उसी के समीप स्तूपाराम (थूपाराम) नामक एक विहार बनवाया। राजा, उसके अन्तःपुर की क्षत्राणियों, नागरिकों और सहस्रों की संख्या में ग्रामीण जनता ने भगवान् के धातुओं की पूजा की। बुद्ध-धर्म लंका का राष्ट्रीय धर्म हो गया। तब से वह इसी प्रकार चला आ रहा है। स्थविर महेन्द्र अपने साथ पालि त्रिपिटक को भी लंका ले गये थे, जिसका उन्होंने वहां प्रचार किया। सिंहली भाषा में उस पर उन्होंने व्याख्याएँ भी लिखीं। कहा जाता है कि स्थविर महेन्द्र द्वारा सिंहली भाषा में लिखे हुए ग्रन्थ आकार में औसत कद के ६ हाथियों की ऊँचाई के बराबर थे। बुद्ध-धर्म का प्रचार बढ़ने पर स्त्रियों की ओर से भी प्रव्रजित होने की माँग आई। उनके उपसम्पदा-संस्कार के लिए स्थविर महेन्द्र की भगिनी भिक्षुणी संघमित्रा को बुलाने की व्यवस्था हुई। सम्राट् अशोक ने राजा देवानं पिय तिस्स की प्रार्थना पर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक भिक्षुणी संघमित्रा को और उसके साथ बोधिवृक्ष की शाखा को आदरपूर्वक सिंहल भेज दिया। देवानं पिय तिस्स ने राजकीय सम्मान के साथ देवी संघमित्रा का स्वागत किया और बोधि-वृक्ष की शाखा को अनुराधपुर में लगाया, जहां वह एक विशाल वृक्ष के रूप में आज भी विद्यमान है। सिंहल और भारत के सांस्कृतिक गठबन्धन का इससे अधिक अच्छा प्रतीक आज नहीं मिल सकता। भिक्षुणी संघमित्रा ने प्रथम बार लंका में भिक्षुणी-संघ की स्थापना की। स्थविर महेन्द्र की प्रेरणा से देवानं पिय तिस्स ने सैकड़ों विहारों, आरामों और स्तूपों का निर्माण किया। देवानं पिय तिस्स की मृत्यु (२०७ ई० पूर्व) के आठ वर्ष बाद स्थविर महेन्द्र का भी ६० वर्ष की अवस्था में परिनिर्वाण हो गया। उसके एक वर्ष बाद भिक्षुणी संघमित्रा भी चल बसी। इस समय बुद्ध-शासन की नींव सिंहल में दृढ़ रूप से जम चुकी थी। देवानं पिय तिस्स की मृत्यु के लगभग ३० के बाद द्रमिल (तामिल) लोगों ने अनुराधपुर पर अधिकार कर लिया और ६२ वर्ष तक

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वह उनके अधिकार में रहा। तत्कालीन सिंहली राजा की क्षमा-वृत्ति और युद्ध के प्रति उपेक्षा की भावना के कारण ही यह नगर उसके हाथ से चला गया। किन्तु को परास्त किया और लंका के राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा की। वीर दुट्ठगामणि ने १६१ ईसवी पूर्व फिर अनुराधपुर पर अधिकार कर लिया। बुद्ध-धर्म के लिए

प्रदर्शनी द्वार के साथ मूलगन्ध कुटी विहार का एक दृश्य

वीर दुट्ठगामणि (दुष्टगामणि—जो अपनी वीरता और युद्ध-प्रियता के कारण ही अहिंसक पिता के द्वारा 'दुष्ट' करार दे दिया गया था) ने पड़ोसी आक्रान्ताओं भी उसने बहुत कुछ किया। मरिचवट्टि विहार और विशाल लोह-प्रासाद नामक विहारों को उसने बनवाया। लोह-प्रासाद की नौ मंजिलें थीं और सौ-सौ कूटागार

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

थे। इस प्रासाद की छतें ताँबे जैसी लाल लोहे की ईंटों से बनाई गई थीं, इसीलिए यह 'लोह-प्रासाद' कहलाता था। नौ मंजिलों पर बने हुए सौ-सौ कूटागारों में से प्रत्येक चाँदी से खचित था। "उन कूटागारों की मूंगे की वेदिकाएँ नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित थीं। उन वेदिकाओं के कमल नाना प्रकार के रत्नों खचित थे और वे वेदिकाएँ चाँदी की छोटी-छोटी घंटियों से घिरी थीं। उस प्रासाद में नाना रत्नों से खचित खिड़कियों से सुशोभित एक हजार सुसंस्कृत कमरे थे।" लोह प्रासाद के खंडहर आज भी अनुराधपुर के समीप देखे जा सकते हैं। दुट्ठगामणि ने महास्तूप नामक एक चैत्य भी बनवाना आरम्भ किया था किन्तु उसके पूरा होने के पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। मरते समय उसने अपने भाई तिष्य को आदेश दिया, "तिष्य! असमाप्त महास्तूप का शेष सब कृत्य आदरपूर्वक समाप्त करवाना। स्वयं प्रातःकाल उस पर पुष्प चढ़ाना। प्रति दिन तीन बार उसकी पूजा करवाना। बुद्ध-शासन सम्बन्धी जो कृत्य मैंने निश्चित किये हैं, उन सभी कृत्यों को तुम अविच्छिन्न रूप से करते रहना। हे तात! संघ-सम्बन्धी कार्यों में कभी प्रमाद न करना।" मरने से पूर्व रोगी राजा ने पालकी में लेट चैत्य की प्रदक्षिणा की और धर्म-श्रवण करते-करते काल किया। दुट्ठगामणि के बाद अनेक राजा सिंहल के शासक हुए। 'दस राजा', 'ग्यारह राजा', 'बारह राजा', 'तेरह राजा' शीर्षकों से 'महावंश' में इनकी वंशावलियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व वट्टगामणि अभय का शासन-काल लंका में बुद्ध-धर्म के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पालि त्रिपिटक, जिसे स्थविर महेन्द्र तथा अन्य भिक्षु तीसरी शताब्दी ईसवी पूर्व लंका में ले गये थे, इसी समय प्रथम बार लेख-बद्ध किया गया। तीसरी शताब्दी ईसवी में लंकाधिपति कीर्ति श्री मेघवर्ण के समय में भगवान् बुद्ध का दन्त-धातु लंका में लाया गया। बोधि-वृक्ष की शाखा के बाद यह लंका की दूसरी राष्ट्रीय निधि है। आजकल यह कैंडी में सुरक्षित है और प्रति वर्ष अगस्त के महीने में सिंहली जनता बड़े सम्मान के साथ इसकी पूजा करती है। चतुर्थ शताब्दी में राजा महासेन के समय में जेतवन विहार, मणिहीर विहार और थूपाराम विहार नामक विहारों का निर्माण किया गया और दो भिक्षुणी विहारों की भी स्थापना की गई। चौथी-पांचवीं शताब्दी में ही, जब कि लंका में महासेन नामक राजा राज करता था, बुद्धघोष महा-स्थविर ने भारत से लंका जाकर वहां सिंहली अट्ठकथाओं का अध्ययन किया और अपने विशाल अट्ठकथा-साहित्य तथा प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ विशुद्धि-मार्ग (विशुद्धिमग्गो) की रचना की। पालि बौद्ध साहित्य के विकास की दृष्टि से लंका के राजा पराक्रमबाहु प्रथम (११५३-११८६) का शासन-काल भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस समय सिंहली भिक्षु सारिपुत्त और उनके शिष्यों ने बुद्धघोष कृत अट्ठकथाओं पर पालि भाषा में टीकाएँ लिखने का कार्य आरम्भ किया। इस प्रकार ठीक आधुनिक युग के आरम्भ तक लंका से ही बुद्ध धर्म का सन्देश बर्मा, स्याम, कम्बोज (हिन्द चीन) आदि देशों को गया और इन देशों में सांस्कृतिक सम्बन्ध और पारस्परिक आदान-प्रदान बराबर बना रहा।

आधुनिक युग के आते-आते लंका भी भारत के समान पराधीन हो गया। पुर्तगाली, डच और अंग्रेज, सभी ने क्रम-क्रम से इस द्वीप का शोषण किया। ईसाई धर्म के प्रचार से बुद्ध-धर्म को भी गहरा धक्का लगा किन्तु धीरे-धीरे पुनर्जागरण का काल आया और लंका ने अपने आप को संभाला। आज वहां फिर बुद्ध-शासन अपनी पूरी ज्योति से चमक रहा है। जिस ज्योति को महेन्द्र और अन्य भिक्षु वहां ले गये थे, उसे फिर सिंहली जनता हमें देने को तैयार है यदि हमारी पूरी तैयारी हो। अनागरिक धम्मपाल ने जो कार्य भारत में आरम्भ किया था, वह धीरे-धीरे पनप रहा है। उसे हमें स्वदेशी समझ कर ही ग्रहण करना है। सिंहल का जो कुछ है, सब अपना है। सिंहल सब प्रकार भारत का 'अनुजात' है। सिंहली साहित्य भारतीय भावनाओं से ओत-प्रोत है। उसमें से बुद्ध-धर्म निकाल लिया जाय तो कुछ नहीं बच रहता। सिंहली कला, शिल्प, संगीत, उत्सव, पर्व, सब भारतीय देन के हैं।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

अनुराधपुर के जंगल में 'ध्यान-मुद्रा' में खड़ी हुई विशाल बुद्ध-प्रतिमा कितनी प्रेरणामयी है। सिंहली संगीत कितनी करुणामय और वैराग्य की भावनाओं से भरा हुआ है सिंहली जनता भी भारतीय जनता के समान कितनी अल्प-संतोषी, अल्प सन्तोष की ही प्रशंसक और पर-शोषण से विरत रहनेवाली है। यह 'धम्म' का ही उसके व्यापक जीवन पर प्रभाव है। निश्चय ही सिंहल 'धर्म-द्वीप है उसने 'धम्म' का विशुद्धतम रूप में संरक्षण किया है, जब कि भारत उस विरासत को भूल चुका है। आज भारत और सिंहल स्वतन्त्र हैं और अपना-अपना भाग्य-निर्माण करने की उन्हें पूरी स्वतन्त्रता है। हमें आशा रखनी चाहिए कि भारतमाता विजय-सन्तानों को, अपने 'सिंह'-पुत्रों को उसी प्रकार अपने वातसल्य का भाजन समझेगी जिस प्रकार वह बंग, गुजरात और मध्यमंडल के अपने पुत्रोंको समझाती है। माता कुमाता कभी नहीं होगी। साथ ही हमें यह भी विश्वास रखना चाहिए कि जिस एक जनता को तथागत ने अपने 'धम्म' की धरोहर का उपयुक्त पात्र बनाया, वह भी मैत्रीभावना के अभ्यास और प्रसार में किसी से कम न रहेगी। यही भारत और सिंहल का नव भाग्योदय होगा, जब कि, ढाई हजार वर्ष पूर्व रूठ कर गया हुआ विजय, अपनी सन्तानों-सहित पुन: आकर माता के चरणों में सिर नवायेगा और वह उसे अंक में भर कर उसके सिर को सूंघेगी। जय जय सिंहल ! जय भारत (– जीवन साहित्य से)

———

युक्त प्रान्तीय पटवारी ऐसोसियेशन का एक मात्र

मासिक पत्र

"जनसेवक"

में पढ़िये

सुन्दर कवितायें पटवारियों की कहानियाँ पटवारी सम्बन्धी लेख देश विदेश की पटवारी सम्बन्धी खबरें।

में

विज्ञापन दाता विज्ञापन देकर व्यापार में लाभ उठायें न्यूज एजेन्ट आज ही पत्र व्यवहार करें।

सम्पादक—

श्यामलाल 'प्रभाकर' : गोपीराम जी शर्मा अग्रवाल

वार्षिक मूल्य ४॥) एक प्रति ।=)

"जनसेवक" कार्यालय छत्ता बाजार, मथुरा

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

—: फल्गू :—

श्रीहरि शंकर प्रसाद श्रीवास्तव

करती रहती कल कल छल छल
गान सतत भगवान् बुद्ध का,
री सुहागिनी तेरे जल में
भरा ज्ञान है तपः शुद्ध का।

महापतन के चक्रवात का
होता था जब जग में अभिनय,
तब तेरे अंचल के गौतम
देते थे जग को निज परिचय।

कुटिल नियति के क्रूर करों से
सचमुच तेरा नाश हुआ है,
तेरा वह ऐश्वर्य सुसंचित
आज समय का ग्रास हुआ है।

याद मुझे है तुझसे तो
मेरा उज्ज्वल इतिहास हुआ है,
दशबल का उपदेश विश्व में
वासन्ती का वास हुआ है।

जब आती है दीप—मालिका
सजा मञ्जु कुंकुम की थाली,
कह उठता है गगन विहँस कर
औ' यह रात सितारों वाली।

"मैं रोती हूँ आज यहाँ पर
मेरा सुन्दर वेष यहीं था,
नहीं जानते हो दशबल का—
चिर-मंगल सन्देश यहीं था।

मभक उठी थी दिगदिगन्त में
आज सुप्त वह आग यहीं है,
मान्य विश्व में था जो सन्तत
उस खँडहर का भाग यहीं है!

यहीं मिला था ज्ञान सुगत को
यहीं उन्हें चिर-शान्ति मिली थी,
जग के जलते अभ्यन्तर में
शीतलता की कान्ति मिली थी।

छोड़ चले नन्हें राहुल को
छोड़ चले गोपा को रोते,
शुद्धोदन को छोड़ चले वे
आँसू से अपना मुँह धोते।

नव प्रभात, उज्ज्वल निशीथ में
गीत मधुर दशबल का गाती,
अविरल, निशिदिन पल पल क्षण क्षण
माँ को यह सन्देश सुनाती।

अन्धकार ही अन्धकार, युग
ढूँढ़ रहा नूतन नूरानी,
पर, क्यों पूज्य तथागत को है
ढूँढ़ रहा फल्गू का पानी।

अलख जगाती गिरि, नद, सरि में
आकुल अन्तर ले कल्याणी,
माँ क्यों ढूँढ़ रही फल्गू तट
सत्य अहिंसा की शुभ रानी।

नाच रहा है जग जंगम माँ
लेकर आज सुरा का प्याला,
किन्तु मनाता गौतम की जय,
फल्गू का पानी मतवाला।

बजी शिंजनी मानव जीवन
को पलभर में गिरी यवनिका,
देख नियति का नग्न नृत्य माँ!
फटा कलेजा हाय अवनि का।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

आज जहाँ बाजार लगा है
वहीं कभी श्मशान बसेगा।
मानवता के लिये शाप, शुचि
मानव का वरदान बनेगा।

कल सबको मुरझा जाता है
खिलते आज अनेकों पाटल,
यह अनित्यता देख विश्व की
रोता कवि का अन्तर-पागल।

पाता है वरदान जहाँ जग
वहीं उसे अभिशाप मिलेगा,
जहाँ ज्योति की शीतलता है
वहाँ तिमिर का ताप मिलेगा।

माँ! जन जन की हृदय-विपंची
को छू कर जादू के कर से,
कब आयेगा मधुऋतु का स्वर
पतझड़ के असमय मर्मर से!

एक मात्र उन्नति का जग में
कब शाश्वत आधार बनेगा,
सत्य-अहिंसा का मेरा माँ!
कब उजड़ा संसार बसेगा?

साँची का सुप्रसिद्ध स्तूप

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA
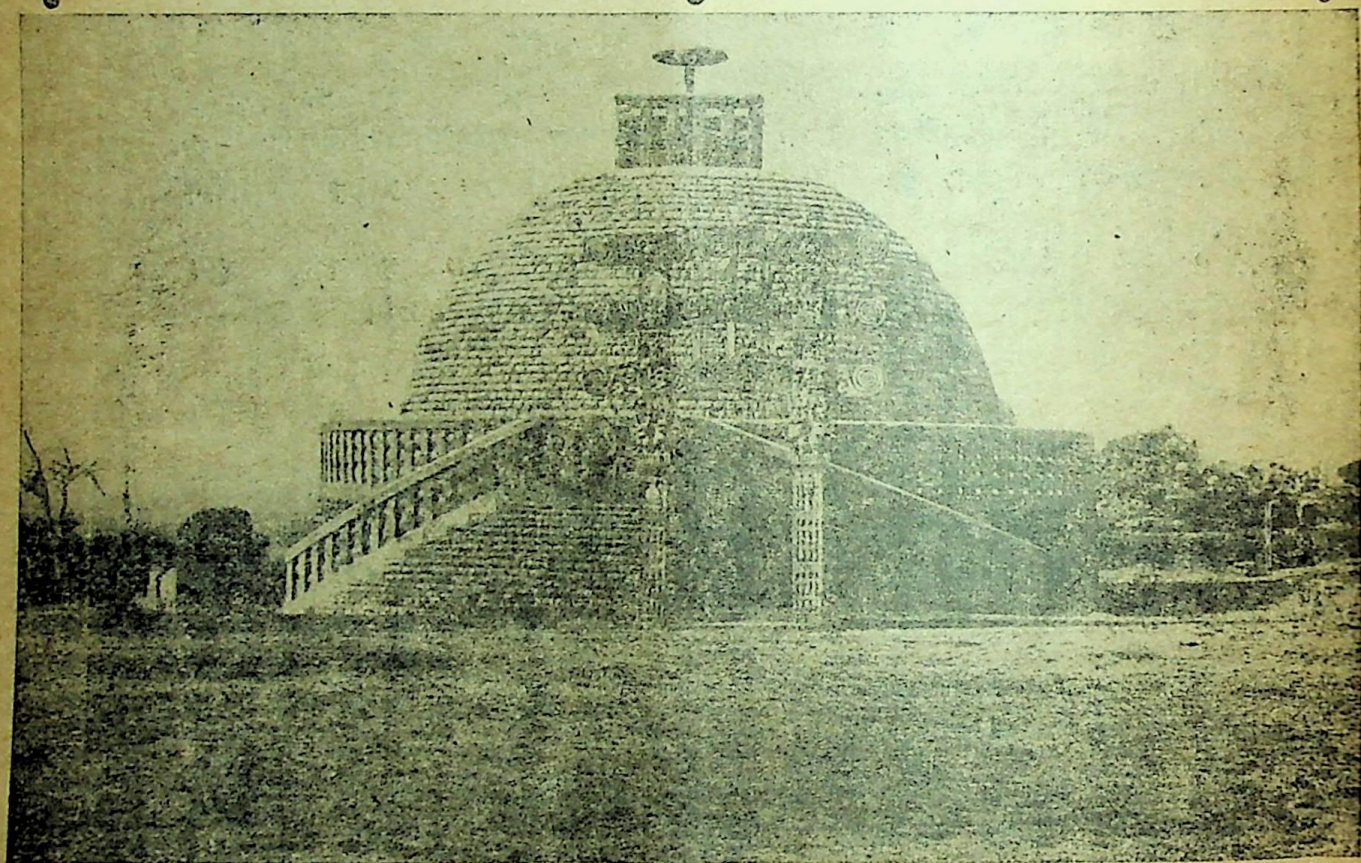
मलाया में बौद्ध धर्म

मैडम वाँङ्ग फूक मी

मलाया प्रायद्वीप में बौद्ध धर्म का प्रवेश किस समय हुआ इसका मुझे ठीक पता नहीं, पर जहाँ तक मैंने पता लगाने की चेष्टा की है चौथी सदी ई० के आरम्भ अथवा उसके कुछ और पहले से जावा के एक बौद्ध केन्द्र होने की सूचना मिलती है। प्रसिद्ध चीनी यात्री फ़ाहियान एक बार वहाँ जाकर लगभग एक वर्ष तक रहे। ऐसा अनुमान है कि जावा से बौद्ध धर्म सातवीं या आठवीं सदी में मलाया पहुँचा। परन्तु इस प्रायद्वीप के प्राचीन बौद्ध धर्म के इतिहास के विषय में अधिक ज्ञान न होने के कारण हम इस विवेचन को सर स्टैमफ़ोर्ड रैफ़्लिस के १८१६ में सिंगापुर आने के बाद से आरम्भ करेंगे।

लगभग इसी समय का बना हुआ सिंगापुर का शि'-ग्यान-फुकुङ्ग नामक चीनी मन्दिर है जो यहाँ के प्रथम चीनी मन्दिर कहा जाता है। इसके बाद के बने हुए कई अन्य विहार भी हैं जिन्हें लोगों ने दान से चलाने की व्यवस्था कर रखी थी। पर यहाँ ध्यान देने की बात तो यह है कि इस समय तक यद्यपि अनेक बौद्ध विहार स्थापित हो चुके थे यहाँ के लोगों का बौद्ध धर्म के सिद्धान्त से कुछ भी परिचय न था, वे केवल बुद्ध प्रतिमा के सामने झुक कर अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करना जानते थे। १८९९ में माननीय भिक्षु सिएन हुई भारत में अपनी तीर्थ-यात्रा समाप्त कर श्री किंग-पाँङ्ग नियू द्वारा सिंगापुर आकर लोगों को बौद्ध धर्म का उपदेश देने के लिये आमंत्रित किए गए और उनके लिए विशेष रूप से शोङ्ग लिन् त्से नामक एक भव्य विहार किमकीट रोड पर बनाया गया। इसी वर्ष कु शान पहाड़ी के माननीय भिक्षु वो-युन सिंगापुर पधारे और यहाँ आकर लोङ्ग लिन् त्से विहार में ही ठहरे। उन्होंने एक अंग्रेज़ भिक्षु धर्मालोक तथा श्री जेन-चुआन नैङ्ग, वान-हाउ चेन आदि सज्जनों की सहायता से सिंगापुर में एक बौद्ध मण्डल का संगठन किया जिसका कार्यालय हैवलॉक रोड पर यू हाङ्ग मन्दिर के निकट उसकी दाहिनी ओर रखा गया। इस बौद्ध मण्डल की एक शाखा का १९१३ में बड़ा सुन्दर संगठन हुआ और सरकारी तौर पर उसकी रजिस्ट्री भी करा ली गई।

इसी समय तञ्जोङ्ग पगार नामक स्थान में यु-त् मन्दिर बन कर तैयार हुआ जहाँ बौद्ध धर्मानुयायियों को बौद्ध धर्म पर समय समय पर भाषण सुनने को मिलने लगे। १९२२ में कुङ्क मिङ्ग की पहाड़ी पर पु चाव त्से नामक मन्दिर की रचना हुई इसके पश्चात् १९२६ में माननीय भिक्षु ताई शू को दक्षिणी सागर के प्रदेशों में आकर बौद्ध सूत्रों पर व्याख्यान देने के लिये निमंत्रित किया गया और १९२८ में उन्हीं के कुशल निरीक्षण में एक चीनी बौद्ध मण्डल (चुङ्ग हा फु चियाज हुई) भी मलाया प्रायद्वीप के विभिन्न विहारों के महास्थविरों एवं माननीय ताई शू के उपासक, उपासिकाओं के प्रयत्नों से स्थापित हुआ। यह मण्डल दिन पर दिन उन्नति करता जा रहा है और मलाया प्रायद्वीप की प्रमुख बौद्ध संस्था बन गया है। मण्डल की ओर से अनेक महास्थविर बौद्ध धर्म पर सर्वसाधारण में व्याख्यान देने के लिये लिये समय पर बुलाए जाते रहे हैं और मानवता के कल्याण के लिए बौद्ध धर्म विषयक पुस्तिकायें लोगों में वितरित की गई हैं।

कोई सौ वर्ष हुए होंगे जब कि बौद्ध धर्म सिंगापुर से पेनाङ्ग पहुँचा। सबसे पहले वहाँ अवलोकितेश्वर की एक मूर्ति स्थापित की गई। चीनी बौद्धों ने उसकी इस तरह अभ्यर्थना की जैसे बच्चे अपने माता-पिता की करते हैं १८८४ में सबसे सुन्दर और भव्य 'चाई-लो' विहार का निर्माण हुआ जिसके पीछे रमणीक पहाड़ियाँ और समुद्र तट हैं। इसके बनवाने में सिंगा-

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पुर के प्रमुख नागरिकों का हाथ था जिन्होंने माननीय भिक्षु मियो लिन के लिये इसे पेनाङ्ग में अय्यर इतम नामक स्थान में बनाया। जब कभी स्थानीय व्यक्ति अथवा विदेशी यात्री यह विहार देखने आते हैं तो वे इसकी विशालता और ऐश्वर्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। १९०३ में भिक्षु मियो लिन पेकिङ्ग गए जहाँ से वे इस विहार के लिए चीनी त्रिपिटक का एक बृहत् संस्करण प्राप्त कर लाए। १९२२ में सिंगापुर के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने चन्दा कर पेनाङ्ग में एक बौद्ध संस्था भी खोल दी। तब से हर महीने वहाँ चीन के विभिन्न भागों से आए हुए विशिष्ट बौद्ध विद्वानों के बौद्ध धर्म-सम्बन्धी व्याख्यान और प्रवचन होते हैं। आजकल वहाँ माननीय भिक्षु हुई चुआङ्ग पहुँचे हुए हैं जो हु-ची पहाड़ी के रहने वाले हैं और जिन्हें बुद्ध वाणी का प्रचार करने में विशेष ख्याति मिल चुकी है।

मलक्का में भी एक बौद्ध विहार है जिसका नाम 'तसिंग युन तिङ्ग' विहार है जो प्रायः सौ वर्ष पुराना बतलाया जाता है। कुआला लम्पुर प्रदेश में सर्वत्र बौद्ध धर्म के उपदेशक फैले हुए हैं जिनके अनुयायियों की संख्या बहुत काफ़ी है।

जावा और सुमात्रा में इस समय बौद्ध धर्म की जागृति के कोई लक्षण नहीं दिखाई देते, यद्यपि प्राचीन समय में इन स्थानों में त'-ङ्ग वंशीय सुप्रसिद्ध चीनी बौद्ध भिक्षु इ-त्सिङ्ग का काफ़ी प्रभाव था।

यहाँ पर मैंने मलाया में केवल चीनी बौद्धों के कार्यों का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। परन्तु मेरा विश्वास है कि मलाया में कुछ सिंहल के भी बौद्ध भिक्षु और उनके संघाराम हैं।

[अनुवादकः श्रीचन्द्रचूड़, एम. ए.]

महान् बुद्धिवादी भगवान् बुद्ध

श्रीअनंत रामचन्द्र कुलकर्णी

भगवान् बुद्ध संसार के एक महान् बुद्धिवादी पुरुष थे। उन्होंने सिंहनाद करके कहा—"सुनी हुई बातों पर विश्वास मत करो। परम्परा गत बातों पर विश्वास मत करो। तुम्हारे धर्म ग्रन्थों में कोई बात लिखी है, अतः वह सत्य है—ऐसा मत मानों। तुम्हारे गुरु किसी बात को कहते हैं अतः वह सत्य होगी—ऐसा मत मानों। तुम अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से विचार करो और यदि कोई भी बात तुम्हें जचती हो और वह केवल तुम्हारे हो नहीं अपितु समस्त विश्व के लिये कल्याणकारी हो, तो उसे मानो।" इतनी सत्य और निर्भय स्पष्टोक्ति शायद ही संसार में अन्य किसी पुरुष ने की होगी। यह अमर सन्देश हमें सिखाता है कि कोई भी पुरुष या धर्म-ग्रन्थ हमारे लिये स्वतः प्रमाण नहीं हो सकता। इस सन्देश ने किसी धर्मग्रन्थ को स्वतः प्रमाण मानने की परम्परा को नष्ट कर मनुष्य को मानसिक स्वतन्त्रता दी है। बुद्ध ने मनुष्य को समस्त बन्धनों से मुक्त कर उसे स्वावलम्बी बनाया और जीवन में उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया। भगवान् बुद्ध अपने अमर वाणी में कहते हैं:—'हे मनुष्य! सब सुखों का आकर जो प्रकाश है वह तेरे ही भीतर है, बाहर खोजने की कोई आवश्यकता नहीं। इस शिक्षा से मनुष्य आत्म निर्भर बनता है अतः यही संदेश संसार में कल्याण और शांति निर्माण कर सकता है। क्योंकि इससे मनुष्य जानता है कि मेरा हित या अनहित मेरे ही कार्यों में निहित है दूसरों के नहीं। मेरी ओर आओ, मैं तुमको सब पापों से मुक्त करूँगा" ऐसी दावा जो कई धर्मोपदेशकों ने की हैं, वैसी बुद्ध ने नहीं की। बुद्ध कहते थे "मैं तो केवल मार्ग प्रदर्शक हूँ, मार्ग तो तुम्हें चलना पड़ेगा। सन्मार्ग

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

से चलने में तुम्हारा कल्याण और कुमार्ग से चलने में तुम्हारा नाश है। "जैसा करोगे वैसा भरोगे"—यही भगवान् बुद्ध की शिक्षा का सार है। अगर तुम अपने बाग में घास ही बढ़ने दोगे, तो वहाँ पर गुलाब के फूलों की अपेक्षा करना व्यर्थ है। अतः प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है और अपने को बाग किन पौधों से सजाये यह उसी के हाथ की बात है। यह शिक्षा बहुत सरल तथा स्पष्ट है। इससे बढ़ कर मंगल सन्देश संसार में अन्य किसी ने नहीं दिया। और इसी कारण आज आधा संसार भगवान् बुद्ध को अपना धर्म-गुरु और समस्त संसार उनको एक महान् धर्म-प्रवर्तक मानता है।

भगवान् बुद्ध की श्रेष्ठ बुद्धवादिता के सम्बन्ध में क्रमशः तीन बातों पर प्रकाश–डालूँगा। (१) ईश्वरवाद (२) अनात्मवाद और (३) आस्तिकवाद। भगवान् बुद्ध निरीश्वरवादी थे। वे ईश्वर को नहीं मानते थे। अगर ईश्वर का अर्थ इस संसार का निर्माता और नियंत्रण करने वाला सर्व शक्तिमान् व्यक्ति है तो ऐसे ईश्वर को भगवान् बुद्ध की विचार-धारा में बिल्कुल स्थान नहीं है। इसके बारे में भगवान् बुद्ध का एक उदाहरण प्रसिद्ध है। भगवान् बुद्ध कहते थे "समझो विषैले बाण से विद्ध होकर एक मनुष्य दुःख से विकल हो रहा हो। उसकी दवा करने के लिये उसकी तरफ एक वैद्य जाता है और विषैले बाण को निकालने का प्रयास करता है। ऐसी हालत में वह दुःखी मनुष्य उस वैद्य को ऐसा कहे कि इस बाण को मुझे किसने मारा है जब तक मैं यह नहीं जान लूँगा, तब तक इसे नहीं निकालने दूगाँ"। तो उस मनुष्य का क्या होगा ? वह वैसे ही दुःख में मर जायगा। अतः संसार का किसने निर्माण किया ? इस प्रश्न की चर्चा व्यर्थ है। हमें तो हम दुःख क्यों भोगते हैं इसी प्रश्न पर जोर देना चाहिये और दुःख का शल्य निकाल कर सुखी बनना चाहिये। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि बुद्ध की यह विचार प्रणाली ही सर्वथा ठीक है। अगर ईश्वर सर्वशक्तिमान व्यक्ति है और उसकी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता है, तो फिर मनुष्य को स्वतन्त्रता कहाँ है ? मनुष्य तो ऐसे ईश्वर के हाथ की एक कठपुतली बनकर निष्क्रिय हो जाता है। जिस जीवन में ऐसे ईश्वर को स्थान है वह जीवन स्वतन्त्र और सुखी हो ही नहीं सकता। जब हम अन्य किसी व्यक्ति या-शक्ति पर निर्भर रहते हैं तो हम स्वयं स्वतन्त्र कैसे हो सकते हैं ? अतः बुद्ध ने कहा 'अत्ता हि अत्तनो नाथो, कोहि नाथो परो सिया' मनुष्य अपना नाथ या स्वामी आप ही है और दूसरा कौन स्वामी हो सकता है ? जब मनुष्य में बैठे हुये ईश्वर को ही स्वामी मानता है तो समझ लीजिये कि वह पाप-पुण्य, सत्य, असत्य और न्याय-अन्याय नहीं जानता। क्योंकि वह कहता है कि ईश्वर की सृष्टि मंगलमय ही है और ऐसी मंगलमय सृष्टि में असत्य अन्याय और पाप रह ही नहीं सकता है। ऐसी विचार धारा से संसार का कल्याण कैसे हो सकता है ? चोर चोरी करता है और कहता है, मैंने क्या किया। खूनी आदमी खून करता है और कहता है मैंने क्या किया ? ईश्वर की इच्छा से हो तो यह सब हुआ"। यह हुआ चोर तथा खूनी मनुष्य का दृष्टिकोण।

इन पापों की ओर संसार का भी दृष्टिकोण ऐसा ही होता है। महात्मा गांधी का बध ईश्वर ने करवाया–ऐसा मानने वाले लोग हमारे समाज में अभी भी हैं। यह कितनी आश्चर्य की बात है ! अगर ईश्वर ने ही यह सृष्टि की है और वही उसका नियन्ता है तो संसार में सुख, सत्य, न्याय और नीति की अपेक्षा दुःख, असत्य, अन्याय और अनीति ही क्यों ज्यादा दिखाई देती है ? संसार दुःख है-यह तो स्वयं सिद्ध बात है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं:–"अनित्यं असुखं लोकं इमं प्राप्य भजस्व माम्"। ईश्वर अपने प्यारे बच्चों पर अण बम्ब की वर्षा कैसे करता है ? फिर ऐसे ईश्वर को क्या हम दयालु कह सकते हैं ? निर्माण होने के पूर्व जिन प्राणियों का सुःख या दुःख कुछ भी नहीं मालूम था उनको दुःख सागर में डुबाने में ईश्वर ने क्या पुरुषार्थ किया ? यही समझ में नहीं आता। सच बात तो यह दीखती है कि मनुष्य अपने

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कृष्ण कृत्य को छिपाने के लिये ईश्वर का सहारा लेता है। अच्छा एक क्षण के लिये हम मान लेते हैं कि ईश्वर ने यह सृष्टि की। परन्तु इस सृष्टि के अन्याय तो मनुष्य को ही मिटाने होते हैं। ईश्वर तो स्वयं उनको मिटाने के लिये नहीं आता। तो फिर ऐसे ईश्वर को हमारी विचार धारा में स्थान ही कहाँ है ? अतः आप को मानना पड़ेगा कि बुद्ध की शिक्षा ही हमारे लिये बहुत कल्याणकारी है।

जिस प्रकार पिजड़े में पक्षी या बिल में चूहा बैठा रहता है उसी प्रकार आत्मा हमारे शरीर के भीतर बैठा है, इसे भगवान् बुद्ध नहीं मानते थे। वे अपने को अनात्मवादी कहते थे। भगवान् बुद्ध के समय में दो तरह के आत्मवादी थे। ये दोनों आत्मवादी आत्मा को पिजड़े की पक्षी की तरह शरीरस्थ परन्तु शरीर से भिन्न मानते थे। पहिले प्रकार के आत्मवादी ऐसा मानते थे कि आत्मा पाप पुण्य से परे होने से मनुष्य को पाप पुण्य नहीं लगता। मनुष्य अपने शरीर से कुछ भी करे, उससे उसकी आत्मा अलिप्त है। ऐसे लोगों के पास पाप पुण्य की कल्पना का संपूर्ण अभाव था। ऐसे लोग खाना, पीना, और चैन करना मात्र ही जीवन का ध्येय मानते थे। ऐसा जीवन भगवान् बुद्ध के शब्दों में 'हीन अनार्य ग्राम्य और निरर्थक है।' दूसरे प्रकार के आत्मवादी ऐसा मानते थे कि आत्मा शरीर के भीतर बंदी की तरह शरीर रूपी कारागार में जकड़ा पड़ा है और यह शरीर उसके लिये एक कैदखाना है एवं शरीर को कष्ट देने से इन्द्रिय संयम हो कर आत्मा की मुक्ति होती है। ऐसा जीवन भी बुद्ध के शब्दों में कष्टमय और निरर्थक है। ये दोनों अत्मवादी वास्तव में आत्मद्वेषी थे। अतः भगवान् बुद्ध ने इन दोनों मतों का खण्डन कर अपने को अनात्मवादी कहलाया। पर्वत पर बैठे हुये मनुष्य के 'मैं उसके शीखर पर हूँ, यह कहना जैसे व्यर्थ है वैसे ही संसार में दुःख भोगते हुए मुझ में आत्मा है, कहना है। समुद्र का खारा पानी चखते हुये मैं अमृत पीता हूँ कहना जैसे व्यर्थ है वैसे ही दुखित मनुष्य के 'मैं अत्मा हूं या मुझमें आत्मा है, कहना है।

प्रत्येक मनुष्य में दो प्रवृत्तियां हैं, एक कुशल और दूसरी अकुशल। कुशल प्रवृत्ति हमें निर्वाण की ओर और अकुशल प्रवृत्ति हमें बन्धन की ओर ले जाती है अतः प्रत्येक मनुष्य को इस अकुशल प्रवृत्ति का नाश करने के लिए सर्वदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। और कुशल प्रवृत्ति को बढ़ाना चाहिए। जब हम अकुशल प्रवृत्ति का सम्पूर्ण नाश कर लेगें तो हम निर्वाण पद प्राप्त कर सकते हैं। अतः भगवान् बुद्ध कहते हैं:—

सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा।
सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धान सासनं॥

अर्थः—पाप नहीं करना, पुण्यों का संचय करना और चित्त को शुद्ध करना—यही बुद्धों की शिक्षा है।

भगवान् बुद्ध पक्के आस्तिक थे। कुछ लोग अपनी अज्ञानता के कारण उन्हें नास्तिक कहने का साहस करते हैं, किन्तु नास्तिक तो उसे कहते हैं जो व्यक्ति, सत्य, असत्य, धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य इहलोक और परलोक नहीं मानता है। इस दृष्टि से कोई भी प्रामाणिक मनुष्य नास्तिक का आरोप भगवान् बुद्ध पर नहीं कर सकता। वास्तव में नास्तिक तो 'खाओ, पीओ और चैन करो' यही जीवन का ध्येय समझता है। परन्तु भगवान् ने तो राज्य सुख को ठुकरा कर निर्वाण पद प्राप्त किया था। और इसी कारण हिन्दू लोग बुद्ध को विष्णु का नवाँ अवतार मानते हैं। प्रत्येक ब्राह्मण पूजा के समय बौद्धावतारे मन्त्र कहता है। अगर बुद्ध—नास्तिक होते तो हम लोग बुद्ध को विष्णु का अवतार कैसे मानते ?

'बुद्ध नास्तिक थे' कहना स्वयं अपने को नास्तिक कहने की तरह–आत्मघातक है। इसपर कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि जिस बुद्ध को हम विष्णु का अवतार मानते हैं वे गौतमबुद्ध नहीं हैं। यह तो शुद्ध दुराग्रह है। क्योंकि हमारे पुराण में स्पष्ट कहा है:—

"शुद्धोदनस्य बुद्धो अभूत स्वयं पूत्रो जनार्दनः।
त्यक्त्वा राज्यं स्त्रीयं सोऽथ गतिं परम कां गतः॥"

शुद्धोदन के पुत्र को ही हम हिंदू लोग विष्णु का अवतार मानते हैं। इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि वास्तव

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

मूलगन्ध कुटी विहार के अठारहवें वार्षिकोत्सव पर

भिक्षु संघरत्न जी द्वारा दिया गया अभिभाषण

सभापति महोदय,

श्रद्धेय भिक्षु-संघ,

तथा भाइयो और बहनो !

मैं सर्व प्रथम आगन्तुक सभी सज्जनों का महाबोधि सभा तथा भिक्षु-संघ की ओर से हार्दिक स्वागत करता हूं। मैं आज की सभा के सभापति हमारे प्रान्त के प्रधान मन्त्री माननीय पं० गोविन्द वल्लभ पन्त, महाराज बनारस, महाराज कुमार सिकिम, महाराज कुमारी सिकिम, बर्मा के राजदूत माननीय सरमांग गि, लंका भारत स्थित राजदूत माननीय सी० कुमार स्वामी तथा उन सभी सज्जनों का, जो सारिपुत्त-मोग्गल्लान अर्हन्तों की पवित्र अस्थियों के साथ आये हैं और उन सभी अपने भाइयों का, जो बड़ी बड़ी दूर से मूलगन्धकुटी विहार के अठारहवें वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिये यहां पधारे हैं, विशेष रूप से हार्दिक स्वागत करता हूँ।

अभी आप लोगों को—जो हमारी वार्षिक रिपोर्ट वितरित की गई है उसे देखने से यह भलीभाँति विदित हो जायगा कि गत वर्ष यहाँ हमने क्या क्या कार्य किये हैं।

यहाँ पर जो शिक्षा का कार्य हो रहा है उसके अतिरिक्त मैं कुछ सर्वप्रथम सारनाथ बुद्धिस्ट इंसटीट्यूट के विषय में आपको बताना चाहता हूँ। हम लोगों का पूर्ण विचार है कि इस इंसटीट्यूट का अधिक से अधिक प्रचार हो और यह एक अन्तर्राष्ट्रिय विश्वविद्यालय हो जाय जैसा कि प्राचीन काल में नालन्दा विश्वविद्यालय था। यह विश्वविद्यालय ऐसा हो जाय कि जहां पर संसार के सभी देशों के व्यक्ति आकर पालि त्रिपिटक, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं, तिब्बती, चीनी, स्यामी, बर्मी, सिंहली, संस्कृत, दर्शन, इतिहास और संस्कृति का विषद अध्ययन तथा खोज कर सकें।

हमारा जो यहाँ का हाईस्कूल है वह अब हायर सेकण्डरी हो गया है और इंटर मिडियेट कक्षा की पढ़ाई अगले वर्ष प्रारम्भ हो जायगी। गत वर्ष की हाई स्कूल की परीक्षा में इस स्कूल से ४८ विद्यार्थी बैठे थे जिनमें ४६ उत्तीर्ण हुये जिनमें २५ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये। यह आपको सूचित करते हुये बड़ा हर्ष है कि हाई स्कूल की परीक्षा में सर्व प्रथम हमारे ही स्कूल से २६ छात्र पालि की परीक्षा में सम्मिलित हुये हैं। हमारा प्राइमरी स्कूल भी सदा की भाँति इस वर्ष भी बनारस सर्किल में सबसे अच्छे स्कूलों में रहा है।

मूलगन्धकुटी विहार पुस्तकालय तथा वाचनालय में विभिन्न विषयों की पुस्तकों का सुन्दर संग्रह हुआ है।

शिक्षा के इन कार्यों के अतिरिक्त मैं अपने यहाँ से प्रकाशित होनेवाले मासिक पत्र "धर्मदूत" के विषय में कहना चाहता हूँ। इसकी प्रगति भारत, नेपाल, तिब्बत तथा अन्य देशों में बड़ी अच्छी रही है। भारत में बौद्ध धर्म सम्बन्धी हिन्दी में यही एक मासिक पत्र है। हमने बहुत बड़ी संख्या में हिन्दी एवं अंग्रेजी में अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किया है जो महाबोधि पुस्तक भण्डार से प्राप्त हो सकती हैं। बौद्ध धर्म के दर्शन तथा एतद् विषयक अन्य पुस्तकों की एजेंसी हमने विश्व के विभिन्न प्रकाशकों से लेली है। जिससे बौद्ध धर्म जानने वालों तथा अध्ययन करने वालों को विशेष सुविधा रहे।

जन सेवा के कार्यों में महाबोधि दातव्य औषधालय सर्वप्रथम है। यहाँ पाँच मील के भीतर यही एक दातव्य अस्पताल है। इसमें गतवर्ष लगभग ३०००० रोगियों की

में बुद्ध सबसे महान्, सबसे अधिक बुद्धिमान और सबसे उत्तम पुरुष थे। उनकी विचार धारा सरल और तर्क शुद्ध थी इसी विचार धारा से समस्त विश्व का कल्याण हो सकता है। भगवान् बुद्ध भारत के अभिमान हैं। कृण्वंतो विश्वं आर्यं इस वेदोक्ति को अगर किसी ने यथार्थ किया तो बुद्ध ने। आज—भारत ने भगवान् बुद्ध का धर्म चक्र जिसे हम अशोक चक्र कहते हैं अपने राष्ट्र ध्वज में अंकित किया है। यह राष्ट्रध्वज हमारा सौभाग्य-चिन्ह है। इस राष्ट्रध्वज की प्रतिष्ठा बढ़ाना हर एक भारत-प्रेमी मनुष्य का कर्त्तव्य है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सेवा हुई है जिनमें अधिकतर ग्रामीण हैं। हमारी दानशीला प्रान्तीय सरकार ने इस अस्पताल में कमरे बनाने के लिए दस हज़ार रुपये का दान दिया है।

हमारे धर्मपाल कुमाराश्रम में इस समय केवल थोड़े ही लड़के हैं परन्तु उन्हें शिक्षा इस ढंग से दी जारही है कि वे आदर्श देश सेवक बनें।

हमारे यहाँ राजा बलदेवदास बिड़ला की धर्मशाला ने प्रति वर्ष सहस्रों व्यक्तियों को जो विश्वके विभिन्न देशों से आते हैं सुवास दिया है।

हमने सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक और प्रगति की हैं जिसका विवरण रिपोर्ट में है।

अभी हाल ही में हमारी संयुक्त प्रान्तीय सरकार ने सारनाथ क्षेत्र में पशु पक्षियों का बध निषिद्ध कर दिया है। सारनाथ का प्राचीन नाम मृगदाय है जिसका अर्थ ही प्रत्येक जीव का निवास स्थान है। मैं इस कार्य के लिये अपने प्रधान मन्त्री जी को विशेषरूप से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इतना उत्साह दिखाया है।

वास्तव में हमारे कार्यों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विशेष प्रगति हुई है। मुझे विश्वास है कि इस स्वतन्त्रता के वातावरण में धार्मिक स्वतन्त्रता को सुन्दर प्रश्रय मिलेगा। मुझे यह भी विश्वास है कि इस स्थल का पुनरुत्थान कभी न हुआ होता, यदि इसके संस्थापक स्वर्गीय धर्मपाल जी न हुये होते।

हमारा यह विचार नहीं है कि भारत के सभी लोग बौद्ध धर्मावलम्बी हो जाँय, प्रत्युत हम तो केवल यह चाहते हैं कि हम उनमें त्याग, धर्म, सत्यता तथा उदारता की भावना भर सकें, क्योंकि ऐसा ही चरित्र हमारे सभी भारतीयों का अशोक-काल में था।

अन्त में मैं आप सभी सज्जनों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने शान्तिपूर्वक हमारे कथन को सुना है।

———

सिद्ध चमत्कारिक यंत्रं

महारात्रि में सिद्ध किये हुए ये तावीज आपका भाग्य पलट सकते हैं।

लक्ष्मी यंत्र—जिसके धारण करने से बेकारों की नौकरी लगती है, नौकरों की तरक्की होती है, व्यापार चमक पड़ता है और लक्ष्मी के आने के नये नये साधन आप से आप जुट जाते हैं। मूल्य ३) मात्र।

सन्तान यंत्र—को कमर में बाँध लेने से निश्चय ही गर्भ स्थापित हो जाता है, जिन्हें गर्भ-पात हो जाया करता है उनका गर्भ नहीं गिर सकता। मूल्य ३) मात्र।

मूल्य मनिआर्डर द्वारा पेशगी आना चाहिए। चमत्कार न दिखलाने पर मूल्य वापिसी की शर्त।

पता—

प्रोफेसर डाक्टर प्रभात

छिन्दवाड़ा (सी० पी०)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

वियोग में

यह महा अभिनिष्क्रमण संकल्प कैसा हे हृदय !

शुभ घड़ी कैसी उषा उपहार तू क्या आज लाई ?
आज हैं सर्वस्व जीवन-धन नहीं पड़ते दिखाई !
राग तो वे खो चुके थे मैं उन्हें थी जान पायी ।
सौम्य आकृति पर लखी थी इक उदासी रेख छायी ॥
'यह न रुकने के' हृदय यह जान होता था सभय ।
यह महा अभिनिष्क्रमण संकल्प कैसा हे हृदय !

पूछती थी तो बताते थे व्यथा संसार की ही ।
जब सुनी कहते सुनी जग की दशा संहार की ही ॥
थे करुण सब प्राणियों पर देख गति निस्सार की ही ।
युक्ति निशि दिन सोचते उद्धार की उपकार की ही ॥
हृदय खोये एक दिन बोले जगत होगा अभय ।
यह महा अभिनिष्क्रमण संकल्प कैसा हे हृदय !

विचलित उन्हें यों देखकर आश्चर्य मैं करने लगी थी ।
देख मुझको हँस पड़े मेरी क्षणिक चिन्ता भगी थी ॥
'स्वस्थ तो है चित्त' कह अनुराग में उनके पगी थी ।
तब कहे 'गोपे ! हृदय की भावना सोती जगी थी' ॥
भर चुका संवेग अब सिद्धार्थ हैं जग से अलय ।
यह महा अभिनिष्क्रमण संकल्प कैसा हे हृदय !

संसार से संविग्न हो उद्धार को जग के गये हैं ।
सुन चुकी हूँ जन्मते ही थे कहे कौतुक भये हैं ॥
दुख क्या उन्हीं की धन्य हूँ वह भाव अब मुझको नये हैं ।
क्षोभ पर है यदि गये हैं तो न मुझसे कह गये हैं ॥
पा निशा मैं सो रही थी, था उन्हें वह शुभ समय ।
यह महा अभिनिष्क्रमण संकल्प कैसा हे हृदय !

क्या कहूँ मुझको छले, निश्छल हृदय छल जानते क्या ?
हूँ छली संसार से, संसार के जन जानते क्या ?
यदि इसे कटुता कहूँ ममता-रहित यह जानते क्या ?
हे हृदय 'आराध्य पर आरोप मिथ्या तानते क्या ?
क्षोभ-जड़, कुविचार उनपर शत्रु पर भी जो सदय ।
यह महा अभिनिष्क्रमण संकल्प कैसा हे हृदय !

जिसको न कुछ भी ग्राह्य है सब त्याज्य है संवेगमय है ।
महिम उन धीमान को यह राग जड़ता पर विजय है ॥
नाच मत हे चित्त स्थिर शान्त गति मति तू अभय है ।
देव की अनुगामिनी अनुहार शुचि स्मृति में लय है ॥
सफल गौतम आप हों कल्याण जग हो औ' अभय ।
यह महा अभिनिष्क्रमण संकल्प कैसा हे हृदय !

—डा० प्रेमसिंह चौहान 'दिव्यार्थ'

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

शुभ-सन्देश

[मूलगन्ध कुटी विहार, सारनाथ के १८ वें वार्षिकोत्सव के शुभावसर पर भारत, बर्मा, चीन, लंका, स्याम, सोवियत रूस, जर्मन आदि देशों से अनेक शुभ-सन्देश भारतीय महाबोधि सभा को प्राप्त हुए हैं, उनमें से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं—सम्पादक]
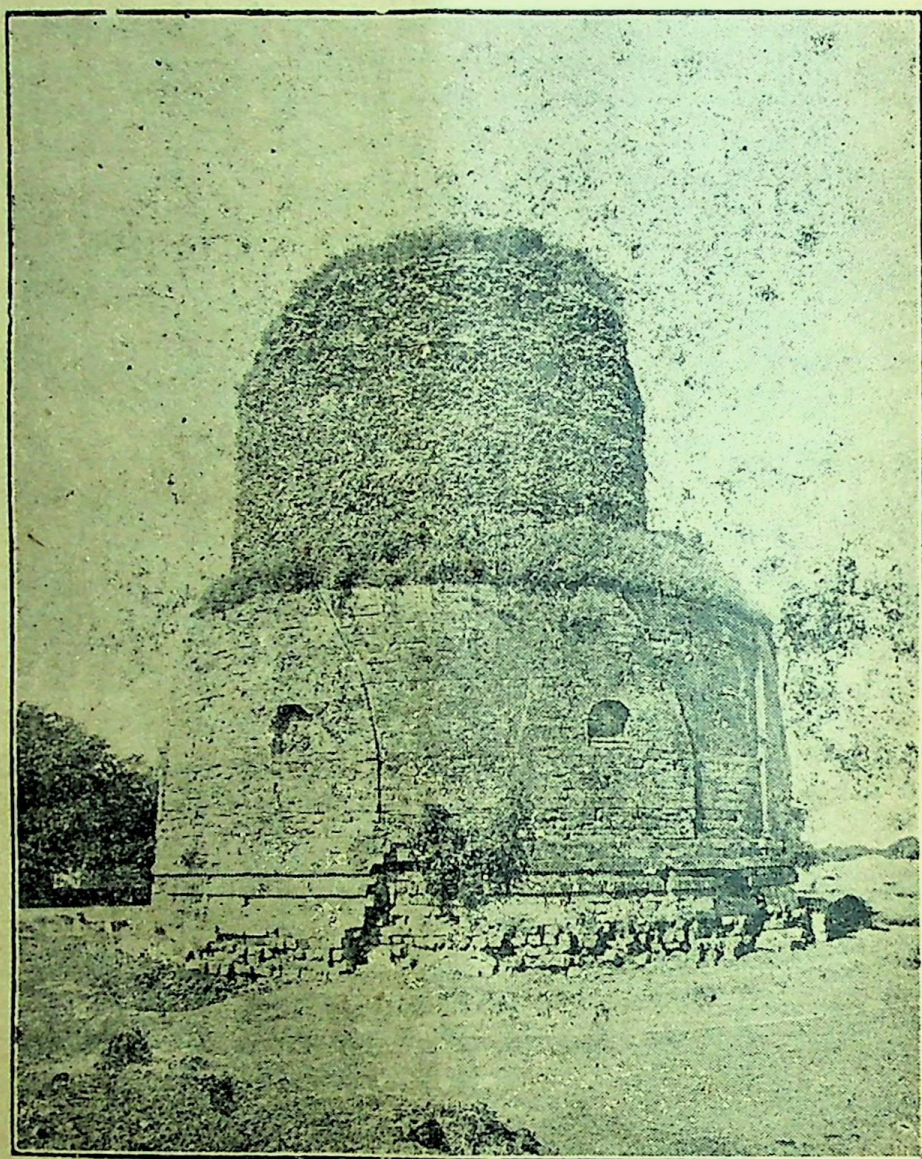
धर्मचक्र-प्रवर्तन स्थान सारनाथ का धम्मेक-स्तूप

भारत के गवर्नर जेनरल श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने अपने सन्देश में भारत की सरकार एवं जनता की ओर से अस्थियों का सम्मान किया है और सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार के १८ वें वार्षिकोत्सव पर अपनी शुभ कामना भेजी है। उन्होंने अपने सन्देश में कामना की है कि "भगवान् बुद्ध के शिष्यों के अवशेषों के प्रति प्रदर्शित किया गया सम्मान भगवान् बुद्ध द्वारा बताये गये मार्ग के प्रति हमारी दृढ़ आस्था के रूप में विकसित हो। भगवान्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बुद्ध का प्रेम और स्नेह का मार्ग ही विश्व में शान्ति और सुख ला सकता है।"

पश्चिमी बंगाल के गवर्नर डाक्टर कैलाशनाथ काटजू ने अपने शुभ-सन्देश में कहा है—"पवित्र अस्थियों के सारनाथ शुभागमन से मैं अत्यन्त हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि इस महान् अवसर पर उपस्थित रहूँ, किन्तु मुझे खेद है कि अन्य कार्यों ने इस पवित्र कार्य में सम्मिलित होने से मुझे वंचित कर दिया है। सारनाथ-जो भगवान् बुद्ध के चरण-स्पर्श से एक पुण्य स्थान बन गया है, उसे मैं भारत का बहुत ही पवित्र स्थान समझता हूँ। यह बड़े महत्व की बात है कि भगवान् बुद्ध के उन दो शिष्यों के अस्थि-अवशेष तथागत के अस्थि-अवशेषों से पुनर्मिलन के लिए ले जाये जा रहे हैं, जिन्होंने अपने जीवन काल में उनकी भक्ति-पूर्वक सेवा की।"

बिहार के गवर्नर श्री अणे ने भी अपने सन्देश में पवित्र अस्थियों के प्रति सम्मान प्रकट किया है और भगवान् बुद्ध के आदेशों के प्रति आस्था प्रकट की है। उन्होंने भारत के हिन्दुओं और विश्व के बौद्ध मतावलम्बियों में सौहार्द भावना के विकास की कामना की है।

आसाम के गवर्नर श्री श्रीप्रकाश, उड़ीसा के गवर्नर श्री आसफ अली, बम्बई के गवर्नर श्री महाराज सिंह तथा भारत के शिक्षा मंत्री श्री अबुल कलाम आजाद ने भी अपने सम्मान सूचक सन्देश भेजे हैं।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित व्यक्तियों और संस्थाओं ने भारतीय महाबोधि सभा को अपने सन्देश भेजे हैं:—

केन्द्रिय सरकार के रेलवे मंत्री श्री के० सन्तानम्, मंत्री भारतीय बौद्ध समिति नई दिल्ली; पुरातत्व विभाग के सुपरिंटेण्डेण्ट श्री वासुदेव शरण अग्रवाल; सिक्किम के महाराज; प्रो० श्री जोर्जस् रोरिक; मंत्री, सिंगापुर बौद्ध समिति; राजमाता ललिता कुमारी, विजयानगरम; श्री क्रिस्मश हम्फ्रेज़ अध्यक्ष बौद्ध समिति लन्दन; मंत्री, बौद्ध समिति लोस-एंजलस्, अमेरिका; लंका के प्रधान मंत्री श्री डी० एस० सेनानायक; मंत्री, महाबोधि सभा मुंचेन, जर्मन; अध्यक्ष सोसाइटी फॉर बुद्धिष्ट स्टडीज, कोलम्बिया विश्वविद्यालय, अमेरिका; भारत स्थित अमेरिका के राजदूत श्री हाद्र डोनोवन, नई दिल्ली; सोसाइटी फॉर बुद्धिष्ट स्टडीज की मंत्रिणी श्रीमती बेटी लव् कट्ली; अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के मंत्री श्री काला वेङ्कटराव; बर्मा स्थित लंका के राजदूत श्री सुसन्ता डी० फोन सेका; भारतीय बौद्ध समिति सुमात्रा के मंत्री श्री एस० पिचे; पिनाङ्ग बौद्ध समिति के अध्यक्ष श्री लीसु एङ्ग; मलाया के बौद्ध संघ की ओर से श्री तान हॉक लियत; बम्बई के प्रधान मंत्री श्री बालगंगाधर खेर, पूर्वी पंजाब के प्रधान मंत्री श्री गोपीचन्द भार्गव, उड़ीसा के प्रधान मंत्री श्री हरिकृष्ण महताब, श्री सच्चिदानन्द सिंह, पटना; सागर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री हरिसिंह गौड, हालैण्ड बौद्ध समिति की मंत्रिणी श्रीमती एम० ए० स्पूटन वर्ग ड्वार्स, मद्रास के प्रधान मंत्री श्री एस० कुमार स्वामी राजा और बंगाल के प्रधान मंत्री श्री बी० सी० राय।

———*———

होमियोपैथिक यूनिवर्सिटी की स्वीकृत परीक्षायें मार्च १९५० में होंगी, जिनमें सम्मिलित होने के लिये स्वतंत्र परीक्षार्थी और चिकित्सक १५ जनवरी १९५० तक आवेदन कर सकते हैं। प्रास्पेक्टस और फार्म आठ आने के टिकट भेजकर मँगाइये।

रजिस्ट्रार
हनीमेन होम्योपैथिक
यूनिवर्सिटी आफ इंडिया
छिंदवाड़ा (सी० पी०)

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

[इस स्तम्भ में बालक-बालिकाओं के बौद्ध-धर्म सम्बन्धी लेख, कविता, कथा-कहानी, पहेलियाँ आदि छपा करेंगी। बालक-बालिकाओं को अपनी रचनायें भेजते समय साफ-साफ अक्षरों में कागज के एक ही ओर हासिया छोड़कर लिखना चाहिये—सम्पादक]

बुद्ध-महापरिनिर्वाण

श्री रामजी शर्मा

एक समय भगवान् बुद्ध वेणुवन में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्हें एक भयानक रोग हो गया। मरणान्तक वेदना होने लगी। उन्होंने आत्मबल से उस रोग को शान्त किया आयुष्मान् आनन्द को तथागत को सुखी देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने भगवान् से कहा—"भगवन्! आपके चंगा होने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं बहुत चिन्तित था। मेरी समझ में कोई बात नहीं आती थी। किन्तु इतनी आशा थी कि निर्वाण प्राप्त करने के पूर्व आप भिक्षु संघ को उपदेश देंगे। यह सुनकर भगवान् ने आनन्द को समझाया "आनन्द, मैंने धर्म तो पहले ही बता दिया कोई बात गुप्त नहीं रखी, अब संघ मुझसे क्या आशा रखता है। संघ की चिन्ता अब मुझे नहीं है। अब मैं ८० वर्ष का वृद्ध हूँ। किसी प्रकार जीवन रथ को चला रहा हूँ। आनन्द, स्वावलम्बी बनो। दूसरे की आशा छोड़ो। धर्म का अनुसरण करो।

भगवान् वहाँ से चल कर पावा नगर पहुँचे और चुन्द सोनार के आम्रवन में ठहरे। चुन्द यह सुनकर भगवान् के पास आया और अभिवादन कर बोला, "भन्ते, भिक्षु संघ सहित तथागत मेरा भोजन स्वीकार करें।"

भोजन के दिन अन्य भोज्य-सामग्रियों के साथ सूकर मद्दव भी तैयार कराया गया। उसने समय पर तथागत को सूचना दी। चुन्द ने अपने हाथ से सबको भोजन कराया। भोजन समाप्त होने पर उसको उपदेश दे, भगवान् लौट गये।

थोड़ी ही देर पश्चात् भगवान् को रक्तस्राव होने लगा। पेट में मर्मान्तक वेदना होने लगी। तब उन्होंने आनन्द से कहा, "देखो आनन्द मेरे बाद कोई यह न कहे कि चुन्द बड़ा अभागा था। उसी के भोजन से भगवान् का निर्वाण हुआ। आनन्द, तुम उससे कहना कि चुन्द तुम बड़े भाग्यशाली हो। तुमने महान पुण्यार्जित किया कि तुम्हारे भोजन से तथागत ने निर्वाण लाभ किया। तुम्हारा भोजन सुजाता के खीर के समान है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उन्होंने आनन्द से कुशीनगर चलने को कहा। उस व्यथा के होने पर भी ८ मील चलकर हिरण्यवती के किनारे के शालवन में पहुँचे। उत्तर की ओर सिर कर दाहिने करवट लेटे हुए भगवान् बोले, 'आनन्द, दिशाओं से लोग कुशीनगर के दर्शनार्थ आएँगे। संसार के दुःखों और क्षणिकता को देखकर वे लोग वैराग्य को प्राप्त होंगे।'

आनन्द को विश्वास हो गया कि भगवान् अब संसार को त्याग देंगे। अपने को वे सम्हाल न सके और विहार के कोने में छिप कर रोने लगे, "हाय! अभी मैं अर्हत्-पद को प्राप्त न कर पाया कि मेरा पथ-प्रदीप बुझ रहा है।

भगवान् ने आनन्द को बुला कर समझाया। "आनन्द, शोक क्यों कर रहे हो? तुमको पहले से ही ज्ञात है कि प्रिय तथा अप्रिय सभी वस्तुओं से वियोग अवश्यम्भावी है। तो फिर क्यों रोते हो। तुमने इतने दिनों तक मेरी सेवा की। अब प्रयत्न करो कि शीघ्र ही राग द्वेष और मोह के पापों से मुक्त हो जाओ।

निर्वाण-शय्या पर पड़े तथागत ने सुभद्र को अपना शिष्य बनाया।

अंतिम घड़ी आ गई। भगवान् ने भिक्षुओं से कहा कि तुम यह न समझना कि अब मेरा कोई शास्ता नहीं है। मेरा बताया धर्म ही तुम लोगों का शास्ता होगा।

भगवान् ने अंतिम उपदेश दिया, "भिक्षुओ, संसार की सभी वस्तुएँ बनी हैं इसलिये सभी बिगड़ने वाली हैं, नश्वर हैं। तुम लक्ष्य की प्राप्ति में सदा प्रयत्नशील रहना।"

४५ वर्ष तक सतत् दीप्त वह भुवन-प्रदीप संसार से सदा के लिये बुझ गया, वह अमर ज्योति सदा के लिये बुझ गई, पर उसका पूर्ण प्रकाश अब भी विश्व को आलोकित कर रहा है।

[—बुद्ध इण्टर कालेज, कुशीनगर

दर्शन की लालसा

श्री किशोर

गौतम दर्शनाभिलाषा
हृदय बीच जब आयी थी।
खिल उठी थी हृदय-कली
अक्षय निधियाँ पायी थीं॥
सोचा करता था मन ही मन
दर्शन उनके होवेंगे।
श्रद्धा के प्रेमाश्रु-कणों से
युग-चरणों को धोवेंगे॥
दया, अहिंसा, सत्य, न्याय की
मूर्ति सामने पायेंगे।
'गौतम आये,' 'गौतम आये'
कह कर दौड़े जायेंगे॥
और सन्निकट उनके सारी
अपनी व्यथा सुनायेंगे।
दर्शन की जो प्यास लगी है
उसको समुद बुझायेंगे॥

[—चक्रधरपुर हाई स्कूल, सिंहभूमि

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

श्रावस्ती-दर्शन

श्री रविरत्न शाक्य, नेपाली छात्र, कक्षा ५

श्रावस्ती बौद्धों का एक पवित्र तीर्थ स्थान है। उसके दर्शन के लिए लंका, बर्मा, चीन, तिब्बत, नेपाल आदि देशों के लोग जाते हैं। वहाँ पर भगवान् बुद्ध बहुत दिन तक रहे थे और धर्म का उपदेश दिये थे। श्रावस्ती में बड़े-बड़े विहार थे, जिनमें बहुत से भिक्षु लोग रहते थे। इसलिए सब की इच्छा उसके दर्शन की होती है।

स्टेशन पर गवर्नर मोदी अस्थियों की मंजूषा को भिक्षुओं के साथ लिये हैं

मुझे बहुत दिनों से श्रावस्ती को देखने की इच्छा थी। इसलिए मैं परिनिर्वाण विहार कुशीनगर से २५ सितम्बर को आठ आदमियों के साथ उसके दर्शनार्थ चल दिया। २६ को सुबह बलरामपुर पहुँचा और वहीं विहार में भोजन किया। दोपहर के बाद इक्काद्वारा श्रावस्ती गया। श्रावस्ती बलरामपुर से १० मील उत्तर-पश्चिम है। वहाँ जाने के लिये बलरामपुर से मोटर भी मिलती है। हम लोगों को इक्का से ही जाने में आराम जान पड़ा।

मैंने श्रावस्ती में खँडहरों को घूम-घूमकर देखा। मैंने आनन्द बोधि, अजातशत्रु विहार, अंगुलिमाल धर्मशाला, भगवान् का मुँह धोने का घर, सेठ के आठ लड़कों द्वारा बनवाया हुआ कुँआ और धर्मोपदेश घर देखा। नवीन इमारतों में चीनी धर्मशाला और बर्मी-धर्मशाला भी देखने लायक हैं। बाकी सब खँडहर हैं। श्रावस्ती के खँडहर बड़े लम्बे-चौड़े हैं। मैंने सब देखा और २८ सितम्बर को कुशीनगर वापस चला आया।

[श्री चन्द्रमणि निःशुल्क
पाठशाला, कुशीनगर।

—*—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादक के नाम पत्र

क्या 'धर्म-चक्र' जैनी है ?

श्रीमान् सम्पादक जी,

आज भारत की पताका में धर्म-चक्र का चिह्न अंकित है। यह एक गौरव और महत्व की बात है कि उसे सब लोग अपना कहें और अपनायें; किन्तु जैन मुनि श्री कान्तिसागर जी को उसपर इतना लोभ हुआ कि वे उसे अपनाने के साथ अपने सारे ज्ञान को उसी में भुला दिये ! आपने 'ज्ञानोदय' के सम्पादकीय में 'धर्म-चक्र' का वर्णन किया और उसे जैन चिह्न बतलाया। ऊपर से प्रमाण भी कलयुगी ही नहीं, द्वापरी भी दिया ! यह तो अच्छी बात रही, परन्तु आपने जो बौद्धों का उससे एक दम नाता ही तोड़ दिया, वह आपकी विद्वत्ता के लिए कम घातक नहीं है। आप लिखते हैं कि 'बौद्ध पालि साहित्य में इस (धर्म-चक्र) का नाम भी नहीं।' धन्य है आपका पालि भाषा का ज्ञान ! हम इसे क्या कहें ? रह जाता हैं पुरातत्व विभाग। वह अशोक द्वारा निर्मित स्थानों पर इसे देखकर बौद्ध चिह्न स्वीकार करता है, फिर भी मुनि जी को उसकी और अन्य ऐसे व्यक्तियों की धारणा भ्रमपूर्ण विदित हुई।

मुनिजी ने यदि "धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त" को भी देखा होता, जो तथागत का प्रथम उपदेश है, तो सम्भवतः उनकी ऐसी गलत धारणा मिट गई होती। 'धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त' में एक बार नहीं, तेइस बार 'धर्म-चक्र' शब्द आया है वहाँ कहा गया है—"पवत्तिते पन भगवता धम्मचक्के" अर्थात्, भगवान् के धर्म-चक्र को प्रवर्तित करने (= चलाने) पर। तथा "एवं भगवता बाराणसियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं, अप्पतिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचिवा लोकस्मिन्ति" अर्थात्, "भगवान् ने यह वाराणसी के ऋषिपत्तन मृगदाव में अनुपम धर्म-चक्र को प्रवर्तित किया है, जो लोक में श्रमण, ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या किसी भी व्यक्ति से प्रवर्तित नहीं किया जा सकता।"

यही क्या ? यह मैंने केवल एक सूत्र की चर्चा की, पालि साहित्य में तो धर्मचक्र का नेमि, आरा, पुट्ठी आदि अंग-अंग का शीलादि से उपमा देकर सांगोपाङ्ग वर्णन किया गया है और तब से आज तक हरेक सांस्कृतिक क्षेत्र में चिन्हस्वरूप वर्तमान् है। यही कारण है कि बौद्ध इसका परित्याग नहीं कर सकते। क्या कोई बौद्ध बच्चा भी अपने धर्म-चक्र सूत्र तथा धर्मचक्र प्रवर्तन स्थान (सारनाथ) को कभी भूल सकता है ? यह तो बौद्ध धर्म का मूलस्रोत है। यदि धर्म-चक्र नहीं तो बौद्ध धर्म ही नहीं। जहाँ कहीं भी धर्मचक्र-प्रवर्तन मुद्रा में भगवान् बुद्ध की मूर्ति रहेगी, धर्मचक्र का चिन्ह रहेगा ही। इस तथ्यपूर्ण धार्मिक चिन्ह को अशोक ही क्या, कोई भी बौद्ध राजा नहीं छोड़ सकता था। यह अनुलोम-प्रतिलोम का द्योतक २४ आरों वाला 'धर्म-चक्र' बौद्ध धर्म का चक्र है, जैनी नहीं। यदि मुनि जी इसे अशोक की कल्पना मानने लगे, तो आश्चर्य नहीं कि वे उसे जैन होने का भी प्रमाण देने लगें ! जैसा कि जैन लोग चन्द्रगुप्त को जैनी होने की कल्पना करते हैं !

अब रही पौराणिक बात। यदि मुनि जी ऋषभदेव तीर्थंकर का प्रमाण देकर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि वे गौतमबुद्ध से बहुत पहले हुए थे, तो उन्हें कम से कम बौद्ध धर्म के 'बुद्धवंश' को भी देखना चाहिए था, जिसमें ऋषभ देव तीर्थंकर से बहुत पहले २६ बुद्ध हो चुके हैं, जिनमें सभी ने धर्मचक्र प्रवर्तन किया था। पालि साहित्य के अनुसार इनके समय की गणना ९१ कल्प पूर्व है, जब कि तीर्थंकर ऋषभदेव की कल्पना का भी पता न था।

अतः मुनि जी से मेरा नम्र निवेदन है कि वे 'धर्म-चक्र' को जैनियों का कहें, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, परन्तु पालि साहित्य और बौद्ध धर्म के प्रति अपने अज्ञान का उल्लेख न करें, जो उनकी योग्यता पर पानी फेर देता है।

— प्रेमसिंह चौहान "दिव्यार्थ"

—*—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सम्पादकीय

पवित्र अस्थियों का अद्भुत अनुभाव

चिरभिलाषित क्षण आया। तथागत के अग्रश्रावक सारिपुत्र तथा महामौद्गल्यायन की पवित्र अस्थियाँ कलकत्ते से बाराणसी लायी गईं। प्रान्तीय सरकार ने उनके राजसी स्वागत-समारोह में पूर्ण तैयारीके साथ अपने कर्तव्य का पालन किया। माननीय गवर्नर महोदय तथा अन्य अधिकारी एवं सार्वजनिक कार्य-कर्त्ताओं ने हृदय से इस महोत्सव को सफल बनाने की चेष्टा की। अस्थियों के आगमन के दिन काशी नगरी मानो हर्ष, प्रसन्नता और अपने अतीत के महान् गौरव के स्मरण से उद्बोधित होकर अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों के स्वागत में अपना आँचल पसार दी। अपार उत्साह, श्रद्धा, भक्ति और उत्सुकता से काशी की जनता धर्म-सेनापति और ऋद्धि के राजा के स्वागत में सम्मिलित हुई। नगर में जो राजसी जुलूस निकला और जो स्वागत-समारोह में सभा हुई उसकी शोभा वर्णनातीत थी। उसमें जितने लोग सम्मिलित हुए थे, सभी के मुख-मण्डल से उदारता टपक रही थी। अस्थियों का अद्भुत अनुभाव उनकी विचारधारा से प्रगट हो रहा था। धार्मिक संकीर्णता को त्यागकर इस अपूर्व समारोह में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध सभी धर्मवाले सांस्कृतिक भावना से ओतप्रोत हो हाथ बँटाये थे। धर्मराज तथागत के अनुजात पुत्रों का यह राजसी स्वागत-समारोह प्रान्तीय सरकार के गौरव और महत्व की बात है। प्रान्तीय सरकार ने इन अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त तथा पूजित पवित्र अस्थियों का स्वागत कर भारत के बौद्धों में ही नहीं, विश्व के बौद्धों में अपना महत्वपूर्ण स्थान स्थापित की है।

काशी से ऋषिपत्तन मृगदाव तक का आठ मील का लम्बा और अभूतपूर्व जुलूस अपना एक विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व रखता है। वह मुहूर्त कितना उत्तम था, जब कि सार-नाथ के चौखण्डी स्तूप के सन्निकट शिष्यों और शास्ता की पवित्र अस्थियों का ढाई सहस्र वर्ष के बाद पुनर्मिलन हुआ। उस समय जो लोग वहाँ पर थे, उन्होंने स्वयं अनुभव किया और देखा कि उस ऐतिहासिक मिलन के अवसर पर एक दिव्य ज्योति सी फैल गई। सब का हृदय श्रद्धा और भक्ति से भर गया। उस अपार भीड़ और अशान्तिके वातावरण में तुरन्त शान्ति का संचार हो गया। ऋषिपत्तन की पुण्य भूमि अपने अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों के आगमन से संकुचित-सी होने लगी। उसे उस दिन अपना खोया हुआ अतीत बार-बार स्मरण होने लगा।

प्रान्त के प्रधान मंत्री तथा जनता ने मूलगन्ध कुटी विहार के अठारहवें वार्षिकोत्सव पर उन पवित्र अस्थियों का जो सम्मान ऋषिपत्तन में किया, वह यह पुकार-पुकार कर मानो कह रहा था कि तथागत द्वारा प्रवर्तित "धर्म-चक्र" को पुनः गुरु-शिष्यों की पवित्र अस्थियाँ अपने इस अद्भुत सम्मिलन के साथ ही प्रवर्तित करेंगी।

पवित्र अस्थियाँ जितने दिनों तक सारनाथ में रहीं, उतने दिनों तक सारनाथ का शून्य वातावरण श्रद्धा, भक्ति और उत्सुकता से भरी जनता से सदा पूर्ण रहा। विशेष रूप से काशी की जनता, सार्वजनिक, कार्यकर्त्ता, राजकीय कर्मचारी तथा पत्रकारों ने इस अपूर्व महोत्सव में अपने कर्तव्य का जैसा पालन किया है, वह ऐसे भावी महोत्सवों के लिए आदर्श सिद्ध होगा। हम उन सभी व्यक्तियों, संस्थाओं और कर्मचारियों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस पुण्य-समारोह में हाथ बँटाया। हम अपने सहयोगी संसार, आज, भारत, सन्मार्ग, लीडर, पाइनियर और अमृत बाजार पत्रिका के विशेष आभारी हैं, जिन्होंने पवित्र अस्थियों के आगमन के शुभावसर पर हमारे प्रचार के कार्य किये तथा अपने विशेषाङ्क निकाले।

यद्यपि आज अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ ऋषि-पत्तन मृगदाव में नहीं हैं, वे पुनः कलकत्ते चली गई हैं, किन्तु उनके आगमन से हमें जो आत्मबल प्राप्त हुआ है, उससे हमारा पूर्ण कल्याण निश्चित है। हम उनके बतलाये हुए त्याग, संयम, क्षान्ति आदि गुणों को सीखकर अवश्य सुख और कल्याण को प्राप्त करेंगे।

—*—

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बौद्ध-जगत

अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों का शुभागमन

ढाई हजार वर्षों के बाद ऋषिपत्तन में अद्भुत पुनर्मिलन, शास्ता तथा शिष्यों की अस्थियों की पुनः शताब्दियों के उपरान्त भेंट, काशी एवं सारनाथ में अभूतपूर्व चहलपहल, तीस सहस्र नर-नारियों की भीड़, सारनाथ की अनुपम शोभा, धातु-प्रदर्शन का मनमोहक दृश्य और प्रान्तीय गवर्नर, प्रधान मन्त्री आदि के साथ विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों द्वारा पवित्र अस्थियों की पूजा।

काशी में स्वागत तथा राजकीय सम्मान

"भगवान् बुद्ध के प्रधान शिष्य सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की पवित्र अस्थियाँ ३ नवम्बर गुरुवार को दिन में ११ बजे कलकत्ते से पंजाब मेल से काशी लायी गईं। अस्थियों के साथ तिब्बत, बर्मा, नेपाल, लंका, मंगोलिया, सिकिम, चटगाँव आदि देशों के एक-एक प्रतिनिधि भी आये। अस्थियों को लाने के लिए भारत सरकार की ओर से एक विशेष रेलवे डिब्बे (टूरिस्टकार) की व्यवस्था की गई थी। अस्थियों के बनारस कैंएट स्टेशन पर पहुँचने पर संयुक्तप्रान्त के माननीय गवर्नर श्री होमी मोदी, भारत सरकार के प्रतिनिधि डा० केसकर, काशीनरेश, महाराज कुमार विजयनगरम्, काशी-विश्वविद्यालय के उपकुलपति, महाबोधि सभा के मन्त्री तथा प्रान्तीय सरकार के अनेक कर्मचारियों ने उनका स्वागत किया। राजपूताना राइफल के सैनिकों ने फौजी सलामी दी और "जन गण मन" गान के साथ जिस समय गवर्नर महोदय अस्थियों को लेकर बाहर निकले उपस्थित जन-समूह ने "बुद्ध भगवान् की जय" के नारे लगाये। प्रान्तीय सरकार की ओर से १९ तोपों की सलामी दी गई।

पवित्र अस्थियों के सार्वजनिक स्वागत के पश्चात् उन्हें श्रीहोमीमोदी ने एक नवीन ट्रक में रखा, जो चारों ओर से पुष्प एवं मालाओं से सजाई गयी थी। वहाँ से ट्रक नगर की ओर बढ़ी। ट्रक के पीछे गवर्नर की कार चल रही थी। स्टेशन से अस्थियाँ विजयानगरम् पैलेस ले जायी गई।

स्टेशन पर अवशेष के स्वागतार्थ काशी की जनता का अपार जनसमूह उमड़ पड़ा था। सार्वजनिक कर्मचारी एवं स्थानीय अधिकारी प्रबन्ध करने में तल्लीन थे। काशी की जनता के अतिरिक्त स्याम, अमेरिका, लंका, चटगाँव, तिब्बत, नेपाल, सिकिम आदि देशों के बौद्ध भिक्षु तथा उपासक-उपासिकायें भी स्टेशन पर अस्थियों के स्वागतार्थ उपस्थित थीं। अखिल भारतीय रेडियो के विशेष प्रतिनिधि श्रीसेठी भी उपस्थित थे। श्रीप्रभाकर माचवे स्टेशन के स्वागत के कार्यक्रम को ब्राडकास्ट कर रहे थे।

जब पवित्र अस्थियाँ विजयानगरम् पैलेस में पहुँची तब उनकी बड़ी भक्ति एवं श्रद्धा के साथ पूजा की गई। गवर्नर महोदय ने भी उन पर पुष्प चढ़ाया।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

कलकत्ते से काशी तक स्वागत

पवित्र अस्थियों के साथ आनेवाले अतिथियों ने बताया कि रास्ते भर विभिन्न स्टेशनों पर अस्थियों को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने वालों की भीड़ आती थी और पूजा कर अपना सौभाग्य मनाती थी।

काशी में स्वागत-समारोह

उसी दिन ठीक साढ़े चार बजे विजयानगरम् भवन से पवित्र अस्थियों का जुलूस निकला। जुलूस गोदवलिया, चौक, मैदागिनि, होते हुए हरिश्चन्द्र कालेज के मैदान में सभा के रूप में परिणत हो गया। हरिश्चन्द्र कालेज के मैदान में सशस्त्र सैनिकों ने अस्थियों को सलामी दी। गवर्नर श्रीमोदी अस्थियों को लिए मंच पर आये। स्वागत गान के बाद बनारस डीविजन के कमीश्नर श्रीहिफाजत हुसेन ने आसाम के गवर्नर श्रीश्रीप्रकाश, बम्बई के गवर्नर श्रीमहराजसिंह, भारत सरकार के शिक्षा मन्त्री मौलाना अबुलकालाम आजाद, लंका के प्रधान मन्त्री श्रीसेनानायक के सन्देश पढ़े। जिनके हिन्दी अनुवाद सारनाथ महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री के० के० राय ने सुनाया। तत्पश्चात् कई एक भाषण हुए। अन्त में अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए श्रीमोदी ने कहा:—

बुद्ध का सन्देश ही हमारी एकमात्र आशा

"आज का दिन इस प्राचीन नगर के निवासियों के लिए ही नहीं, प्रत्युत समस्त बौद्ध जगत् के लिए हर्ष का है। भगवान् बुद्ध के दो प्रधान शिष्यों के अस्थि अवशेष ९६ वर्ष पूर्व सांची से हटा कर इंगलैण्ड ले जाये गये थे। वे आज वापस आ गये हैं। भोपाल सरकार तथा भारत की महाबोधि सोसाइटी के बीच समझौते के अनुसार पवित्र अस्थियाँ अपने स्थान पर समय आने पर स्थापित कर दी जायेंगी। पर जब तक कोई भवन नहीं बन जाता या अन्य तरह की व्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक कलकत्ता के धर्मराजिक विहार

जुलूस के साथ पवित्र अस्थियाँ काशी से सारनाथ आ रही है

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में रखी जायेंगी, जिनका सम्मान हरेक देश के बौद्ध करते रहेंगे।

सारनाथ की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए सर मोदी ने कहा कि यहाँ भगवान् बुद्ध ने २५०० वर्ष पूर्व ज्ञान गुरु की पवित्र अस्थियाँ १९३१ में यहाँ लाकर स्थापित की गई थीं, हर्ष की बात है कि भले ही कुछ समय के लिए क्यों न हो पवित्र अस्थियाँ अपने गुरु की अस्थियों के साथ रखी जा रही हैं।

आगे आपने कहा कि भगवान् बुद्ध के सन्देशों का बहुत गहरा प्रभाव दूर-दूर के देशों की विचारधारा तथा संस्कृति पर पड़ा है। पर आज उनका प्रभाव उनकी जन्म भूमि पर जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है।

आज की स्थिति की समीक्षा करते हुए आपने कहा कि आज जब कि सभी राष्ट्र भौतिक दृष्टि से एक दूसरे के इतने निकट हैं, तब भी राष्ट्रों में विश्वव्यापी वैमनस्य सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए महान् सङ्कट बन गया
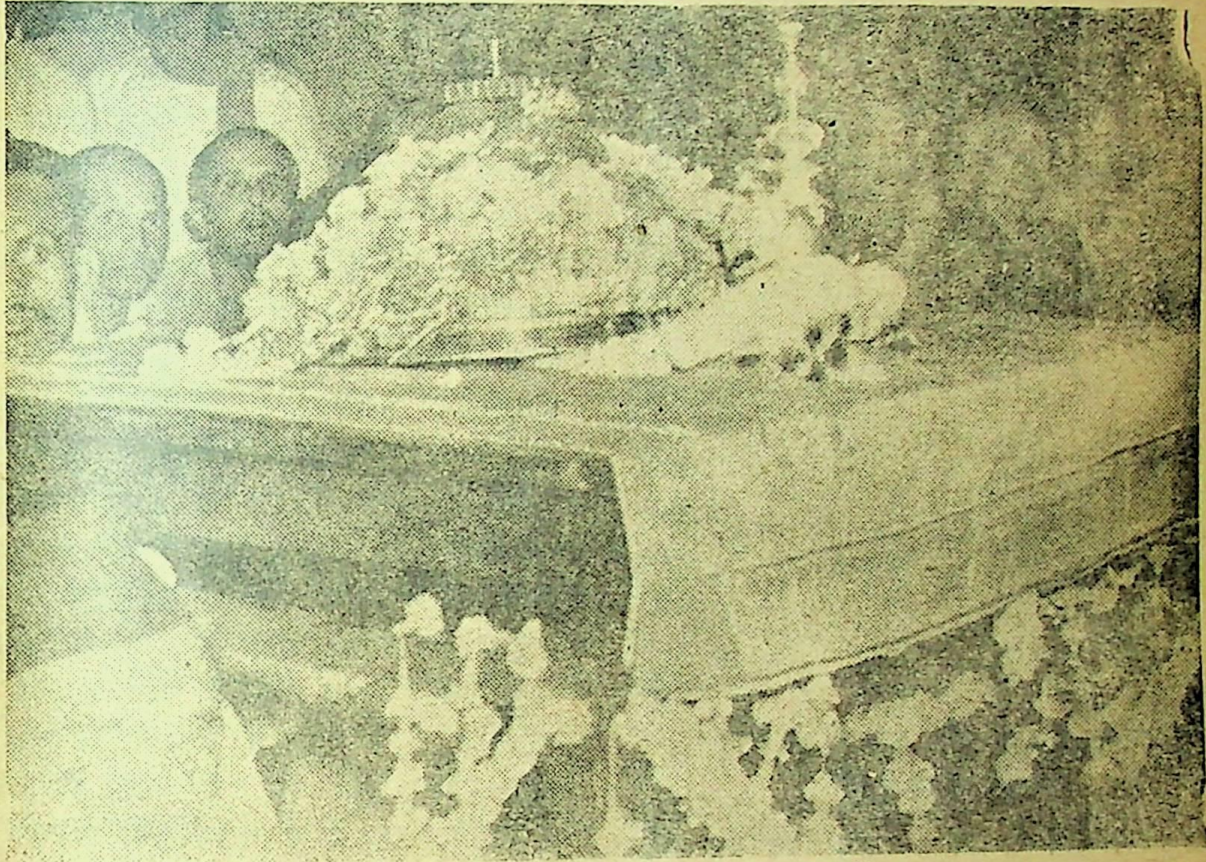
सभा-मण्डप में पुष्पों से ढँकी अस्थि-मंजूषायें

प्राप्त करके पहले पहल अपने शिष्यों को धर्मोपदेश दिया था। कुछ आक्रमकों ने इसे नष्ट कर दिया था, पर पुनः निर्माण के बाद आज सारनाथ अन्य तीर्थ स्थानों की भाँति ही तीर्थ स्थान बन गया है। महान्

आगे आपने कहा कि अस्थियों के स्वागत का भार तो स्वर्गीया श्रीमती सरोजनी नायडू के जिम्मे था, परन्तु उनके स्वर्गवासी हो जाने पर यह कार्य मुझे करना पड़ा।

है। हर्ष की बात है कि युद्धोन्मुखी बर्बरता के अन्धकार में एक सङ्गठित लोलुपता के काल में भी सारनाथ के प्राचीन मठ के पुनरुद्घाटन के उत्सव में पूर्व और पश्चिम देशों के नागरिक भी सम्मिलित हैं।"

सभा के समाप्त होने के बाद अस्थियों को पुनः विजयानगरम् भवन में ले जाया गया। वहाँ विशेष रूप से सजे-सजाये आसन पर अस्थिमंजूषा रखी गई। अगले दिन के मध्याह्न तक भिक्षुओं की देखरेख में

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पवित्र अस्थियाँ वहीं रहीं और उनका पूजा-सम्मान हुआ।

अस्थियों का राजसी जुलूस

सारनाथ की धार्मिक महत्ता ४ नवम्बर शुक्रवार की शाम को उस समय कई गुनी बढ़ गयी जब प्रधान मन्त्री पण्डित गोविन्द बल्लभ पन्त पवित्र अस्थियों को लेकर यहाँ पहुँचे और उन अस्थियों को भगवान् की अस्थियों के साथ रखा गया।

प्रधान मन्त्री पन्तजी ने मङ्गल सूत्रादि के शुभोच्चारण के बीच अस्थियों की पवित्र मंजूषा पौने चार बजे विजयानगरम् भवन से अपने हाथ में लिया। पण्डित गोविन्द मालवीय की सहायता से आपने उसे उस सजी-
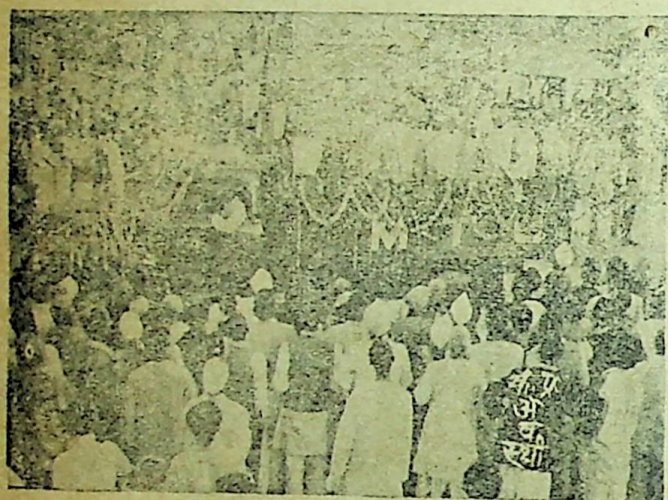
"माननीय पन्त जी पवित्र अस्थियों को लेकर सारनाथ जा रहे हैं।"

सजायी ट्रक पर स्वयं ले जाकर रखा, जिस पर उन्हें सारनाथ ले जाया जा रहा था। ट्रक के चलते ही उसके पीछे-पीछे स्थानीय अधिकारियों और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं की मोटरों की कतार चली। इनमें पन्तजी के अतिरिक्त मेजर जेनरल नाथूसिंह और प्रान्तीय पुलिस के इन्सपेक्टर जेनरल श्री बी० एन० लाहिड़ी भी थे।

विजयानगरम् भवन से सारनाथ के आठ मील लम्बे रास्ते के दोनों किनारे पवित्र अस्थियों का दर्शन पाने के लिए उत्सुक नागरिकों की भीड़ लगी थी। अस्थियों की ट्रक चौखण्डी स्तूप के निकट रुकी। वहाँ काशीनरेश, बर्मी राजदूत, सिक्किम के राजकुमार और उनकी बहन, शविदेशों से आये कई सहस्र प्रतिनिधि और जनता तथागत की पवित्र अस्थियों के साथ उपस्थित थीं। अग्रश्रावकों की अस्थियों की मंजूषा को तथागत की अस्थियों के पास रखते ही सभी उपस्थित व्यक्तियों में श्रद्धा और भक्ति की लहर फैल गयी। यह अवसर वास्तव में ऐतिहासिक था, क्योंकि जो आदर और सत्कार उन महापुरुषों के परिनिर्वाण के २५०० वर्ष बाद भी इन अस्थियों को प्राप्त है, उतनी प्रतिष्ठा जीवित व्यक्तियों में भी कुछ ही को प्राप्त हो पाती है।

चौखण्डी स्तूप के पास से अस्थियों को पन्तजी से काशीनरेश ने सारनाथ की ओर से ग्रहण किया। वहाँ से वे पवित्र अस्थियाँ मूलगन्ध कुटी विहार के निकटवर्ती सभास्थल तक जुलूस में ले जायी गयीं। जुलूस के, सब से आगे रंगबिरंगे कपड़ों में बौद्ध पताकाओं के साथ नेपाल और भूटान के लगभग २०० प्रतिनिधि तथा यात्री चल रहे थे। उनके पीछे हरेक देश के भिक्षु थे। उनके पीछे बैण्ड था। जिस के पीछे हाथी पर सिक्किम के राजकुमार तथा राजकुमारी अस्थियों के साथ बैठे थे। हाथी के बाद ही पन्तजी और अन्य अधिकारियों की मोटर थी। सारनाथ की पवित्र भूमि पर आध घण्टे चलने के पश्चात् यह जुलूस सभास्थल पर पहुँचा। सभास्थल इतना ठसाठस भरा था कि पवित्र अस्थियों को मंच तक ले जाने में भी काफी कठिनाई हुई। भगवान् बुद्ध की अस्थियों के स्वर्ण-स्तूप को लेकर बर्मी राजदूत तथा उनके पीछे ही चल रहे काशीनरेश के हाथ में अग्रश्रावकों की अस्थियाँ थीं। भीड़ को शान्त करने के लिए स्वयं पन्तजी को माइक्रोफोन तक आना पड़ा।

स्वागत-समारोह तथा सभा के बाद पवित्र अस्थियाँ मूलगन्ध कुटी विहार में तथागत की अस्थियों के साथ रखी गईं। प्रान्तीय सरकार की ओर से उनकी सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था की गई थी।

पवित्र अस्थियों का प्रदर्शन तथा पूजा

५ नवम्बर से १३ नवम्बर तक अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ मूलगन्ध कुटी विहार में रहीं। प्रतिदिन उनका प्रदर्शन तथा पूजा हुआ। एक नवम्बर को प्रातः काल

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

६-३० बजे प्रान्तीय गवर्नर द्वारा सर्वप्रथम अस्थि-मंजूषा खोली गई तथा पवित्र धातुओं की पूजा हुई। उसके पश्चात् सर्वसाधारण के लिए धातु-प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। उस दिन देश विदेश के आए हुए सभी व्यक्तियों ने अस्थियों की पूजा की तथा अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पित की। दर्शकों एवं श्रद्धालुभक्तों से मन्दिर सन्ध्या तक भरा रहा। उस दिन सारनाथ अपने अतीत की भव्यता एवं महत्ता का आभास मानो प्रत्येक नर नारी के प्रफुल्ल मुखमण्डल द्वारा प्रगट कर रहा था।

इसी प्रकार विभिन्न प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा १२ नवम्बर तक अस्थियों की पूजा की गई। जिनमें काशी नरेश श्री विभूतिनारायण सिंह, लद्दाख के बड़े लामा श्री जेल्टन बकुल, श्री लाल बहादुर शास्त्री, पं० कमलापति त्रिपाठी, आचार्य नरेन्द्रदेव जी, श्री जगतनारायण दूबे आदि सम्मिलित हुए थे। लगभग ५० हजार व्यक्तियों ने अस्थियों के दर्शन पाए। सारनाथ में अस्थियों के आगमन के दिन से लेकर नव दिनों तक चहल पहल रही। दर्शकों और भक्तों की भीड़ बनी रही। प्रति दिन नए नए व्यक्तियों के आगमन और पूजा से सारनाथ एक बृहत् मेला-का रूप धारण कर लिया था। जिधर सुनिये उधर ही अस्थियों की महिमा और बौद्ध धर्म की महत्ता के गुणगान सुनाई पड़ते थे।

अस्थियों की अन्तिम पूजा

१३ नवम्बर को अस्थियों को अन्तिम पूजा हुई। उस अवसर पर बनारस जिला बोर्ड के अध्यक्ष श्री जगत नारायण दूबे ने पूजा के पश्चात् भाषण करते हुए कहा—"सारिपुत्र और मौद्गल्यायन ने सत्य और अहिंसा को व्यवहारिक रूप दिया था। इसीसे वे पूजनीय हैं। हमारे देश में भी आज सत्य और अहिंसा के व्यावहारिक स्वरूप की आवश्यकता है। आज हम मिथ्याचरणों को भी धर्म और कायरता को अहिंसा मान बैठे हैं। धर्माचार्य यदि हमें प्रकाश और सत्य की प्रेरणा देते रहें तो हमारा कल्याण होगा।"

प्रस्थान

१३ नवम्बार को दो बजे पवित्र अस्थियाँ मूलगन्ध कुटी विहार से विशेष पूजा के पश्चात् जुलूस के साथ निकाली गईं। जुलूस में स्थानीय नागरिक तथा छात्र सम्मिलित थे। जुलूस चौखण्डी स्तूप तक गया। वहाँ से पं० गोविन्द मालवीय के द्वारा बनारस स्टेश तक अस्थियाँ ले जायी गईं। वहाँ उनकी विदाई के लिए काशी के प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा जनता की भीड़ जमा हो गई थी। विदाई के अवसर पर भिक्षु जिनरत जी ने काशी नगर वासियों तथा प्रान्तीय सरकार को धन्यवाद दिया। अस्थियाँ उसी टूरिस्ट कार द्वारा कलकत्ते के लिए ले जाई गईं, जो भारतीय सरकार द्वारा विशेष रूप से व्यवस्थित थी।

मूलगन्धकुटी विहार का १८ वां वार्षिकोत्सव

मूलगन्धकुटी विहार सारनाथ का १८ वां वार्षिकोत्सव संयुक्तप्रान्त के प्रधान मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पन्त की अध्यक्षता में ४ नवम्बर को सायंकाल सारनाथ की पुण्य-भूमि में मनाया गया। उस अवसर पर लगभग तीस सहस्र नरनारियों की अपार भीड़ थी। सभा का कार्यक्रम सेण्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल की बालिकाओं द्वारा स्वागतगान से प्रारम्भ हुआ। सारनाथ हायर सेकण्डरी स्कूल के छात्र ने भी कविता पाठ किया। उस अवसर पर लंका, बर्मा, चटगाँव, नेपाल, तिब्बत, अमेरिका, इंग्लैंड, मंगोलिया, सिक्किम, चीन, लद्दाख आदि विभिन्न देशों के प्रतिनिधि और यात्री उपस्थित थे।

प्रारम्भ में महाबोधि सभा के उपप्रधान मंत्री भिक्षु एम० संघरत्न जी ने सभा की वार्षिक रिपोर्ट पढ़ी और पवित्र अस्थियों के आगमन के अवसर पर लन्दन, मुंचेन (जर्मन) तथा पेनाङ्ग की महाबोधि सभा एवं सोवियत रूस, मिश्र, और नेपल के भारत स्थित राजदूतों तथा भारत के गवर्नर जेनरल, विभिन्न प्रान्तों के गवर्नरों, मंत्रियों और देशविदेश के प्रमुख नेताओं आदि ने जो सम्मान प्रदर्शित करते हुए अपने संदेश भेजे थे, उन्हें पढ़कर सुनाया।

तदुपरान्त काशी की जनता तथा सारनाथ की ओर से पं० कमलापति त्रिपाठी एम० एल० ए० ने देश विदेश से आए हुए लोगों का स्वागत किया तथा अपने सारगर्भित भाषण द्वारा अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों के शुभागमन के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा—"आज ढाई हजार वर्ष के बाद जब संसार में भगवान्

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बुद्ध के उपदेश की अत्यन्त आवश्यकता है, हम उनके प्रधान दो शिष्यों की पवित्र अस्थियों का हार्दिक स्वागत करते हैं, जिन्होंने तथागत के अमर सन्देश विश्व में फैलाने के लिए महान् कठिनाइयों और बाधाओं का तनिक भी ख्याल न करके संसार के कल्याणार्थ अपना जीवन लगा दिया था।"

तत्पश्चात् सर्वश्री सोमालोक नायक स्थविर, लंका के राजदूत सी० कुमार स्वामी, भदन्त आनन्द कौसल्यायन,

माननीय पन्त जी भाषण दे रहे हैं

इंग्लैंड के प्रतिनिधि श्वेल रायन, भिक्षु अमृतानन्द, (नेपाल), भिक्षु धम्मानन्द (लंका), बर्मी राजदूत सर मौंजी, पं० गोविन्द मालवीय, बाबा राघवदास आदि के भाषण हुए।

बर्मी राजदूत का भाषण

बर्मा के भारत स्थित राजदूत सर मौंजी ने अपने भाषण में कहा कि बौद्ध धर्म वह स्वर्ण-रज्जू है जो न केवल भारत और बर्मा को बल्कि एशिया के बहुसंख्यक राष्ट्रों को आपस में प्रेम के बन्धन में बाँध दी है। आधुनिक विज्ञान के आगे परम्परागत विश्वास एवं प्रथायें अपना अस्तित्व खोती जा रही हैं, लेकिन भगवान् बुद्ध के बुद्धिवाद पर इसका किंचितमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ सका वास्तविकता यह है कि विश्व नियम के अभिज्ञान में बुद्धिवाद विज्ञान का पूरक है, वह भौतिकवादी वैज्ञानिक की कमी पूरी करता है।

पन्त जी का भाषण

सभापति पद से भाषण करते हुए प्रधान मंत्री पन्त जी ने सर्वप्रथम भगवान् बुद्ध के दोनों प्रधान शिष्यों की अस्थियों का प्रान्त के नागरिकों एवं सरकार की ओर से स्वागत किया तथा श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। आपने कहा कि एशिया के सभी देश जैसे चीन, जापान, बर्मा, स्याम, तिब्बत, नेपाल, सिंहल, हिंन्दचीन आदि की मौलिक संस्कृति एक है। हम सभी एशिया को एक समझें, इसके अन्दर जितने भी पैदा होने वाले हैं सभी का पारस्परिक हजारों वर्ष का नाता है। पराधीनता के दिनों में यह नाता ढीला हो गया था। ऐतिहासिक बन्धनों

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

को सुदृढ़ करना है। आपने विदेशों के प्रतिनिधियों को सम्बोधन करते हुए कहा कि भारत प्राचीन काल में एशिया के सभी देशों की सेवा के लिए तत्पर था। आप अपने यहां की जनता को भारत का यही सन्देश दें कि आज भी भारत उनकी सेवा के लिए तत्पर है।

आपने बौद्ध धर्म के व्यापक प्रकार के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए कहा कि बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों, आदर्शों, सत्यभाषण, सद्व्यवहार-वचन एवं कर्म में समन्वय के आधार पर जीवन को एक साँचे में ढालकर ही बौद्ध मत का प्रसार किया जा सकता है। केवल मंत्र तंत्र से नहीं। तभी संसार बौद्ध धर्म के मौलिक सिद्धान्तों को समझ सकता है। आपने बुद्ध के उपदेशों का विश्लेषण करते हुए निस्वार्थ सेवा करने, पिछड़े हुए लोगों को ऊपर उठाने, पुरुषार्थी बनने, आलस न करने, प्रेम, सद्भावना तथा सौहार्द पूर्ण भाव से जन-सेवा करने की अपील की। आपने अन्त में कामना की कि सारनाथ में भगवान् बुद्ध के सन्देश की जो किरणें निकलीं वे निरन्तर प्रकाशमान रहें; ताकि हमारे देश तथा विश्व के मनुष्य मात्र का कल्याण हो।"

एक आवश्यक अनुरोध

भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी ने अपने भाषण में युक्त प्रान्तीय सरकार द्वारा भारत सरकार से अनुरोध किया कि ब्रिटेन ने अस्थि-अवशेष की जो असली मंजूषा रख ली है, उसे वापस माँगना चाहिये। आपने वैशाखी पूर्णिमा को सार्वजनिक छुट्टी घोषित करने का अनुरोध किया। पन्त जी ने अपने भाषण में असली मंजूषा के लिए ब्रिटेन को लिखने का आश्वासन दिया। वैशाखी पूर्णिमा को सार्वजनिक छुट्टी घोषित करने के सम्बन्ध में आपने कहा कि सार्वजनिक हित को देखते हुए इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्रवाई की जायगी।

सभा भिक्षु पं० सद्धातिस्स जी के धन्यवाद देने के पश्चात् समाप्त हुई। सभा का सारा कार्यक्रम अखिल भारतीय रेडियो द्वारा प्रसारित किया गया।

उस दिन सारनाथ के कण-कण में उत्साह की लहर थी। मूलगन्ध कुटी विहार तथा अन्य स्थान तोरण वन्दन वारों से सजाये गये थे। बनारस से सारनाथ तक छः मील का मार्ग अनेक फाटकों से सजा था। सारनाथ में सर्वत्र झंडियाँ, पताकायें तोरण, ध्वजा आदि फहरा रहे थे। उद्योग कृषि और पशु तथा स्वास्थ्य प्रदर्शनी का भी सुन्दर आयोजन था। मूलगन्ध कुटी विहार तथा नव निर्मित प्रवेश द्वार के बीच पीतल के खम्भे तथा कलशों का बड़ा ही आकर्षक फाटक बनाया गया था। जिसपर भगवान् बुद्ध की एक भव्य मूर्ति रखी गई थी जिसे देखते हुए दर्शक का हृदय श्रद्धा और भक्ति से भर जाता था। मन्दिर तक पहुंचते पहुँचते स्वतः शिर अवनत हो जाता था। उस दिन की छटा देखते न बनती थी। सन्ध्या को प्रदीपों की प्रभा ने सारनाथ की सुन्दरता में चार चांद लगा दी।

मूलगन्ध कुटी विहार का नया प्रवेश द्वार

४ नवम्बर शुक्रवार को सबेरे सारनाथ में मूलगन्ध कुटी विहार के नव निर्मित प्रवेश-द्वार का उद्घाटन काशीनरेश श्री विभूति नारायण सिंह द्वारा हुआ। द्वार बनाने में दस हजार रुपया व्यय हुआ है, जिसे महाबोधि सभा के संस्थापक अनागारिक धर्मपाल जी की भाभी श्रीमती साइमन हेवावितारण ने प्रदान किया था। द्वार चुनार के लाल पत्थरों से बना है। जिसके बीच लौह फाटक है, फाटक के ऊपर धर्मचक्र बना है। दोनों ओर दो मृग बने हैं, जो मृगदाव की याद दिलाते हैं।

प्रवेश द्वार के उद्घाटन के पूर्व भिक्षुओं ने सूत्र पाठ किया। उद्घाटन के बाद काशीनरेश ने एक संक्षिप्त भाषण दिया, जिसमें उन्होंने सारनाथ की महत्ता तथा भारतीय संस्कृति पर प्रकाश डाला।

महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल का वार्षिकोत्सव

५ नवम्बर को अपराह्न में युक्तप्रान्त के शिक्षा मंत्री श्री सम्पूर्णानन्द जी अध्यक्षता में महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल सारनाथ का वार्षिकोत्सव हुआ। उक्त अवसर पर बर्मा के राजदूत, हरेक देश के भिक्षु तथा यात्री उपस्थित थे। स्वागत गान के पश्चात् सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। स्कूल के प्रधानाध्यापक ने वार्षिक रिपोर्ट पढ़कर सुनायी, जिसमें स्कूल-भवन के पूर्ति की जबरदस्त माँग की गई थी। स्कूल के छात्रों ने पालि, हिन्दी तथा अँग्रेजी

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

में भाषण दिये एवं प्रहसन किये। पालि का प्रहसन विशेष आकर्षक था।

पारितोषिक वितरण के पश्चात् माननीय अध्यक्ष महोदय ने अपने उपदेश दिये। उन्होंने अपने उपदेश में सच्चरित्रता, सत्य एवं धर्मपरायणता का विशेष वर्णन किया। उन्होंने यह भी अनुरोध किया कि इस स्कूल में बौद्ध धर्म के अध्यापन की विशेष रूप से व्यवस्था होनी चाहिये। साथ ही उन्होंने इस बातपर प्रसन्नता प्रगट की कि यह स्कूल शिक्षण-कार्य में आशातीत सफलता प्राप्त कर रहा है।

सभा के छात्रों ने शिक्षा मंत्री को सैनिक सलामी दी। शिक्षा मंत्री ने अस्थियों का दर्शन और पूजा भी किया।

गवर्नर द्वारा सारनाथ का निरीक्षण

सारनाथ, ५ नवम्बर।

मूलगन्ध कुटी विहार में आज प्रातःकाल गवर्नर श्री मोदी ने सार्वजनिक पूजा के लिए सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की अस्थियों का उद्घाटन किया। प्रान्तीय गवर्नर श्री होमी मोदी और उनकी पत्नी ने शनिवार को प्रातःकाल सारनाथ का निरीक्षण किया। गवर्नर और उनकी पत्नी प्रातः काल ६ बजे मूलगन्ध कुटी पर पहुँचे, जहाँ उनका स्वागत महाबोधि सभा के मन्त्री ने किया। उन्होंने गवर्नर का परिचय भिक्षु संघरत्न भिक्षु धर्मज्योति, श्री के० के० राय और आचार्य श्री शासनश्री जी से कराया। मोदी दम्पति ने बड़ी रुचि से मूलगन्ध कुटी विहार की दीवालों पर बनाये चित्रों को देखा। मन्दिर में उन्होंने आज की पूजा में सहयोग दिया। उन्होंने चीनी मन्दिर, सारनाथ की महाबोधि सभा द्वारा संचालित डिस्पेंसरी, खँडहर, और संग्रहालय का निरीक्षण किया, जिनके इतिहास और महत्व के सम्बन्ध में सारनाथ के संग्रहालय के भूतपूर्व क्यूरेटर श्री बनर्जी ने उन्हें समझाया। आपको बौद्ध धर्म की पुस्तकों का सेट भेंट दिया गया। मोदी दम्पति सारनाथ के निरीक्षण से अत्यन्त प्रसन्न थी।

तथागत के चरण-चिन्ह

सिंगापुर, २१ नवम्बर।

सिंगापुर के एक भिक्षु तथागत का सीप जटित चरण-चिन्ह, जिसका मूल्य लगभग एक लाख रुपया है, न्यूयार्क ले जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह चरण-चिन्ह ५ फुट लम्बा ३ फुट चौड़ा है। इस पर तथागत के विभिन्न जन्मों की १०८ मूर्तियाँ बनी हैं। इस प्रतिमा को स्याम के एक कारीगर ने ८ महीने में तैयार की है।

श्री स्वेलरायन अनागरिक बने

सारनाथ, १३ नवम्बर।

आज सारनाथ में इंगलैण्ड बुद्धिस्ट असोसियेशन के प्रतिनिधि श्री स्वेलरायन ने अनागारिक दीक्षा ली। इस अवसर पर सभी बौद्ध भिक्षु उपस्थित थे। आचार्य श्री शासनश्री जी ने उन्हें अनागारिकशील दिया। दीक्षा के बाद उनका नाम अनागारिक शासनरत्न रखा गया। वे अस्थियों के साथ पुनः कलकत्ता लौट गये। वहाँ से वे मरिशस जायेंगे और वहाँ महाबोधि सभा की स्थापना करेंगे।

लद्दाख के बड़े लामा

सारनाथ, ७ नवम्बर।

लद्दाख के बड़े लामा श्री जेल्टन बकुल ७ नम्बर की शामको विशेष वायुयान द्वारा सारनाथ के उत्सव में भाग लेने के लिए सारनाथ पहुँचे ८ नवम्बर को सवेरे आपने अस्थियों की पूजा का उद्घाटन किया। महाबोधि सभा को ५००) दान किया। सारनाथ में आप अपना मठ स्थापित करना चाहते हैं।

'ब्रिटेन का सर्वोत्तम गुप्तदल'

लन्दन, १७ नवम्बर।

बुद्धिष्ट सोसाइटी लन्दन के अध्यक्ष श्री क्रिस्मश हाम्फ्रेस ने सोसाइटी की रजतजयन्ती के शुभ अवसर पर अतिथियों से मिलते हुए कहा—"ब्रिटेन का सर्वोत्तम 'गुप्तदल' बौद्धों का है।"

सोसाइटी की रजतजयन्ती इन्डिया हाउस लन्दन में मनाई गई, क्योंकि लन्दन वासियों के लिए यह महत्व की बात थी कि वे भारत प्रादुर्भूत बौद्ध धर्म सम्बन्धी सभा की जयन्ती इन्डिया हाउस में ही मनावें। साथ ही सबसे बड़ी विशेषता की बात यह थी कि इन्डिया हाउस के अध्यक्ष श्री कृष्ण मेनन भी उस समय एक अतिथि के रूप में वहाँ उपस्थित थे। लन्दन स्थित स्याम के

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

राजदूत राजकुमार नखत्र मनोखोल कितियाकर भी अतिथि के रूप में उपस्थित थे। उन्होंने स्याम की ओर से सोसाइटी को एक बुद्ध-मूर्ति प्रदान की।

सोसाइटी के अध्यक्ष श्री हाम्फ्रेस ने सम्वाददाताओं से वार्तालाप करते हुए यह भी कहा कि इस समय ब्रिटेन में हजारों बौद्ध रहते हैं, उत्तरोत्तर उनकी संख्या बढ़ती ही जा रही है।

जापानी भिक्षु का आगमन

सारनाथ, २१ नवम्बर।

जापान के भिक्षु श्री रीरी नाकायामा और डा० श्रीमती कोरा आज सारनाथ आए। स्टेशन पर महाबोधि सभा की ओर से भिक्षु संघरत्न ने आप लोगों का स्वागत किया। दो दिन तक आप लोगों ने सारनाथ में तथागत की पूजा की तथा खँडहर आदि पुरातत्व की महत्वपूर्ण वस्तुओं का निरीक्षण किया। डा० कोरा ने महाबोधि हायर सेकण्डरी स्कूल सारनाथ द्वारा आयोजित सभा में छात्रों के समक्ष भाषण भी किया। जापान में बौद्ध धर्म की प्रगति और वर्तमान् स्थिति के सम्बन्ध में बताते हुए आपने भारत और जापान की मैत्री पर जोर दिया। आपने अणु बम की संहार लीला का भी वर्णन किया।

मुसलिम व्यापारी भिक्षु बना

रंगून, १८ नवम्बर।

बर्मा के पेगू नगर का एक मुसलिम व्यापारी श्री युसुफ अपने परिवार के साथ बौद्ध धर्म में दीक्षित हुआ और तत्पश्चात् घर बार छोड़कर भिक्षु बन गया। विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि वह अपना विवाह एक बौद्ध स्त्री से किया था और स्त्री से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म के ग्रन्थों को पढ़ा करता था। अध्ययन और मननशीलता ने उसे बौद्ध बना दिया है। वह अब भिक्षु होकर सारे संसार के भ्रमण तथा बौद्ध धर्म के प्रचार का कार्य-क्रम बनाने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है। इस मुसलिम व्यापारी के भिक्षु होने के समाचार से बर्मा-स्थित मुसलमानों पर काफी प्रभाव पड़ा है।

बौद्ध धर्म में दीक्षा

सारनाथ, ५ नवम्बर।

कार्तिक पूर्णिमा को सारनाथ की पवित्र भूमि में स्थित मूलगन्धकुटी विहार में सायंकाल श्री गोविन्द प्रसाद सक्सेना (जिला प्रोबेशन अफसर, आगरा) ने बौद्ध धर्म में दीक्षा ली। दीक्षोपरान्त आपका नवीन नाम "गौतम मैत्रेय" हुआ। उस समय सारनाथवासी सभी भिक्षु उपस्थित थे।

आपने अपने संक्षिप्त परिचय में बताया कि आप पहले बनारस रह-चुके थे और समय-समय पर सारनाथ आया करते थे। आपको बौद्ध धर्म की ओर विशेष झुकाव था। आपके कथनानुसार यह ज्ञात हुआ कि धम्मपद आदि बौद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त "धर्मदूत" ने आपको विशेष रूप से प्रभावित किया।

आपने बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के लिए एक "सन्यासी जी" से भी प्रेरणा पायी थी और साबाल सारनाथ में उपस्थित होकर 'पञ्चशील' ग्रहण किया था।

भारतीय बौद्ध संघ का वार्षिक अधिवेशन

गत ५ नवम्बर को आर्य संघाराम सारनाथ में भारतीय बौद्ध संघ का वार्षिक अधिवेशन पूज्यपाद श्री चन्द्रमणि महास्थविर जी के सभापतित्व में हुआ। अधिवेशन में अनेक प्रमुख प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए।

भारतीय-बौद्ध-बन्धुत्व

भारतीय बौद्धों के लिए बड़े हर्ष और प्रसन्नता की बात है कि श्री चन्द्रिका प्रसाद उपासक तथा ओ० टी० आर० के बरेली स्थित डी० टी० एस० श्री गंगाचरण लाल जी के आयोजन पर ५ नवम्बर को मूलगन्ध कुटी विहार लाइब्रेरी के सन्निपात-भवन में अपराह्न में दो बजे भारतीय बौद्धों की एक बैठक हुई, जिसमें भिक्षु जगदीश काश्यप, भिक्षु धर्मरक्षित, भिक्षु महेन्द्र, श्री गंगाचरण लाल श्री अवधकिशोर नारायण, श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी; श्री प्रेमसिंह चौहान 'दिव्यार्थ', श्री केशरी कुमार राय, श्री चन्द्रधर (उत्साही बौद्ध बालक), श्रीमती दुर्गावती त्रिपाठी और श्रीमती सुधानारायण सम्मिलित थे। उसी समय धर्मोदय सभा की बैठक होने के कारण भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी सम्मिलित नहीं हो सके।

बैठक में सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि सभी भारतीय बौद्ध परस्पर मेलजोल और परिचय रखने के लिए धर्मदूत से अपना सम्बन्ध जोड़ें, धर्मदूत के द्वारा उनका परिचय सबसे होगा। धर्मदूत में समय-समय पर

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उनके परिचय तथा पता छपा करेंगे। जिस बौद्ध बन्धु को जिस किसी बात की जानकारी प्राप्त करनी हो, वह "धर्मदूत सम्पादक" से पत्र व्यवहार करे। धर्मदूत-सम्पादक को सबका परिचय प्राप्त होना चाहिए। धर्मदूत के अगले अंक से "भारतीय-बौद्ध-बन्धुत्व" शीर्षक से 'बौद्ध-जगत्' में ही एतत्सम्बन्धी समाचार छपा करेंगे।

भारतीय बौद्धों में विवाह सम्बन्ध

अबतक भारतीय बौद्धों के पारस्परिक मिलन और विवाह-सम्बन्ध की बड़ी कठिनाई रही है। इस सम्बन्ध में हमारे पास अनेक बौद्ध भाइयों के पत्र आते रहे हैं। अब हमारे लिए इस विषय में कोई ठोस कदम उठाना आवश्यक हो गया है। अतः हम अपने बौद्ध भाई-बहिनों से अनुरोध करते हैं कि जो विवाह के इच्छुक हों, हमारे पास अपने पूरे पते के साथ उम्र, मासिक आमदनी, और योग्यता लिख भेजें। यदि सम्भव हो तो अपना एक फोटो भी भेज दें। चिट्ठी-पत्री का पता—

सम्पादक धर्मदूत, पोस्ट बाक्स नं० १०
सारनाथ, बनारस।

मानसरोवर प्रदेशवासी बड़े लामा

मानसरोवर प्रदेश के बड़े लामा भारत के बौद्ध तीर्थ स्थानों की यात्रा करते हुए २७ नवम्बर को सारनाथ पहुँचे। आपके साथ लगभग बीस और भी लामा थे। पालि साहित्य में मानसरोवर को ही अनोतत्त (=अनवतप्त) सरोवर कहा गया है तथा उसकी विशेषताओं का वर्णन किया गया हैं। लामा के साथ आये हुए कुछ गृहस्थों ने रात्रि में तिब्बती नृत्य-कला का भी प्रदर्शन किया।

कठिन-दान महोत्सव

४ नवम्बर को आर्य संघाराम सारनाथ के स्थविर कित्तिमा जी ने कठिन-दान दिया। कठिन दान में लगभग ४० भिक्षु सम्मिलित हुए थे। उक्त अवसर पर बर्मा, चटगांव, नेपाल और अराकान के बौद्ध उपासक उपासिकायें पर्याप्त संख्या में उपस्थित थे। भोजनोपरान्त दान में प्रत्येक भिक्षु को चीवर, आदि दान दिये गये।

धर्मोदय सभा का पाँचवाँ वार्षिक अधिवेशन

गत ५ नवम्बर को आर्यसंघाराम सारनाथ में पूज्यपाद गुरूवर श्री चन्द्रमणि महास्थविर के सभापतित्व में धर्मोदय सभा का पञ्चम वार्षिक अधिवेशन हुआ। अधिवेशन में नेपाल देशवासी सभी भिक्षु सम्मिलित हुए थे। भिक्षु अमृतानन्द ने प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र दिया और उनके स्थान पर भिक्षु महानाम तथा भिक्षु अनिरुद्ध क्रमशः प्रधान मंत्री एवं उपमंत्री निर्वाचित हुए। अन्य पदाधिकारियों का निर्वाचन इस प्रकार हुआ—सभापति—ऊ चन्द्रमणि महास्थविर। उपसभापति—भदन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु धम्मालोक। कोषाध्यक्ष—साहु मणिहर्ष ज्योति।

नेपाल में निर्वाण-मूर्ति की स्थापना

नेपाल की राजधानी काठमांडू (कान्तिपुर) के किन्डोल विहार के पास धर्मचारी के उपासिकाराम में गत आश्विनि पूर्णिमा को भगवान् बुद्ध को परिनिर्वाण मूर्ति की स्थापना हुई निर्वाण-मुर्ति की स्थापना की तैयारी सन् १९४८ से ही हो रही थी। अनागारिका धर्मचारी इस पुनीत कार्य के लिए सतत प्रयत्नशील थी। नेपाली अनागारिकाओं में धर्मचारी (कान्तिपुर) और धर्मशीला (पोखरा) ने नेपाल की जो सांस्कृतिक सेवा की हैं और कर रही हैं, वह स्तुत्य तथा अनुकरणीय है। अब तक नेपाल में भगवान् की निर्वाण-मुद्रा की मूर्ति नहीं थी। प्रसन्नता की बात है कि अनागारिका धर्मचारी ने अपने अदम्य उत्साह तथा उद्योग से उसकी पूर्ति की है मूर्ति कुशीनगर-स्थित परिनिर्वाण-मूर्ति की भांति पूज्यपाद गुरुवर श्री चन्द्रमणि महास्थविर के आदेशानुसार बनी है।

जापान में धार्मिक स्वतन्त्रता
जनरल मैकार्थर का उत्तर

जापान में ईसाई धर्म के प्रचारकों द्वारा बौद्धों को ईसाई बनाने का जो समाचार हमें प्राप्त हुआ था और जिसके विरोध में अखिल भारतीय हिन्दू धर्म सेवासंघ तथा महाबोधि सभा के अतिरिक्त अनेक संस्थाओं ने भारत स्थित अमेरिकी राजदूत के पास जो पत्र भेजे थे। उन्हें माननीय राजदूत महोदय ने जनरल मैकार्थर तक पहुँचाया

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

उनके उत्तर में जापान से जनरल मैकार्थर का निम्नलिखित उत्तर आया है—

"आपका—पत्र मिला। संयुक्तराष्ट्र द्वारा जापान पर अधिकार सम्बन्धी निर्धारित नीति जो वर्तमान् में व्यवहार में लायी जा रही है, उसके बारे में ऐसा मालूम होता है कि गैर जिम्मेदार सम्वाददाताओं के द्वारा आपको गलत समाचार मिले हैं, जो खेद की बात है। जापान सम्बन्धी इस नीति को प्रधान बात यह है कि जापानियों का जीवन फिर से इस ढाँचे पर ढाला जाय कि वे प्रजातन्त्रवाद के सिद्धांतों को अपना सकें। जापान के आत्म समर्पण के पहले ही पोटसडैन में जो सम्मेलन हुआ था उसी में इस नीति का निर्धारण हो चुका था और उस सम्मेलन में यद्यपि आपकी सरकार का प्रतिनिधित्व नहीं हुआ था तथापि उसके उपरान्त आपकी सरकार का सुदूरपूर्व कमीशन के सदस्य की हैसियत से कई बार उस नीति का समर्थन कर चुकी है। उस नीति का सर्वप्रथम सिद्धान्त यह है कि धार्मिक सहनशीलता और धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की जाय। अर्थात् प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार प्राप्त हो कि वह अपनी अन्तरात्मा और अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार स्वतन्त्रता के साथ पूजा कर सकें। यह अधिकार पूर्णरूप से स्वीकार किया है पूरी तरह से जापान में प्रचलित है। अधिकार बौद्धों को, शिन्तो मतवालों को, ईसाइयों को और अन्य भिन्नमत वालों को समान रूप से प्राप्त हैं।

ये प्रजातन्त्रवाद के सिद्धान्त घनिष्ठ रूप से ईसाई मत के दार्शनिक सिद्धान्तों का अनुसरण करते हैं जिस प्रकार कि वे निस्सन्देह कई अंशों में बौद्ध धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों का अनुसरण करते हैं। परन्तु इससे यह अनुमान लगाना उचित नहीं है कि जापान के प्रजातन्त्रवाद के सिद्धान्तों के अनुसार ढालना जापानी लोगों को ईसाई मत में परिवर्तित करना है। क्योंकि राजनीतिक पुनर्निर्माण का उद्देश्य यह भी है कि लोग इस प्रकार के विषयों में बिना किसी दबाव के अपने व्यक्तिगत अन्तरात्मा के अनुसार जीवन यापन करने में स्वतन्त्र रहें। यह सत्य है कि यहाँ ईसाई मत के नेता और मिश्नरी हैं जो जापानी लोगों के आत्मिक और शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति करने में लगे हुए हैं। परन्तु साथ ही यहाँ बौद्ध भिक्षु तथा अन्य बहुत से मतों के लोग भी हैं जो इसी प्रकार कर रहे हैं। जापान में वर्तमान शासन सम्बन्धी नीति के अनुसार या उसके प्रभाव से किसी के साथ पक्षपात नहीं किया जाता, अपितु सब अपने-अपने धर्म के सिद्धान्तों और उपदेशों का प्रचार करने में और जापानियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में स्वतन्त्र हैं। यदि इनमें से किसी एक खास मत को लोग अधिक पसन्द करते हैं और उसमें परिवर्तित हो जाते हैं तो उससे केवल यही अर्थ निकलता है कि उस मत में उन लोगों को अधिक आत्मिक सुख और विश्वास मिलता है। यह एक ऐसी बात है, जो प्रत्येक स्वतन्त्र देश में होनी ही चाहिये।"

शीघ्र आर्डर भेजकर परीक्षा करें

थोक और खुदरा बिक्री करने वाले

हिमालय और नेपाली जड़ी-बूटी, कस्तूरी, ऊन, चँवर, शिलाजीत तथा नेपाल और पहाड़ से मिलने वाली शिल्पकला की चीजें, समस्त उपयोगी वस्तु आदि का आर्डर भेजकर परीक्षा करें आपको पूर्ण सन्तोष देना ही हमारा एकमात्र उद्देश्य है। विशेष जानकारी के लिए पत्र व्यवहार करें।

पता— रामलाल कायेष्ट
नेपाली गुड्स्-आर्डर सप्लायर
८। ४१७ बटू डौ वहाल टोल
काठमाडौं, नेपाल।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

नये प्रकाशन

जातिभेद और बुद्ध—सम्पादकः भिक्षु धर्मरक्षित। प्रकाशकः महाबोधि सभा सारनाथ, बनारस। मूल्य ॥)

'ज़ातिभेद' मानव-समाज का कलंक है। इसपर जितना भी लिखा जाय वह थोड़ा होगा। यह समाज नाशक भेद बुद्धकाल में भी था और था प्रबल रूप में। तथागत ने नाना प्रकार से इसकी निन्दा की और मनुष्य-मात्र को समान बताया।

इस ग्रन्थ में 'त्रिपिटक' में जातिभेद विषयक आये सभी सूत्रों का संकलित करके सरल हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। विषय और प्रसंग के अनुसार ग्रन्थ १२ परिच्छेदों में बँटा हुआ है। बीच-बीच में नये नये सुरुचिपूर्ण शीर्षक भी दिये गये हैं। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण जात-पाँत तोड़क मण्डल लाहौर से "जाति-भेद पर भगवान् बुद्ध के विचार" नाम से सन् १९४२ में प्रकाशित हुआ था। यह उसी का द्वितीय संस्करण है। इसके प्रचार की अत्यन्त ही आवश्यकता है। ग्रन्थ आधुनिक समाज और समय के लिए बहुत ही उपयोगी है। प्रसन्नता की बात है कि शीघ्र ही इसका 'तेलगु' अनुवाद भी प्रकाशित होने जा रहा है।

तथागत का प्रथम उद्देपश—सम्पादक और प्रकाशक उपर्युक्त ही। मूल्य।) मात्र।

यह तथागत के प्रथम उपदेश "धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त" का मूलपालि के साथ हिन्दी अनुवाद है। इस सूत्र में भगवान् ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को सारनाथ में सर्व प्रथम जिस मध्यम मार्ग का उपदेश दिया था, वह साङ्गोपाङ्ग वर्णित है। इससूत्र का जितना प्रचार होगा, उतना ही जगत् का कल्याण होगा। "धर्म-चक्र" के चिह्न द्वारा लांछित राष्ट्रध्वज के देशवासियों को इस 'धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र' को अवश्य पढ़ना चाहिये।

बुद्धार्चन—रचयिताः डा० प्रेमसिंह चौहान "दिव्यार्थ"। प्राप्तिस्थानः महाबोधि पुस्तक-भण्डार, सारनाथ, बनारस। मूल्य।)

यह 'दिव्यार्थ' जी के साठ पद्यों की नवीन रचना है। यह भक्त-हृदय से लिखी गयी है। इसमें तथागत की भक्ति में तन्मय होकर कवि ने अपनी हार्दिक श्रद्धा को कवितामय भाषा में व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। 'बुद्ध कीर्तन' की अपेक्षा 'दिव्यार्थ' जी की यह प्रौढ़ रचना है। इसमें तथागत का जो गुणगान किया गया है वह 'भक्तिशतकम्' के अतिरिक्त अन्यत्र प्राप्त नहीं है। 'बुद्धार्चन' तथागत के श्रद्धालु भक्तों के बड़े काम का है। छपाई आदि बहुत सुन्दर है। 'दिव्यार्थ' जी के इस उपयोगी प्रयास के लिए बधाई।

अग्रश्रावक—लेखकः भिक्षु अमृतानन्द। प्रकाशकः स्वयं प्राप्ति स्थानः महाबोधि पुस्तक-भण्डार, सारनाथ, बनारस मूल्य।-)। पृष्ठ संख्या २९।

यह नेवारी भाषा की पुस्तिका है। इसमें भगवान् के अग्रश्रावक सारिपुत्र तथा मौदगल्यायन का जीवन चरित दिया गया है। अन्त में स्तूप से अग्रश्रावकों की अस्थियों की प्राप्ति आदिका भी सविस्तार वर्णन है। अनेक चित्रों से सुसज्जित यह पुस्तिका बहुत ही आकर्षक है। छपाई आदि भी सुन्दर है। लेखक ने इसे सारनाथ के 'धातु-महोत्सव' के शुभावसर पर लिखा तथा प्रकाशित किया है, जिससे नेपाल वासी बौद्धों का बड़ा हित हुआ है। लेखक के इस महत्त्वपूर्ण कृति के लिए हम अपने नेपाली पाठकों की ओर से हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

धर्मदूत के पुराने अङ्क

धर्मदूत के पुराने अंक मँगाइये। जिनमें बौद्ध धर्म, साहित्य, कला, पुरातत्व आदि विषयों पर बड़े बड़े विद्वानों के लेख हैं। हमारे पास प्रत्येक वर्ष के कुछ अंक अवशेष हैं। प्रति अंक का मूल्य =) मात्र। टिकट या पैसे भेजकर मँगाइये। व्यवस्थापक—"धर्मदूत" कार्यालय, सारनाथ, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

हमारे सहयोगी

उत्थान—(मासिक) सम्पादकः श्री मसूरियादीन आदि चार विद्वान। प्रकाशकः उत्थान कार्यालय, २, हैवट रोड, लखनऊ। वार्षिक मूल्य ६)। एक प्रति ॥)।

'उत्थान' एक सामाजिक नवीन मासिक पत्र है। इसके संरक्षक संयुक्त प्रान्त के आबकारी तथा जेल सचिव चौधरी गिरधारी लाल, एम० ए० हैं। इसका उद्देश्य सदियों से पद्दलित, शोषित समाज को ऊपर उठाना है। उसे उत्थान के मार्ग पर लाना हैं। श्री चन्द्रभानु गुप्त जी के ही शब्दों में "हमारा मानव समाज आर्थिक और सामाजिक गुलामी से पीड़ित है। सामाजिक बन्धन राष्ट्रीय जीवन का सबसे भयंकर अभिशाप है। संकीर्णता, भेदभाव, कलुषता, स्वार्थपरता और पूँजीवाद को बिना दूर किए मानव समाज कभी सुख की नींद नहीं सो सकता। मानव मानव में भेद कब तक कायम रह सकता है। धन्य है वह जो इस लक्ष्य की ओर अग्रसर होकर दूसरों को अनुप्राणित करते हैं। आज युग की यही माँग है कि जनसाधारण का हर पहलू से उत्थान हो।"

"उत्थान" अपने नाम को सिद्ध करे यही मेरी कामना है।

सहयोगी—(साप्ताहिक) सम्पादकः विष्णुदत्त शुक्ल प्रकाशकः वाजपेयी भवन, कस्तूरबा गान्धी रोड, कानपुर। इस अंक का मूल्य ।) वार्षिक ६॥)।

'सहयोगी' का यह "जमींदारी उन्मूलन विशेषाङ्क" प्रकाशित हुआ है। इस अंक के सम्पादक हैं सुन्दरलाल शर्मा 'सुन्दरम्'। ५८ पृष्ठों का यह सचित्र अंक बड़ा ही आकर्षक हैं। इसमें 'जमींदारी उन्मूलन' पर नाना दृष्टिकोणों से व्याख्या की गई है उसके लाभ को समझाया गया है अनेक प्रकार के कार्टूनों से पत्र भरा हुआ है। सहयोगी ने अपना कलेवर बदल दिया है, जिसे देखते हुए आश्चर्य होता है। हम सहयोगी की इस सफलता पर धन्यवाद देते हैं।

इतिहास—(मासिक) सम्पादक बिशन स्वरूप। प्रकाशकः कटरा बडियान, दिल्ली। वार्षिक मूल्य ४)। एक प्रति ।=)।

'इतिहास' अपने विषय का अकेला पत्र है। इसमें प्राचीन इतिहास सम्बन्धी लेख रहते हैं। यह पत्र इतिहास के विद्यार्थियों के लिए विशेष लाभदायक सिद्ध होगा, किन्तु साथ ही इसकी अत्यन्त आवश्यकता है कि विगत इतिहास का विवेचन करते समय समन्वय की भावना बनी रहे। पक्षपात और एकाङ्गी दृष्टिकोण से सच्चा इतिहास नहीं लिखा जा सकता। हमें प्रसन्नता है कि प्रस्तुत पत्र में इसका विशेष ध्यान रखा जाता है और पत्र के स्तर को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया जाता है। आशा है यह नवोदित पत्र भारतीय इतिहास का सच्चा सन्देश वाहक होगा।

होमियो पैथिक सन्देश—(मासिक) प्रधान सम्पादक डा० युद्धवीर सिंह। प्रकाशकः होमियोपैथिक सन्देश कार्यालय कूचा बृजनाथ, चाँदनी चौक, दिल्ली। वार्षिक मूल्य ५) एक प्रति ॥) यह प्रति १)।

हमें होमियो पैथिक सन्देश का द्वितीय वर्ष का विशेष वार्षिक अङ्क प्राप्त है। यह हिन्दी अंग्रेजी दोनों भाषाओं में छपा है। पत्र की उपयोगिता के सम्बन्ध में हमें बहुत कुछ कहना नहीं है। इसके नाम से ही इसकी उपयोगिता प्रगट है। पत्र की छपाई बहुत सुन्दर है।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

सब से सस्ती | सब से श्रेष्ठ

नवीन युग की नवीन ढंग की नवीन पत्रिका

शिक्षार्थी (द्वैमासिक)

छात्रों व जन साधारण में नवचेतना, नवोत्साह और आत्मसंयम उत्पन्न कर उन्हें उचित मार्ग बताने वाली।

वार्षिक चंदा इतना कम है कि प्रत्येक कुटुम्ब इसका लाभ उठा सके। जन-हित, राष्ट्र-हित ही इसका चरम लक्ष्य है।

केवल सुरुचिपूर्ण विज्ञापन ही इसमें छपेंगे। रेट :—३०) प्रति बार साधारण पृष्ठ।

वार्षिक मूल्य २) एक प्रति का ।=)

नमूने के लिए ।=) के टिकट भेजें।

"शिक्षार्थी", कुन्दन भवन, गोंदिया (सी० पी०)।

समस्त ब्रजमंडल का एक मात्र प्रतिनिधित्व करने वाला

स्वतंत्र राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र

'जनार्दन'

ब्रजमंडल के हर गाँव में ही प्रचार नहीं है समस्त भारत के कोने २ में जाता है।

पाठकों की संख्या एक लाख से भी ऊपर बिज्ञापन दर सब से सस्ती वार्षिक मूल्य ३)

विज्ञापन दाता तथा एजेन्ट पत्र व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—

"जनार्दन" साप्ताहिक, मथुरा।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

पढ़िये

'प्रभात'—प्रगतिशील साप्ताहिक

स्वतन्त्र भारत के हरएक व्यक्ति को स्वतन्त्र करने के लिए सामाजिक समता आवश्यक है। सामाजिक समता के लिए उचित शिक्षा की आवश्यकता है।

'प्रभात' (साहित्य)

इसी उद्देश्य को लेकर निकल रहा है। इसके साथ वह कोशिश करेगा कि देश की राजनीतिक गति विधि को भी निष्पक्ष रूप से पाठकों के सामने प्रस्तुत करे।

यदि आपको यह उद्देश्य ठीक जचे तो उसकी सफलता के लिए आज ही 'प्रभात' का ग्राहक बन जाइये वार्षिक मूल्य ८) रु० एक प्रति का =)। 'प्रभात' में विज्ञापन देकर व्यापार में लाभ उठाइये हर शहरों में एजेण्टों की आवश्यकता है।

व्यवस्थापक—**'प्रभात' साप्ताहिक**
औरंगाबाद, बनारस।

विशुद्ध भारतीयत्व का अमर सन्देश लेकर
समाज में जागृति की नवज्योति जगाने वाला
बिहार का एक मात्र प्रमुख हिन्दी साप्ताहिक

प्र व र्त क

प्रत्येक शुक्रवार को प्रकाशित

उच्च कोटि के लेख, मनोहर कहानियाँ, सुन्दर कविताएँ, सामयिक राजनीति पर निष्पक्ष विचार,
देश विदेश के चुने हुए समाचार आदि के लिये

आज ही इसके ग्राहक बनिये

वार्षिक शुल्क ६)   अर्ध वार्षिक ५)   एक प्रति का =)

सर्वत्र अभिकर्ताओं (एजेन्टों) की आवश्यकता है

विज्ञापन के दर के लिये भी लिखिये

नोट—नमूना के लिये तीन आने का डाक टिकट भेजना आवश्यक है

व्यवस्थापक—**प्रवर्तक कार्यालय**, कदमकुआँ, पटना।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

बिना चीरफाड़ के अण्डकोष की शर्तिया दवा

किसी प्रकार का फोता हो, चाहे पानी उतर आया हो, बादी का या फोते के उपर गोश्त उतर आया हो या चोट लग गयी हो, वर उतर आई हो, या फोते में दर्द होता हो, फोता बढ़कर कितना ही वजनी क्यों न हो गया हो, आँत उतरती हो, इस दवा के सेवन करने से तमाम बादी का पानी सूख-सूख कर फोता अपनी असली हालत पर बग़ैर किसी तकलीफ़ के आ जायेगा। क़ीमत फ़ी पैकट ३।।) । महसूल डाक व पैकिंग ।।।) आना।

भारत सेवक कम्पनी नं० ३, मथुरा, यू० पी०

अच्छा बीज इस्तेमाल करने से पैदावार बढ़ती है।

आयुर्वेद विशारद बनो

यति आप बिना सर्टीफिकेट के चिकित्सा कार्य कर रहे हैं तो यह खतरनाक है, इसलिये सरकार से रजिस्टर्ड विद्यापीठ का आयुर्वेद-विशारद का सर्टीफिकेट सिर्फ ७) में प्राप्त कर कानून चिकित्सा कीजिये। नियमावली के लिए।) के डाक टिकट भेजिये।

मंत्री —आयुर्वेद विद्यापीठ,
छिंदवाड़ा (सी० पी०)

जनवाणी

प्रति शुक्रवार को प्रकाशित

सम्पादक व प्रकाशक—सूर्यनारायण शर्मा

दिल्ली प्रतिनिधि—के० एम० सक्सेना संवाद-सम्पादक—रतनलाल परमार

सालाना सात रुपया एक प्रति दो आना

विज्ञापन के भाव

एक पेज ७५), आधा पेज ४०), एक कालम २५), आधा कालम १५), एक कालम इंच ३) प्रति अङ्क

विशेष जानकारी के लिये विज्ञापन विभाग

जनवाणी

इन्दौर सिटी को लिखिये

टेलीफोन ६०२५

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

महाबोधि सभा के नये प्रकाशन

पंचशील और बुद्ध वंदना— ,, मूल्य ≈)

भगवान् बुद्ध की शिक्षा—ले० देवमित्र धर्मपाल मूल्य ।–)

पालि महाव्याकरण—ले० भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० मूल्य ५॥)

सरल पालि शिक्षा—ले० पंडित भिक्षु सद्धातिस्स मूल्य १॥)

बुद्ध-कीर्तन (बुद्ध-चरित्र, भजन और गान)—ले० प्रेमसिंह चौहान मूल्य १॥)

बौद्ध-शिशुबोध—अनु० त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित मूल्य ।)

तेलकटाहगाथा— ,, ,, मूल्य ।)

तथागत के अग्रश्रावक—ले० पं० विश्वनाथ शास्त्री—मूल्य ।॥)

बोधि-द्रुम (कविता संग्रह) सम्पादक—सुमन वात्स्यायन मूल्य ।≈)

अमिताभ (बुद्धचरितोपन्यास)—ले० गोविन्द वल्लभ पन्त मूल्य ४॥)

बुद्धदेव (जीवनी तथा उपदेश) ले० शरत कुमार राय मूल्य १।॥)

बुद्ध-चरित (अश्वघोष कृत)—अनु० सूर्यनारायण चौधरी मूल्य ४)

सौन्दरानन्द काव्य—अनु० ,, ,, मूल्य ३)

जातक (भाग, १. २. ३.)—अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन मूल्य २५)

महावंस ,, ,, मूल्य ४)

बुद्ध-चर्या—ले० राहुल सांकृत्यायन मूल्य ७)

शाक्य मुनि (बालकोपयोगी) ले०—गंगाप्रसाद मूल्य ।॥≡)

बौद्ध कहानियाँ—ले० व्यथित-हृदय मूल्य १॥)

बुद्ध हृदय ले० सत्यभक्त मूल्य ॥)

बौद्ध-दर्शन—ले० पं० बलदेव उपाध्याय मू० ६)

यशोधरा काव्य—ले० मैथिलीशरण गुप्त मूल्य १॥≈)

जातिभेद और बुद्ध—ले० त्रिपिटिकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित मूल्य ।≈)

महापरिनिर्वाण सुत्त—(भगवान् बुद्ध की अन्तिम-जीवनी और उपदेश)—सम्पादक—भिक्षु ऊ कित्तिमा मूल्य १।)

ब्रह्मजाल सुत्त (मतों का जंजाल) मूल्य ≈)

सिगालोवाद सुत्त (गृहस्थ के कर्तव्य) मू० ≈)

अम्बट्ठ सुत्त—(वर्ण-व्यवस्था का खण्डन) मूल्य =)

तथागत—ले० भदन्त आनन्द कौसल्यायन मू० १॥)

कहाँ क्या देखा ,, ,, मूल्य २)

जो लिखना पड़ा ,, ,, मूल्य ३)

जो न भूल सका ,, ,, मूल्य ३)

भारतीय संस्कृति और अहिंसा ले० धर्मानन्द कौशाम्बी मूल्य २)

बौद्ध कालीन भारत ले० जनार्दन भट्ट मूल्य ३॥)

ब्राह्मण धम्मिय सुत्त—भिक्षु धर्मरक्षित मूल्य =)

हर्ष चरित्र (उत्तरार्द्ध) अनु० सूर्यनारायण चौधरी मूल्य ॥)

भगवान बुद्ध ने कहा था—(बच्चों के लिए जातक कथाएँ) ले० सुमन वात्स्यायन मूल्य ।≈)

बौद्ध-मनोविज्ञान अनु० भिक्षु वरसम्बोधि) मूल्य २।)

कुशीनगर का इतिहास—ले० त्रिपिटिकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित मूल्य २)

अन्यान्य बौद्ध प्रकाशनों के लिए दो आने का डाक टिकट भेजकर विस्तृत परिचयात्मक सूची मँगाइये।

महाबोधि—पुस्तक-भंडार

सारनाथ बनारस।

———

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA

JAHARLALL PANNALALL & Co.

267 DASASWAMEDH ROAD, BANARAS.

Branch :
College Street Market
CALCUTTA
Phone B. B. 1909

OVER CENTURY FAMOUS
HOUSE
FOR

Branch :
Katra Aluwala,
AMRITSAR.

BANARASI & Other Silk Saris etc.

Stock of up-to-date designs of this year.
No Middlemen profit from Factory direct to Customres

जहरलाल पान्नालाल एण्ड को०

शाखा
कालेज स्ट्रीट मार्केट
कलकत्ता
बी० बी० १९०९

दशाश्वमेध रोड, बनारस
बनारसी और रेशमी कपड़े
की
भारत प्रसिद्ध प्रस्तुत कारक और विक्रेता

शाखा
कटरा आलूवाला
अमृतसर

प्रकाशक—उ० धम्मजोति, महाबोधि-सभा, धम्मपाल रोड, सारनाथ-इसिपतन, बनारस।
मुद्रक—दुर्गादत्त त्रिपाठी, सन्मार्ग प्रेस, टाउनहाल, बनारस।

CC-0. Gurukul Kangri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Foundation USA